ब्रह्मचर्य्य-सन्देश

[श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित भूमिका सहित]

लेखक—
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
प्रोफेसर तुलनात्मक-धर्म-विज्ञान, गुरुकुल विश्वविद्यालय,
कांगड़ी (बिजनौर)

मिलने का पता—
'अलंकार' कार्यालय, गुरुकुल कांगड़ी
जिला बिजनौर, यू पी

संवत् १९८५] [मूल्य दो रुपया

२।=॥

प्रकाशक
दी शर्मा ट्रेडिंग कम्पनी
लोहार चोल, बम्बई २

मुद्रक—
चौधरी दुलार,
गुरुकुल-यन्त्र
गुरुकुल कां/

आदित्य-ब्रह्मचारी

महर्षि दयानन्द

के

चरणों में

गंगा-तट के तपोवनों ने दिया विश्व को जो सन्देश
जिस से जीत लिया देवों ने जरा-मरण का दुर्जय क्लेश।
उसी महा-व्रत 'ब्रह्मचर्य्य' के मूर्त्तिमान मानव अवतार!
ऋषिवर! मेरी तुच्छ भेंट यह चरणों में करिये स्वीकार॥
कलि के इस विकराल काल में कल्प-वृक्ष के सुन्दर फूल
देव-लोक से लाकर तुम ने बरसा दिये यहाँ सुख-मूल।
उन में से ही कुछ ये चुन कर, लाया भक्ति-भरा उपहार
ऋषिवर! अपनी वस्तु कीजिये अपने चरणों में स्वीकार॥

—सत्यव्रत

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. भूमिका (श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित)	१
२ लेखक का वक्तव्य	५
३ क्या यह विषय गोपनीय है ?	९
४ प्रेम की खिलती हुई कलियाँ !	१६
५. जनन प्रक्रिया	४३
६. उत्पादक-अङ्ग	६३
७ किशोरावस्था, यौवन तथा पुरुषत्व	८०
८ 'इ न्द्रि य नि ग्र हः'	९३
i स्वाभाविक-जीवन	
ii. अस्वाभाविक-जीवन	
९ 'इ न्द्रि य नि ग्र हः' (अस्वाभाविक-जीवन) [क आत्म-व्यभिचार]	९९
१० 'इ न्द्रि य नि ग्र हः' (अस्वाभाविक-जीवन) [ख पत्नी व्यभिचार]	१५२
११. 'इ न्द्रि य नि ग्र हः' (अस्वाभाविक-जीवन) [ग वेश्या-व्यभिचार]	१६३
१२ 'इ न्द्रि य-नि ग्र हः' (अस्वाभाविक-जीवन) [घ स्वप्न-दोष]	१७१

१३ 'ब्र ह्म च र्य'— २०१
(वीर्य क्या है ?—उस की महत्ता !)
१४. 'ब्र ह्म च र्य'— २१८
(वीर्य-रक्षा ही जीवन है, वीर्य-नाश ही मृत्यु है !)
१५ 'ब्र ह्म च र्य'— २२७
(ब्रह्मचर्य्य के नियमों की वैज्ञानिक व्याख्या)
१६ उपसंहार २४१
१७. सहायक पुस्तक सूची २५२
१८. इस पुस्तक पर कुछ सम्मतियाँ २५४

ब्रह्मचर्य्य-सन्देश

प्रारम्भिक शब्द

[स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित]

आजकल की सभ्य कहानेवाली पाश्चात्य जातियों के पूर्वज जिस समय अन्धकार मे हाथ से रास्ता टटोल रहे थे और अपने अंग को वस्त्र से ढाँपना तक न जानते थे उस समय आर्यावर्त में 'ब्रह्मचर्य' विषयक ज्ञान अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। मानवीय विकास के लिये ब्रह्मचर्य्य अत्यावश्यक समझा जाता था, विचार तथा क्रिया में विवाह को एक धार्मिक संस्कार समझा जाता था और सन्तानोत्पत्ति गृहस्थ के तीन ऋणों में से एक ऋण समझा गया था। बृहदारण्यकोपनिषद् में गर्भाधान-विधि को अत्यन्त पवित्र यज्ञ कहा गया है, इस के अनुष्ठान के लिये अनेक नियमों की शृंखला बाँध दी गई है। मैक्समूलर जैसे उच्च-कोटि के विद्वान् ने उक्त स्थल का आंग्लभाषा में अनुवाद नही किया क्योंकि उस का विचार था कि वर्तमान सभ्य कहानेवाले गन्दे संसार के लिये वे विचार इतने उच्च हैं कि उन का महत्व उस की समझ में नही आ सकता।

ब्रह्मचर्य्य के महत्व को समझने के लिये युरुप तथा अमेरिका को पर्याप्त समय लगा है। थोड़े समय से वहाँ के विज्ञान तथा चिकित्सा से परिचय रखनेवाले विद्वानों ने अनुभव

करना प्रारम्भ किया है कि ब्रह्मचर्य की नींव पर ही व्यक्ति तथा जाति के जीवन की भित्ति का निर्माण किया जा सकता है। पश्चिम में हरेक को विचारों की आजादी है। उसी का परिणाम है कि इस थोड़े से अरसे में इस विषय में उन्हों ने अपने वैज्ञानिक अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर एक नवीन विद्या की भी आधार शिला रख दी है, जिस का नाम 'युजेनिक्स' (सन्तति शास्त्र) है। 'ब्रह्मचर्य' एक व्यापक शब्द है जिस में 'युजेनिक्स' भी शामिल है। वेदों के आदेश के अनुसार यह मानवीय जीवन का प्रथम सोपान है, और यही उन्नति के मार्ग पर मनुष्य समाज का पथ प्रदर्शक है। इस युग में सब से प्रथम ऋषि दयानन्द ने अङ्गुली उठा कर वर्तमान सभ्यता की जड़ में लगे हुए घुन की तरफ निर्देश करते हुए वाणी तथा आचरण द्वारा बतलाया था कि शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक ब्रह्मचर्य्य द्वारा ही मनुष्य-समाज की रक्षा हो सकती है। आज पाश्चात्य विद्वान् ऋषि दयानन्द के ब्रह्मचर्य्य विषयक एक-एक शब्द की दाद दे रहे हैं।

मेरे शिष्य प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने विद्यार्थी-समाज के लिये 'ब्रह्मचर्य-सन्देश' को लिख कर मातृभूमि की महान् सेवा की है। गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी, के आचार्य्य की हैसियत से मुझ पर १४ वर्ष तक ब्रह्मचारी बालकों के जीवन के निरीक्षण तथा सञ्चालन का उत्तरदायित्व पूर्ण अधिकार प्राप्त रहा है। मेरा अनुभव है कि प्रत्येक युवक की १३ से १८ वर्ष तक की अवस्था अत्यन्त नाजुक होती है, परन्तु यदि आचार्य्य

कुशलता-पूर्वक इस समय के खतरों में से उसे निकाल ले जाय तो बालक का जीवन बिगड़ने के स्थान पर शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का खज़ाना बन जाय। 'ब्रह्मचर्य्य-सन्देश' जैसी पुस्तकों के प्रचार से बालकों का अत्यन्त उपकार हो सकता है परन्तु वास्तविक कार्य तभी होगा जब आचार्य की देख-रेख में रहते हुए ब्रह्मचारियों का जीवन गढ़ा जायगा।

ब्रह्मचर्य्य के सन्देश को सुनने और सुनाने के लिये दैवीय प्रेम तथा पवित्रता का वातावरण होना चाहिये। मैंने स्वयं इस विषय में विद्यार्थियों को अनेक उपदेश दिये हैं। जब तक मन को शुद्ध कर इन उपदेशों को न सुना जाय तब तक इन से लाभ के स्थान पर हानि होने की भी सम्भावना रहती है। इसलिये इस पुस्तक के पढ़नेवालों के प्रति मेरी सलाह है कि इस के पन्ने पलटने से पहले मन में पवित्रता तथा नम्रता के भाव भर लें। विश्व विधायक देवमाता को अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर के, और यदि यह सम्भव न हो तो अपनी प्रेममयी जननी जिस की गोद में खेलते-खेलते कई वर्ष बिता दिये उस का ध्यान कर के, पवित्र तथा दैवीय वातावरण में इस पुस्तक को हाथ लगाएँ।

गुरुकुल छोड़ने के बाद, सन्यास में प्रविष्ट होते समय, मेरा विचार था कि ब्रह्मचर्य विषयक अपने अनुभवों को देश के विद्यार्थी-समाज तक पहुँचाऊँ। परन्तु 'मेरे मन कछु और है विधना के मन और'— मैं अपने वास्तविक मार्ग से हट कर सामयिक घटनाओं की उलझन में पड़ गया। इस समय भारत के विद्यार्थी-

समाज की सब से बड़ी जरूरत यही है कि रहनुमा बन कर उन के वैय्यक्तिक जीवन को ठीक मार्ग पर चलाया जाए। मैं भारत के स्कूलों तथा कालेजों के अध्यापकों एवं आचार्यों से कहना चाहता हूँ कि वे अपने धर्म को पहचानें— स्वयं ब्रह्मचारी बनें ताकि अपने छात्रों को ब्रह्मचारी बना सकें। वेद भगवान का कथन है —'आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते' —ब्रह्मचर्य धारण कर के ही आचार्य छात्र को ब्रह्मचारी बना सकता है। मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है कि 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' स्वरूप वाले भगवान् मातृभूमि के आचार्यों तथा शिष्यों को ज्योति-स्तम्भ होकर कर्तव्य-मार्ग प्रदर्शित करें।

जन्म-शताब्दी-कैम्प
मथुरा
२८ जनवरी, १९२५

श्रद्धानन्द सन्यासी

लेखक का वक्तव्य

ऋषि दयानन्द की जन्म-शताब्दी को हुए तीन साल बीत गये। शताब्दी के उपलक्ष में बहुतों ने अपनी-अपनी भेंट ऋषि के चरणों में धरीं। मैंने सोचा, मैं किस उद्यान से, कौन सा फूल, अपने देवता की आराधना में रखूँ ? अभी दुविधा में ही पडा था कि आचार्य श्रद्धानन्द ने देवलोक के कुछ सुरभित पुष्पों को मेरी अंजली में डाल कर कहा —"बेटा, ले, 'ब्रह्मचर्य्य' के इन फूलों को अपने देवता के चरणों में रख दे।" आचार्य के दिये हुए फूलों से मैंने अपने देवता की पूजा की और मेरे देवता ने उन फूलों को सर्वत्र बखेर देने का आदेश किया। 'ब्रह्मचर्य्य सन्देश' की यही आत्म-कहानी है।

शताब्दी के अवसर पर यह ग्रन्थ आंग्लभाषा में लिखा गया। अपने ढंग का यह पहला ही ग्रन्थ था, इसलिये ज्ञात न था कि इस का जनता में कैसा स्वागत होगा। अंग्रेजी में दो हजार प्रतियाँ छपवाई गई थीं, वे सब निकल गई, और इसे दोबारा प्रकाशित करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस समय तक मेरे पास सैकड़ों पत्र इकट्ठे हो गये थे। सब कहते थे कि इस पुस्तक ने उन की आँखें खोल दी हैं। परन्तु उन की शिकायत थी कि यह पुस्तक बचपन में ही उन के हाथ क्यों नहीं पहुँची, और साथ ही वे लिखते थे

कि यदि बचपन में ही उन्हें यह पुस्तक मिलती तो शायद आंग्लभाषा न समझने के कारण उन के पल्ले कुछ न पड़ता। सब की तान इसी पर टूटती थी कि यह पुस्तक हिन्दी में होनी चाहिये। कई पिताओं की चिट्ठियाँ आयीं, यदि इस का हिन्दी-रूपान्तर हो जाय तो वे उसे अपने पुत्र के हाथ में देना चाहते हैं, कई भाइयों की चिट्ठियां आयीं कि यदि यह पुस्तक हिन्दी में हो तो वे इसे अपने छोटे भाई को भेंट करना चाहते हैं। मेरे पास इतने पत्र पहुँचे हैं कि मेरा विश्वास हो गया है, इस पुस्तक की हिन्दी जनता को जरूरत है। अंग्रेजी की पुस्तक वकीलों, डाक्टरों, बैरिस्टरों, अध्यापकों तथा उच्च श्रेणी के छात्रों के हाथों में ही पहुँची है। उन की यह निश्चित सम्मति है कि जिस ढंग से इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य के विषय को खोला गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है। ब्रह्मचर्य पर हिन्दी में कई पुस्तकें हैं परन्तु जिस पुस्तक में युवकों के व्यावहारिक प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया गया हो ऐसी पुस्तक एक-आध ही होगी। 'ब्रह्मचर्य बड़ी अच्छी चीज है'—इतना कह देने मात्र से युवकों को कुछ समझ नहीं पड़ता। उन के मस्तिष्क में अस्पष्ट-से विचार घूमने लगते हैं। जिन मित्रों ने मेरी अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ी है उन का कहना है कि उस पुस्तक से उन्हें ब्रह्मचर्य के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त हुआ है, भाषा को छोड़ दिया जाय तो भी उन के पल्ले कुछ पड़ रहता है। उन्हीं मित्रों के आग्रह से आज यह पुस्तक हिन्दी भाषी जनता के सम्मुख रखने की धृष्टता कर रहा हूँ। इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य

के गीत गाने में कुछ कसर नहीं छोडी गई, परन्तु उन गीतों के साथ-साथ उस के वैज्ञानिक स्वरूप पर भी विस्तृत विचार किया गया है, उस के हरेक पहलू पर प्रकाश डाला गया है। गुजराती तथा मराठी में इस पुस्तक का रूपान्तर हो चुका है। इस पुस्तक में अंग्रेजी की पुस्तक से बहुत कुछ ज्यादह है। मैं चाहता था कि गुजराती तथा मराठी के अनुवादक कुछ देर ठहरते और अंग्रेजी से अनुवाद करने की अपेक्षा मेरी हिन्दी पुस्तक से अनुवाद करते। परन्तु उन्हें जल्दी थी। मैं चाहता हूँ इस पुस्तक का भारत की सब भाषाओं में अनुवाद हो जाय और १३–१४ वर्ष की आयु के प्रत्येक बालक के हाथ में यह पुस्तक पहुँचे। इस पुस्तक का दूसरी भाषाओं में अनुवाद करने की सब को खुली छुट्टी है।

यह 'सन्देश' इस युग के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द का 'सन्देश' है। उसी सन्देश को आधार में रख कर, उसे पुष्ट बनाने के लिये पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता लेने में संकोच नहीं किया गया। इस में जो कुछ है वह दूसरों का है, बस, भाषा मेरी तथा दृष्टिकोण ऋषि दयानन्द और आचार्य श्रद्धानन्द का है।

इस पुस्तक के लिखने में प० कृष्णदत्त जी आयुर्वेदालंकार, फैजाबाद, ने बहुत सहायता पहुँचाई है। शारीर-शास्त्र के अध्यायों का उल्था तो प्राय उन्हीं का किया हुआ है। प० शंकरदत्त जी विद्यालंकार ने इस पुस्तक के प्रकाशन में बड़ी सहायता की है।

उक्त दोनों भाइयों का हार्दिक धन्यवाद है। यदि इस पुस्तक से एक भी आत्मा के उत्थान में सहायता मिलेगी तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा क्योंकि एक चेतन आत्मा इस अखिल जड़ जगत् से अधिक मूल्यवाला है।

सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

ॐ

ब्रह्मचर्य-सन्देश

प्रथम अध्याय

क्या यह विषय गोपनीय है ?

हम एक गन्दे वातावरण में साँस ले रहे हे। हरेक श्वास के साथ न जाने कितने गन्दे विचार हमारे दिमाग मे जा पहुँचते हैं और न जाने कितने ही और, भीतर प्रविष्ट होने की तैयारी करने लगते है। नन्हे-नन्हे बालकों का मस्तिष्क तथा हृदय कोमल कोंपलों के फूटने और सुरभित कुसुमों के खिलने से उल्लसित होने वाले नवयौवन मे ही दुर्गन्धयुक्त कीचड से भर जाता है। आठ या दस वर्ष के बालक के चेहरे को देखने से कुछ पता नही चलता परन्तु उस के बन्द हृदय-कपाट को खोल कर देखा जाय तो अन्दर एक भट्ठी धधकती नजर आती है जिस की लपटों से—जो थोडी ही देर में प्रचण्ड रूप धारण कर लेंगी—वह बालक झुलसने वाला होता है। वह नहीं चाहता कि उस के 'भीतर' झाँका जाय। इस का विचार ही उसे कपा देता है, नख से शिख तक हिला देता है। वह जानता है, उस के भीतर कीचड की

दलदल जमा हो रही है, भस्म कर देने वाली आग सुलग रही है। किसी अज्ञात प्रेरणा से यह किसी को अपने अन्तःकरण में झाँकने नहीं देता—परन्तु फिर भी इकला बैठ कर यह भीतर के इन्हीं छिपे हुए पन्नों को उठा-उठा कर उन की झाँकियाँ लिया करता है, भीतर जमा किये 'गुप्त-रहस्यों' को उलट-पलट कर देखा करता है!

हाय वे 'रहस्य'! ये गुप्त रहस्य ही तो बालक की आत्मा को चाट जाते हैं। प्रारम्भ में यह इन रहस्यों को समझना चाहता है। अपने दो चार हमजोलियों से कुछ पूछता है, पर वे धमकियाँ चलाते और शैतान की ऐसी हँस देते हैं। जो इन 'रहस्यों' को रहस्य न समझ कर भोला, उस का मजाक उड़ता है, उसे उल्लू बनाया जाता है। चारों तरफ का समाज गन्दा है—अनन्त गन्दा। इन रहस्यों को रहस्य कह कर उन्हें दबाया नहीं जाता, छिपाया—नहीं जाता, परन्तु सब को अनूठा लिखा बनाते... उस
समाज की गोद में पलनेवाले हरेक बच्चे...
जाता है। यही भोला बालक जो कुछ सम-
या समय गुजरने पर बातों की ...
जाता है। गुप्त बातें न जाने किस ...
को भर रही हैं। शान्त प्रकृति अशान्त
हाथें उठने लगती हैं, समुद्र में ज्वार ...
...आक्रमण करता है, पर किया ...
गुप्त रहो, इस पर एक शब्द भी इसके

अध्यापक लोग बालक को स्पष्टरूप से कुछ नहीं कहना चाहते। बालक के हृदय में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को देख कर उत्सुकता उत्पन्न होती है, इन 'गुप्त-रहस्यों' के विषय में भी उसे उत्सुकता सताने लगती है। परन्तु वह देखता है कि इस विषय की कोई बात भी उस के होठों पर आने से पहले ही उस का गला घोंट दिया जाता है। 'चुप रहो, आगे से इस बात को जबान से मत निकालो!'—चारों तरफ चुप्पी, चुप्पी! सब स्वाभाविक रास्ते बन्द देख कर बालक अपने रास्ते स्वयं निकाल लेता है। यह चुप्पी बोलने से भी ज्यादह तबाही मचा देती है। माता-पिता के, अध्यापकों के, गुरुओं के बिना सिखाये बालक बहुत कुछ सीख जाता है—थोड़े ही समय में इतना सीख जाता है जिसे भुलाने के लिये एक जन्म तो क्या कई जन्म भी काफी नहीं हो सकते। वह जो कुछ सीख जाता है उसे देख कर माता-पिता सिर धुनते हैं, गुरु लोग आँसू बहाते हैं और उस का जीवन खिले हुए फूल की पखड़ियों को मसल देने के समान मुरझा जाता है।

तो फिर, क्या यह विषय सचमुच गोपनीय है? क्या दोस्तों का खिल्ली उड़ाना, माता-पिताओं का आँखें दिखाना, गुरुओं का मौन साध जाना—यह सब कुछ उचित है?

मैं तो नहीं समझ सकता कि इस विषय को इतना गोपनीय क्यों माना जाता है। अफसोस तो यह है कि इसे गोपनीय होने के साथ गन्दा भी समझा जाता है। हम लोगों की समझ में न जाने यह क्यों नहीं आता कि मानव-शरीर में जिस प्रकार

फफड़े, जिगर और पट हैं, और उन्हें अपना अपना काम करना होता है उसी प्रकार मनुष्य-शरीर में उत्पादक अवयव हैं। मनुष्य के शारीरिक अंग सभी पवित्र हैं, सभी उपयोगी हैं, और प्रत्येक अंग के उचित उपयोग का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है। इन अंगों को, और इन के सम्बन्ध में चर्चा को, गोपनीय तथा गन्दा इसीलिये समझा जाता है क्योंकि दुश्चरित्र लोगों ने इन अंगों का दुरुपयोग किया है। शरीर के इन पवित्र अंगों के विषय में चर्चा करते ही उन की स्मृति में विषय-वासना से सनी हुई तस्वीरें नाचने लगती हैं। उन की विचार धारा गन्द की नाली में बहा करती है। परन्तु क्या इस विषय की चर्चा सचमुच गन्दी चर्चा है? तो फिर, सृष्टि की अन्य वस्तुओं की चर्चा गन्दी चर्चा क्यों नहीं? ऐसे व्यक्तियों से पूछो कि वे आहार तथा पान की चर्चा करते हुए क्यों नहीं शर्म के मारे चुल्लू भर पानी में डूब मरते, गुरुत्व तथा वर्षा के नियमों पर बहस करते हुए क्यों नहीं लजाते, क्यों वे शारीरिक पवित्रता के सम्बन्ध में कही गई उन बातों को, जिन्हें वे भूल से छिपी हुई समझते हैं, सुन कर सिर नीचा कर लेते हैं, उन्हें गन्दा कहते और उन से अपनी सन्तान को बचाने की कोशिश करते हैं?

यदि नवयुवक इस चर्चा से कतई अनभिज्ञ हों तो निस्सन्देह प्रश्न हो सकता है कि इन बातों के ज्ञान से कहीं भलाई के स्थान पर बुराई तो नहीं हो जायगी। परन्तु जब हम अपनी आँखों से नवयौवन की सरलता को उदीयमान प्रभात में ही मला हुआ

देखते है, बचपन की सफेद चादर को कल्पना रहित काले धब्बों से रगा हुआ पाते हैं तो सहसा मुख से निकल पडता है 'क्या इस चुप्पी से हम पाप के भागी तो नहीं बन रहे ? कहीं ऐसा तो नही कि हमारा मौन लाखों निस्सहाय नवयुवकों को निराशा के अथाह गर्त में धकेल दे और फिर उन के उद्धार की कोई आशा ही न रहे।' ससार के सम्पूर्ण विज्ञ-समुदाय की इस विषय में एक मति है। उत्पादक-अगों के सम्बन्ध में बालक कहीं न कहीं से ज्ञान पा ही जाता है। या तो उस की दिनोंदिन बढती हुई उत्सुकता को शुद्ध, पवित्र स्रोत से शान्त कर दिया जाय, नहीं तो आदम और हव्वा की सन्तान शैतान से सब कुछ सीख ही सकती है! क्या ही अच्छा होता यदि, पशुओं की तरह, मनुष्य को भी बिना सिखाये स्वय ही इन विषयों का निसर्ग द्वारा ज्ञान हो जाता। परन्तु मनुष्य और निसर्ग! नैसर्गिक ज्ञान होने का समय भी नहीं आता कि मनुष्य सब कुछ सीख जाता है, और उस के सीखने का साधन सदा गन्दा—अत्यन्त गन्दा—होता है। वह बहुत कुछ अपने आचार-भ्रष्ट साथियों से सीख जाता है, बहुत-कुछ समाज में चले हुए हँसी-मखौलों से सीख जाता है और बहुत-कुछ छापेखाने की मेहरबानी से दिनोंदिन बढ रहे अश्लील साहित्य से, अश्लील चित्रों से, सीख जाता है।

यह नभोमण्डल न जाने कितने नवयुवकों के हृदय-वेधी आर्तनादों से व्याप्त हो रहा है। कितनों की पुकार आसमान को फाड २ कर उठ रही है 'हाय, क्या ही अच्छा होता, यदि पहले

कुछ पता लग गया होता !' जब से मेरी 'ब्रह्मचर्य' विषय अंग्रेजी की पुस्तक नवयुवकों के हाथों में पहुँची है तभी से लगातार मुझे पत्र आ रहे हैं। युवक-मण्डली तरस रही है। मुझे प आते हैं 'आप की पुस्तक ने मुझे बचा लिया होता यदि साल पहले यह मेरे हाथ पड़ गई होती।' मैंने ऐसे नवयुवकों उत्तर देते हुए सदा यही लिखा है "ए मेरे नौ-जवान दोस्त यदि तेरे व दिन गुजर गये हैं, तेरे कन्धों पर निराशा का बोझ लाद कर मरने के लिये गुजर गये हैं, तो भी पल्ला झाड़ कर उठ खड़ा हो—बीती को बिसार दे और आगे की चिन्ता कर। जीवन को नये सिर से शुरू कर दे। याद रख—जो नयी काया पलटना चाहते हैं उन के लिये 'देर' शब्द का कुछ अर्थ ही नहीं है। यदि तुझे पता लग गया है कि जीवन के इन आवश्यक नियमों के उल्लंघन का दुष्परिणाम क्या होता है तो अपने अनुभव का सदुपयोग कर। यदि तू अभी अल्हड़ जवानी में है तो अपने से बड़ों के जीवन की पाठशाला में सीखे हुए अनुभवों से फायदा उठा। ये अनुभव अनमोल हैं।"

प्यारे नौजवान ! मानव-समाज के इन अनुभवों को मैं तुझ तक पहुँचाना चाहता हूँ। इस पुस्तक में मनुष्य-जाति के ब्रह्मचर्य विषयक अनुभवों का सन्देश है। मैं इस उत्तरदायित्व पूर्ण काम को हाथ न लगाता यदि तेरे घर, मेरे माता पिता और गुरुजन, तेरे प्रति अपने कर्तव्य को समझते और हाथ में मशाल लेकर तेरे जीवन-मार्ग के पग-पग पर गढ़ों से तुझे सावधान कर

देते। परन्तु अफसोस ! उन्हें इस काम के लिये न फुरसत ही है, न व इस के महत्त्व को ही समझते हैं। प्रत्येक नवयुवक की जीवन-नौका संसार के अथाह समुद्र में किसी अपरिचित तट की खोज में चली जा रही है, मार्ग में न जाने कितनी भयंकर चट्टानें समुद्र के जल से ढकी हुई छिपे हुए सिरों को उठाए खड़ी है जिन की एक ही टक्कर से नौका चकनाचूर हो सकती है। मैं यह दृश्य अपनी आँखों से देख रहा हूँ, फिर क्यों न खतरे की घण्टी बजा कर ऊँघते माँझी को जगाने की कोशिश करूँ? ऐ नाविक! हुशियारी से पतवार को पकड़े रह, कहीं आँधी तुझे रास्ते से भटका न दे, आँखें खोल कर अपनी किश्ती को खेये जा, कहीं समुद्र के गर्भ को चीरता हुआ नक्र तेरी नौका को निगल न ले, सावधानी से चप्पू चलाये जा, कहीं चट्टानें तेरी नौका से टकरा कर उस के टुकड़े २ न कर दें। सावधान—इस संकटमयी यात्रा में प्रतिक्षण सावधान! यह यात्रा लम्बी है—बहुत लम्बी है—और समय उतनी ही जल्दी उड़ता चला जा रहा है। इस यात्रा में तूने कहीं भी गलती की तो देखना तेरे प्रभु का रचा हुआ यह सारा खेल बना-बनाया बिगड़ जायगा।

द्वितीय अध्याय

प्रेम की खिलती हुई कलियाँ।

माता की स्नेहमयी मृदु पुचकार किस के रोम-रोम को पुलकित नहीं कर देती, प्यारी बहिन को देख कर किस का हृदय आनन्द के स्रोत में गोते नहीं खाने लगता, कहीं पर किसी अज्ञात व्यक्ति से चार आँखें होते ही किसे स्वर्गीय संगीतों की मधुर-ध्वनि नहीं सुनाई पड़ने लगती? इसी को प्रेम कहते हैं।

प्रेम! अहो, यह कैसा मीठा शब्द है। कवि और किसान, युवा और युवती—सभी ने इस की मिठास में अपने को भुला दिया है। किस आत्मा में प्रेम की तड़पन न होगी, कौन सा हृदय प्रेम के रसमय गूढ़ आलिंगन से वञ्चित रहना चाहेगा, कौन सा अधर प्रेम के विह्वल चुम्बन के लिये अकुला न उठेगा। यह दो अक्षरों का छोटा सा शब्द विश्व की असीम शक्ति को अपने अन्दर बन्द कर बैठा हुआ है। यह एक अपूर्व जादू है। दो बरस का नन्हा सा बालक इसी से बन्धन में लिपटा हुआ, व्यावहारिक भाषा का एक शब्द भी न जानता हुआ, अपनी माता की रसभरी आँखों में से उस के अन्तःकरण तक पहुँच जाता है, प्रेमिका इसी की शब्द रहित मौन भाषा में एक एक निमेष में प्रेमी के चित्त-पटल पर बिजलियाँ चलाने लगती

है। प्रेम सीमाओं को लाँघ जाता है, दीवारों को तोड़ देता है, खाइयों को भर देता है—यहाँ तक कि अपनी तपाने और गलाने की शक्ति से विश्व की विविधता को मिटा देता, एक रसता का अखण्ड स्वर्गीय साम्राज्य पृथिवी पर स्थापित कर देता और जीवन को खोखले की जगह भरा हुआ, मुहताज की जगह समृद्ध तथा दुःखमय की जगह सुखमय बना देता है।

प्रेम-पुष्प की सुगन्ध मादकता लिये होती है। इस की प्रथम कलिका का विकास ही कोमल वयस् के बालक को मतवाला बना देता है। इस कमनीय फूल के बीजों को हृदय की उपजाऊ भूमि में बखेरने के लिये कोई देवदूत मौके की ताक में फिरा करता है और अनुकूल ऋतु के आते ही प्रेम के बीज बो देता है। बस, नवयुवक अपने बीस साथियों में से किसी एक को अपने हृदय में चुन कर उस की आराधना करने लगता है। अचानक उसे एक दिन साफ़-साफ़ मालूम हो जाता है कि वह स्कूल के अपने उस साथी की तरफ़ खिंच रहा है। स्कूल की छुट्टी का समय उसी के साथ बिताने को जी चाहता है। धीरे धीरे ऐसी इच्छा उत्पन्न होने लगती है कि वह हर समय साथ रहे। उस के चेहरे में एक अद्भुत् आकर्षण रहता है, वह सुन्दर है! शरीर की सब शक्तियाँ उसी में केन्द्रित हो जाती हैं। उसे छोड़ने पर जी नहीं मानता। स्वप्न में वही दिखाई देने लगता है, जागते हुए भी जब वह समीप न हो तो उसी की प्रतिमा आँखों के सामने घूमती है। फिर जब कभी उस से कुछ देर के लिये

पड़ने लगते हैं और इन रहस्यों के उद्घाटन के साथ-साथ उन के स्वप्न, निष्कलंक मुखाकृति पर कृष्ण-वर्ण के मेघ मंडराने लगते हैं। परम प्रेम जिस में से सरलता टपकती थी नव यौवन के सञ्चार से उद्भ्रान्त हो जाता है। वह 'बालक' का प्रेम नहीं रहता, 'युवक' का प्रेम हो जाता है, और इस प्रकार का दिशा परिवर्तन का प्राकृतिक कारण है। वह क्या? सुनिये!

मनुष्य के मस्तिष्क के मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं —अगला तथा पिछला। मस्तिष्क का अगला भाग 'बड़ा दिमाग' (सैरिब्रम) कहलाता है और पिछला 'छोटा दिमाग' (सैरिबैलम) कहलाता है। 'बड़ा दिमाग' हमारी खोपड़ी में सब से अधिक स्थान घेरता है। यह आगे भौंहों के पास से चल कर पीछे के उभरे हुए भाग तक फैला रहता है। यह दो अर्धांशों में बँटा रहता है— दाँए ओर तथा बाँए ओर। दोनों हिस्सों में, किसी के ज्यादा और किसी के कम, दरारें बनी रहती हैं। बड़े दिमाग के कुछ नीचे, गर्दन के कुछ ऊपर, पीछे की ओर, 'छोटा दिमाग' एक कान से दूसरे कान तक फैला रहता है। यह भी दाँए तथा बाँए दो अर्धांशों में बँट कर मध्यभाग जहाँ से शुरू होता है, वहीं उस के चहुँ गिर्द लिपटा रहता है। इस में भी दरारें बनी होती हैं। ये दोनों दिमाग जो भिन्न भिन्न भागों में बाँटती हैं और इन की गहराई दिमाग की ज्ञान की शक्ति को सूचित करती है। क्योंकि दिमाग मनुष्य की खोपड़ी में सुरक्षित रहते हैं जिस से उन्हें फैलने के लिए पर्याप्त स्थान मिलता है। यह|

दिमाग, आत्मा के शरीर में होने पर, पञ्चज्ञानेन्द्रियों के अनुभव किये हुए विषयों का साक्षात्कार करता है, अथवा उन के अनुभव को सविकल्पक ज्ञान बना देता है। आँख देखती है, कान सुनता है, नाक सूँघती है, जिह्वा रस लेती है, त्वचा स्पर्श करती है—परन्तु यदि ज्ञान-तन्तुओं द्वारा इन इन्द्रियों के अनुभव बडे दिमाग तक न पहुँचें तो किसी प्रकार का प्रत्यक्ष न हो। इसीलिये इन्द्रिय-ज्ञान का केन्द्र बड़ा दिमाग माना गया है। छोटा दिमाग घरेलू—गृह-सम्बन्धी—प्रवृत्तियों का तथा शरीर की भिन्न-भिन्न हरकतों को वश में रखने का काम करता है। इसी से पट्ठों की गति का नियमन, शरीर का वशीकरण तथा माता-पिता और कुटुम्बियों के प्रति थोड़ या बहुत प्रेम का सञ्चालन होता है। यदि छोटे दिमाग को किसी प्रकार की हानि पहुँच जाय तो मनुष्य अपनी शारीरिक हरकतों को वश म नहीं रख सकता और चलते-फिरते आगे-पीछे गिरने तथा डगमगाने लगता है। मादक पदार्थों का सेवन प्राय छोटे दिमाग को ही प्रभावित करता है, इसीलिये शराबी अपनी गति को स्थिर नहीं रख सकता। प्रेम के भावों का सम्बन्ध भी इसी दिमाग से है इसीलिये प्रेम के उन्माद में मनुष्य की अवस्था शराबी से किसी प्रकार अच्छी नहीं रहती। इस प्रकरण में हमें छोटे दिमाग पर ही विशेष ध्यान देना है।

छोटे दिमाग के, जैसा अभी कहा गया, दो काम हैं —
(१) यह सासारिक प्रवृत्तियों का केन्द्र है। प्रेम-भाव, समाज-प्रेम, दाम्पत्य-स्नेह, वात्सल्य-भाव, मैत्री-भाव, गृह-निवासेच्छा,

तत्परायणता— सभी का सञ्चालन इसी से होता है। और, (२) इस का काम शरीर की भिन्न भिन्न गतियों को वश में करना, उन्हें सीमित तथा नियन्त्रित रखना भी है। चलना, फिरना, बैठना, उठना, खड़े रहना, हाथ घुमाना, उँगलियाँ चलाना, उड़ना— इन सब का सञ्चालन भी इसी से होता है।

बचपन में छोटा दिमाग सारे दिमाग का बीसवाँ हिस्सा होता है परन्तु २४ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते यह बढ़ कर सारे दिमाग का आठवाँ हिस्सा हो जाता है।

जिस समय छोटा दिमाग बढ़ने लगता है उस अवस्था को कुमारावस्था कहते हैं। 'कुमार' शब्द का अर्थ है—'कुत्सित है मार जिस के लिये'—अर्थात् जिस अवस्था में काम-वासना बालक के जीवन को नष्ट कर सकती है। छोटे दिमाग के बढ़ने का नतीजा यह होता है कि जीवन में रागशक्ति—कामशक्ति—का सञ्चार होने लगता है। प्रेम की कलियाँ फूट पड़ती हैं, जीवन के रहस्यों, जीवन की गोपनीय बातों की तरफ कुमार तथा कुमारी का ध्यान अधिक आकर्षित होने लगता है। उस समय जीवन की जो अवस्था हो जाती है, क्या वह किसी से छिपी है? इस पूरे जीवन में नवीन रस की लहरें उमड़ पड़ती हैं। खून जोश मारने लगता है। नस-नस एक अपूर्व शक्ति के स्पन्दन में फड़कने लगती है। मनुष्य हवा में उड़ने लगता है। वह अपने को एक नई-सी दुनिया में पाता है। जवानी की लहर में वह स्वप्न पर स्वप्न लेने लगता है। ऐसा भला उस वर्ष

कभी न आया था, ऐसा स्वाद उस ने पहले न चखा था । उस पर मस्ती छा जाती है और इस मस्ती में वह प्याले में भरी जवानी की शराब को बड़े-बड़े घूँट कर के पीने लगता है। थोडी ही देर में वह नशे से चूर हो जाता है, पागल हो जाता है !

कुमारावस्था की यह छोटी सी कहानी है। पन्द्रह-सोलह वर्ष के किशोर के जीवन में जवानी के छिपे हुए रहस्य उथल-पुथल मचा देते हैं। कामभाव की प्रथम जागृति आदम तथा हव्वा के पुत्रों तथा पुत्रियों के हृदयों में आँधी खडी कर देती है, और यदि इस वासना के घोडे को सयम की लगाम से न कसा जाय तो यह आँधी बढ़ती २ तूफान का रूप धारण कर लेती है, इस के सन्मुख जो कुछ आता है उसी को उडा ले जाती है। क्या धनी क्या निर्धन, क्या लडका क्या लडकी, प्रलय मचा देने वाला काम-वासना का तूफान जब एक बार भी उठ खडा होता है तब चारों तरफ सर्वनाश के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं—अँधेरा, गर्द और बीमारी के सिवाय पीछे कुछ नहीं बचता। जब तूफान निकल जाता है तब मृत्यु की शान्तमुद्रा जीवन पर एकाधिपत्य जमा लेती है।

कुमारावस्था में जीवन-रस बनना प्रारम्भ होता है । बचपन से निकल कर किशोर बनते ही बालक के रुधिर मे इस जीवनी-शक्ति का सञ्चार होता है। यदि यह जीवन-रस शरीर में खपा लिया जाय तो पट्ठे मजबूत होते है, स्नायुओं में शक्ति भर जाती है, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक गुणों का विकास

होने लगता है, परन्तु यदि इस जीवन-रस का ह्रास हो जाय तो जीवन शक्ति-हीन हो जाता है, भार बन जाता है! जीवन-रस पर मन का तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। शरीर के पट्ठों को मज़बूत करने की सोचते रहो तो यह रस उधर ही को गतिशील हो जायगा, उच्च मानसिक विचारों में दिन-रात विचरण करो तो यह शक्ति दिमाग को पुष्ट करने में लग जायगी। इस जीवन रस को 'वीर्य' कहते हैं, 'रेतस' कहते हैं। शास्त्रों में 'ऊर्ध्वरेता' उसे कहा गया है जिस का वीर्य कभी स्खलित नहीं होता। ब्रह्मचारी का जीवन बिन्दु नीचे की तरफ नहीं जाता। वह ऊपर ही ऊपर—मस्तिष्क की तरफ—अपना मार्ग बनाता है। वेदों तथा उपनिषदों का यही आदर्श है। ब्रह्मचारी की आत्मा सदा परमात्मा में विचरती है और वह अपने जीवन-रस को आध्यात्मिकता के केन्द्र—मस्तिष्क—की तरफ ही प्रवाहित करता है।

मनुष्य की मानसिक शक्ति यदि शरीर के गठन पर लगी रहे तो वीर्य शरीर को वीर्यशाली बना देता है, यदि मानसिक शक्ति की सहायता से वीर्य को स्मृति-शक्ति के बढ़ाने में लगाया जाय तो स्मरण-शक्ति वीर्य-शालिनी बन जाती है और यदि इस मानसिक शक्ति का उपयोग काम-वासना को उत्तेजित करने के लिए किया जाय तो काम-वासना भड़क उठती है—ऐसी भड़क उठती है कि मनुष्य वासना-मय हो जाता है। छोटे बालक में
५ जब काम की प्रवृत्ति इस प्रकार जाग उठती है तो वह काम में इतने वेग की आग अनुभव करता है, जैसे २ प्रदीप्त होने

वाले प्रेम के दीये मे धमाके से आग भभक उठती हे, प्रेम का मीठापन वासना के तीखेपन मे बदल जाता है, छोटी उम्र मे ही बालक बड़ों की सी बातें करने लगता है। माता-पिता उस के इस अपूर्व बुद्धि-कौशल को देख कर अचरज करते, शायद कभी-कभी अपने ही को सराहते हैं, उन की समझ मे नहीं आता, लडका इतनी छोटी उम्र में इतना स्याना कैसे हो गया। उन्हें क्या मालूम, लडके ने अपने स्यानेपन के लिये गुरु धार लिये है—वह रोज गलियों मे फिर कर उन गुरुओं से शिक्षा-दीक्षा लिया करता है। वह कई वातों में असाधारण उत्साह दिखाने लगता, कई बातों से न जाने क्यों शर्माने लगता है। इस समय बालक के मस्तिष्क में प्रविष्ट हो कर कोई देख सके तो उसे पता चल जाय कि किन रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाने में वह दिन-रात एक किये रहता है। उस के मन की सम्पूर्ण शक्ति कामुकता के सस्कारों को जगाती और उन्हीं में खेला करती है। उस का छोटा मस्तिष्क, जिस का पूर्ण विकास २५ या ३० वर्ष तक की आयु म होना चाहिये था अभी से—दस, बारह वर्ष की आयु से—बढन लग गया है और दिनोंदिन बडी तेजी से बढता चला जा रहा है। अभी वह पढना-लिखना बहुत कम सीख पाया हे इसलिये अश्लील नाटकों तथा उपन्यासों से वह कुछ २ बचा रहता है परन्तु गन्दे साथियों से उसे बचाने वाला कोई नही है। जिस समय उस का मस्तिष्क गन्दे सस्कारों मे पोषण पा रहा होता है उसी समय सकील खाना, मिठाई, खटाई, आचार, चाय,

बाकी और दूसरी गन्दी आदतें मिल कर हमारी वर्तमान अवस्था की समाज में पलने वाले लड़के-लड़की की कामाग्नि को भड़काने में घी की आहुति का काम करती हैं। मनुष्य का वसन्तरूप बालपन का जीवन ज्यों ही पल्लवित तथा पुष्पित होने लगता है त्यों ही कोई आततायी आकर इस सुन्दर पौदे को जड़ से उखेड़ डालता है। वह कुछ उस दिन की भी प्रतीक्षा नहीं करता जब यह पौदा बड़ा होगा, इस में कलियाँ लगेंगी, फूल खिलेंगे और सारा उद्यान उन की स्वर्गोपम सुगन्ध से महक उठेगा, उन के भाँति २ के रंगों से चमक जायगा। अफसोस! इस पौधे की रक्षा करने वाला कोई माली नहीं दिखाई देता। माली हैं—परन्तु ऐसे माली जो इस के स्वाभाविक विकास को नहीं देख सकते, इसे जड़ से सींच कर एकदम बड़ा करना चाहते हैं, इस की कलियों को अपने कठोर हाथों से खोल २ कर उन्हें खिलाना चाहते हैं। इस का परिणाम? ओह! इस का भयंकर परिणाम!! पौदे का तना टूट जाता है, उस की शाखें और कलियाँ कुम्हला जाती हैं। बालक का यौवन नष्ट हो जाता है और 'सर्वनाश' आँखें फाड़ २ कर उस के हृदय को दहलाने लगता है!

स्कूलों में 'सेक्स शिक्षा' बच्चा बहुत जल्दी ही सीखने लगता है। बालक बचपन में ही साथियों से ऐसी-ऐसी बातें सुन जाता है। जो बड़े 'गुप्त-शब्दों' की व्युत्पत्ति पूर्ण ज्ञात रखते हैं वे जल्दी ज्ञात हो जाते हैं। वे इन पर्यायों के सिवाय

बन जाते है। ऐसे ही बच्चे हस्त-मैथुन, वेश्यागमन तथा अन्य गर्हित कृत्यों की धधकती हुई आग मे बलि चढ जाते हैं। बाल-विवाह भी उन की अशान्त आत्मा को ठण्ट नही पहुँचा सक्ता। अरे भोलेभाले माता पिताओ ! यह 'रहस्य'-रूपी राक्षस तुम्हारी असहाय सन्तानों को ग्रास की तरह निगलता चला जा रहा है, उन्हें बचाओ। शायद तुम अपने 'बालक' को इतनी जल्दी 'मनुष्य' बनते देख खुश होते हो, उसे बारह वर्ष की उम्र में पचीस वरस के आदमी की तरह बातें करते देख दिल म फूले नही समाते हो, परन्तु याद रखो, यह तुम्हारी मूर्खता है। तुम्हारे सुकुमार बालक की आँखों क पीछे से झाँकने वाला 'मनुष्य' मनुष्य नहीं पर 'राक्षस' है—आशु-परिपकता का राक्षस है—जो उसे हडप जायगा, उस क जीवन को नष्ट कर देगा।

मैं चाहता हूँ यह पुस्तक बालकों क हाथ में पहुँचे। मैं एक-एक अक्षर इस भावना से लिख रहा हूँ जिस से बालकों को अपने कण्टकाकीर्ण मार्ग में पगडण्डी निकाल लेन का साहस हो जाय, अन्धेरे में भी अपने लिये उजेला कर लेने की उन में शक्ति आ जाय। मेरे हृदय में कितनी प्रबल आकाँक्षा है कि हर समय यह पुस्तक किसी-न-किसी बालक क हाथ म अवश्य हो। अरे बालक! इस बात-चीत का तेरे जीवन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। सुन, यदि सम्हलना चाहता है तो सुन! जैसा मैं पहले लिख चुका हूँ, तू और तेरे जैसे दूसरे साथी लडकपन में किसी की दोस्ती मे फँस जाते है।

दुर्भाग्यवश यह घटना उसी समय होती है जब बालक जीवन के खतरनाक हिस्से में से गुजर रहा होता है, यह हिस्सा कुमारावस्था का होता है, इस समय काम की प्रवृत्तियाँ धीरे २ जाग रही होती हैं। प्यारे बालक ! जीवन का यह समय बड़ा सुहावना होता है परन्तु साथ ही बड़े संकट का होता है। इसी समय तो अनेक बालक पवित्र भ्रष्ट करने वाली अनेक बातों को पहली बार सीखने लगते हैं। यह सोचकर हृदय को दुःख होता है, परन्तु उस से क्या, यह सच तो है, कि इसी समय पवित्रता अपने मुख पर कालिमा पोत लेती है, कोमल, सरल स्वभाव कुटिल, कुत्सित साँप-सी बन जाती है, सुन्दर और भोले बालक मनुष्य के आवरण में शैतान हो जाते हैं। फरिश्ते को शैतान में बदलने वाला यह हृदय में कुलबुली मचा 'आह' निकलती है, आँखों से आँसू टपकते हैं, क्योंकि गिरे हुए को इस समाज में सभी धक्का देकर और जल्दी गिराने की कोशिश करते हैं उस गरीब को बचाने वाला कोई नहीं मिलता। वह ऐसा गिरता है कि उसका सम्भलना भी कठिन पड़ता है। इस प्रकार जो सुकुमार लगा था कि पङ्क में निमग्न होने लगता है, कभी उस की भी अवस्था पर विचार कर के तो सोचो ! 'ब्रह्मचर्य' शब्द उस के शब्द-कोष में से मिट जाता है—वह अपने लिये था, और माता पिता तथा साथियों की प्यार भरी सलाह निरर्थक बन जाती है। समय आता है जब कि उस के पास उसी तरह की शक्ति नहीं रहते। अपना मनोराज्य भंग कर कर अपने विचार की खोज में

निकलता है। शिकारी जाल बिछा देता है, हरिन तथा खरगोश फँस जाते है। उसे विश्व का सञ्चालन करने वाले भगवान् का शासन नहीं दिखाई देता, वह उस के एक २ नियम को तिनका समझ कर तोड़ने लगता है। परन्तु कबतक? इस नशे से जगाने के लिये दैवीय कोप उस अभागे पर उबल पड़ता है। उस के दोहरे पापों के लिये उसे ऐसा तड़पाया जाता है जिसे देख पाप के मन्सूबे बान्धने वाले दाँतों तले उँगली दबाते और आगे रखे हुए कदम को पीछे फेर लेते हैं। दोहरे पाप—हाँ, दोहरे पाप! एक पाप तो वे जो उस ने अपने चरित्र को तबाह कर के किये होते है और दूसरे व जो उस ने निर्दोष आत्माओं को अपनी पाशविक काम-वासना की तृप्ति में साधन बना कर किये होते हैं। अरे नर-पिशाच! तुझे क्या हो गया? रुक जा, पवित्र जीवन पर कीचड़ भरा हाथ फेरने से बाज आ जा! सच्चरित्रता के चेहरे को अपना गन्दा हाथ लगा कर दूषित मत कर!

अरे क्रूर वृश्चिक! तेरा जीवन निस्सन्देह अत्यन्त कुटिल है। तेरे विषयुक्त डंक की असह्य पीड़ा से तेरा शिकार छटपटाने लगता है। परन्तु याद रख, एक निर्दोष आत्मा को डसने का पाप बगैर बदले के नहीं जाता। एक क्षण के मनबहलाव के लिये अपने जीवन को खतरे में क्यों डालता है? ठहर, ठहर! एक ऐसे व्यक्ति पर जिस ने तेरा कुछ नहीं बिगाड़ा डंक चलाने से पहले जरा सोच तो ले। नहीं सोचेगा तो तेरा शिकार तो कुछ देर रो-धो कर अच्छा हो ही जायगा परन्तु याद रख तुझे कुचल दिया

जायगा। अपने जीवन की रक्षा कर, और उस निर्दोष आत्मा की भी रक्षा कर जिसे तू अपनी कामाग्नि का पतंगा बना कर भस्म करना चाहता है।

परन्तु सम्भव है, इन पंक्तियों का पढ़ने वाला 'शिकारी' न हो, 'शिकार' हो, डसने वाला न हो, डसा गया हो! अरे बालक! यदि तू उन हतभागों में से है जिन पर कई बेवकूफ़ों की जिन्दगी और मौत निर्भर रहा करती है तो भी तुझे हुशियार रहने की जरूरत है। वे अक़्ल के दुश्मन तेरी गोरी-गोरी चमकती चमड़ी पर मरते हैं, आस्मान में तारों की तरह झिलमिल करती तेरी बड़ी बड़ी आंखों पर जान देते हैं, चाँद को शर्मा देने वाले तेरे गुलाबी गालों पर लट्टू होते हैं— यह सच है, इसे छिपाने की जरूरत नहीं। तेरे जिस्म के चोले की चटक-मटक से खिंचे हुए वे तेरे चारों ओर ऐसे मंडराने लगते हैं जैसे फूल पर भौंरे। वे तुझे कहते हैं कि तेरे बिना वे क्षणभर भी नहीं जी सकते परन्तु याद रख वे सब चोर हैं, डाकू हैं, लुटेरे हैं। परमात्मा ने अपनी उदारता से सौन्दर्य का जो गहना तुझे पहनाया है उसी को चुराने के लिये वे तेरे इर्द गिर्द फिरते हैं। अरे मूर्ख शिकार! अपने ऊपर रहम खा, इन लुटेरों के चँगुल में मत फंस। शिकारी तुझे फँसाने के लिये बनावटी प्रेम का टुकड़ा फेंक रहे हैं— तू ललचाया नहीं और जाल में फँसा नहीं। परमात्मा ने तुझ पर सौन्दर्य की बौछार कर दी है, परन्तु इस अपूर्व धन को पाकर डर क्योंकि सौन्दर्य का होना घर में सुवर्ण के होने के

समान है । इस सोने को देख कर, चोर और लुटेरे, रात को, जिस समय तू बेखबर सो रहा होगा, तुझ पर टूट पड़ेंगे , तुझे लूट ले जायँगे , इस में सन्देह नहीं कि वे अपनी जान को खतरे में डालेंगे परन्तु तेरा तो सर्वनाश ही हो जायगा । जिस समय तेरा धन तेरे पास है, उस समय उस की रक्षा कर क्योंकि यह ऐसा धन है जो जब एक बार लुट जाता है तो दर-दर भीख मंगवा कर ही छोड़ता है ।

अरे दिल लुभाने वाले खूबसूरत फूल ! मत समझ कि ये तितलियाँ जो पंख फड़फड़ा कर तेरी परिक्रमा कर रही हैं अनन्त-काल तक इसी तरह तेरे सौन्दर्य के गीत गाती जायँगी। जब तक तेरे मधु की अन्तिम बूँद खतम नहीं हो जाती तब तक ये तेरा रस चूसती चली जायँगी । और फिर,—फिर क्या ? फिर वे दूसरे फूल पर मँडराने लगेंगी और तू मुरझा कर मट्टी में मिल जायगा । ऐ नौ-जवान ! उस फूल को देख , उस फूल के मधु को देख , उस के मुर्झाए हुए धूल में मिल रहे पखड़ियों के टुकड़ों को देख । धूल मे एड़ियों के नीचे कुचले जा रहे फूल की 'आह' मे तेरे जीवन के लिये मर्म-भेदी सन्देश भरे हुए हैं !

जब तक लड़के पढ़ना-लिखना नही सीखते तब तक वे दूसरी तरह से खराब होते रहते हैं, जब वे पढ़ने-लिखने लगते हैं तब वे कई तरह की बेहूदा बातें लिखना सीख जाते है । वे खत लिखते हैं और इन बेहूदा खतों का नाम 'प्रेम-पत्र' रखा जाता

है। सम्भवतः यह उस दूषित शिक्षा-प्रणाली का परिणाम है जो हमारे बच्चों को वर्तमान स्कूलों में दी जाती है। जब तक बालक भली-भाँति पढ़ना-लिखना नहीं सीख जाते तब तक उन के जीवन का यह पहलू सोया रहता है। अक्षरों का ज्ञान होते ही उन्हें अपने मनोभावों को प्रकट करने का एक नया रास्ता सूझ जाता है। बारह वर्ष की छोटी सी उम्र में भी लड़के इस तरह के बेहूदा खत लिखने में व्यग्र देखे गये हैं। १६ से २५ वर्ष की उम्र के भीतर यह प्रवृत्ति अपने उच्च शिखर पर पहुँच जाती है। इस समय प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह कितना ही फीका क्यों न लगता हो, रसीला हो जाता है और अखिल विश्व को अपने हृदय के अनजक संगीत से भर देना चाहता है। संसार के सुख-दुःख, सफलता-असफलता, आशा निराशा, चहल-पहल—सब के मिश्रण से नवयुवक का हृदय कभी मीठी, कभी कड़वी तानों में झनक उठता है। नव-यौवन के उन्माद में वह मत्त हो जाता है—उस के श्वास-श्वास से 'प्रेम'-सने पत्र और प्रेम के रस से भीनी कविताएँ निकलती हैं। एक ओर प्रेम के भावों की हृदय में इस प्रकार बाढ़ आ रही होती है, दूसरी ओर वही समय युवक के चरित्र निर्माण का होता है। यदि मनुष्य के भावों को इस समय काबू किया जा सके, उसे सन्मार्ग दिखाया जा सके तो वह क्या से क्या न बन जाय? इस समय बनते हुए चरित्र को ऐसा झुकाव दिया जा सकता है जिस से वह कवि, चित्रकार, साहित्य-सेवी, वैज्ञानिक, दार्शनिक—जो कुछ चाहे बन सकता

है, परन्तु इस सुअवसर से लाभ उठाने वाले ही कितने हैं और कहाँ हैं? यह अपूर्व अवसर जब कि युवक के मस्तिष्क पर मनमानी छाप लगाई जा सकती है हम में से सब के पास, एक-एक के पास, कभी-न-कभी जरूर आता है। परन्तु यह अवसर एक ही वार आता है, और यदि उस समय इस का तिरस्कार कर दिया जाय तो फिर लौट कर नहीं आता। कालिजों में पढने वाले कई लड़के शिकायत किया करते हैं कि व अब उतने तेज नहीं रहे जितने वे पहले स्कूल के दिनों में थे। और हो भी कैसे सकते हैं जब कि उन्होंने एक सुवर्ण-अवसर को अपने हाथों ही खो दिया। यदि वे ज़रा भी अक्ल से काम लेते तो अपने समय का अधिकाँश भाग बेहूदा प्रेम-पत्रों और प्रेम-कविताओं के लिखने में न खोते। जो घण्टे उन्होंने किसी 'प्रेम-कविता' के पद्य को मन-ही-मन गुनगुनाने में, आस्मानी और हवाई बातों को अस्ली समझ कर उन के पीछे बेतहाशा दौडने में खर्च किये उस से उन की मानसिक शक्ति वढने के स्थान पर घटी, इस का उन्हें परिज्ञान नहीं, जो शक्ति उन्हों ने अपनी कल्पना के फूल तोड कर किसी प्रेम-पत्र के एक-एक अक्षर और एक-एक शब्द के सिंगार करने में व्यय की उस से उन के शरीर की बढ़ती रुकी, मन और आत्मा का विकास बन्द हो गया, यह भी उन्हें मालूम नहीं। किस्से-कहानियों में अंकित जीवन बडा मीठा मालूम होता है, उसी को जब कल्पनाओं में चित्रित किया जाय तब और भी मीठा मालूम पड़ने लगता है परन्तु कल्पना, स्वप्न, तस्वीर

और कहानी में दिखाई देने वाला जीवन वास्तविक जीवन नह है। नवयुवक प्राय अपने कल्पित स्वर्ग-लोक में विचरा करता है अचानक किसी दिन कल्पना का जादू उतर जाता है और व गरीब इसी नीरस मर्त्यलोक में आ टपकता है और अपने ही जै भग्न-स्वप्न जीवों को चारों तरफ पाता है। रात्रि की प्रशान्त मोह निद्रा में उसे वह भयकर चेतावनी की आवाज सुनाई पडने लगत है जो पहले भी आत्मा के अन्तर्तम प्रदेश में से सदा उठा करती थी कभी मूक नहीं हुई थी परन्तु फिर भी कभी सुनाई नहीं दी थी।

परन्तु क्या इन पक्तियों का यह अभिप्राय है कि मैं प्रे की कलियों को उन के प्रथम विकास में ही मसल देने का पा पढा रहा हूँ ताकि इस दु खमय ससार में वहने वाला पवन उन क मधुर मुस्क्यान को लेकर किसी भी दर्द भरे दिल की जलन क दूर न कर सके ? क्या मेरा यह तात्पर्य है कि हृदय में उठत हुई प्रेम की ज्वाला को ससार की असारता के विचार-रूपी जल के छींटों से बुझा दिया जाय ? नहीं—कभी नहीं! मैं इस बात को खूब समझता हूँ कि प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही चलते फिरते मनुष्य की सञ्जीविनी शक्ति है, प्रेम अखिल विश्व की स्थिति का कारण है। प्रेम के विना हृदय के टुकडे २ हो जायँ, आत्मा नीरसता के कारण जड हो जाय, अविरत चलनेवाला विश्व-संगीत एकदम स्तब्ध हो जाय। प्रेम ही सृष्टि के आदि में विकीर्ण जगत् के प्रथम अणु में उत्पादन की अदम्य शक्ति का सचार करता है। कलकत्ता के हस्पताल में एक बेहोश महिला लाई गई। उस वा

चार वर्ष का बच्चा खो गया था। वह उसे ढूँढती हुई रेल की सड़क को पार कर रही थी कि इतने में रेलगाडी की टक्कर से चोट खाकर गिर पडी और बेहोश हो गई। उस की नाडी बन्द हो गई, हृदय के भीतर गति न रही, परन्तु उसकी सज्ञा-हीन आँखें अपने खोये बच्चे की तलाश में बेहोशी में भी व्याकुल हो रही थीं। डाक्टरों ने कहा कि उस बेहोशी की हालत में भी, जब हृदय और नाडी ने गति करना छोड दिया था, केवल बच्चे के प्रेम ने उसे जीवित रखा। कुछ देर बाद उसके हृदय में फिर से गति पैदा हो गई। प्रेम ने मरते हुए को मरने न दिया और दृश्यमान मृत्यु में भी जीवन को कायम रखा। क्या इस प्रेम के विरुद्ध मेरे मुख से एक भी शब्द निकल सकता है? मैं खूब समझता हूँ कि यदि प्रेम न रहे तो जीवन जीने लायक ही न रहे।

कोमल हृदया माता अपनी सन्तान के माथे पर चुम्बनों की बौछार कर देती है—उस दैवीय प्रेम के विरुद्ध एक अक्षर भी मुँह से निकालना घोर पाप है। ओह! माता का ध्यान किन छिपी हुई, सोयी हुई, प्यारी २ स्मृतियों को जगा देता है। उसी की प्रेममयी गोद में, उसकी कोमल बाहों में पडे २, स्वर्ग के झरने बहानेवाली उस की आँखों की तरफ देखते २ हम ने कई साल बिताये। उसी की सरक्षा में पलते हुए हम ने ससार की तरफ एक अपूर्व कौतूहल से झाँकना शुरु किया, कुछ थोडा-बहुत सीखा और आदमी बने। क्या उस का प्रेम भुलाया जा सकता है? कभी नहीं—सौ बार नहीं। दूरी इसे कम नहीं कर सकती, समय

इसे मिटा नहीं सकता । पाप के पंक में निमग्न या दुःख के समुद्र में डूबते किसी भी मनुष्य को माता की प्रतिमा का ध्यान सम्भाल सकता है, बचा सकता है। वे अभागे कितने कृतघ्न हैं जिन के घृणित कृत्यों को देख कर उन्हें गोद में खिलाने वाली जननी की आँखें उबलते हुए गर्म २ आँसुओं से एक बार भी डबडबा जाती हैं ! क्या उस माता के प्रेम को, उस के मोह को, किसी प्रकार भी छोड़ा जा सकता है !

माता तो माता ही ठहरी, भाई भी कितने प्यारे होते हैं, बहिन का प्यार भी कितना मीठा होता है। यह प्रेम नहीं, अन्तरिक्ष से उतरी हुई पवित्रता की गंगा है जिस में भाई-भाई और भाई-बहिन एक दूसरे को गोते देते हैं, खेलते हैं और प्यार करते हैं। जितना ही इस प्रेम को बढ़ा कर विकसित किया जाय और विकसित करते २ उस ऊँची सतह तक पहुँचा दिया जाय जहाँ विश्व के अखिल प्राणी, परमात्मा के सब अमृत पुत्र एक बड़े परिवार में समझे जाते हैं, उतना ही यह प्रेम अपने विशुद्ध रूप में प्रकट होता है, सार्थक होता है। यह प्रेम जिस के हृदय में है वह भाग्यशाली है और जिस के हृदय में नहीं है उसे इस की जड़ अभी से जमाने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये क्योंकि इसी प्रेम के अभाव से आज हम जाति रूप से संसार की सभ्य जातियों से पिछड़े हुए हैं और अपने को जबानी जमा-खर्च में आध्यात्मिक कहते हैं परन्तु आध्यात्मिकता के उस प्रेम से, जो मनुष्यमात्र को एक परिवार का अंग बना देता है, कोरे हैं।

पति-पत्नी का प्रेम भी मनुष्य को दी हुई ईश्वर की कृपाओं में से एक है। भगवान् के चलाए हुए नियमों से, वे दोनों, न जाने कहाँ-कहाँ पैदा हो कर और पल कर कहाँ आ मिले हैं। वे दोनों जीवन-मार्ग के पथिक हैं, आपस में एक दूसरे के सहारे हैं। आपस के दोषों को दूर करते हुए, कमियों को पूरते हुए जीवन-यात्रा को प्रेम-पूर्वक निभाना उन का कर्त्तव्य है। पति-पत्नी के प्रेम की कामना जब अत्यन्त उत्कट हो जाती है, वे पारस्परिक भिन्नता को मिटा कर दो से एक हो जाते हैं, तभी, दोनों के पवित्र आध्यात्मिक मिलन में, अखण्ड-ज्योति के भण्डार भगवान् के स्फुलिंगों का चौंधिया देनेवाला प्रकाश अन्धकार के आवरण को फाड़ कर आत्मा को आलोकित कर देता है। यह प्रेम एक अमूल्य देन है।

प्रेम मित्रता के रूप में भी प्रकट होता है। समाज में भिन्न भिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर हमारे हृदय में भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। किसी को देख कर घृणा, किसी को देख कर आकर्षण, किसी को देख कर ऐसा मानो जन्म जन्मान्तरों का परिचित अपने ही परिवार का अंग! यदि तुम्हारी मित्रता के आधार में वह प्रेम है जिसे एक आत्मा की दूसरे आत्मा के प्रति प्यास कहा जा सके, जिस के द्वारा तुम्हारे हृदय में ऊँची-ऊँची उमगें उठ खड़ी हों, जो तुम्हें धर्म तथा सचाई के मार्ग पर कदम बढ़ाने के लिये प्रेरित कर सके और पाप तथा दुष्प्रवृत्ति के अन्धकार को भगाने के लिये प्रकाश की किरण बन

सके, तो निस्सन्देह, तुम्हारा प्रेम एक मशाल है जो उस आग की चिनगारी से जलाई गई है जो प्रकाशस्तम्भ के रूप से खड़ी हुई तुम्हारे अन्तिम लक्ष्य की तरफ तुम्हें बुला रही है और स्वयं आगे बढ़ती हुई तुम्हें भी उसी तरफ ले जा रही है। अरे यात्री! तू बढ़ा चल, इस प्रेम की ज्योति को अपना आसरा बना कर आगे, बेखटके, बढ़ा चल—तूने जहाँ जाना है वहीं पहुँचेगा।

सिसरो का कथन है कि सच्ची मैत्री उन्हीं में हो सकती है जो सदाचार के परम पुनीत भावों से प्रेरित हो कर, आपस में एक-दूसरे की इज्जत को समझते हुए, एक-दूसरे की तरफ झुकते हैं। सदाचार से उस का अभिप्राय हवाई बातों से नहीं है। दुनियाँ में आदर्श पूर्ण-रूप से कहीं भी घटता हुआ दिखाई नहीं देता, परन्तु वह जहाँ तक आचरण में घट सकता है उतना जब तक न घटाया जाय तब तक, केवल बातों के आधार पर अपने को सदाचारी कहने का किसी को अधिकार नहीं है। सदाचारियों की मैत्री—अहा!—असली मैत्री तो होती ही सदाचारियों में है। 'पुण्य' की सुन्दरता जिस ने देखी उस ने असली, कभी न मिटने वाली, सुन्दरता देखी, क्योंकि इस के समान सुन्दर, इस के समान मोहने वाली वस्तु दुनियाँ में दूसरी नहीं। पवित्रता, सचाई, सादगी, ईमानदारी में ही तो सौन्दर्य्य है। राम और कृष्ण को किस ने देखा था? परन्तु क्या, इतनी सदियों के बीत जाने पर भी, कोई हिन्दू हृदय है जो इन के नाम को सुनते ही प्रेम से भर नहीं जाता, अभिमान से फूल नहीं उठता? इन की कथा को सुनते

जाते हैं और श्रोताओं की आँखों से प्रेम के अश्रु-बिन्दु टपकते जाते हैं। उन की जीवन-कथाओं में बिखरी हुई घटनाएँ कैसी प्यारी हैं, कैसी सुन्दर हैं! क्या यह प्रेम राम और कृष्ण की मूर्तियों से है? अरे, उन की मूर्तियों को किस ने देखा है। अस्ल में, सौन्दर्य का अवतरण 'पुण्य' तथा 'सदाचार' के देह में होता है!

प्रेमी-हृदय की गहराई न किसी ने नापी, न वह नापी गई। पवित्र प्रेम अपने प्रारम्भ के दिन से, जो वास्तव में इस का पिछले जन्म के छोड़े हुए सूत्र को इस जन्म में फिर से पकड़ने का दिन होता है, गहरा होने लगता है, और अनन्त-काल तक गहरा ही गहरा होता चला जाता है। इस में क्षणभर के लिये भी बनावट नहीं आ सकती क्योंकि जिस क्षण इस में बनावट ने प्रवेश किया उसी क्षण इस की पेंदी नजर आने लगी। जिस भाव का उद्गम तुच्छता और ओछेपन में हो वह कब तक जिन्दा रह सकता है?

प्रेम एक खरा मोती है जिसे जौहरी पहचान लेता है— पर खोटे बनावटी मोतियों की भी तो यहाँ कमी नहीं। 'लोभ' को और 'काम' को 'प्रेम' का नाम देकर दुनियाँ को, और अपने को, धोखा देने वालों की कमी नहीं है। रुपये, समृद्धि और भाग्य को देख कर कई प्रेमी उत्पन्न हो जाते हैं। ऐ प्रेम के दीवाने! यदि तेरे प्रेमी तेरे भाग्य को देख कर प्रेम की माला जपते हैं तो खबरदार हो जा क्योंकि बुद्धिमानों का कथन है कि 'भाग्य' वेश्या के समान है— हृदय में प्रेम का लव-लेश

भी न होते हुए वह सभी प्रेमियों से आलिंगन करती है परन्तु सभी को दूसरे ही क्षण भुला देने के लिये तैयार रहती है ! उस की सस्ती मुस्कराहट पर अपने को मत लुटा क्योंकि इस की मुस्कराहट को त्योंरियों में बदलते देर नहीं लगती । भाग्य वेश्या के भावों के समान नया-नया रूप बदल लेता है । यह क्षणिक है , साथ ही अन्धा भी ! अपने अन्धेपन की छूत तो यह अपने शिकारों में भी फैला देता है । रुपये वाले प्राय आँखें रखते हुए भी अन्ध होते हैं । अरे भाग्य के लाडले पुत्र ! आँखें खोल, तेरे घर का चिराग टिमटिमा रहा है । ऐसे दोस्तों की खोज कर, जो तेरा उन कठिनाइयों और आपत्तियों में साथ दें, जो अभी तेरे सिर पर पहाड की तरह टूटने वाली है । वे ही दोस्त तेरे असली दोस्त होंगे । इस समय जो खुशामदी टट्टू तुझे घेरे रहते हैं ये तेरे दुश्मन और तेरी दौलत के दोस्त है !

शब्दों की क्या विडम्बना है ! 'लोभी' भी प्रेमी कहाता है, 'कामी' भी अपने को प्रेमी कहना चाहता है । अरे बालक ! कहीं तेरा प्रेमी तेरे शारीरिक सौन्दर्य के कारण ही तो तुझे नहीं घेरे रहता ? क्या इस प्रेम का (?) उद्भव पाशविक मनोवृत्ति —शायद पैशाचिक मनोवृत्ति कहना अधिक उपयुक्त हो— तो नहीं ? क्या इस प्रेम के स्वाग के पीछे कोई पतित भाव तो काम नहीं कर रहा ? यदि ऐसा ही है, और अधिकांश में ऐसा ही होता है, तो अब तक जो कुछ कहा जा चुका है उस की एक-एक बात को गाँठ बाँध ले । ऐसी दोस्ती तुम दोनों को तबाह कर

देगी। जब यह दोस्ती खत्म होगी—और जब तेरा सारा रस चूस लिया जायगा तो खत्म यह जरूर होगी—तब तुझ में शर्म से बिगड़ी हुई अपनी सूरत को दर्पण में देखने की भी हिम्मत न रहेगी। यदि घृणित काम-वासना को 'प्रेम' का नाम देकर नवयुवकों का शिकार खेलने वाले कामी लोग संसार के पवित्रतम भाव की विडम्बना न कर रहे होते तो शायद 'दोस्ती' के सम्बन्ध में कुछ लिखने की आवश्यकता न पड़ती। सदाचार के क्षेत्र में 'माफी' शब्द का कुछ अर्थ नहीं, और जहाँ मैत्रीका प्रश्न हो वहाँ तो आचार शिथिलता के लिये किसी प्रकार की भी माफी नहीं दी जा सकती। ऐसी आचार-शिथिलता को, कामुकता को, 'प्रेम' के नाम से कहने का प्रयत्न करना भी ईश्वर की सृष्टि के सब से पवित्र मनोभाव के साथ अन्याय और अत्याचार करना है।

असली और बनावटी मित्रता में भेद करना सीखो। खुशामदी और कामी दोनों नाली के कीड़े हैं जो मैला खा कर जीते है—उनसे प्रेम? उन्हें पास तक मत फटकने दो, दूर से ही दुत्कार दो। यदि एक बार भी ठगे गये तो पुण्य और सौन्दर्य के उच्च शिखिर से ऐसे लुढकोगे कि पाप और कष्ट के गढे में गिर कर चकना चूर हुए बिना न रहोगे। ऐसे धोखेबाजों से सावधान रहो और याद रखो कि जानी दुश्मन भी उतना खतरनाक नहीं होता जितना गंगा-जमनी दोस्त जो स्वार्थ को लेकर दोस्ती करने चलता है।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व मैं एक बार फिर दोहरा देना चाहता हूँ कि 'प्रेम' की जो पवित्र देन परमात्मा ने प्रत्येक-मानव-हृदय को दी है उसे सम्भाल कर रखना हरेक का फर्ज है। मैत्री के प्रेममय भावों को आध्यात्मिक जगत् में से निकाल देना, भौतिक जगत् में सूर्य्य को बुझा देने के समान होगा—दोनों का अपने २ जगत् में समान स्थान है और दोनों ही मानव समाज के लिये ज्योति के उद्गम-स्थान हैं। परन्तु फिर भी यह सदा, सर्वत्र, स्मरण रखना चाहिये कि सच्ची मैत्री केवल सदाचारियों में हुआ करती है, दुराचारियों में नहीं।

इसलिये, अरे प्रेम-पुष्प के माली ! प्रणय के बीज को हृदय की उपजाऊ भूमि में बो दे। उस की जड़ों को ईमानदारी, सचाई, पवित्रता, सदाचार और इज्जत का पानी देकर मजबूत कर। उस बीज को पनपने दे—प्रेम का पौधा लहलहा उठेगा। इस पौधे को बढ़ने दे, जल्दी मत कर—वसन्त के यौवन से इसे अलङ्कृत होने दे, इस पर भाँति भाँति की, नन्ही-नन्ही, देव-वन की कलियाँ लगने दे। इन कलियों को भी बढ़ने दे—बढ़ने दे, और खिलने दे, ताकि गुलाबी फूलों की तरह व मैत्री के पूर्ण विकास से खिल पड़ें। परन्तु ऐ युवक ! खिलती हुई कलियों को तोड़ने के लिये हाथ मत बढ़ा क्योंकि पौधे का तना लज्जा, सन्देह और भय के काँटों से घिरा हुआ है। प्रेम की खिलती हुई कलियों को तने-तने पर हिल २ कर हवा के झोंकों में झूमने दे—जिस को तू बना नहीं सकता उसे बिगाड़ने की हिमाकत मत कर !

तृतीय अध्याय

जनन-प्रक्रिया

जीवन की सब क्रियाओं को मोटी तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है — शरीर-पोषण और प्रजनन। शरीर-पोषण एक स्वार्थमयी क्रिया है। खा-पीकर वैय्यक्तिक उन्नति करने से ही जीवन-शक्ति बनी रह सकती है। जहाँ यह जीवन है वहाँ यह स्वार्थ पाया ही जाता है। सुदूरवर्ती जगल के एक कोने म खड़ा हुआ पौधा, हवा से, जल से, पृथिवी से, अपने जीवन के लिये आवश्यक प्राण-शक्ति को खींच लेता है। दिन प्रतिदिन उस में हरी-हरी कोंपलें लगती हैं, शाखाएँ फूटती हैं। वह बढ़ता हुआ, वृक्ष बनता चला जाता है। प्रात काल पक्षी अपने घोंसलों से निकलते है, आस्मान पार करते हुए मीलों दूर पहुँच जाते हैं। साँझ को लौट आते है और अगले दिन फिर दाने की ढूँढ में निकलने की तैयारी करने लगते हैं। इसी चक्र म उन की आयु बीत जाती है। जँगल के जानवर हरी घास और ताजे पानी की खोज में निकल पड़ते हैं। जहाँ उन्हें घास के खेत और पानी के तालाब मिल जाते है वहीं वे अपना बसेरा कर लेते है। मनुष्य भी, बचपन से लेकर बुढापे तक, रोटी और कपड़े के जटिल प्रश्न को हल करने में ही पसीना बहाता है। इस प्रकार पौधे, पक्षी, पशु तथा मनुष्य

यानी 'व्यक्तिगत' रूप से जिन्दे रहने के लिये सतत संघर्ष करते हैं।

परन्तु यह अवस्था कब तक रह सकती है? आखिर, इसका अन्त भी है। 'व्यक्तिगत जीवन' जब तक है तब तक जीवित-प्राणी जीवन की परिवर्तनशील भिन्न भिन्न परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। जब तक जीवन का पूर्ण-विकास नहीं हो जाता तब तक व्यक्ति को जीवित रहने के लिये, अपने शारीरिक-पोषण के लिये, उन अवस्थाओं से लड़ना पड़ता है जो जीवन को सत्ता-नाश की ओर ले जाने वाली हों, उसे नुकसान पहुँचाने वाली हों। परन्तु यह स्थिति भी कब तक रह सकती है? आखिर, समय आता है जब बाहरी तरह की परिस्थिति के साथ जीवित-सम्बन्ध स्थापित कर सकना असम्भव हो जाता है, मनुष्य बूढ़ा हो जाता है। परिस्थितियों से सम्बन्ध के रहने का नाम ही जीवन और इसके टूटने का नाम ही मृत्यु है। इसी अवस्था में शरीर-पोषण की स्वाभाविक क्रिया समाप्त हो जाती है। यदि मनुष्य का यहीं अन्त होता तो यह अत्यन्त दुःखमय होगा, परन्तु ऐसा नहीं है, परमात्मा ने बुझते हुए दीपक की ज्योति को पूर्णरूप से सुरक्षित रखने का भी उपाय कर दिया है। उसने एक ऐसा तरीका निकाला है जिससे एक बार उत्पन्न हुआ जीवन अनन्तकाल तक बना रह सकता है।

'शरीर पोषण' के बाद 'जनन प्रक्रिया' मनुष्य को पहुँचती है। इस प्रकार यह वैयक्तिक जी

जाने पर भी उसे जाति के शरीर में जीता-जागता बना देता है। जब पौधे की वानस्पतिक वृद्धि रुक जाती है तो उस में सन्चरण करनेवाला वही प्राण—रम्य, सुगन्धित पुष्पों के रूप में फूट निकलता है। उन फूलों से सजातीय वृक्ष उत्पन्न करने वाले सहस्रों बीज तैय्यार हो जाते हैं। हवा के झोंके से उखडता हुआ एक पौधा अपने जैसे अनेकों की नींव रख जाता है। युवावस्था में, ऋतुकाल में, सब प्राणी अपने जैसे बच्चे पैदा कर जाते हैं और उन बच्चों में ही वे प्राणी एक प्रकार से अमर हो जाते हैं। मनुष्य भी मृत्यु के सैंकड़ों और सहस्रों वर्ष उपरान्त, अपने बच्चों में, पोतों-पडपोता में, बार-बार पैदा होता है और अपने क्षीण हुए यौवन को भी शाश्वत बना लेता है। इस प्रकार, जीवन से उत्कट वैर रखनेवाली मृत्यु का पराजय होता है और जीवन की धारा अखण्डित रूप से प्रवाहित रहती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, 'शरीर-पोषण' जीवन की स्वार्थमयी क्रिया है, परन्तु 'प्रजनन' स्वार्थहीन क्रिया है। इस का उद्देश्य युवावस्था में, जिस आयु में शरीर पोषण ज्यादह नहीं हो सकता, शरीर-पोषण करने वाले तत्व से सन्तानोत्पत्ति करना है। जिस प्रकार पौधे की वानस्पतिक वृद्धि हो चुकने पर फूल खिलते हैं, इसी प्रकार जितना 'शरीर-पोषण' हो सकता है उस के हो चुकने पर 'प्रजनन' की बारी आती है। उससे पूर्व यह अस्वाभाविक है। 'शरीर-पोषण' का अवश्यम्भावी परिणाम 'प्रजनन' होना चाहिये, 'शरीर-पोषण' के समाप्त होने पर 'प्रजनन' शुरू होना चाहिये,

उस से पूर्व शुरू हो जाने पर वह 'शरीर-पोषण' के खर्च पर होगा, उस में रुकावट डाल कर होगा। जनन-प्रक्रिया का उपयोग सिर्फ सन्तति पैदा करने के लिये करना चाहिये और वह भी तब जब कि पुरुष की आयु २५ तथा स्त्री की १६ वर्ष की हो क्योंकि इस आयु में पहुँच कर ही दोनों का पूर्ण विकास होता है। जिस भगवान् ने मनुष्य को 'जनन-शक्ति' दी है उस की यही आज्ञा है। पौधों और पशु-पक्षियों में इस आज्ञा का अक्षरशः पालन होता है परन्तु धिक्कार है मनुष्य को जो सभ्यता और विकास की डींग हाँकता हुआ नहीं थकता परन्तु पवित्र जनन-शक्ति का दुरुपयोग कर के अपने को देवताओं के उच्च आसन से गिरा कर पिशाच बना लेता है और फिर जब समय हाथ से निकल जाता है, भयङ्कर कुकृत्यों के डरावने परिणाम आँखों के सन्मुख नाचने लगते हैं, तो सिर धुन २ कर रोता है!

प्रोटोप्लाज्म

जीवन का उद्भव बड़ा रहस्य मय है। सर विलियम थौमसन का विचार था कि इस पृथिवी पर जीवन किसी अन्य नक्षत्र से आ गिरा है। डार्विन का सिद्धान्त है कि वनस्पतियों तथा प्राणियों की उत्पत्ति किसी एक ही मूल-तत्व से हुई है। हर्बर्ट स्पेन्सर, हक्सले तथा टिन्डल ने कहा कि चेतनता की उत्पत्ति जड़ से स्वयं हो गई, परन्तु उन्हों ने साथ ही यह भी स्वीकार कर लिया कि उन के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये उन के पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न था। जीवन का उद्भव सृष्टि के प्रारम्भ में कैसे हुआ इस प्रश्न पर अब तक

कोई निश्चित सम्मति नहीं दी जा सकी । हाँ, उद्भव के बाद, जीवन की वृद्धि के प्रश्न को विज्ञान ने खूब हल किया हुआ है। वैज्ञानिकों का कथन है कि वानस्पतिक तथा जान्तविक जगत् का एक मात्र मूल आधार 'प्रोटोप्लाज्म' है जिसे केवल सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र की सहायता से देखा जा सकता है। जीवन का मूलभूत यह प्रोटोप्लाज्म—कललरस— क्या है ? प्रोटोप्लाज्म एक पारदर्शक पदार्थ है । यह लसलसा, आधा द्रव और आधा ठोस होता है । इस क सब हिस्से एक ही तत्व से बने होते हैं, यह अखण्ड एकरस होता है । इस में स्वाभाविक गति होती रहती है। यह गति अनियमित होती है, घड़ी-घड़ी बदलती रहती है और 'अमीबा' की गतियों के सदृश होती है । 'प्रोटोप्लाज़्म' के भीतर हर समय दो क्रियाएँ होती रहती हैं। एक क्रिया से वह जीवन-रहित पदार्थ को अपने अन्दर लेकर जीवन का अंग बना देता है, दूसरी क्रिया से जीवन के अंगीभूत पदार्थ को भीतर से निकाल कर जीवन रहित बना देता है । यही क्रिया 'जीवन' का प्रारम्भ है ।

अमीबा

वानस्पतिक जगत् म जीवन-शक्ति का सर्वत प्रथम विकास 'वैक्टीरिया' में होता है , प्राणि-जगत् में वही 'अमीबा' में होता है । जीवन की इन दोनों इकाइयों का मूलतत्व 'प्रोटोप्लाज्म' ही होता है । अर्थात्, प्रोटोप्लाज्म, जो जीवन का मूलभूत भौतिक तत्व है, जब वनस्पति जगत् का प्रारम्भ करता है उस समय इस का नाम 'बैक्टीरिया' होता है, और जब यह प्राणि-जगत् का प्रारम्भ करता है तब

इस का नाम 'अमीबा' होता है। 'बैक्टीरिया' तथा 'अमीबा' दोनों प्रोटोप्लाज्म के ही रूपान्तर हैं और क्रमशः स्थावर तथा जंगम जगत् के प्रारम्भिक रूप हैं। किसी शान्त तालाब के अन्दर से कीचड़ को लेकर सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र के नीचे रख कर देखें तो पता लगेगा कि वह छोटे-छोटे गोल-गोल प्रोटोप्लाज्म के कीटाणुओं से बना हुआ है। सूक्ष्म निरीक्षण से पता चलेगा कि ये प्रोटोप्लाज्म से बने हुए पदार्थ जीवित प्राणी हैं—व हिलते हैं, बढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न आकृतियाँ धारण करते हैं। इन्हीं कीटाणुओं को 'अमीबा' कहते हैं। अमीबा की चेष्टाएँ अत्यन्त विचित्र होती हैं। इसका एक हिस्सा बढ़ कर मुख बन जाता है, फिर यही आमाशय या टाँगों का काम भी करने लगता है। इस कीटाणु के शरीर का कोई अंग निश्चित नहीं होता। अपने शरीर के जिस हिस्से से वह जो कोई भी काम लेना चाहे ले सकता है।

न्यूक्लियस

'अमीबा' के शरीर में एक छोटी गाँठ-सी होती है जिसे 'न्यूक्लियस' कहते हैं। यह 'अमीबा' के 'प्रोटोप्लाज्म' के भीतर ठहरी हुई नजर आती है। यह जनन प्रक्रिया में बड़ी आवश्यक है। 'न्यूक्लियस' की गाँठ सहित 'अमीबा' के प्रोटोप्लाज्म को अंग्रेजी में 'न्यूक्लियेटेड प्रोटोप्लाज्म' कहते हैं। 'न्यूक्लियस' अर्थात् गाँठ वाले प्रोटोप्लाज्म को सूक्ष्म-वीक्षण के नीचे रख कर देखने से अनेक नई बातें मालूम होती हैं। कुछ देर के बाद जब 'अमीबा' निश्चल हो जाता है उस के 'न्यूक्लियस' में

कुछ आवश्यक परिवर्तन होने प्रारम्भ होते हैं। 'न्यूक्लियस' के बीच में से दो टुकड़े हो जाते हैं और प्रत्येक टुकड़े के साथ आधा-आधा प्रोटोप्लाज़्म भी चला जाता है। वह उस टुकड़े को घेर लेता है और एक के ही दो भाग हो कर दो स्वतन्त्र 'अमीबा' तय्यार हो जाते हैं। इस प्रकार एक 'अमीबा' के दो 'अमीबा' बन जाते हैं। इन मे से प्रत्येक के फिर दो भाग होकर चार 'अमीबा' बन जाते है। इस प्रकार जनक-अमीबा अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर के अपने ही शरीर को पहले दो, फिर चार, फिर आठ आदि भागों मे विभक्त कर अपनी जाति की भावी सन्तति को जन्म देता है।

कोष्ठ विभजन

जिस प्रकार हम ने अभी देखा कि 'अमीबा' बीच की गाँठ मे से टूट कर दो भागों में बँटता, और वे दो भाग टूट कर चार भागों में, और इसी प्रकार व भी आगे-ही-आगे टूट कर अनेक भागों में विभक्त होते जाते हैं, इसी प्रकार 'अमीबा' से ऊंचे प्राणियों में भी शरीर की रचना का, 'न्यूक्लियस-युक्त प्रोटोप्लाज़्म' से ही, जिसे अंग्रेजी में 'सेल' या हिन्दी मे 'कोष्ठ' कहते हैं, प्रारम्भ होता है। उच्च प्राणियों के शरीर के उत्पन्न होने मे भी वही प्रक्रिया होती है जो 'अमीबा' में पायी जाती है, भेद केवल इतना है कि 'अमीबा' का 'न्यूक्लियस' तो दो स्वतन्त्र भागों में विभक्त हो कर अपनी सत्ता बिल्कुल मिटा देता है परन्तु ऊँची जाति के प्राणियों में, जिन में मनुष्य भी शामिल है, प्रोटोप्लाज़्म का बहुत थोड़ा-सा हिस्सा पृथक् हो कर 'अण्डा' या 'बीज' बनता है और उन अण्डों या बीजों को

उत्पन्न करनेवाला प्राणी उसी प्रकार के दूसरे अण्डों और बीजाणु समय-समय पर उत्पन्न करता रहता है और 'अमीबा' की तरह अपनी भौतिक सत्ता को मिटा नहीं देता, किन्तु जीवित बनाए रखता है। जिस काम के लिये 'अमीबा'-जैसे निम्न-श्रेणी के प्राणी को अपने सारे शरीर के दो हिस्से कर देने पड़ते हैं उसी काम के लिये उच्च-श्रेणी के प्राणियों के शरीर का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा पर्याप्त होता है।

यह छोटा-सा हिस्सा ही पुरुष में वीर्य-कीट तथा स्त्री में रज कण के रूप में पाया जाता है। 'वीर्य-कीट' को अंग्रेजी में 'स्पर्मेटोजोआ' कहते हैं— यह 'उत्पादक-वीर्य' है। स्त्री के 'रज कण' को अंग्रेजी में 'ओवम' कहते हैं। 'स्पर्मेटोजोआ' तथा 'ओवम' दोनों ही 'न्यूक्लियस-युक्त प्रोटोप्लाज्म' के पिण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। ऊँची जातियों के प्राणियों में जब 'वीर्य-कीट' अथवा 'स्पर्मेटोजोआ' 'रज कण' अथवा 'ओवम' के साथ मिल जाता है तब 'ओवम' (स्त्री का बीज) दो, चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ, और इसी प्रकार ऐसे ही छोटे-छोटे कोषों में टूट-टूट कर [illegible] जाता है। यह वृद्धि 'अमीबा [illegible] कोषों के टुकड़े बिल्कुल अलग [illegible] होती जाती है, [illegible] ऐसा ही होना [illegible] पिण्ड बन जाता [illegible]

जाती है तब वह माता के पेट से निकल कर स्वतन्त्र रूप में जीने लगता है। उस से पूर्व तो वह माता के शरीर का ही हिस्सा रहता है। प्राणियों के शरीर की इसी प्रकार वृद्धि होती है और इसे 'विभजन-द्वारा-वृद्धि' (सेगमन्टेशन, मल्टीप्लिकेशन बाई डिवीयन) या 'कोष्ठ-कल्पना' (सेल-थियोरी) कहते हैं।

शरीर के अनेक अवयव केवल इन कोष्ठों से ही बने होते हैं। जिगर उन में से एक है। 'कोष्ठ' ही तन्तुओं के रूप में पट्ठों, मांस पेशियों तथा ज्ञान-वाहिनी नाडियों की रचना करते हैं। हड्डी तथा दाँत जैसी मजबूत तथा सख्त चीजें भी मौलिक रूप में कोष्ठों से ही बनती हैं। इसलिये कोष्ठ (सेल) प्राणिमात्र के शरीर की रचना करने वाली इकाई है। कोष्ठों के आपस में मिलने, संयुक्त होने तथा परिवर्तित होने से ही शरीर का निर्माण होता है।

लिङ्ग भेद

कोष्ठ-विभजन (प्रोटोप्लाज्म तथा न्यूक्लियस के दो २ टुकडे) होने से पहले, एक और आवश्यक प्रक्रिया होती है जिसका हमने अभी तक वर्णन नहीं किया। तालाब की काई को सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र द्वारा देखने से ज्ञात होता है कि वह कुछ जीवाणुओं से बनी हुई है। इन्हें 'एलजी' कहते हैं। उस काई में 'न्यूक्लियस-गर्भित-प्रोटोप्लाज्म' की आमने-सामने दो-दो पंक्तियाँ बन जाती हैं। प्रत्येक पंक्ति के कोष्ठ अपने सामने के कोष्ठों से मिल जाते हैं और दोनों के मिलने से एक नवीन कोष्ठ बन जाता है। इस प्रक्रिया में एक कोष्ठ को दूसरे कोष्ठ

की तरफ जाते हुए हम सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र द्वारा देख सकते हैं। इन कोष्ठों को, जो कि दो भिन्न २ पंक्तियों में होते हैं, 'नर' और 'मादा' कहते हैं। इन कोष्ठों के परस्पर संयुक्त होने की प्रक्रिया को 'संयोग' (कोन्जुगेशन) कहते हैं। यदि कोष्ठों का यह संयोग न हो तो 'ऐलगी' में एक से अनेक होने की जो प्रक्रिया पायी जाती है वह भी न हो। कोष्ठों का यह पारस्परिक संयोग सृष्ट्युत्पत्ति का एक आवश्यक सिद्धान्त है।

इसलिये 'जनन' दो विभिन्न-तत्वों के 'संयोग' का फल है। इन्हीं विभिन्न-तत्वों को प्रचलित भाषा में 'पुरुष' तथा 'स्त्री' कहा जाता है। यद्यपि कभी २ तत्वों की विभिन्नता, अर्थात् विजातीयता, का ज्ञान सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र से भी स्पष्ट प्रतीत नहीं होता तथापि उन के विविध कार्यों को देख कर निश्चय कर सकते हैं कि ये भिन्न २ तत्व या लिंग के प्राणी हैं। दोनों ही, एक नवीन प्राणी की उत्पत्ति के लिये, 'पुरुषतत्व' तथा 'स्त्रीतत्व' इन विभिन्न-तत्वों को उत्पन्न करते हैं और इन विभिन्न तत्वों के सम्मिलन से ही एक नवीन प्राणी की सृष्टि होती है। प्रजनन के लिये आवश्यक इन दोनों तत्वों को उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों को 'जननेन्द्रिय' शब्द से कहा जाता है। प्रजनन के आधार-भूत सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में एक से हैं। इसलिये 'जनन-प्रक्रिया' को और अधिक समझने के लिये हम क्रमश: पौधों, छोटे प्राणियों, बड़े प्राणियों तथा मनुष्यों में इन नियमों को देख कर इस प्रक्रिया को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

पौधे

'फूल' पौधों की जनन-सम्बन्धी इन्द्रियाँ हैं। कुछ फूल 'नर' तत्व को उत्पन्न करते हैं और कुछ 'मादा'-तत्व को। कई बार एक ही फूल मे दोनों तत्व मिले रहते हैं। फूलों के नर-भाग को अंग्रेजी मे 'स्टेमन' तथा मादा-भाग को 'पिस्टिल' कहते है। नर-भाग (स्टेमन) मे एक प्रकार की सूक्ष्म, शुद्ध धूली होती है जिसे पुँ-केसर (पौलन) कहते हैं। यही फूल का जनन-सम्बन्धी नर-तत्व है। मादा-भाग (पिस्टिल) फूल के मध्य मे स्थित होता है और वहीं पर फूल का जनन-सम्बन्धी मादा-तत्व (ओव्यूल) रहता है। यदि नर तथा मादा तत्व एक ही फूल के भीतर हों तो वहीं 'बीज' की सृष्टि हो जाती है परन्तु यदि ये दोनों तत्व भिन्न २ पौधों पर स्थित हों तो नर-पुष्प के पुँ-केसर को वायु उड़ा कर निकटस्थ मादा-पुष्प के भीतर पहुँचा देती है। इस विधि से कई अवस्थाओं मे नर तथा मादा जाति के पुष्पों के बहुत दूर स्थित होने पर भी 'संयोग' हो जाता है। मधु-मक्खियाँ, पतंग आदि अपने पखों और पाँवों द्वारा उत्पादक-धूलि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर जनन प्रक्रिया मे बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। छोटी चिड़ियाँ और बेचारा 'स्नेल' इस दृष्टि से बड़े काम के हैं। पौधों की जनन-प्रक्रिया मे भाग लेने वाले कई कीट, पतगों का इतना महत्व है कि कविता की भाषा मे उन्हें 'फूलों के विवाह का पुरोहित' कहा गया है।

छोटे-प्राणी

कुछ छोटे प्राणियों में जिन विधियों द्वारा 'सयोग' अथवा 'जनन प्रक्रिया' होती है व पौधों की अपेक्षा विभिन्न, अनेक तथा अधिक आश्चर्य-जनक हैं।

मछली

उदाहरणार्थ, मछलियों तथा साँपों में, माता पिता के शरीर से, उन के आपस में मिले बिना ही, नर तथा मादा तत्त्व निकल आते हैं और उन तत्त्वों का माता-पिता के शरीर के बाहर ही सयोग हो जाता है। इस अवस्था में एक का दूसरे से स्पर्श बिल्कुल नहीं होता। प्राणियों की इस श्रेणी में जनन प्रक्रिया ठीक वैसी ही होती है जैसी उन पौधों में जिन में नर तथा मादा पुष्प एक ही पौधे के भिन्न २ भागों में स्थित होते हैं। मादा-मछली के शरीर में बहुत से अण्डे खास मौसम में पैदा हो जाते हैं। कई बार इन की संख्या हजारों तक होती है। इसी समय नर-मछली के अण्डकोष, जो कि उस के शरीर में (कोष्ठगुहा= एबडोमिनल कैविटी में) विद्यमान होते हैं, बढ़ने लगते हैं। इन्हीं अण्डकोषों में वीर्य-कण होते हैं। जब मादा अपने अण्डों को सुरक्षित रखने के लिये जगह ढूँढती है तो नर चुपचाप उस के ही पीछे हो लेता है और ज्योंही वह अण्डा को देती है त्योंही वह उन पर वीर्य-कण डाल देता है। इसी से सयोग हो जाता है और नई मछलियों का जीवन प्रारम्भ हो जाता है। उत्तरी समुद्र का जल कई स्थानों पर मछली के अण्डों से गदला हो जाता है।

यह प्रक्रिया मेंढक की कई जातियों में ज्यों-की-त्यों मिलती है।

मेंढक जिस समय मादा अपने अण्डे सुरक्षित रखने वाली होती है, नर उस की पीठ पर चढ जाता है और तब तक चढा रहता है जब तक कि सब अण्डे सुरक्षित तौर पर रख नहीं दिये जाते। मादा द्वारा अण्डों के रखे जाते ही नर उन पर वीर्य-कण डाल देता है। इस प्रकार नर तथा मादा दोनों के उत्पादक-तत्वों के सयोग से जनन प्रारम्भ होता है। मादा को अण्डे रखने मे काफी समय लगता है। तब तक नर उस की पीठ पर चढा ही रहता है। इस समय उस के पाँवों मे अजीब ढँग के अगूठे-से निकल आते है जिन से वह मादा की पीठ पर चिपटा रहता है। ये अगूठे इसी समय निकलते हैं। बच्चा पैदा करने की मौसम के समाप्त हो जाने पर ये क्षणिक अगूठे लुप्त हो जाते हैं क्योंकि फिर इन की कोई आवश्यकता नही रहती। ये दोनों उदाहरण 'बहि सयोग' के हैं—इन मे नर तथा मादा तत्वों का सयोग मादा के शरीर के बाहर होता है।

कुछ जातियों मे, जिन में 'अन्त सयोग' होता है, नर और मादा एक दूसरे को स्पर्श नही करते परन्तु फिर भी कई अज्ञात कारणों से नर का वीर्य-कण मादा के शरीर में पहुँच जाता है और वहाँ पर नर-तत्व के सयोग से अण्डा बनने लगता है। इस प्रकार की जनन-प्रक्रिया में नर तथा मादा का शारीरिक सयोग नहीं होता। सस्कृत-साहित्य में बादल के गर्जने से बगुली के गर्भ हो जाने का वर्णन पाया जाता है।

सॉंपों में नर तथा मादा की जननेन्द्रियों के पारस्परिक स्पर्श मात्र से सयोग हो जाता है।

स्नेल

स्नेल उभय लिंगी प्राणी है, अर्थात् एक ही स्नेल नर और मादा दोनों एक साथ होता है। इस मे नर और मादा का सयोग बडी विचित्र रीति से होता है। टी० आर० जोन्स ने इस का निम्न प्रकार वर्णन किया है —

"इन मे जिस विधि से सयोग होता है वह कुछ कम आश्चर्य-जनक नहीं है। इस सयोग का प्रारम्भ असाधारण रीति से होता है। देखने वाला समझता है कि यह दो प्रेमियों का मिलाप नहीं परन्तु शत्रुओं की लडाई है। यह प्राणी स्वभाव से शान्त प्रकृति का है, परन्तु सयोग के समय दोनों में अजीब फुर्ती आ जाती है। शुरु २ में प्रगाढ आलिंगन होता है, फिर दोनों में से एक अपनी ग्रीवा के दाईं ओर से एक चौडी और छोटी-सी थैली को खोलता है। यह थैली तन कर कटार जैसी हो जाती है और गले के साथ ऐसी लगी होती है मानो दीवार के साथ चिपकी हुई हो। इस अजीब हथियार से दूसरे प्रेमी के असुरक्षित भाग पर प्रहार किया जाता है। वह भी जल्दी-से अपने खोल म घुस कर इस आघात से बचने की पूरी कोशिश करता है। परन्तु अन्त म किसी खुले स्थान पर चोट लग ही जाती है और उस के लगते ही इस प्रेम-प्रहार का बदला लेने के लिये आहत-स्नेल उद्विग्न हो उठता है और अपने प्रतिद्वन्दी को चोट पहुँचाने में कुछ उठा नहीं रखता। इस प्रेम-कलह में उन की कटारों पर लगे छोटे २ काँटे प्राय

टूट कर जमीन पर गिर पडते हैं अथवा उन के जख्मों पर चिपक जाते हैं। इस प्रारम्भिक उत्तेजना के कुछ देर बाद दोनों स्नेल चेतन हो कर अधिक प्रबलता से लडने के लिये आगे बढते हैं। अब यह कटार सकुचित हो कर शरीर में आ जाती है और एक दूसरी छोटी थैली दोनों के उत्पादक छिद्रों में से निकल कर आगे को बढ जाती है। यह स्नेल की जननेन्द्रिय है, और इस पर दो छिद्र दिखाई देते हैं। क्योंकि स्नेल उभय-लिंगी है—अर्थात् नर तथा मादा दोनों है—इसलिये इन दोनों छिद्रों मे से एक तो स्नेल का मादा होने का छिद्र है और दूसरा नर होने का। इस दूसरे छिद्र मे से दोनों की एक इञ्च लम्बी चाबुक-जैसी नर-इन्द्रिय धीरे २ खुलती है। तब दोनों स्नेल परस्पर सयोग करते हैं और दोनों के, एक दूसरे से, गर्भ ठहर जाता है।"

ओयस्टर भी उभय-लिंगी प्राणी है, उस में भी आत्म-सयोग हो जाता है। आरगोनट एक प्रकार की मछली होती है। इस में सयोग बहुत ही विचित्र रूप से होता है। नर के शरीर के बाएँ हिस्से पर एक छोटी-सी थैली होती है जिस में एक कुण्डलीदार उपकरण रहता है। यह उपकरण वस्तुत एक नलिका होती है जिस का सम्बन्ध अण्डकोषों से होता है। इस नलिका में वीर्य-कण सचित रहते हैं। पूर्ण वृद्धि होने पर वीर्य-कणों से भरी हुई यह थैली आरगोनट के शरीर से जुदा हो जाती है, जल में तैरती २ मादा को ढूँढ लेती है और उस के साथ सयोग से मादा के बच्चे पैदा होने लगते हैं।

आरगोनट

एक विशेष प्रकार की मक्खी पायी गई है जो लाश की सडांद की गन्ध से अण्डे देने लगती है। यदि इस

मक्खी

मक्खी के गन्ध लेने वाले ज्ञान-तन्तु काट दिये जायँ तो वह अण्डे देना बन्द कर देती है। नाक पर आघात लगने के अलावा उसे दूसरे स्थानों पर कितनी बड़ी भी चोट क्यों न लगे, वह अण्डे देना बन्द नहीं करती। जननेन्द्रिय के साथ घ्राण के सम्बन्ध का यह अद्भुत् उदाहरण है।

कभी २ मधु-मक्खी, नर के साथ संयोग किये बिना ही, अण्डे देने लगती है और उन अण्डों से हमेशा

मधुमक्खी

नर-मक्खी पैदा होती है। नर के साथ संयोग के बाद वह छत्ते के कोष्ठों में अण्डे देती है और उन अण्डों से हमेशा मादा-मक्खी पैदा होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस में अपनी इच्छा के अनुसार, बिना संयोग के, अण्डे पैदा करने की शक्ति है जिस से नर-मक्खियाँ पैदा होती हैं। मधु-मक्खियाँ, बड़ी मेहनत से, सैकड़ों नर-मक्खियों को एक रानी-मक्खी के सुख के लिये पालती हैं। जब मधु-मक्खियों की 'रानी' संयोग के लिये आकाश में उड़ती है तो नर-मक्खियाँ उन के पीछे हो लेती हैं। जब एक नर मक्खी का रानी-मक्खी से संयोग हो जाता है तब वह अपनी जननेन्द्रिय को उस के शरीर में छोड़ कर मर जाता है। अन्य नर-मक्खियाँ अब किसी काम की नहीं रहतीं अतः पतझड़ में शक्तिशाली स्त्रियाँ उन का संहार कर देती हैं।

तितली का जनन-सम्बन्धी जीवन भी अनोखा है। यह कुछ महीनों तक रोमावृत अवस्था में रहती है—फिर, साल, दो साल तक चमकते हुए कीट की अवस्था धारण करती है। इस के पीछे दीवार की दराड में या पेड की छाल के नीचे, रेशम के कीडे के घर की तरह, एक खोल बना कर सोई रहती है। अन्त में शानदार, रंग-बिरंगे परों का शृंगार कर टहनी से टहनी पर मँडराने लगती है। इसे भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। मादा बडी शान्त होती है, चुपचाप पडी रहती है। नर की घ्राण-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उसे कई मीलों से मादा की गन्ध आ जाती है और ज्योंही वह उडने योग्य हो जाता है फौरन खेतों और जंगलों को पार करता हुआ अपनी प्रिया के पास जा पहुँचता है। प्रणय के प्रथम मिलन में ही वह अभागा इस संसार से चल बसता है। इस के बाद मादा भी अनगिनत अण्डे जन कर तत्क्षण अपने प्रीतम के पास उस लोक में पहुँच जाती है। यह प्रेम की कैसी करुण कहानी है!

तितली

प्रकृतिवादी फेबर महोदय ने चींटियों के जनन सम्बन्धी जीवन के विषय में अनेक आश्चर्य-जनक बातें पता लगाई हैं। उन का कथन है कि कई चींटियाँ ऐसी होती हैं जिन में मादा संयोग के लिये उडती है। अनेक नर-चींटे उड़-उड़ कर उस का आलिंगन करते हैं और उस के पीछे ही वे मर जाते हैं। इस प्रकार मादा के पास वीर्य-कणों की एक धरोहर हो जाती है जिस में विविध नरों के वीर्य-कण सुरक्षित

चींटी

रखे रहते हैं। इस के बाद वह कई साल तक, कम-से-कम ११ वा १२ साल तक, बिना किसी नर के संयोग के अण्डे पैदा कर सकती है। वस्तुतः, यह बड़े अचम्भे की बात है कि इतने समय तक वीर्य-कण पूर्ण रूप से सुरक्षित पड़े रह सकते हैं।

बड़े प्राणी और मनुष्य

बड़े प्राणियों में नर तथा मादा के उत्पादक-तत्वों के मिलन से जीवन उत्पन्न होता है। इस क्रिया के लिये कुछ सहायक तथा आवश्यक इन्द्रियां भी परमात्मा ने बनाई हैं—नर में 'शिश्न' तथा मादा में 'योनि'।

प्रत्येक जाति में—आदमी, घोड़ा, बकरी, सभी में—नर तथा मादा के जनन-सम्बन्धी गुह्य अंग एक दूसरे को दृष्टि में रख कर ही बनाये गये हैं। प्रत्येक जाति के नर तथा मादा के गुह्य अंगों में एक आश्चर्य जनक पारस्परिक अनुकूलता पाई जाती है। यह प्रकृति का बड़ा भारी चमत्कार है। यह आवश्यक आयोजन अपनी जाति को हमेशा बनाये रखने का जहाँ शक्तिशाली उपाय है वहाँ दो विभिन्न जातियों के मिलन के मार्ग में रुकावट भी है।

नर तथा मादा की जननेन्द्रियों के मेल को 'संयोग' कहते हैं। संयोग ही जनन प्रक्रिया है। जनन-प्रक्रिया में वीर्य-कण रज कण से सिर्फ मिल ही नहीं जाता परन्तु रज कण की पतली-सी झिल्ली को चीर कर अन्दर घुस जाता है और उस के अन्दर के ..स से मिल जाता है। फिर रज कण की वृद्धि होने लगती है

और उस का क्रम वही होता है जिस का वर्णन 'कोष्ठ-विभजन' की क्रिया में पहले किया जा चुका है। कई मछलियों के रज कणों में छोटे छोटे छिद्र देखे गये हैं जिन के द्वारा वीर्य-कण को उन के अन्दर प्रविष्ट होने का मार्ग मिल जाता है। वीर्य-कण की एक लम्बी-सी पूँछ होती है उस की सहायता से वह रज कण को ढूंढता हुआ योनि में गति करता है। रज कण की पृष्ठ को छूते ही वह उसे चीर कर जल्दी से अन्दर घुस जाता है। तत्पश्चात्, रज कण की पृष्ठ का द्रव्य बाहर से जम जाता है जिस से उसे कोई अन्य वीर्य-कण चीर कर प्रविष्ट नहीं हो सकता। यह जमाव रज कण की रक्षा के लिये कवच का काम देता है। जब कभी रुग्ण रज कण में कई वीर्य-कण प्रविष्ट हो जाते हैं तो एक अद्भुत प्राणी की उत्पत्ति होती है। यदि रज कण में दो वीर्य-कण प्रविष्ट हो जायँ तो एक मिला हुआ जोड़ा पैदा होता है। परन्तु यह अस्वाभाविक अवस्था है।

जब रज कण वीर्य-कण से संयुक्त हो जाता है तब 'गर्भ' रह जाता है। रज कण शीघ्र ही गर्भाशय की आभ्यन्तरिक झिल्ली पर चिपक जाता है और गर्भावस्था का समय प्रारम्भ हो जाता है। मनुष्य-जाति में प्राय यह समय कलैण्डर के नौ महीनों या चान्द्रमास के दस महीनों का होता है। इस समय स्त्रियों को मासिक-धर्म नहीं होता। यद्यपि कई स्त्रियों में, गर्भ ठहरने पर भी, विशेषत प्रारम्भिक महीनों में, मासिक-धर्म, कुछ विकृत रूप में पाया जाता है, तथापि यह असाधारण अवस्था है।

गर्भ के समय रज कण विकास की विविध अवस्थाओं में से गुजरता है । इन में से कई परिवर्तन हूबहू वही होते हैं जो हमें भिन्न भिन्न प्रकार के छोटे प्राणियों में मिलते हैं । एक समय आता है जब बढ़ता हुआ मानवीय भ्रूण अण्डे से पैदा हुई छोटी सी चिड़िया जैसा होता है । फिर समय आता है जब कि वह कुत्ते की शक्ल से इतना मिलता है कि बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता धोखा खा सकते हैं । ऐसा भी समय आता है जब भ्रूण के हाथ-पाँव एक खास मछली के बाजुओं से बिल्कुल मिलने लगते हैं । इस के बाद भ्रूण का सारा शरीर बन्दर की तरह बालों से ढक जाता है । भ्रूण की क्रमिक वृद्धि के इन दृष्टान्तों को देखकर विकासवादी कहा करते हैं कि मनुष्य तथा अन्य छोटे प्राणियों का उद्भव स्थान एक ही है । परन्तु यह उन की भूल है । इन उदाहरणों से यह सिद्ध नहीं होता कि सब की उत्पत्ति एक ही से हुई है, हाँ, यह अवश्य पता चलता है कि इन विविध योनियों को बनाने वाला एक ही हाथ है जिस की कारीगरी के एक-ही-से निशान सर्वत्र बिखरे हुए दिखाई देते हैं ।

चतुर्थ अध्याय

उत्पादक-अंग

पिछले अध्याय में जनन-प्रक्रिया का वर्णन हो चुका, इस अध्याय में जनन के अंगों का शारीर-शास्त्र की दृष्टि से वर्णन किया जायगा। शरीर में उत्पादक-अंग जगत्स्रष्टा प्रभु की रचना-शक्ति के प्रतिनिधि हैं। पापी तथा भ्रष्ट लोग इन अंगों का बुरा उपयोग करते हैं, अन्यथा वे इतने ही पवित्र हैं जितना शरीर का कोई भी दूसरा अंग। बालकों को इन अंगों के विषय में उल्टे-सीधे तरीके से जो कुछ मालूम हो सकता है उस का संग्रह करने में वे कुछ उठा नहीं रखते। परिणाम यह होता है कि उन के विचार कु-संस्कारों की बदबू से दुर्गन्धित हो जाते हैं और उन्हें ठीक-ठीक किसी बात का पता भी नहीं चलता। इस अध्याय का विषय है—उत्पादक-अंग। इन अंगों के सम्बन्ध में विद्यार्थी का मस्तिष्क रहस्य के काले-काले बादलों से घिरा रहता है। वे बादल घनीभूत हो कर उस युवक की जीवन-नौका को तूफान से धकेलते हुए डावाँडोल न कर दें, इसलिये इन अंगों का ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक के लिये आवश्यक है। इन अंगों का अध्ययन प्रत्येक विद्यार्थी को इतने ही आत्म-संयम और एकाग्र चित्त से करना चाहिये जितने से वह जीवन-सम्बन्धी अन्य किसी आवश्यक विषय का मनन करता है।

स्त्री के उत्पादक-संस्थान के अंग शरीर के भीतर तथा पुरुष के बाहर स्थित होते हैं। हम केवल पुरुष के उत्पादक संस्थान का वर्णन करेंगे।

पुरुष की जननेन्द्रिय को शिश्न कहते हैं। यह खोखला-सा स्पंज जैसा अवयव है। इस का प्रधान कार्य मूत्रोत्सर्ग है। परिपक्वावस्था में, २५ वर्ष के बाद

शिश्न

यह अंग जनन के काम भी आ सकता है, परन्तु उस अवस्था से पूर्व बुरे विचार से इस अंग को हाथ भी लगाना आत्मघात की तरफ पाँव बढ़ाना है। कुचेष्टाओं से यह अंग शिथिल हो जाता है अन्यथा संयमी पुरुष की इन्द्रिय छोटी भी हो तो भी उसका उत्पादन-शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस अंग में अनेक रक्त-वाहिनी प्रणालिकाएँ रहती हैं। कामभाव के विचारों से शरीर का रुधिर इन प्रणालिकाओं की तरफ जाने लगता है और जननेन्द्रिय उत्तेजित हो उठती है। इस प्रकार की उत्तेजना जिन कारणों से होती हो उन से बचना चाहिये। क्यों?—क्योंकि यह रुधिर कुछ देर जननेन्द्रिय में टिकने के बाद जीवन रहित हो जाता है। संचित-रुधिर प्रायः थोड़ी देर के बाद जीवन-रहित हो ही जाया करता है। उत्तेजना हट जाने पर यह रुधिर फिर शरीर में गति करने लगता है और सारे रुधिर को अपने गन्दे अंश से खराब कर देता है। डा० कीथ ने अपनी पुस्तक 'सेवन स्टडीज फौर यंगमेन' में अपने इस विचार की सप्रमाण पुष्टि की है। माता-पिता को स्मरण रखना चाहिये कि बालकों में जननेन्द्रिय

सम्बन्धी खराबियों का सूत्रपात उस दिन से प्रारम्भ होता है जिस दिन से उन्हें पहले-पहल उत्तेजना का अनुभव होता है। वे इसे खेल की चीज समझने लगते हैं। पीछे इसी खेल के साथ कई रहस्य जुड़ जाते हैं और युवक का जीवन नष्ट होने लगता है। उसे समझा देना चाहिये कि यह खेल उसे किसी दिन रुलाएगी। मेरे पास सैंकड़ों पत्र पड़े हैं जिन में लड़के अपने पिछले दिनों को रोते हैं। हाँ, वे बीते दिन तो नहीं लौट सकते परन्तु आगामी आने वाली सन्तति उन के आँसुओं से सचेत जरूर हो सकती है।

शिश्न का गात्र पतली त्वचा से मुख तक ढका रहता है।

मुण्डाग्रचर्म इस के आगे के बढ़े हुए चर्म को मुण्डाग्र-चर्म कहते हैं क्योंकि यह शिश्न के मुण्ड को ढाँपता है। मुसलमानों तथा यहूदियों में मुण्डाग्र-चर्म को कटवा देना धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। इस कृत्य को वे खतना कहते हैं। उत्तरी भारत में कट्टर पंडित लघुशंका जाते समय पानी साथ ले जाते हैं और इन्द्रिय-स्नान कर लेते हैं। कई लोग इसी कार्य के लिये मट्टी का इस्तेमाल करते हैं। लघुशंका के बाद मूत्रेन्द्रिय को न धोने से गन्द इकट्ठा हो कर फोड़े-फिन्सी पैदा कर देता है। मुण्डाग्र-चर्म के अन्त पृष्ठ पर कई छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जिन में से एक खास प्रकार का स्राव निकलता है। इस चर्म को धीरे-से मुण्ड पर से हटा कर स्राव को धो डालना चाहिये नहीं तो वह इकट्ठा हो कर उत्तेजना और बेचैनी पैदा करता है। कई अवस्थाओं में मुण्डाग्र-चर्म बहुत तंग होने से पीछे को नहीं हटता,

इस प्रकार शिश्न-मुण्ड का मुख न खुलने से वह ठीक तौर पर धुल नहीं सकता। किसी किसी का यह चर्म बहुत लम्बा और चिपका रहता है। ऐसी अवस्थाओं में आगे बढ़े हुए मुण्डाग्र-चर्म को किसी कुशल शल्य चिकित्सक से कटवा डालना चाहिये ताकि तत्सम्बन्धी बहुत से दुःख तथा रोग न हो सकें। नवयुवकों की ७५ फी सदी शिकायतें दूर हो जायँ यदि वे धार-से मुण्डाग्र चर्म को शिश्न-मुण्ड से हटाकर उसे शुद्ध, शीतल जल से धो लिया करें। शिश्न-मुण्ड में शरीर की ज्ञान-वाहिनी शिराएँ केन्द्रित होती हैं अतः यह स्नान सम्पूर्ण मस्तिष्क में शीतलता पहुँचा देता है और बालक अनुचित उत्तेजना से बचा रहता है।

मूत्र प्रणाली शिश्न की सारी लम्बाई में से होकर गुजरनेवाली प्रणाली को मूत्र प्रणाली या अँग्रेजी में 'यूरिथ्रा' कहते हैं। शिश्न की तरह इसके भी दो कार्य हैं, मूत्राशय में स्थित मूत्र को बाहर निकालना, शुक्राशय में स्थित शुक्र को बाहर निकालना। मूत्र-प्रणाली के यद्यपि दो कार्य हैं तथापि एक समय में यह एक ही काम करती है। मूत्र-प्रणाली का रास्ता मूत्राशय (ब्लैडर) तक जाता है। अन्दर से यह वैसी ही श्लेष्म-कला—झिल्ली—से ढकी होती है जैसी मुख तथा गले के भीतर पायी जाती है। मूत्र प्रणाली को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ स्पञ्जी मूत्र प्रणाली—यह शिश्न के मुख से ६ इञ्च अन्दर तक फैली होती है। इस के चारों तरफ ऐसी मांस-पेशियाँ

ोती हैं जिन की सहायता से मूत्र, वीर्य या अन्य कोई श्लेष्मामय ार्य सुगमता से शरीर के बाहर आ जाता है।

२ कलामय मूत्र-प्रणाली —यह मूत्र-प्रणाली का मध्यवर्ती ाग है जो कि स्पञ्जी मूत्र-प्रणाली की समाप्ति से अष्ठीला-ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) तक फैला रहता है । इस हिस्से की लम्बाई लगभग एक इन्च होती है। इस भाग की मांस-पेशियाँ किसी ोग के कीटाणु को बाहर से भीतर आते हुए रोकती हैं और मूत्राशय में स्थित मूत्र के द्वार को वश में रखती हैं।

३ अष्ठीलागत मूत्र प्रणाली —यह मूत्र-प्रणाली का अन्तिम हिस्सा है जो अष्ठीला-ग्रन्थि के बीच में से हो कर मूत्राशय के मुख तथा शुक्र-वाहिनी नाडियों से मिल जाता है। यह प्रणाली चारों तरफ से अष्ठीला ग्रन्थि से घिरी रहती है। साधारणत यह १¼ इन्च लम्बी होती है। अष्ठीला-ग्रन्थि के रोगों का अष्ठीलागत मूत्र-प्रणाली पर असर पडता है। अष्ठीलागत मूत्र-प्रणाली में ही लघुशंका तथा जनन-सम्बन्धी इच्छा की ज्ञान-वाहिनियों के केन्द्र रहते हैं।

मुण्ड मूत्र-प्रणाली का मुख कोणाकार होता है, इसे मुण्ड (ग्लैन्स) कहते हैं। इस में अनेक वसामय ग्रन्थियाँ होती हैं जिन से एक प्रकार का स्राव होता रहता है। इस स्राव को हमेशा धोकर साफ कर देना चाहिये। जैसा पहले लिखा जा चुका है इन अंगों का प्रक्षालन न होने से युवकों को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। गन्दगी से उत्तेजना और शोथ हो

जाती है। मुण्ड की त्वचा बडी नाजुक होती है क्योंकि मन की अनेक ज्ञान-वाहिनी शिराएँ इस में समाप्त होती है। इस को खुला नहीं रखना चाहिये और नाही धोने के सिवाय किसी समय छूना चाहिये।

कलामय मूत्र-प्रणाली की समाप्ति पर मटर के बराबर पिण्ड होते है जिन्हें कूपर की ग्रन्थियाँ कहते हैं ये प्रणाली के दोनों ओर शिश्न के मूल क समीप स्थित होते हैं। जब उत्तजना होती है

कूपर की ग्रन्थियाँ

इन में से एक द्रव स्रवित होकर मूत्र-प्रणाली में चला जाता है जो विशुद्ध एवं क्षारीय श्लेष्मा का होता है। मूत्र की प्रति क्रि अम्ल होती है। यही कारण है कि मूत्र क मूत्र प्रणाली में बार-बार गुजरने क कारण उस की प्रति-क्रिया भी अम्ल रहती है। यदि मूत्र प्रणाली में प्रकृति द्वारा यह चिकना क्षारीय द्रव स्रवित न हो तो वीर्य-कण की जीवनी-शक्ति अम्ल द्वारा अवश्य नष्ट हो जाय। कूपर की ग्रन्थियों से स्रवित श्लेष्मा मूत्र प्रणाली की अम्ल-प्रति क्रिया को उदासीन कर देती है। इस प्रकार वीर्य-कण क लिये क्षारीय मार्ग बन जाता है।

उत्तेजना के समय, कूपर की ग्रन्थियों का स्राव, अनेक बार वीर्य के बिना भी निकल जाता है। नौ-जवानों को कुछ पता नहीं होता, वे समझने लगते हैं कि उन का वीर्य नष्ट हो रहा है झट व नीम-हकीमों का आसरा ढूँढने लगते हैं। शिकार हाथ लगा जान, और सम्पू

कारण भी, बेचारे को डराने लगते हैं। यदि कोई यमराज के इन दूतों के पल्ले सीधा नहीं पड़ता तो इश्तिहारों के जरिये तो जरूर ही इन के काबू आ जाता है। इश्तिहारों की भाषा इतनी चुस्त होती है कि जो आदमी समझता भी हो कि दवाइयों से कुछ नहीं बनता वह भी कभी-न-कभी किसी दवा को आजमाने की सोचने ही लगता है, हालाँकि इन दवाइयों से हानि-ही-हानि होती है। स्वयं वीर्य-नाश हो जाना ऐसे ही बैठे-बैठे किसी को नहीं होता। ऊपर की ग्रन्थियों के स्राव को अक्सर वीर्य समझकर नौ-जवान डरने लगता है। बिना मानसिक उद्वेजन के वीर्य-नाश तभी होता है जब किसी ने अपने को बहुत अधिक गिरा लिया हो।

अष्ठीला ग्रन्थि

इस अवयव का कुछ भाग ग्रन्थियों से और कुछ मास-पेशियों से मिल कर बना है। यह मूत्राशय की ग्रीवा के नीचे स्थित होता है और उस स्थान पर मूत्र-प्रणाली को चारों तरफ से घेरे हुए रहता है। अथवा यों कह सकते हैं कि मूत्र-प्रणाली अष्ठीला-ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) में से होकर मूत्राशय के साथ मिलती है। इसी कारण मूत्र-प्रणाली के तीसरे भाग को अष्ठीलागत मूत्र-प्रणाली कहते हैं। यह एक छल्ले की तरह मूत्राशय के मुख तथा मूत्र-प्रणाली के जोड़ पर लगा होता है। साधारणतः यह $1\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा और सवा तोले से कुछ अधिक भारी होता है।

इस का जनन-प्रक्रिया से विशेष सम्बन्ध है, इसीलिये अण्ड-कोष निकाल देने पर यह नष्ट हो जाता है। वृद्धावस्था में भी

यह स्वभावत क्षीण हो जाता है। जननेन्द्रिय के मिथ्यायोग अतियोग से बुढ़ापे में कइयों को अष्ठीला की वृद्धि की शिका॰ हो जाती है जिससे मूत्र-मार्ग में रुकावट होना स्वाभाविक है। कामोत्तेजना के समय इस ग्रन्थि की प्रणालिकाएँ विशेष ... के स्राव से भर जाती हैं। यह स्राव मूत्र प्रणाली में जाकर ... के साथ मिल कर उस का हिस्सा बन जाता है। कूपर की ... की तरह यह ग्रन्थि भी काम-भाव के समय ही स्रवित होती है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि इस का स्राव भी वीर्य नहीं है।

शुक्र दो झिल्लीदार थैलियों में रहता है जो मूत्राशय के आधार तथा गुदा के बीच में स्थित होती हैं। अण्डकोषों से स्रवित वीर्य इन में सञ्चित होता है। काम भाव उत्पन्न होने पर इन में से भी एक द्रव निकलता है जो उत्पादक-अंगों के अन्य स्रावों में मिल जाता है। इन स्रावों का उद्देश्य वीर्य-कण को तैरात-तैरात बाहर बहा ले जाना भी होता है। शुक्राशय कई कुण्डलियों तथा कक्षों के बने हुए हैं। इन का तंग सिरा अष्ठीला-ग्रन्थि की तरफ होता है। इन की औसतन लम्बाई २½ इञ्च होती है। इन में वीर्य रहता है। यह वीर्य या तो शरीर में खप जाता है, या दो शुक्रस्राविणी प्रणालियों द्वारा, जो इकट्ठी ही अष्ठीला-ग्रन्थि में से गुजर कर अष्ठीलागत-मूत्र-प्रणाली में खुलती हैं, बाहर निकल जाता है। शुक्राशय की स्थिति को जानकर अब यह समझना कठिन नहीं कि नाभि और जनन-शक्ति का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। लगभग शुक्राशय

शुक्राशय

की सीध में, रीढ़ की हड्डी में, जनन सम्बन्धी अंगों को नियमित रखनेवाला बड़ा केन्द्र है जिसे अँग्रेजी में 'लम्बर-प्लेक्सस' कहते हैं। इसीलिये सन्ध्या करते हुए 'जन पुनातु नाभ्याम्'—अर्थात् सब का उत्पादक परमात्मा हमारी नाभिमें स्थित जनन-शक्ति को पवित्र करे—इस वाक्य का उच्चारण किया जाता है।

शुक्राशय का स्राव, एलब्यूमिन और क्षारीय लवणों के जलीय घोल का बना होता है। प्रकृति ने शुक्राशय में इस स्राव को खास दृष्टि से तैयार किया है। यह पता लगा है कि वीर्य-कण स्त्री की जननेन्द्रिय में रज कण की प्रतीक्षा में कई दिन तक पड़ा रहता है। यदि वीर्य-कण शीघ्र ही रज कण से संयुक्त हो जाय तो बड़ी स्वस्थ और बलवान् सन्तान उत्पन्न होती है। यदि उसे प्रतीक्षा करनी पड़ती है तब उसकी पुष्टि के लिये शुक्राशय से निकले हुए एलब्यूमिन तथा प्रोटीन और जीवन की चेतना के लिये लवण आवश्यक होते हैं।

स्वप्न में शुक्राशय से वीर्य-स्खलन को स्वप्न-दोष कहते हैं। इस का मुख्य कारण बुरे स्वप्नों से शरीर तथा मन का उत्तेजित हो जाना है। ऐसे स्वप्नों का शुक्राशय पर प्रभाव पड़ता है और वीर्य स्खलित हो जाता है। इस से बचने के लिये मानसिक पवित्रता आवश्यक है। धार्मिक-पुस्तकों तथा महापुरुषों के जीवनों के मनन से मन उत्तम विचारों से भर जाता है। उत्तम पुस्तकों के अच्छे, चुने हुए स्थलों का बार-बार दोहराना मन को पवित्र रखने के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

कई बार स्वप्नदोष का कारण सिर्फ शारीरिक होता है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है शुक्राशय, गुदा और मूत्राशय के बीच में स्थित है। गुदा और मूत्राशय जब भरे हुए होते हैं तब उनका शुक्राशय पर अनुचित दबाव पड़ता है जिससे उत्तेजित होकर वीर्य स्खलित हो जाता है। इसलिये जिन्हें स्वप्न-दोष की शिकायत हो उन्हें रात को सोने से पहले आँतों और मूत्राशय को साफ कर लेना चाहिये।

यहाँ तक हम ने उत्पादक-अंगों का वर्णन इस क्रम से किया है जिससे ये एक दूसरे से क्रम-पूर्वक सम्बद्ध हैं, परन्तु क्योंकि अगले अवयवों को समझने के लिये अण्डकोश-सम्बन्धी ज्ञान की पहले आवश्यकता है अतः हम क्रम बदल कर उन्हीं से चलते हैं ताकि समझने में कठिनता न हो।

अण्डकोश

अण्डकोश त्वचा की थैली है जिस में छोटी छोटी तहें हुई-हुई हैं। इसमें दो अण्ड, एक दाईं तथा दूसरा बाईं ओर, रहते हैं। किशोरावस्था में कुछ घुँघरीले बाल इस त्वचा पर निकल आते हैं। इस त्वचा को धोकर खूब साफ रखना चाहिये नहीं तो खुजली होने लगती है। यह थैली अन्दर से एक पतली तह के द्वारा दो भागों में, दोनों अण्डों के अलग अलग रहने के लिये, विभक्त होती है। मनुष्य के स्वास्थ्य को अण्डकोशों की स्थिति ठीक बता सकती है। बच्चों, स्वस्थ और बलवान् लोगों का कोश सट कर सुकड़ा रहता है, सर्दी में भी ऐसा ही होता है, बूढ़ों, कमजोरों, क्षीण पुरुषों के तथा गर्मी के समय कोश लम्बे लटक

पिलपिले से हो जाते है। इन कोशों में अण्ड, वीर्य-वाहिनी रज्जु द्वारा, लटके रहते है। यह रज्जु दाई की अपेक्षा बाई ओर अधिक लम्बी होती है जिस से बायाँ अण्ड दाएँ की अपेक्षा अधिक नीचे को लटका होता है। कई अवस्थाओं में बच्चे के उत्पन्न होने के कुछ देर बाद अण्ड उतर कर अण्डकोश में आते है। व्हेल मछली तथा हाथी में अण्ड जीवन-भर उन की कोष्ठगुहा (एवडोमिनल कैविटी) में ही रहते है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में ऐसा नही होता। यदि कहीं पाया भी जाय तो वह अपवाद समझना चाहिये।

अण्ड

बच्चे के पैदा होने से पहले अण्ड, कोष्ठगुहा में रहते है और उत्पत्ति के बाद उतर कर कोश में आ जाते हैं। कई अवस्थाओं में अण्ड उतर कर कोश में नही आते जिस का फल यह होता है कि उन की वृद्धि और कार्य शिथिल हो जाते हैं। कभी-कभी सिर्फ एक अण्ड प्रकट होता है। ये चपटे, अण्डाकार तथा पौने औन्स से एक औन्स तक भारी होत हे। दायाँ बाएँ से बडा और भारी होता है। यह स्मरण रखना चहिये कि इन का आकार नहीं अपितु स्वास्थ्य ही इन के कार्य में सहायक होता है। पुरुष के अण्ड की तरह स्त्री में 'ओवरी' होती है जिनसे एक रज कण प्रतिमास मासिक-धर्म के बाद निकलता है। स्त्री की 'ओवरी' शरीर के भीतर स्थित होती है। प्रचलित भाषा में अण्डकोश शब्द का अण्ड के अर्थों में प्रयोग होता है।

प्रत्येक 'अण्ड' कई खण्डिकाओं (लोब्यूल्स) से मिल कर बनता है। ये खास प्रकार की गाँठें होती हैं जो बहुत ही बारीक प्रणालिकाओं के जाल से बनी होती हैं। वह जाल भी भीतर-बाहर से सूक्ष्म रक्त-वाहिनियों से आच्छादित रहता है। इन खण्डिकाओं में ही वीर्य-कण बनते हैं, सम्भवतः इसीलिये संस्कृत में इसे 'अण्ड' कहा गया है।

खण्डिका

खण्डिकाओं की बारीक प्रणालिकाएँ मिल कर एक बड़ी प्रणालिका में मिलती हैं और ये बड़ी प्रणालिकाएँ भी मिल कर एक बड़ी प्रणालिका में मिलती हैं जिसे 'उपाण्ड' (एपीडिडीमस) कहते हैं। ये अण्ड को कुछ ऊपर से और कुछ नीचे से आवृत करती हैं और लगातार दोहरे होते हुए बण्डलों की-सी बनी होती हैं। अण्ड की वहि निस्सारक प्रणाली का यह प्रारम्भिक भाग है और अण्ड में से निकलता हुआ वीर्य-कण पहले पहल इसी में इकट्ठा होता है।

उपाण्ड

काम से उत्तेजित होने पर अण्ड में शुक्र-कण बन कर उपाण्ड में आ जाता है। यहाँ से धक्का पाकर वह जिस वहि निस्सारक प्रणाली में पहुँचता है उसे शुक्रवाहिनी (वॅास डिफरन्स) कहते हैं। इसमें से हो कर शुक्र, शुक्राशय में, जिस का वर्णन पहले हो चुका है, चला जाता है। शुक्र-वाहिनी का व्यास पेन्सिल के सिक्के के बराबर और लम्बाई लगभग दो फीट होती है। यह मूत्राशय के नीचे से होती हुई पोछे की दीवार के सहारे ऊपर चढ़ कर शुक्राशय से मिल जाती है।

शुक्र-वाहिनी

शुक्र सारिणी प्रणाली

शुक्राशय से वीर्य दो शुक्र-सारिणी प्रणालियों द्वारा, जो $\frac{3}{4}$ इञ्च लम्बी होती हैं, मूत्र-प्रणाली में से निकलता है। यदि पूयमेह आदि रोग अष्ठीला-गत मूत्र-प्रणाली तक फैल जाय तो वह अवश्य ही शुक्र-सारिणी प्रणाली के द्वारा शुक्राशय, शुक्र-वाहिनी, उपाण्ड और अण्डकोश तक फैल कर सम्पूर्ण उत्पादक-अंगों को आक्रान्त कर लेता है।

शुक्र कण

जब काम-भाव से अण्डकोशों में उत्तेजना होती है तो उनमें से हजारों शुक्र-कण निकल-निकल कर शुक्र-वाहिनी से शुक्र-सारिणी तक सम्पूर्ण अंगों को भर देते हैं। शुक्र कण की एक पूँछ-सी होती है जो अपने गात्र से लम्बी होती है। इसे सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र द्वारा ही देख सकते हैं। शुक्र कणों को अँग्रेजी में 'स्पर्मेटोजोआ' कहते हैं। ये एक द्रव में तैरते रहते हैं जिसे 'वीर्य' कहते हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। एक बार के वीर्य-स्खलन में २ करोड से ५ करोड तक शुक्र-कण पाये गये हैं। इन में से प्रत्येक में रज कण से संयुक्त होकर नव-जीवन उत्पन्न करने की शक्ति होती है। शुक्र-कण स्त्री के शरीर में प्रविष्ट होकर रज कण की खोज में इधर-उधर घूमने लगता है और उस के मिलते ही उस से संयुक्त हो जाता है। यदि रज कण स्त्री के शरीर में उस समय तय्यार न हो तो वह कई दिन तक उस की प्रतीक्षा में वहीं ठहरता है अथवा उस की ढूँढ में स्त्री की 'ओवरी' तक पहुँच जाता है। यदि

रज कण से उस का मिलाप नहीं होता तो वह बाहर वह जाता है। प्रत्येक शुक्र-कण तथा रज कण माता-पिता के भिन्न भिन्न गुणों का प्रतिनिधि होता है। यही कारण है कि सब भाई एक-से न होकर भिन्न-भिन्न गुणों के होते हैं। किसी में एक गुणवाले वीर्य-कण का विकास हुआ होता है, किसी में दूसरे का। इसी कारण कभी-कभी दादे और पोते के गुणों में समानता पायी जाती है। पिता में शुक्र-कणों के जिन गुणों का विकास नहीं हुआ होता, पुत्र में उन का हो जाता है।

शुक्र-कण पर शराब आदि मादक द्रव्यों का असर झट पड़ता है। और किसी के लिये नहीं तो बच्चे की ही खातिर मादक-द्रव्यों से प्रत्येक गृहस्थी को बचना चाहिये। यद्यपि वीर्य कण अनगिनत होते हैं तथापि इन में से केवल एक ही रज कण के भीतर प्रविष्ट हो सकता है। फिर, शेष मर जाते हैं। गर्भ रह जाने पर स्त्री-प्रसंग से भ्रूण की वृद्धि में बाधा होती है। इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि एक वीर्य-कण के रज कण से संयुक्त हो जाने पर फिर कोई शुक्र-कण रज कण से संयुक्त नहीं हो सकता। संयोग हो चुकने पर लाखों शुक्र-कण भी भ्रूण की वृद्धि में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते, हाँ, हानि ज़रूर पहुँचा सकते हैं। अनेक युवक इस छोटे-से सिद्धान्त से अपरिचित होने के कारण जीवन में ख़राब होते हैं।

बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का कथन है कि पुरुष के शुक्र-कण २५ वर्ष तथा स्त्री के रज कण १६ वर्ष से पहले परिपक्व नहीं होते।

इस से पहले बाल विवाह अथवा अन्य कुचेष्टा द्वारा मनुष्य की ज्ञान-वाहिनी शिराओं पर दबाव पडने से शरीर क्षीण होता है। यदि ये शुक्र-कण बाहर न निकलें तो जहाँ ये नये जीवन को उत्पन्न कर सकते थे वहाँ मनुष्य में ही शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक नव-जीवन का सञ्चार कर सकते है।

बहुत थोडे लोग शुक्र-कण तथा वीर्य में भेद समझते हैं।

शुक्र या वीर्य

शुक्र-कण (स्पर्म) अण्डकोशों से पैदा होते हैं, वीर्य कई स्रावों का, जिस में शुक्र-कण, शुक्राशय का स्राव, अष्ठीला तथा कूपर की ग्रन्थियों का स्राव भी सम्मिलित है, नाम है। वीर्य का रंग दुधियाला तथा प्रति क्रिया कुछ-कुछ क्षारीय होती है। वीर्य की रासायनिक परीक्षा से ज्ञात हुआ है कि इस में खट तथा फास्फोरस की बहुत अधिक मात्रा होती है। जीवन के लिये ये दोनों ही अत्यन्त आवश्यक है, इसीलिये वीर्य-नाश का शरीर पर घातक असर होता है।

जिस प्रकार पुरुष के अण्डकोश शुक्र-कण उत्पन्न करते हैं

रज कण

इसी प्रकार स्त्री के बीजकोश (ओवरी) रज कण का निर्माण करते हैं। पुरुष की तरह स्त्री के भी दो बीजकोश होते है जो आकृति तथा परिमाण में अण्डकोशों जैसे ही होते हैं। गर्भाशय की एक-एक तरफ एक एक बीजकोश मासपेशियों से लटका रहता है। पुरुष के अण्डकोशों की तरह ये शरीर के बाहर तथा नीचे नहीं आते। बीजकोशों के साथ एक एक प्रणालिका रहती है जिसे 'फैलेपियन ट्यूब' कहते हैं।

पञ्चम अध्याय

किशोरावस्था, यौवन तथा पुरुषत्व

चौदह वर्ष की आयु से पहले बच्चे की शारीरिक उन्नति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता। इस के अनन्तर रहस्य-मय समय प्रारम्भ होता है। १५ वर्ष के बालक की आँखों में से उस के हृदय-रूपी पन्नों पर लिखी हुई भाषा मानो रह-रह कर बोल-सी उठती है। बचपन की सरलता उन में नहीं होती। वे भावपूर्ण होती हैं, देखनेवाले से बात करती सी मालूम देती हैं, नौ-जवानों के दिल के पर्दे को खोल-खोलकर सामने रख देती हैं! कौन युवक अपने दिल में उमड़ते भावों को छिपाना नहीं चाहता परन्तु किस की आँखें उस की एक-एक हरकत का फोटो खींच कर सब के सामने नहीं रख देतीं?

इस आयु में मानसिक परिवर्तनों के अतिरिक्त शारीरिक परिवर्तन भी पर्याप्त होते हैं। ये सब परिवर्तन १५ वर्ष की आयु से लेकर २५ वर्ष की आयु से पूर्व२ समयानुसार हो चुकते हैं। जीवन का यह समय रहस्यों से भरा रहता है। इस २५—१५= १० वर्ष के समय में प्रत्येक युवक का मस्तिष्क अनेक गुप्त तथा छिपी बातों के ढूँढने में अकेला ही व्यस्त रहता है। इस समय को दो भागों में बाँटा जाता है किशोरावस्था तथा युवावस्था।

किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। लड़कों के उपरले होंठ, ठोड़ी तथा जननेन्द्रिय-प्रदेश बालों से आच्छादित हो जाते हैं। स्वर-यन्त्र की गहराई बढ़ने से उस की आवाज जोरदार हो जाती है। उत्पादक-अग वृद्धि पाकर जीवन के सारभूत वीर्य का सम्पादन प्रारम्भ कर देते है। लड़कियों को इस अवस्था में मासिक-धर्म प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु यह युवावस्था का प्रारम्भ ही है, पूर्ण युवक तथा युवती बनने के लिये अभी काफी समय की जरूरत होती है। युवावस्था का प्रारम्भ हो जाना मात्र किसी युवा पुरुष को शादी के योग्य नहीं बना देता। 'दी सायन्स ऑफ ए न्यू लाइफ' नामक पुस्तक में डाक्टर कोवन लिखते हैं —"यह समझना बड़ी भारी भूल है कि किशोरावस्था का प्रारम्भ विवाह के लिये अनुकूल समय है। लोगों का यह समझना कि इस समय स्त्री विवाह करने तथा सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो गई है, भ्रम मूलक है। शरीर-क्रिया-विज्ञान के अनुसार विवाह सदा समुन्नत-शरीर पुरुष तथा स्त्री में ही होना चाहिये। किशोरावस्था के प्रारम्भ में शरीर की अस्थियाँ पूर्णरूप से उन्नत नहीं होतीं, जिस का अर्थ यह है कि उत्पादक-तत्व अभी पूर्णरूप से परिपुष्ट नहीं हुआ होता।"

युवावस्था का आगमन किशोरावस्था के बाद होता है। सीधे शब्दों में यूँ कह सकते हैं कि १५ से २५ वर्ष तक की आयु के प्रारम्भ को किशोरावस्था तथा समाप्ति को युवावस्था कहते हैं। १५ वर्ष के बाद दो या तीन साल तक किशोरावस्था

होती है, उस के बाद लगभग ८ साल तक युवावस्था में शारीरिक तथा मानसिक धन का उपार्जन करना प्रत्येक युवक का कर्तव्य है। अपनी बही में पूँजी बिना जमा किये व्यापार प्रारम्भ कर देने से जीवन का दिवाला निकल जाता है।

परन्तु किशोरावस्था का प्रारम्भ हमेशा १५ वर्ष से और नव-यौवन का अन्त २५ वर्ष में होना ही निश्चित नियम नहीं है। मानवीय जीवन बड़ा लचकीला है। ये अवस्थाएँ जहाँ जल्दी आ सकती हैं वहाँ इन में देर भी लग सकती है। इन पर भोजन, वस्त्र तथा मनुष्य के रहन-सहन का बड़ा असर पड़ता है। जल-वायु का प्रभाव भी कम नहीं पड़ता। गाँव में सादा, तपस्यामय जीवन व्यतीत करते हुए बालक में किशोरावस्था देर से आती है, भोग विलास का अनियन्त्रित जीवन बिताने वाला लड़का छोटी ही आयु में दाढ़ी मूँछों वाला आदमी लगने लगता है। किशोरावस्था का समय से पूर्व आ जाना खतरनाक है। आशा से ज्यादह होनहार बालक सन्देह की वस्तु है। काम-भाव का जल्दी जाग जाना जीवन को नष्ट कर देना है। ऋतु में पका फल ही फल है, पाल में पकाने से उस का माधुर्य भाग जाता है। माता पिता तथा गुरुजन इस पर जितना ध्यान दें उतना ही थोड़ा है।

हाँ, तो फिर मनुष्य के शरीर और मन में इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण क्या है? किन रहस्य-मय कारणों से मनुष्य पहले 'किशोर', फिर 'युवा' और अन्त में 'पुरुष' बन जाता है?

स प्रश्न का उत्तर भली-भाँति समझने के लिये ग्रन्थियों म) का कुछ परिज्ञान आवश्यक है। शरीर-क्रिया-विज्ञान की खोजों से पता चला है कि शरीर की रचना में क स्राव बडा आवश्यक भाग लेते हैं। मुख में लाला- (सैलीवरी ग्लैड्स) होती है जिन से लार निकलती है। मुख आर्द्र रहता है। यदि ये स्रवित न हों तो जीना हो जाय। आमाशय की अपनी ग्रन्थियाँ होती हैं जिन ाशय-रस (गैस्ट्रिक जूस) निकलता है। यकृत् (लिवर), ाय (पैन्क्रियास) और अण्ड (टैस्टिक्ल्स) भी स्रावक- हैं। इन के स्रावों में से कुछ पाचक, कुछ चिकनाई देन छ बाहर निकल जाने वाले, कुछ उत्पादक तथा कुछ शरीर ना में भाग लेने वाले हैं।

हले शरीर-क्रिया-विज्ञान वेत्ता केवल उन ग्रन्थियों से थे जो अपने स्राव को प्रणालियों द्वारा शरीर की पृष्ठ काल देते है— वह पृष्ठ चाहे देखने को श्लेष्मकला म मेम्ब्रेन) की तरह अन्दर हो, चाहे त्वचा की तरह । उन्हें यह भी ज्ञान था कि इन स्रावों को शरीर के भीतर ाहर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये नालियाँ बनी हुई हैं। यकृत् के स्राव को अपने स्थान हुँचाने के लिये अन्दर नालियाँ बनी हुई हैं, पसीन, मों के लिये बाहर। मूत्र, स्वेद, आँसू आदि स्राव बाहर ल फेंकने के लिये ही है और बहि स्रावक प्रणालियों द्वारा

बाहर फेंके जाते हैं। यदि इन्हें शरीर के भीतर रोका ज
हानि होती है। लाला, पित्त आदि शरीर के अन्दर बन
हैं, ये फेंकने के लिये नहीं हैं और अन्त स्रावक प्रणा
द्वारा जहाँ इन की जरूरत होती है वहाँ पहुँचा दिये जाते हैं

ज्यों-ज्यों शरीर-क्रिया विज्ञान में उन्नति हुई त्यों-त्यों
में अन्य भी कई नवीन रचनाओं का पता चला। पहले
'प्रणाली-युक्त-ग्रन्थियों' का ही पता था, अब शरीर में कुछ
भी ग्रन्थियाँ मिलीं जो प्रणाली-युक्त तो न थीं परन्तु उ
बनावट आदि सब-कुछ ग्रन्थियों के ही सदृश थी। उदाह
ग्रीवा में 'थाईरोयड' तथा कोष्ठ में 'एड्रीनल' ग्रन्थियाँ थीं, जि
कार्य का अभी तक पता नहीं चला था। इन में प्रणा
(डक्ट्स) नहीं होतीं। खोज के बाद पता चला कि इन की
अन्य ग्रन्थियों जैसी ही होती है, यद्यपि ये 'प्रणालिका-रहित'
हैं। डाक्टर डोनिस बरमन अपनी पुस्तक 'दी ग्लैन्ड्स रेगुले
पर्सनैलिटी' में लिखते हैं—"थाईरोयड और एड्रिनल
ग्रन्थियों की श्रेणी में अब तक इसलिये नहीं गिना गया क्यों
इन में अपने स्राव के परित्याग के लिये कोई द्रव्य-मार्ग नहीं है
यही कारण है कि अब इन की पृथक् श्रेणी बनाई गई है और
ग्रन्थियों को 'प्रणालिका-रहित' (डक्टलेस) नाम दिया गया है।

प्रणालिका-रहित ग्रन्थियों का पता लगना एक नूतन बा
थी। खोज का स्वरूप यह था कि जहाँ हमारे शरीर
'प्रणाली-सहित' ग्रन्थियाँ हैं वहाँ 'प्रणाली-रहित' ग्रन्थियाँ भी हैं

...ली-सहित ग्रन्थियों के स्राव प्रणालियों द्वारा किसी पृष्ठ पर ...ते हैं, अत उन स्रावों को बहि स्राव (एक्सटरनल सिक्रीशन) ...न हैं, प्रणाली-रहित ग्रन्थियों के स्राव प्रणालियों के बिना ...दर-ही अन्दर रूपते रहते हैं, अत उन्हें अन्त स्राव (इन्टरनल ...क्रीशन) कहते हैं। शरीर-क्रिया-विज्ञान वेत्ताओं का कथन है ...कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी है जो केवल अन्त स्राव की रचना करती हैं, ...ो, थाईरोयड और एड्रीनल, कुछ ऐसी है जो केवल बहि स्राव ... निर्माण करती हैं, जैसे, लाला और आमाशय-ग्रन्थि; और ...छ ऐसी भी हैं जो अन्त तथा बहि दोनों स्रावों को बनाती ...जैसे, यकृत्, अग्न्याशय और अण्डकोश।

... किशोरावस्था में शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होने ...ा कारण अण्डकोशों का ही अन्त तथा बहि स्राव है। तभी ...नन व्यक्तियों के अण्डकोश निकाल दिये जाते हैं उन में पुरुषत्व ...हीं आता। एक ही आयु तथा एक ही वँश के दो बछड़े लेकर ...न म से एक क अण्डकोश काट दिये जायँ और दूसरे के ...ाकृतिक तौर पर बढ़ने दिये जायँ तो साल-भर में दोनों में बड़ा ...ारी भेद स्पष्ट दीख पड़ेगा। जिस का अण्डच्छेद नहीं किया ...या उस प्राणी का शरीर पूर्ण-रूप से विकसित, शक्तिशाली ...या असीम उत्साह से भरा हुआ होगा, परन्तु उस के साथी ...ी गर्दन और सींग छोटे छोटे, माथे पर जरा-से बाल तथा भोली ...ाक पर कमजोरी के निशान दिखाई देंगे। यही अवस्था घोड़े ...न भी होगी। एक घोड़ा जिस का अण्डच्छेद नहीं हुआ,

प्राकृतिक तौर पर खूब बनता है। उसकी मोटी-मोटी लचकीली गर्दन, उस पर लहराने वाले बाल, परिपुष्ट शरीर, लम्बा कद और मचलती चाल को देखकर राजाओं के भी दिल ललचाने लगते हैं। उस की फुर्तीली चाल, बाँका नृत्य और रोबदार नजर किसे नहीं लुभा लेतीं। दूसरी तरफ धोबी का टट्टू भी तो है जो शहरों की गलियों में दुलत्तियाँ झाड़ता फिरता है। दोनों ही बिल्कुल भिन्न-भिन्न मार्गों पर चलते हुए उन्नत या अवनत हुए हैं। एक घोड़े के बलवान् होने का मुख्य कारण उत्पादक-ग्रन्थियों की उपस्थिति तथा दूसरे के कमजोर होने का कारण इन ग्रन्थियों का न होना है।

मुसलमान बादशाह स्त्रियों के रहने के मकानों में नपुंसकों को रखा करते थे और जब कभी उन की आवश्यकता बढ़ जाती थी तो छोटे बच्चों के अण्डकोश काट कर उन्हें इस काम के योग्य बना दिया जाता था। डाक्टर फुट लिखते हैं कि "इटली में अठारहवीं शताब्दी में लगभग चार हजार लड़कों के अण्डकोश प्रतिवर्ष काटे जाते थे ताकि वे गान-बजान का काम सफलता-पूर्वक कर के जनता को खुश कर सकें। इन लड़कों का पुंसत्व भाग जाता था, उन की पुरुषों की सी तीखी आवाज नहीं रहती थी और औरतों जैसा ही गाते थे।'

अण्डकोशों के अन्तःस्राव से ही पुरुष में पुरुषत्व तथा बीजकोशों के स्राव से ही स्त्री में स्त्रीत्व आता है। यदि पुरुष के अण्डकोश निकाल दिये जायें तो उस में स्त्री के गुण आ जाते हैं, स्त्री के बीजकोश निकाल दिये जायें तो उस में पुरुष

के गुण आ जाते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों का सम-विकास इन ग्रन्थियों के कारण ही होता है। ये ग्रन्थियाँ जितनी पुष्ट या क्षीण होंगी उतना ही व्यक्ति भी पुष्ट या क्षीण होगा। कई वैद्यों की सम्मति में तो वृद्धावस्था का कारण ही इन ग्रन्थियों का क्षीण हो जाना है। अमेरिका में ऐसे परीक्षण किये जा रहे हैं जिन में इन ग्रन्थियों को एक व्यक्ति के शरीर में से निकाल कर दूसरे के शरीर में जोड देने से उस की सारी प्रक्रिया ही बदल जाती है। पुरुषों की ग्रन्थियाँ निकाल डालने से उन का पुरुषत्व रुक जाता हो इतना ही नहीं, परन्तु जिन का पुरुषत्व खो जाता है उन के शरीर में इन ग्रन्थियों का रस डालने से खोया हुआ पुरुषत्व लौट आता है। यदि यह बात सत्य है तो प्राचीन आर्यों का यह विचार कि ब्रह्मचर्य से मृत्यु को जीता जा सकता है, ठीक है। ब्रह्मचर्य का अभिप्राय, शरीर-क्रिया-विज्ञान की दृष्टि से, इन जनन-ग्रन्थियों को स्वस्थ रखना ही तो है। ब्रह्मचारी को जनन-ग्रन्थियों के स्राव का संयम करना चाहिये क्योंकि इस से आयु तथा स्वास्थ्य दोनों का लाभ होता है और कुचेष्टाओं से उत्पादक-ग्रन्थियाँ क्षीण हो जाती हैं।

जैसा पहले बताया जा चुका है, अण्डकोशों का स्राव भीतर तथा बाहर दोनों ओर होता है। अन्त स्राव बचपन से ही शुरु हो जाता है। यह अन्त स्राव शरीर में खप कर उसे हृष्ट-पुष्ट बनाता है। बहि स्राव 'शुक्र-कण' के परिपक्व हो जाने पर बडी उम्र में होता है और यही जनन में सहायक है।

अन्तःस्राव 'लिम्फ' तथा 'रुधिर' द्वारा शरीर में खपता रहता है। इन्हीं के द्वारा यह मस्तिष्क तथा मेरु-दण्ड में जाकर सम्पूर्ण शरीर को एक अपूर्व शक्ति प्रदान करता है। इसी अन्तःस्राव के कारण घोड़ा, बैल और पहलवान एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर शक्ति दिखलाते हैं। यदि अन्तःस्राव निरन्तर होता रहे और शरीर में खपता रहे तो शरीर के अंगों का सम-विकास होता है, सदा चेहरा भी सुन्दर दिखाई देता है। जिस में ये ग्रन्थियाँ नहीं होतीं अथवा क्षीण होती हैं उस की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। उत्पादक-अंगों का दुरुपयोग करने से अन्तःस्राव में बाधा पड़ती है। परिणाम-स्वरूप शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति रुक जाती है। काम भाव से उत्पादक-ग्रन्थियाँ बहिःस्राव उत्पन्न करने लगती हैं, और यह बहिःस्राव अन्तःस्राव की उत्पत्ति को रोक देता है। अन्तःस्राव ही शरीर का भोजन है, स्वयं शरीर में खपता रहता है, वह रुका तो शरीर की उन्नति भी रुकी। अन्तःस्राव की ही चमक सन्तों, महात्माओं के चेहरों पर दीखा करती है। यह सारे शरीर में नव जीवन का सञ्चार किये रखता है, पुरुषत्व को बनाये रखता है। आयुर्वेदिक परिभाषा में इस अन्तःस्राव को ही 'ओज' कहते हैं, बहिःस्राव के लिये 'बीज', 'शुक्र' तथा 'रेतस्' शब्द हैं। यदि स्राव नहीं होगा तो यही तत्त्व अन्तःस्राव के रूप में शरीर को तजस्वी तथा ओजयुक्त बना देगा, बहिःस्राव होने लगेगा तो मनुष्य तेजहीन हो जायगा।

जैसा अभी लिखा गया, अन्त स्राव तो जन्म के साथ शुरु हो जाता है परन्तु बहि स्राव तभी होता है जब शुक्र-कण (स्पर्मैटोजोआ) परिपक्व हो जायँ। हाँ, युवावस्था आने पर, २५ वर्ष की अवस्था के बाद, बहि स्राव भी धीरे-धीरे निरन्तर होने लगता है और वीर्य अत्यन्त थोड़ी-थोड़ी मात्रा में वीर्यकोश में सञ्चित होने लगता है। बहि स्राव वीर्यकोश में जाकर या तो वहाँ से शरीर में रचता रहता है, अन्यथा वीर्यकोश के भर जाने पर निकलने की कोशिश करता है। इस का निकास तीन प्रकार से होता है —

१ या तो यह अपनी इच्छा से निकाला जाता है। वीर्यकोश के भर जाने पर पुरुष कुचेष्टाओं द्वारा वीर्यनाश कर डालता है। इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि इच्छापूर्वक वीर्य-स्खलन केवल गृहस्थी को उचित समय मे करने से पाप नही होता, अन्यथा दूसरे किसी भी उपाय से वीर्य जैसे बहुमूल्य पदार्थ के नाश से आत्म-हत्या से कम पाप नही लगता।

२ या यह स्वयँ निकल जाता है। वीर्यकोश की स्थिति ऐसी है कि इस के एक तरफ गुदा और दूसरी तरफ मूत्राशय है। दोनों के भर जाने से शुक्राशय पर इतना जोर पड़ सकता है कि वीर्य स्खलित हो जाय। जिसे ऐसी शिकायत हो उसे जहाँ पेट साफ रखना चाहिये, दस्त के समय जोर नहीं लगाना चाहिये, वहाँ योग्य चिकित्सक की सलाह भी अवश्य लेनी चाहिये क्योंकि वीर्य का इस प्रकार स्वयँ स्खलित हो जाना रोग का सूचक है।

२ या जब शुक्राशय भरा हो तब सोते समय मन में कोई गन्दा स्वप्न आने से वीर्यपात हो जाता है। इसे स्वप्नदोष कहते हैं। कभी-कभी शुक्राशय भरा न भी हो तो भी उपन्यासादि से दिन के समय सञ्चित किये हुए गन्दे-गन्दे विचार रात्रि को सोते-सोते स्वप्न में इतनी कामुकता उत्पन्न कर देते हैं कि स्वप्नदोष हो जाता है। अतः स्वप्नदोष के दो कारण हैं। शुक्राशय का भरा होना या बुरे स्वप्न। बुरे स्वप्नों से वीर्य-नाश हो जाने को तो एक रोग समझ कर उस की चिकित्सा करनी चाहिये। प्रश्न यह रह जाता है कि यदि शुक्राशय के भर जाने से वीर्यनाश, सोते या जागते, हो जाय अथवा किया जाय, तो वह कहाँ तक अनुचित है?

जिस किसी ने भी इस विषय पर विचार किया है, चाहे वह बीसवीं सदी का वैज्ञानिक हो चाहे पहली सदी का कोरा पण्डित, उसी का कथन होगा कि किसी तरह से भी वीर्यनाश अनुचित है, अत्यन्त अनुचित। उत्पादक-ग्रन्थियों का अन्तः स्राव (ओज) तो स्वभाविक तौर पर शरीर में स्वयं ही खपता रहता है, बहि-स्राव (वीर्य, शुक्र) भी अभ्यास से खप सकता है और खपता है। आखिर, बहिः स्राव तो अन्तः स्राव का ही काम-भाव से बाहर निकल आना है, फिर यदि अन्तः स्राव शरीर में खपता है तो बहिः स्राव क्यों नहीं खप सकता? बहिः स्राव के शरीर में खप जाने के परिणाम चमत्कारी होते हैं। इस में सन्देह नहीं कि बहिः स्राव स्वयं नहीं खपेगा, शुक्राशय के भरने पर यह निकलने की कोशिश करेगा, और इसीलिये ऐसे व्यक्तियों के लिये

ऋषियों ने विवाह की आयु २५ वर्ष रखी है। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते हुए २५ वर्ष में ही वीर्यकोश भरना चाहिये। परन्तु २५ वर्ष निकृष्ट-ब्रह्मचर्य कहा गया है। यह आदर्श नहीं है। प्राचीन काल के योगी लोग ऐसे-ऐसे अभ्यास जानते थे जिन के द्वारा वहि स्राव शरीर के रक्त में पुन सञ्चरित होकर जीवन में नूतन शक्ति को भर देता था। ऐसे महात्माओं को 'ऊर्ध्व-रेता' या 'आदित्य-ब्रह्मचारी' कहा जाता था। ये ४८ वर्ष तक अखण्डित ब्रह्मचर्य्य का पालन करते थे। प्राचीन भारत में अप्लुत ब्रह्मचर्य्य का पालन करते हुए किसी आध्यात्मिक गुरु की संस्था में शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था। अतीत काल के उस गुहामय गर्भ में मानव-समाज के गुरु अपने शिष्यों का आचार बनाना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समझते थे। उन का लक्ष्य ऊँचा था। अखण्ड-शक्ति के भण्डार परमात्मा की खोज में वे जीवन बिता देते थे। उसी के ध्यान में— 'मरण बिन्दु पातेन जीवन बिन्दु धारणात्'— के तत्व का अवगाहन कर व वीर्य जैसी जीविनी-शक्ति का संग्रह करते थे। युवकों को स्मरण रखना चाहिये कि, सोते या जागते हुए, स्वयं हुआ-हुआ या किया हुआ, किसी प्रकार का भी, वीर्यनाश जीवन के लिये घातक है।

यदि नव-युवक उत्पादक-अंगों के अन्त स्राव को शरीर मे खपा लेने के महत्व को समझ तो शैतान के प्रलोभनों म फंसने से पहले वे कई बार सोचें और गिरने से बचें। किशोरावस्था

अंग्रेजी में 'स्पर्मेटोज़ोआ' या शुक्र-कण कहते हैं। मनुष्य का शरीर जब परिपक्व हो जाता है तभी यह बहिःस्राव होता है। यह जीवन में निरन्तर नहीं होता रहता। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य के शरीर में यह क्रिया २५ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होती है और ५० वर्ष तक होती रहती है। जैसा अभी कहा गया, शुक्र कण एक जीवित-कोष्ठक है, अतः अन्य स्राव की भाँति बहिःस्राव शरीर में स्वयं जज़्ब नहीं हो सकता। हाँ, योग की शक्तियों तथा विधियों द्वारा इसे भी शरीर में खपाया जा सकता है। प्राचीन भारत के आश्रमों में, जिन का नाम गुरुकुल होता था, यह विद्या सिखाई जाती थी और जो संयमी पुरुष इस विद्या में दीक्षित होते थे उन्हें ऊर्ध्व-रेतस् या आदित्य-ब्रह्मचारी कहा जाता था, उन का वीर्य आजीवन अवस्थित रहता था। परन्तु यह आदित्य-ब्रह्मचारी का जीवन सर्व-साधारण के लिये न था। जो लोग 'ऊर्ध्वरेतस्' की अवस्था में दीक्षित नहीं हो सकते उन के लिये बहिःस्राव के स्वाभाविक रूप से प्रकट होने का समय ही विवाह का समय रक्खा गया है। भारतीय शारीर-शास्त्रियों के मत में इस ढंग के मल-धातु में पचीस वर्ष की अवस्था में, शुक्र-कण के रूप में, बहिः-स्राव उत्पन्न होने लगता है अतः उन्हों ने विवाह की आयु भी पचीस वर्ष ही बतलायी है। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को बालपन, कुमारावस्था तथा युवावस्था कभी अशान्त नहीं होने देतीं, उन के सम्मुख इन्द्रिय निग्रह का प्रश्न ही नहीं

उपस्थित होने पाता। पच्चीस वर्ष की अवस्था में अण्डकोशों के जीवित कोष्ठक (शुक्र-कण) टूट टूट कर शुक्र-वाहिनी प्रणालिका में से होते हुए शुक्राशय में प्रविष्ट होते हैं और अपनी स्वाभाविक गति से पुरुष में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। यदि इस अवस्था में पुरुष का स्त्री-सम्बन्ध हो, और संयम-पूर्वक रहा जाय, तो बहि-स्राव का निकलना हानि-जनक नहीं होगा और ना ही इस से शारीरिक अथवा मानसिक उन्नति में कोई बाधा होगी। इस अवस्था में विवाह हो जाने से अन्त स्राव के कार्य में कोई रुकावट नहीं होगी और स्त्री-पुरुष दोनों को हानि के स्थान में प्राय लाभ ही पहुँचेगा।

परन्तु शायद अस्वाभाविक-जीवन के इस युग में हमें स्वाभाविकता पर विचार करने का भी अधिकार नहीं। प्रकृति माता के सौम्य मुख पर हम ने अपने घृणित कार्यों से कलंक का टीका लगा रखा है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारा अप्राकृतिक-जीवन आजकल के बच्चों को उम्र से पहले ही पका देता है और इसीलिये छोटी ही आयु में उन में कृत्रिम उपायों द्वारा बहि स्राव उत्पन्न होने लगता है। स्वाभाविक जीवन की सौम्यता कहीं देखने को भी नहीं मिलती, वह आज केवल काल्पनिक शारीर-शास्त्र का अथवा बहस का ही विषय रह गई है। वर्तमान जीवन को समझने के लिये 'अस्वाभाविक जीवन' का, अथवा 'अप्राकृतिक जीवन' का, अध्ययन करने की आवश्यकता है।

कई तरह की है। मुख्यतः, इसके तीन भेद हैं — आत्म-व्यभिचार (हस्तमैथुनादि), पत्नी-व्यभिचार तथा वेश्या-व्यभिचार।

(२) यह तो हुई जान-बूझकर संयम तोड़ना। बिना जान-बूझे भी संयम टूट जाता है और यह प्रायः जागते नहीं परन्तु सोते समय होता है। इसीलिये इसे 'स्वप्नदोष' कहते हैं।

अस्वाभाविक जीवन के दो भाग किये गये हैं — जान-बूझकर संयम तोड़ना तथा बिना जाने-बूझे टूट जाना। जान-बूझकर संयम तोड़ने को हमने तीन भागों में विभक्त किया है — आत्म-व्यभिचार, पत्नी-व्यभिचार तथा वेश्या-व्यभिचार। बिना जाने हुए संयम टूट जाने को स्वप्नदोष कहते हैं। अगले चार अध्यायों में हम इन्हीं चारों का क्रमशः विवेचन करेंगे तथा इनके कारणों, परिणामों और उपचारों पर विचार करेंगे।

सप्तम अध्याय

'इन्द्रिय-निग्रह'

[क आत्म व्यभिचार]

जिन अस्वाभाविक परिस्थितियों में लड़के-लड़की आजकल रखे जाते हैं उन का अवश्यम्भावी परिणाम उन के शरीर तथा मन पर हुए बिना नहीं रहता। छोटी ही उम्र में उन का जीवन अशान्त होने लगता है। वे हृदय में उठते मानसिक-विकारों का अभिप्राय समझ नहीं पाते। जो लहरें उठती हैं उन्हें रोकने के लिये उन की सङ्कल्प-शक्ति अभी अत्यन्त निर्बल होती है। उन के जीवन में ऐसे क्षण बहुधा उपस्थित हो जाते हैं, जब काम-वासना से वे अन्धे हो जाते हैं, बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। ऐसे अवसरों पर मनुष्य की अन्तरात्मा में छिपा हुआ शैतान उस के दैवीय-भाव पर मोह का पर्दा डाल देता है और वह घृणित-से घृणित पाप करने के लिये भी तय्यार हो जाता है। ऐसे स्मृति-भ्रंश और बुद्धिनाश के समय ही मनुष्य हस्त मैथुन आदि पैशाचिक कृत्यों में प्रवृत्त होकर अपनी आत्मा का हनन कर बैठता है। एक क्षण के आनन्द के लिये वह आजन्म अपने सिर पर पाप की गठरी लाद लेता है। मनुष्य की जननेन्द्रिय कितनी पवित्र है! यह सृष्टिकर्ता की उत्पादन-शक्ति

की प्रतिनिधि है। गन्दे वातावरण में रह कर मनुष्य इसी उच्च शक्ति का अपमान कर बैठता है। कृत्रिम साधनों से—हस्त-स्पर्श से, उल्टा लेट कर अथवा किसी दूसरी प्रकार दबाव डाल कर—जननेन्द्रिय को उत्तेजित कर देता है और शक्ति के असीम भण्डार वीर्य को खो बैठता है। यह महापातक है, अपनी आत्मा का छिप कर घात करना है, आत्म-व्यभिचार है।

यह पाप ऐसा है जो मनुष्य छिप कर करता है और अकेला करता है, इसीलिये अन्य घृणित पापों की अपेक्षा यह सब में ज्यादह फैला हुआ है। जो इस पाप के वश के सन्मुख एक बार भी झुक गया वही इस का बे-दामों का गुलाम बन गया। एक बार इस शत्रु के सन्मुख हारना सदा की हार को निमन्त्रण देना है। प्रतिदिन संकल्प-शक्ति कमजोर होती जाती है, प्रतिरोध करने की हिम्मत ही नहीं रहती। अन्त में यह आदत मनुष्य को इस प्रकार जकड लेती है कि इस के शिकंजे से अपने को छुडाना उस के लिये असम्भव हो जाता है। नवयुवकों में यह पाप महामारी की तरह फैलता है। इस विषय के जानकारों की इस विषय में बडी-बडी भयोत्पादक सम्मतियाँ हैं। कईयों का कथन है कि इस का जहर विश्वव्यापी है। अनेक चिकित्सकों की सम्मति है कि अपने जीवन-काल में प्रत्येक व्यक्ति इस रक्त शोषिणी लत का किसी-न किसी समय शिकार रह चुका है। पुरुषों तथा स्त्रियों, लडके तथा लडकियां युवा तथा वृद्धों—सब की डायरियों में ऐसी घटनाओं की कमी नहीं जिन्हें याद कर-कर के जीवन-भर पश्चात

रहते हैं। यह आदत मनुष्य को शक्ति-हीन तथा जन्म का दु खिया बना कर खाट पर पटक देती है। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जिन के विषय में सन्देह भी नहीं हो सकता कि वे इस पाप-पंक में डूब रहे होंगे—परन्तु जिन के वास्तविक जीवन की एक झाँकी ही देखनेवाले को कँपा देती है! कईयों को हस्त-मैथुन की बीमारी हो जाती है, ठीक उसी तरह की बीमारी, जैसी और बीमारियाँ होती हैं। लाख कोशिश करते हैं, परन्तु इस से छूट नहीं सकते। मौके आते हैं जब इस आवेग के सन्मुख घास की तरह वे झुक जाते हैं और आवग के निकल जाने पर शर्म के मारे उन में मुख उठा कर ऊपर देखने तक की हिम्मत नहीं रहती!

डाक्टर केलोग महोदय एक डाक्टर की राय लिखते हैं —"मेरी सम्मति में मानव-समाज को प्लेग, युद्ध, चेचक तथा इसी तरह की अन्य बीमारियों से इतना नुकसान नहीं पहुँचा जितना हस्त-मैथुन तथा इसी प्रकार के अन्य घृणित महा-पातकों से! सभ्य-समाज के जीवन को नष्ट करने वाला यह एक घुन है जो अपना घातक कार्य लगातार करता रहता है और धीरे-धीरे जाति के स्वास्थ्य को समूल नष्ट कर देता है।" एक दूसरे लेखक की सम्मति है —"हमें इस बात का जरा भी ख्याल नहीं कि हमारे लड़के-लड़कियों में आत्मा को गिराने वाला यह महा-भयकर रोग कहाँ तक घर कर चुका है। हम भूल से समझते हैं कि वे इस रोग से बरी हैं परन्तु आँखें खोल कर देखने से पता चलता है कि यह रोग उन के जीवन-रस को चूस रहा होता है।"

में मस्तिष्क के सर्वोत्तम रस का नाश—नाश और नाश ही होता है, इसलिये इन्द्रिय निग्रह के इस शत्रु द्वारा मनुष्य पर जो विपदाएँ टूटती हैं व कहीं कठोर और कहीं भयंकर होती हैं। इसलिये स्वाभाविक शारीरिक क्रिया से, जिस का विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है, पके हुए व्यक्ति के लिये, उचित आयु में विवाह कर लेना ही धर्म-शास्त्र सम्मत है।

(१) परन्तु स्वाभाविक तौर से परिपक्व होने वाले पुरुषों तथा उन्हें सताने वाले खतरों का क्या जिक्र, यहां तो अस्वाभाविक तौर से, उचित अवस्था से पहले ही, युवावस्था में ही पुरुष बन जाने वालों की कमी नहीं है! अनेक भौतिक कारणों से उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। जैसा एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है, यदि गुप्त-अंगों की भली प्रकार सफाई न की जाय तो उन में खुजली होने लगती है, छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं और स्वयमेव हाथ उधर जाने लगता है। अनजान बालक को भी उत्तेजना का साधन मिल जाता है, वह हस्त-मैथुन के गुप्त-रहस्यों में स्वयं ही दीक्षित हो जाता है और इस आत्म का शिकार हो कर यमराज की विकराल दंष्ट्राओं में पिसने के लिये मानो उतावला होकर दौड़ने लगता है। कभी-कभी जननेन्द्रिय के अगले हिस्से को ढकने वाली चमड़ी, जिसे सुपारी चर्म कहा जाता है, पीछे नहीं हट सकती जिस से शिश्न-मुण्ड पर जो मैल इकट्ठा होता है उसे पानी से साफ नहीं किया जा सकता। इस से भी खुजली उत्पन्न होती है और फिर हाथ

उधर आकर्षित होता है। हाथ केवल खुजली के लिये खिंचता है परन्तु परिणाम कितना भयकर हो जाता है ! कैसा सर्वनाश है ! परमात्मा ने पशुओं तथा मनुष्यों में यही तो भेद किया था। पशु को हाथ नहीं दिये, मनुष्य को दो हाथ दिये ताकि वह हाथों के सदुपयोग द्वारा अपने को पशुओं से ऊपर उठा ले, परन्तु अफसोस ! मनुष्य कितना कृतघ्न है, परमकारुणिक भगवान् की सब कृपाओं को ठुकरा कर वह उन्हीं हाथों से जिन से उसे ऊपर उठना चाहिये था अपने को पशुओं से भी नीचे गिरा रहा है। प्राचीन आश्रमों में शिक्षा देने वाले ऋषि ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होते हुए बालक को उपदेश देते थे— हाथ से इन्द्रियस्पर्श मत करना ! इस उपदेश को सुन कर वर्तमान शिक्षा में पले हुए गन्दे दिमागों के लोग मुँह फेर कर हँसने लगेंगे, परन्तु इस हँसी का जवाब, और दिल दहला देने वाला कड़वा जवाब, उन नवयुवकों के चेहरों पर लिखा है जो निरन्तर उठने वाली दिल के फोड़े की दर्द को दबाए असीम वेदना में कराह रहे हैं। उन से पूछो, हाथ को पवित्र रखने का क्या अभिप्राय है, और उन से पूछो, हाथ को अपवित्र करने का क्या प्रायश्चित्त है।

(२) इस के अतिरिक्त जननेन्द्रिय पर अचानक दबाव पड़ने से भी कई लड़के-लड़कियाँ हस्त मैथुन की बुरी आदत सीख जाते हैं। डा० एलबर्ट मौल लिखते हैं —"घोड़े पर चढ़ना, सीने की मैशीन को पाओं से चलाना, बाईसिकल दौड़ाना तथा रेलगाडी की सवारी से भी उत्तेजना हो जाती है और यह उत्तेजना ही आगे

के अभी बहुत छोटा होने के कारण प्रवृत्ति नहीं जागती तो यह प्रकृति की तरफ से बालक की रक्षा है, इन्होंने उसके सर्वनाश में क्या कसर छोड़ी? क्या यह कह देने से कि उनका उद्देश्य बुरा नहीं होता, वे केवल बालक को प्रसन्न करना चाहते हैं बचाव हो सकता है? आग से खेलने वाले के उद्देश्य को कौन पूछता है? उद्देश्य तुम्हारा ताक में धरा रह जायगा और तुम्हारा करतूत थोड़े-ही दिनों में वह विकराल रूप धारण कर लेगी कि तुम दोनों बैठे उँगली दबाते रह जाओगे! तुम्हारी जहालत का नतीजा थोड़े-ही दिनों में तुम्हारी आँखों के सामने आ जायगा!

(५) घर छोड़ कर बालक स्कूल में आता है। अफसोस! यहाँ का वातावरण भी उसके भोलेपन का, उसकी जवानी का दुश्मन है। कई लोग यह सुन कर चौंक जायेंगे, और कई इस बात की हामी भरते हुए शान्त रहेंगे, क्योंकि सचमुच आजकल के स्कूल बच्चों के आचार को नष्ट करने के मुख्य स्थान और मुख्य साधन हैं! स्कूल-मास्टर किताब लेकर पढ़ाता है, और ऐन उस की आँखों के नीचे लड़का अपनी कब्र खोद लेता है और 'दिये तले अँधेरा' वाली उक्ति को चरितार्थ करता है। स्कूल में किताबें पढ़ाई जाती हैं और इम्तिहान की तय्यारी कराई जाती है परन्तु स्कूल की चहार-दीवारी की अन्धेरी गुफाओं में ही शैतान राम टोप धर अपने चेलों को तैयार करता है। हमारे निर्दोष बालकों की आत्मा स्कूल के कमरों में प्रविष्ट होते समय शुद्ध तथा पवित्र होती है परन्तु, अफसोस! उन कमरों से निकलें

समय व हस्त-मैथुन की भयँकर महामारी के शिकार बन चुके होते है। स्कूलों के आत्मिक अव पतन की कहानियाँ नई नही, पुरानी हैं, ऐसी-ऐसी हैं जिन्हें सुन कर रोंगटे खडे हो जाते है! हेवलाक इलिस महोदय ने अपनी पुस्तक 'सैक्सुअल सिलेक्शन इन मैन' नामक पुस्तक में एक व्यक्ति की आत्म-कथा इस प्रकार दी है —

"मैं दस वर्ष की आयु में स्कूल म भर्ती हुआ। वहाँ स्कूल के गन्दे वातावरण में प्रचलित हुई-हुई कुचेष्टाओं की बात-चीत मेरे कान में भी पडी। मुझे इस से बचाने वाला—चेतावनी देने वाला—कोई न था। मैंने इन बातों में हिस्सा लेना शुरु किया और शीघ्र-ही हस्त-मैथुनादि की आदत से परिचित हो गया। मैं हाथ से अपने को खराब न करता था, उल्टा लेट जाता था। खुले तौर पर तो सभी लडके हस्त-मैथुन को स्कूल में बुरा कहते थे परन्तु अन्दर-ही-अन्दर इस का बडा प्रचार था। इस स्कूल को छोड कर मुझे अन्य दो स्कूलों में जाना पडा, उन में भी यह आदत बहुत फैली हुई थी। लडके अक्सर इस विषय की चर्चा किया करते थे, इस के हानि-लाभ पर भी विचार करते थे और अधिक तर यही समझा जाता था कि यह बुरी लत है। एक दिन अचानक मेरे कान म कुछ भनक-सी पडी, जिस से मुझे विश्वास होने लगा कि लडकों के इस कथन में कि हस्त-मैथुन मनुष्य को कमजोर बना देता है, सत्यता अवश्य है। वह भनक यह थी कि बचपन में किये गये हस्त-मैथुन के परिणाम बडी

उम्र में जाकर प्रकट होते हैं। उस समय मुझे सूझ पड़ा कि मुझे यह आदत छोड़नी होगी, परन्तु मेरे दिल में इस बात का डर बना रहा कि इतनी छोटी उम्र में इस आदत का शिकार बन जाने के कारण मुझे काफी हानि पहुँच चुकी है।

"यद्यपि मेरा इस आदत से छुटकारा हो गया तथापि इतनी छोटी उम्र में गिर जाने के कारण मैं कई बीमारियों का शिकार बन गया। परन्तु स्कूल में रहते हुए मैं उन दुःखों को मुँह से निकालते हुए भी डरता था यद्यपि उनके कारण मेरा हृदय बैठा जाता था और नसें टूटी जाती थीं। परिणाम और भी भयङ्कर हुआ। ज्यों-ज्यों मैंने इस विषय पर पुस्तकें पढ़नी शुरू कीं, उन में लिखे हस्त-मैथुन के दुष्परिणामों को पढ़ा, और इस पाप के लिये प्रकृति-देवी जिस निष्ठुरता से कठोर दण्ड देती है यह सब कुछ पढ़ा, तो मेरा हृदय काँप उठा! स्कूल छोड़ने पर भी मेरा जीवन इसी प्रकार चलता रहा। चरित्र-सुधार के लिये हृदय में प्रबल भाव उठना, पिछले किये हुए पाप मूर्तिमान होकर डरावनी शकल में सामने खड़े हो जाना, कँपकँपी छूटनी, पश्चात्ताप होना और हर समय पागल हो जाने का डर बना रहना। परन्तु जिस बात से मेरी जान निकली जाती थी वह यह थी कि मुझे धीरे धीरे पता चला कि अभी मेरा हस्त-मैथुन की आदत से पूरा पूरा छुटकारा नहीं हुआ था। जहाँ तक मेरी जागृत चेतना का सम्बन्ध था, मैं इस आदत से छूट चुका था, काम-वासना चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न होती मैं उसके वशीभूत न होता था, परन्तु

एक रात मैंने देखा कि सोने तथा जागने के बीच की अवस्था में जब मनुष्य अर्धनिद्रित होता है, जब चेतना पूरी चैतन्य नहीं होती, मैं इस आदत का शिकार बन रहा था। ऐसा प्रतीत हुआ कि दैवी तथा आसुरी भावों में घनघोर सग्राम हो रहा है और आसुरी भाव दैवी भावों को दबा रहे है। शायद यह अनुभव मेरा ही नहीं, जो भी इस कशमकश में पड़े होंगे, सभी का होगा, परन्तु मुझे अपनी यह अवस्था देख कर अत्यन्त दुःख हुआ। इस आदत से छुटकारा पाने के लिये मैंने अनेक उपाय किये। अन्त मे मैं अपने को इस प्रकार बाध कर सोने लगा जिस से उल्टा न हुआ जा सके और इस उपाय से मुझे इस बुरी लत से छुटकारा पाने में बहुत कुछ सहायता मिली।"

उक्त जीवन-कथा के साथ निम्न जीवन-वृत्तान्त भी कम शिक्षाप्रद नहीं है। यह भी उसी पुस्तक से लिया गया है —

"मैं ७ या ८ वर्ष का था। मेरे मन, वाणी तथा कर्म मे किसी प्रकार की अपवित्रता का लेश मात्र भी न था। अपने गाँव के एक स्कूल मे मैं पढ़ने जाया करता था। बस, इस स्कूल में ही मेरे हृदय में उन भावों का बीज बोया गया जिन्हें पीछे से जाकर मैं पहचान सका कि वे कामुकता के भाव थे। अपने ही साथ के एक लड़के की तरफ मेरा खास झुकाव होने लगा। वह मेरी ही उम्र का था। मुझे वह बड़ा रूपवान् दीख पड़ता था। मेरे हृदय में उस समय उस लड़के क सम्बन्ध मे क्या २ भाव उठते थे इस का मुझे पूरा-पूरा ज्ञान नहीं। हाँ, इतना स्मरण

अवश्य है कि मैं उस के पास रहना चाहता था, कभी-कभी उसे चूम लेने की इच्छा भी होती थी। यदि वह अचानक मेरे सामने आ जाता तो मुझे शर्म आ जाती, यदि वह मेरे साथ न होता तो मैं उसी के विषय में सोचा करता और उन मौकों की ताक में रहता जिन में उस से फिर भेंट होने की आशा होती। यदि वह मुझे अपने साथ खेलने के लिये निमन्त्रित करता तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहता।

'एक परिवार के सात भाई उसी स्कूल में पढ़ने आया करते थे, हम सब लोग बैठ कर आपस में गन्दी-गन्दी कहानियाँ एक दूसरे को सुनाया करते थे।

"जब मैं दस वर्ष का हुआ तो मैंने अपने पिता के गाड़ीवान से बहुत कुछ गन्द सीखा। १२ वर्ष की आयु में मुझे एक प्रायमिक पाठशाला में भेजा गया। मुझे रहना भी वहीं होता था। छुट्टियों में मैं घर पर अपने पिता के चपरासी से कामुकता सम्बन्धी बात चीत किया करता था। उस ने मुझे बहुत कुछ बतलाया होगा। इस समय मुझे उत्तेजना होने लगी थी। एक दिन जब सब लोग घर से बाहर गये हुए थे, मैं अकेला घर में बिस्तर पर लेटा हुआ था, वह नौकर अन्दर घुस आया। इस समय मैं अपना पढ़ा हुआ कामुकता की किताबों में लीन था और उत्तेजितावस्था में था। उस ने मुझे गिराने की कोशिश की। पहले मैंने प्रतिरोध किया, परन्तु फिर मैं प्रलोभन के सन्मुख गिर गया। कुछ देर बाद वह मुझे छोड़ कर चला गया। मगर

दिमाग इतना उत्तेजित हो उठा कि मेरे लिये सोना मुश्किल हो गया। मुझे अनुभव होने लगा कि मेरे सन्मुख एक आनन्द-दायक रहस्य खुल गया। बस, फिर क्या था, मैं हस्त-मैथुन करने लगा। मुझे याद नहीं कि मैं कितनी बार अपने को ख़राब करता था— शायद सप्ताह में एक या दो बार। पीछे से मुझे स्वयँ अपने से शर्म आने लगती। हस्त-मैथुन के बाद कभी-कभी जननेन्द्रिय में और कभी-कभी अण्डकोशों में दर्द होता, परन्तु लज्जा का भाव तो सदा ही बना रहता। लज्जा का भाव कैसा था ? —दिल इस बात से बेचैन होता था कि मैंने वह काम किया है जिसे सब बुरा समझते हैं। मैं जानता था कि मेरे अध - पतन को मुझे छोड़ दूसरा कोई नहीं जानता, परन्तु जिस से भी बात करता, ऐसा अनुभव होता जैसे उसे सब कुछ मालूम है, दिल तक की पहचानता है परन्तु मेरी इज्जत रखने के लिये कुछ नहीं बोलता। मुझे यह डर भी लगने लगा कि इस से मैं अपने स्वास्थ्य को हानि पहुँचा रहा हूँ। एक दिन मेरे अध्यापक ने मुझे बुला भेजा। उस ने मुझे कहा कि मेरे बिस्तर पर उस ने एक दाग देखा है। इस समय मुझे स्वप्न-दोष होने लगा था। मुझे याद नहीं रहा कि यह दाग स्वप्न-दोष का था, या हस्त-मैथुन का। जब उस ने कहना शुरू किया कि इस दाग का होना मेरे पतित होने का प्रमाण है तो मैंने स्वीकार कर लिया। उस ने मुझे कहा कि इस से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा, सम्भवतः दिल कमजोर हो जायगा या दिमाग ख़राब हो जायगा। उस ने

मुझ से शपथ लेने को कहा कि आगे से ऐसा नहीं करूँगा। मैंने शपथ ले ली। मुझे अपनी नीचता पर दुःख हुआ, लज्जा आयी और उस के परिणामों को सुन कर मैं काँप उठा। मेरा अध्यापक कभी-कभी मुझे बुला कर पूछ लेता था कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा या नहीं। कई महीनों तक मैं बचा रहा। परन्तु फिर मैं इस आदत के सामने झुक गया और जब मुझ से पूछा गया तो मैंने अपनी कमजोरी को स्वीकार कर लिया। अन्त में अध्यापक ने मुझे बुला कर पूछना भी छोड़ दिया, या तो उस ने समझा होगा कि मैं अब ठीक हो गया हूँ या उस की यह धारणा हो गई होगी कि मेरा सुधरना ही नामुमकिन है।'

पाठक! इन अनुभवों के साथ अपने जीवन की तार जुड़ मिला कर देखो। क्या इन अनुभवों में तुम्हें अपने जीवन की घटनाओं की प्रति-ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती? क्या तुम भी ग्रीष्म-ऋतु की किसी सायंकाल, या एकान्त में लेटे हुए किसी दिन, किसी पापिष्ठ नौकर के चंगुल में तो नहीं पड़ गये थे, अपने स्कूल के ही किसी साथी के शिकार तो नहीं बन गये थे? क्या तुम्हें याद नहीं कि पहले-पहल तुम में प्रतिरोध करने की इच्छा जग उठी थी—तुम ने सारा बल लगा कर बचने की कोशिश की, परन्तु, अफसोस, तुम्हारे शिकारी ने अपना पंजा ढीला न होने दिया। आह! आत्मा की निर्बलता का यह [illegible] देव तथा असुर भाव का यह संग्राम! तुम ने उस समय अपने को ढीला छोड़ दिया! पत्ते को आँधी उड़ा ले गई, तिनके को

दरिया बहा ले गया ! इस गिरावट के अगले क्षण तुम्हारी क्या अवस्था हुई थी ?—लज्जा के मारे तुम जमीन में गडे जा रहे थे, यह लज्जा नहीं लज्जा का ज्वर था ! क्या उस समय तुम्हें अपने अन्तरात्मा से घृणा नहीं हो गई थी ? क्या उस समय तुम ने पश्चात्ताप-पूर्ण हृदय से परमात्मा के सन्मुख हाथ जोड कर निस्सहाय अवस्था में यह प्रार्थना नहीं की थी कि यदि फिर दुबारा तुम्हारे आत्मा की पवित्रता पर ऐसा ही हमला हो तो शक्तिमान् भगवान् तुम्हें उच्च-स्वर से 'नकार' कहने की शक्ति दें ? और क्या फिर परीक्षा का अवसर उपस्थित नहीं हुआ, और क्या उस समय भी प्रतिरोध, प्रलोभन की प्रबलता तथा अन्त मे तुम्हारी लज्जा-जनक हार नहीं हुई ? क्या उस समय तुम पर लज्जा का पहाड नहीं टूट पडा ? क्या उस समय तुम में अपने मुख को दर्पण मे देखने की शक्ति रह गई थी ? और क्या यह किस्सा तुम्हारे जीवन में बार-बार दोहराया नहीं जाता रहा ? यहाँ तक कि अन्त में तुम्हारी प्रतिरोध-शक्ति सर्वथा नष्ट हो गई और तुम इस घातक आदत के पूर्णतया दास हो गये ? ऐसे क्षण भी आये जब कि तुम ने इस आदत से छुटकारा पाने के लिये हाथ-पाँव मारे, शायद कभी-कभी तुम ने समझा भी कि तुम छूट गये, परन्तु तुम्हारी निराशा, आश्चर्य और दुःख का पारावार न रहा जब तुम्हें एक भयकर अँधेरी रात को यह मालूम हुआ कि अर्ध-निद्रित अवस्था में तुम इस आदत के गुलाम हो रहे थे ! ये अनुभव हैं जो प्राय प्रत्येक नवयुवक को अपने जीवन में प्राप्त हुए होंगे !!

मानसिक कारण

(१) अभी ऊपर काम-वासना को जागृत करने वाले भौतिक कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। इस में सन्देह नहीं कि बालक की प्रारम्भिकावस्था में यदि काम की प्रवृत्ति जाग उठे तो उस में मन का इतना बड़ा हिस्सा नहीं होता जितना शरीर का, क्योंकि अभी मानसिक-विकास ही बहुत कम हुआ होता है। परन्तु धीरे-धीरे शारीरिक अवस्था का मन पर और मानसिक अवस्था का शरीर पर प्रभाव पड़ने लगता है। बड़ी आयु के व्यक्ति में शारीरिक उत्तेजन से मनोविकार तथा मनोविकार से शारीरिक उत्तेजन होने लगता है। "कभी कभी हस्त-मैथुन केवल इन्द्रियों की चेष्टा होती है, मन का उस में बिल्कुल दखल नहीं होता, व्यक्ति के मन में कोई लिंग सम्बन्धी विचार नहीं होता, यह केवल एक शारीरिक क्रिया होती है, परन्तु ऐसी अवस्था प्रायः तभी तक रहती है जब तक मानसिक विकास नहीं हुआ होता। मानसिक विकास हो जाने पर शारीरिक उत्तेजना होते ही मन अपनी मनचाही अभिलाषाएं सामने ला खड़ी करता है। कभी किसी लड़के और कभी किसी लड़की का ख्याल दिल में ला कर वह हस्त-मैथुन का शिकार, कल्पना का शिकार होने लगता है। लड़कियां भी इसकी शिकार पाई गई हैं। केवल-शारीरिक हस्त-मैथुन—ऐसा, जिस में शारीरिक उत्तेजना तो होता है परन्तु मन द्वारा कुछ नहीं माना

जाता—प्राय बच्चों में ही पाया जाता है, जवानों में नहीं। जवान तो शरीर और मन दोनों की सहायता से अपना सर्वनाश करने पर तुल जाते हैं।" जवानी में हस्त-मैथुन अधिकतर मानसिक रूप धारण कर लेता है। प्रेमी की कल्पना कर मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के सकल्प-विकल्प उठा कर जीवन को भार बना लेने वाले युवकों की कमी नहीं है। लडके-लडकियाँ 'कुविकल्पों'—'कुत्सित कल्पनाओं'— से अपने को उखराब कर लेती हैं। गन्दी-गन्दी अश्लील तस्वीरों को देख कर जिन्हें प्राय मूर्ख माता-पिता मकानों में लटकाते हैं, बच्चे के मन में तरह-तरह के गन्दे विचार उठने लगते हैं। भला माता-पिता के दिल में ही उन्हें देख कर कौन-से अच्छे विचार उठते होंगे ? सभ्यता का दम भरने वाले इस युग में मनुष्य का मन कितना गन्दा हो चुका है, यह देखना हो तो किसी स्टेशन के बुक-स्टाल पर बिखरे हुए उपन्यासों के नाम पढ जाओ, उन की तस्वीरें देख जाओ,—बस, इतना ही इस युग का नग्न चित्र आँखों के सन्मुख खींच देने के लिये पर्याप्त है। आज विद्यार्थी-जगत् में सनसनी पैदा करने वाली काल्पनिक घटनाओं का चित्र खींचने वाले नाविल पढे जाते हैं और उन के पढने में व उन गन्दी घटनाओं का मजा लेने की कोशिश करते हैं। स्कूल के लडकों की मखौलें सुनो, दीवारों पर लिखे उन के गद्य-पद्य मय वाक्य पढो, मालूम हो जायगा कि हमारे बच्चों की कल्पना शक्ति किस गन्द की दलदल में लतपत पडी है। कल्पना को गलाने वाला, उसे सडाने

वाला, व्यभिचार और दुराचार का वायुमण्डल पैदा करने वाला दृश्य देखने के लिये लड़के नाटकों, सिनेमाओं और नाचों में जाते हैं, और फिर उन की जो अवस्था हो जाती है उस के लक्षण पूरे एक बीमारी के होते हैं। उन का दिमाग वासना की गन्दी-से-गन्दी कल्पनाओं से इतना भर जाता है कि उन से 'इन्द्रिय-निग्रह' की आशा रखने वाला ही मूर्ख है। तभी प्राचीन काल में ब्रह्मचारी को जो उपदेश दिये जाते थे उन में यह भी होता था—'नृत्यगीतवादित्रं वर्जय'—नाचना, गाना, बजाना छोड़ दो—ये ब्रह्मचर्य जीवन के लिये नहीं हैं।

(२) 'कुत्सित-कल्पनाएं' जहाँ एक ओर लड़कों को खराब करती हैं वहाँ दूसरी ओर 'चिन्ता' भी उन की जड़ खोखली करती रहती है। लड़कों के अस्वाभाविक मार्गों के अवलम्बन कर लेने का यह दूसरा कारण है। चिन्ता से मन पर एक बोझ-सा पड़ा जान पड़ता है। चिन्ता में डूबे हुए बालक हस्त-मैथुन की तरफ झुक जाते हैं क्योंकि इस से उन के स्नायु-तन्तुओं का खिंचाव कुछ देर के लिये ढीला हो जाता है। क्षणिक उत्तेजना डूबे हुए मन को कुछ चमत्कार-सा देती है। चिन्ता के तनाव को मनुष्य अधिक देर तक बर्दाश्त नहीं कर सकता, वह इस बोझ से बचने की इच्छा करने का यही सस्ता उपाय ढूंढ़ निकालता है, परन्तु उस भोले को मालूम नहीं होता कि कुछ पलों के लिये इतना हल्का होकर वह अपनी मूर्खतापूर्ण चाल से भी भारी बोझ सिर पर लाद रहा होता है। शीघ्रता से थोड़ी ही देर

में वह अपने को खोखला अनुभव करने लगता है, और पहली चिन्ता के साथ यह खोखलेपन की चिन्ता और बढ जाती है। डा० एलबर्ट मौल एक बीस वर्ष के युवक के अनुभव का उल्लेख इस प्रकार करते हैं —

"उस का कथन है कि १६ वर्ष की आयु मे उसे पहलीवार काम-भाव का अनुभव हुआ। इस से पहले भी उस के साथियों ने स्त्री-प्रसग, हस्त-मैथुन आदि की चर्चा उस से की थी, परन्तु उस न कभी अपने को खराब नही होने दिया था। एक दिन जब कि वह ऊँची श्रेणी में पढता था उसे गणित का एक प्रश्न हल करने को दिया गया। वह उस प्रश्न को हल न कर सका— इस से उसे चिन्ता होने लगी। उस का ऊँची श्रेणी में चढना भी इसी पर आश्रित था, इस से चिन्ता और अधिक बढी। अभी वह आधा ही सवाल हल कर पाया था कि अध्यापक ने ऊँची आवाज में कहा—'१० मिन्ट बाकी है, इस के बाद उत्तर-पत्र ले लिये जायँगे।' इस पर उस की चिन्ता हद्-दर्जे पर पहुँच गई और तत्क्षण उसने अनुभव किया कि उस का वीर्यपात हो गया था।"

एक और लडके ने डा० एलबर्ट मौल को बतलाया कि एक बार वह श्रेणी में, बिना-देखे किसी स्थल का, अनुवाद कर रहा था, और उसे डर था कि घण्टा समाप्त होने से पहले वह उसे समाप्त न कर सकेगा। इस की उसे इतनी चिन्ता बढी कि वीर्य स्खलित हो गया। कई लोगों का, जो किसी गहरी चिन्ता के कारण अन्त में आत्म-हत्या कर बैठते हैं, चिन्ता से ही

वीर्य स्खलित हो जाता है। मन पर चिन्ता का भार जब बहुत बढ़ जाता है तो वह इसी प्रकार अपने बोझ को हल्का करता है। इसीलिये इम्तिहान के दिनों में चिन्ता से मारे हुए लड़कों को रात में कई-कई बार स्वप्न-दोष हो जाता है। व बेचारे क्या जानें, इम्तिहान की चिन्ता उन के जीवन को कहाँ तक सुखा डालती है। यह भी कई लोगों का अनुभव है कि जब स्वप्न-दोष को रोकने की भारी चिन्ता की जाती है तब व और अधिकता से होने लगते हैं। इस का कारण भी चिन्ता के सिवाय कुछ नहीं है। स्वप्न दोष से बचने की 'चिन्ता' करने वाले व्यक्ति के लिये उस से बचना मुश्किल हो जाता है।

(३) 'बेकारी' भी मनुष्य के नैतिक-पतन म सहायक है। यह समझना कि मन बिना किसी सङ्कल्प विकल्प क खाली रह सकता है, मनोविज्ञान से अनभिज्ञता सूचित करना है। जब मनुष्य समझता है कि उसका मन खाली है उस समय भी मन में विचार—और प्राय गन्दे विचार—चक्कर काटा करते हैं। जो लोग बेकार होते हैं, समझते हैं कि उन का मन खाली है, उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि उस खालीपन का स्थान या तो 'कुत्सित विकल्प' ले लेते हैं और या 'चिन्ता', और ये दोनों ही मनुष्य को गिराने वाले शैतान के औजार हैं। एक बार ऋषि दयानन्द से पूछा गया कि उन्हें कामदेव सताता है या नहीं? ऋषि ने उत्तर दिया—हाँ, वह आता है परन्तु उसे मेरे मकान के बाहर ही खड़े रहना पड़ता है क्योंकि वह मुझे कभी खाली ही

नहीं पाता। ऋषि दयानन्द कार्य में इतने व्यग्र रहते थे कि उन्हें इधर-उधर की बातों के लिये फुर्सत ही नहीं थी, और यही ऋषि दयानन्द के ब्रह्मचर्य का रहस्य था।

अरे बालक! क्या तू बेकार घूमा करता है?—ओह! तब तो इस बात का डर है कि कहीं तू अनैसर्गिक आदतों का शिकार न बन जाय! इस में संदेह नहीं कि तुझ पर इस प्रकार का सन्देह करना तेरा अपमान करना है, परन्तु माफ करना, संसार का अनुभव यही कहता है। क्या तू शिकायत किया करता है कि तेरे पास समय नहीं? अरे, लोगों को काहे को बहकाता है, तू समय का सदुपयोग ही नहीं करता, तेरे पास तो समय-ही-समय है! हम भारतीय, समय का मूल्य नहीं जानते। बेकारी में ही हमें आनन्द आता है। आलस्य हमारी नस-नस में घुसा हुआ है। समय का मूल्य समझने में हम सब से पिछड़े हुए हैं। नावल पढ़ने और थियेटर देखने की सभ्य-समाज की बेकारी ने हमारे पाप को दुगुना कर दिया है। शैतान के साथ हमारी दोस्ती बढ़ती जाती है क्योंकि बेकारी तो शैतान की ही दासी है!

परिणाम

मनुष्य-समाज के अस्वाभाविक पतन के भौतिक तथा मानसिक 'कारणों' पर हम ने विचार कर लिया। अब हमें इस पतन के 'परिणामों' पर विचार करना चाहिये। हस्त-मैथुन अथवा अनैसर्गिक मैथुन के परिणामों को तीन भागों में बाँटा जा

उठाना चाहता है उसी से उसे वञ्चित कर दिया जाता है क्योंकि इस दिशा में रखा हुआ एक-एक कदम मनुष्य को नपुंसकता की तरफ ले जाता है।

इस के अतिरिक्त इस अनैसर्गिकता का जो प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है वह भी किसी से छिपा नहीं रहता। आखिर, शरीर के रुधिर ही से तो वीर्य बनता है। जो वीर्यनाश करता है वह इस रुधिर ही के कोश को खाली करता है और ज्यों-ज्यों यह आदत जड़ पकड़ती जाती है त्यों-त्यों रुधिर में कमी आती जाती है। इसीलिये हस्त-मैथुन के शिकार को उन सब बीमारियों का शिकार भी बनना पड़ता है जो रुधिर की कमी से होती हैं। सिर के बाल उड़ जाते हैं, सफेद हो जाते हैं, आँखों में ज्योति नहीं रहती, वे अन्दर धँस जाती हैं और उन के इर्द-गिर्द काला-काला घेरा बन जाता है। दाँत खराब होने लगते हैं, चेहरे पर रौनक नहीं रहती। छाती सिकुड़ जाती है, कन्धे झुक जाते हैं, हाजमा बिगड़ जाता है। जब कुछ पचता नहीं तब या तो कब्ज हो जाती है या दस्त लग जाते हैं। शरीर सूखा-सा रहता है। क्षीण रुधिर पुष्टि चाहता है, यह पुष्टि दवा-दारू से नहीं मिल सकती, वाजीकरण औषधियों से नहीं मिल सकती, यह मिलती है खुले द्वार को बन्द कर देने से, वीर्य की रक्षा करने से। हृदय में भी पर्याप्त रुधिर नहीं पहुँच पाता, यह धड़कने लगता है और खून के न मिल सकने से फेफड़े भी क्षीण होने लगते हैं। अंतड़ियों में भी खून की कमी हो जाती है,

उन में तरावट नहीं रहती और इसलिये दस्त खुल कर नहीं आता। मूत्राशय और गुर्दे की बीमारियाँ भी घर करने लगती हैं। शरीर के दूर-दूर के हिस्सों तक—हाथों और पैरों तक—पूरा-पूरा रुधिर नहीं पहुँच सकता, इसलिये व ठण्डे रहने लगते हैं। शरीर क जोड़— सिर, गर्दन, कन्धे, कोहनी, घुटने—दुखने लगते हे, और यह सब कुछ खून की कमी से होता है। दोस्त देख कर अचम्भा करते हैं और पूछते हैं, तुम्हें क्या हो गया ? प्रकृति क्रोध में आकर हस्त-मैथुन के अपराधी को ऐसा दण्ड देती है जिस से वह अपने उत्पादक-अगों का दुरुपयोग तो क्या, किसी प्रकार का उपयोग भी नही कर सकता। उस का यह अपराध क्या कम है कि परमात्मा की जिस देन से वह अपने आत्मा की उन्नति कर सकता था उसी को उस ने बेतहाशा लुटाया ! इस दुरुपयोग को देख कर प्रकृति अपनी देन वापिस ले लेती है और हमारी परिभाषा में उस मनुष्य को नपुँसक— अपाहिज— कोढी— कहा जाता है।

एक प्रख्यात डाक्टर का कथन है कि हस्त मैथुन से, अथवा अनैसर्गिक सम्बन्ध से, होने वाली बीमारियों की सूची पूरी-पूरी तय्यार ही नहीं की जा सकती। कामुकता के भाव की प्रचण्डता स मनुष्य की स्नायु-शक्ति का ह्रास होता है, यह स्नायु-शक्ति वीर्य में रहती है, और वीर्य का एक औंस शरीर क किसी हिस्से क भी ४० औंस रुधिर के बराबर है। स्नायु-शक्ति के ह्रास से मनुष्य का शरीर हरेक प्रकार की बीमारी को निमन्त्रण देने क

लिये हर समय तय्यार रहता है। इस प्रकार जो बीमारियाँ शरीर मे प्रवेश करती है उन का भी कारण मनुष्य का अस्वाभाविक जीवन ही है। कामुकता से वीर्य तथा स्नायु-शक्ति दोनों का ह्रास होता है अत 'आत्म-व्यभिचार' से वीर्य तथा स्नायु-सम्बन्धी अनेक उपद्रवों का उठ खडे होना स्वाभाविक है।

इस प्रकरण में एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है, इस में सन्देह नहीं कि वे वीर्य ह्रास के कारण उत्पन्न होते हैं, परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि जहाँ ये लक्षण दिखाई दें वहाँ अवश्य वीर्यनाश ही कारण है। कई अधकच्चे विचारों के लोग किसी भी भलेमानस पर सन्देह करने लगते है। किसी को कब्ज हुई तो फौरन सन्देह करने लगे, किसी को जुकाम हुआ तो फौरन उस के आचार पर उँगली उठाने लगे। ऐसे अन्ध भक्तों ने ब्रह्मचर्य्य के कार्य को जो धक्का पहुँचाया है वह शायद उस के शत्रु भी न पहुँचावेंगे, ऐसे ही लोगों के कारण ब्रह्मचर्य्य बदनाम हो जाता है। इसी से तो ब्रह्मचर्य्य हौआ बन गया है। यह समझ रखना चाहिये कि जहाँ ब्रह्मचर्य्य से शरीर की रक्षा होती है वहाँ और कई कारणों से भी शरीर की रक्षा होती है, और जहाँ ब्रह्मचर्य्य-नाश से शरीर खराब होता है वहाँ और भी कई कारणों से शरीर खराब हो जाता है। उदाहरणार्थ, एक हृष्ट पुष्ट माता पिता के व्यभिचारी पुत्र का शरीर दुबले-पतले माता-पिता के सदाचारी पुत्र से अच्छा हो सकता है, परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि हृष्ट-पुष्ट

व्यभिचारी को देखकर हम उसे ब्रह्मचारी समझने लगें और दुबले-पतले सदाचारी को देख कर उसे व्यभिचारी कहने लगें। ब्रह्मचर्य्य के यथार्थ भाव को न समझने वाले ऐसा ही करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि ब्रह्मचर्य्य के अतिरिक्त दूसरे भी कारण संसार में मौजूद हैं। ऐसे लोग या तो 'ब्रह्मचर्य्य' के अन्धे भक्त बने रहते हैं और या दुनियाँ में अपने सिद्धान्तों को ठीक घटते हुए न देख कर ब्रह्मचर्य्य की ही खिल्ली उडाने लगते हैं। इन दोनों सीमाओं से बचने के लिये ब्रह्मचर्य्य के यथार्थ भाव को अवश्य समझ लेना चाहिये।

मानसिक परिणाम

मन का भौतिक-आधार मस्तिष्क है। मन द्वारा सोचने की प्रत्यक्ष-क्रियाएँ मस्तिष्क में ही होती हैं। अत किसी भी चीज के मन पर हुए प्रभाव का अभिप्राय मस्तिष्क पर पडे प्रभाव से ही समझना चाहिये। जिस बुरी आदत की चर्चा हम कर रहे हैं उस का शरीर के अतिरिक्त मन, अथवा मस्तिष्क पर भी बहुत गहरा तथा विस्तृत प्रभाव पडता है। मस्तिष्क मनुष्य के जीवन का केन्द्र है—उस के बिना वह न हिल-जुल सकता है, न सोच-समझ सकता है। वह बडा कोमल भी है। हस्त-मैथुन का मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव पडता है। अनेक जन्तु ऐसे देखे गये हैं जिन पर मैथुन का इतना ह्रासकारी असर होता है कि मैथुन की अवस्था में ही उन के प्राण-पखेरू उड जाते हैं। कई

महीने के बाद वह बिल्कुल सूख कर मर गया। चीरन पर उस के छोटे-दिमाग में एक गाँठ पायी गई। एक दस वर्ष की लड़की जिसे हस्त-मैथुन की लत पड़ गई थी एकान्त-प्रिय तथा दु:खित-सी रहा करती थी। चार महीने तक उस के सिर-दर्द होता रहा जो कि अन्त में इतना बढ़ा कि वह तीन हफ्ते तक लगातार दिन-रात रोती रही और अन्त में मर गई। मरने से पहले उसे हस्पताल पहुँचाया गया। डाक्टर लोग पूछ-ताछ करने पर केवल इतना जान सके कि वह १२ दिन तक बिस्तर में ही पड़ी रही थी, बार-बार उसे पित्त की कय आती थी, हर समय ऊँघती रहती थी, चारों तरफ के लोगों का उसे कुछ ख्याल तक न रहता था। उस का सिर हर समय नीचे लटका रहता था, और हाथ सिर पर पड़े रहते थे। मरने से चार दिन पहले वह प्रगाढ़ निद्रा में सो रही थी, प्रकाश का उसे कुछ ज्ञान न था, कभी-कभी आँखें थोड़ी-सी खोल देती थी। उस का छोटा-मस्तिष्क चीर कर देखा गया तो ऊपरला हिस्सा तो सारे-का-सारा मवाद से भरा हुआ था और बाकी हिस्सा भी कुछ-कुछ गल-सा गया था। फोस्टर ने एक ११ वर्ष की लड़की का उल्लेख किया है। उसे भी यही लत थी और इसी के कारण उस का छोटा-मस्तिष्क बिलकुल सड़-गल गया था। जो हिस्सा पूरा नहीं गला था वहाँ लिसलिसी झिल्ली अभी शेष थी।"

ऊपर जिन शल्य-तन्त्र सम्बन्धी दृष्टान्तों का उल्लेख किया गया है उन से स्पष्ट है कि ऐसी कठोर काम क्रिया का,

जैसी कि हस्त-मैथुन में पायी जाती है, मस्तिष्क तथा स्नायु-मण्डल पर सीधा असर पड़ता है। जो हस्त-मैथुन से वीर्य-नाश करता है उसे समझ रखना चाहिये कि वह अपने मस्तिष्क के तत्व को बहा रहा है और इसीलिये जिसे यह लत पड़ जाती है वह बुद्धू-सा प्रतीत होने लगता है, उसे मृगी तथा इसी प्रकार के अन्य मानसिक रोग घेर लेते हैं। उस के जीवन का रस सूख जाता है, उस की हँसी में भी अस्वाभाविकता आ जाती है। हर समय सिर नीचा किये काल्पनिक अपार दु ख सागर में गोते खाते रहने की उसे बीमारी-सी हो जाती है। इस से बचने के लिये वह नाच-रग में जाने लगता है। शराब की आदत भी जल्दी ही पड़ जाती है क्योंकि इस के कुछ देर के नशे में तो वह अपने दु खों को डुबो सकता है। इस प्रकार उस के सर्वनाश के लिये राजपथ खुल जाता है। दु खों की गठरी को वह शराब में डुबोता है और शराब से गठरी का भार और बढ जाता है—बस, एक सनातन चक्र चल पडता है। रूह हर वक्त मरी रहती है, निराशा छाई रहती है, —इस लत के शिकार को आशा की कोई किरण ही नहीं दिखाई देती। चिन्ता उस के मस्तिष्क पर अपनी छाप लगा देती है। आत्मिक शान्ति, शायद सदा के लिये, उसे अलविदा कह देती है। लडके, जो अपनी कक्षा में आगे रहा करते थे, पिछडने लगते हैं। साथी लोग आश्चर्य करते हैं, अध्यापक परेशान हो जाते हैं, माता-पिता कुछ समझ नहीं सकते, पर जिस ने शारीर-शास्त्र का अध्ययन किया है उसे कोई

अचम्भा नहीं होता क्योंकि वह सब बातों से वाकिफ होता है। विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने ध्यान को केन्द्रित कर सके, यही तो स्मृति-शक्ति है। बुरी राह पर पडा हुआ लडका ध्यान को भी केन्द्रित नहीं कर सकता। यही तो कारण है, इतने लडके स्कूलों में दाखिल होते हैं पर दसवीं श्रेणी तक पहुँचते-पहुँचते बहुत थोडे रह जाते हैं। गन्दी आदतें उन्हें आगे कदम नहीं रखने देतीं, पीछे खींच लेती हैं। लडका किताब लेकर पढने बैठता है पर सकल्प-विकल्पों के ताने-बाने से बनी गन्दी-गन्दी तस्वीरें उस के मानसिक नेत्रों के सन्मुख उठने लगती हैं। और फिर,—ओह! फिर कहाँ पुस्तक, कहाँ पाठ, कहाँ काम और कहाँ अध्यापक—इस १४-१५ वर्ष की उम्र में प्राय सब लडकों में स्कूल छोड कर भाग खडे होने की प्रबल अभिलाषा उठ खडी होती है। बाजारों में जाकर देखो, गली में कितने सिर दरिया की लहरों की तरह ऊपर-नीचे उठते हुए नजर आते हैं। इन में से तीन चौथाई लडके ... हुए थे, परन्तु जवानी की उसी ... उम्र ... छोड बैठे थे!

जैसा किसी पिछले
मस्तिष्क ही कामुकता ...
करने का केन्द्र है। ...
प्रवृत्त होता है अत उस
है। परिणाम यह होता है

है और वह चलने में लड़खड़ाता है। उस की सभी ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हे। बुद्धू तथा मृगी का मारा वह समाज पर और पृथिवी पर भार हो जाता है। ऐसे क्षण भी आते हैं जब वह अपने लिये ही अपने को बोझ समझने लगता है और किसी निराशा के आवेश में आकर अपने-ही हाथों अपना काम तमाम कर बैठता है।

'इन्द्रिय निग्रह' के अभाव का परिणाम बुरा होता है। रीढ में दर्द रहता है, गठिया सताने लगता है। अर्धांग-रोग स्नायु-सम्बन्धी ही तो बीमारी है और यह अति-मैथुन तथा अनैसर्गिक-मैथुन से हो जाती है। वीर्यनाश से मस्तिष्क खोखला होने लगता है, रात को नींद नहीं आती और इसी प्रकार की स्नायवीय बीमारियाँ शरीर में सदा के लिये घर कर लेती है।

आत्मिक परिणाम

गन्दे विचारों को अपने अन्दर जगह देने से मनुष्य की आत्मा को मानो घाव लग जाता है। अन्तरात्मा, जो उन्मार्ग होते हुए व्यक्ति को भटकने से बचाने के लिये दैवीय-वाणी का काम कर सकती थी, मर जाती है। डा० स्टॉल ने अपनी पुस्तक 'वट ए यंग बॉय औट टु नो' में इसी भाव को बड़े सुन्दर शब्दों में यूँ रखा है —"हम में से बहुतों की अन्तरात्मा की आवाज बहरे कानों पर पड़ती है, वे उस की चेतावनी से मुँह फेर लेते हैं। अन्त में समय आता है जब कि आत्मा की आवाज उन्हें

सुनाई ही नहीं पड़ती। यह घटना वैसी ही है जैसे कोई ५ बजे प्रात:काल उठने के लिये घड़ी की सुई ठीक कर के रखे। पहले दिन प्रात:काल वह घोंका देगी, और यदि वह ठीक उसी समय उठ कर कपड़े पहनना शुरू कर दे तो प्रतिदिन प्रात:काल जब घण्टी बजेगी वह उठ खड़ा होगा। परन्तु यदि पहले दिन ही घड़ी की आवाज सुन कर उठने के बदले वह चारपाई पर पड़े पड़े सोचने लगे—'एक मिन्ट और सो लूँ', और यह सोच कर फिर लेट जाए, और जब तक उसे कोई न उठाये तब तक सोता रहे तो अगले दिन घण्टी बजने पर वह शायद जाग तो जाएगा, परन्तु अब तो—'एक मिन्ट और सो लूँ'—सोचने की भी तकलीफ नहीं करेगा और सोता ही रहेगा। यदि सोने का यही सिलसिला जारी रहा तो दो-तीन दिन के बाद घड़ी बजती ही रहा करेगी और वह उस की आवाज तक न सुन सकेगा, मजे में खुर्राटे भरता रहेगा। मनुष्य के अन्तरात्मा का भी यही हाल है। यदि हम शुरु से ही उस की सलाह को मानते रहें तब तो सब-कुछ ठीक रहता है, परन्तु यदि उस की चेतावनी पर हम कान न दें तो धीरे-धीरे उस की आवाज ही सुनाई पड़नी बन्द हो जाती है। इसलिये नहीं कि अन्तरात्मा की चेतावनी बन्द हो जाती है—घण्टी बजनी भी तो बन्द नहीं होती—लेकिन क्योंकि हम उस की तरफ से असावधान हो गये इसलिये हम खुले तौर पर इस प्रकार की पापमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं मानो हमारी अन्तरात्मा है ही नहीं।"

काम-वासना की अनैसर्गिक तृप्ति के ठीक बाद हृदय में उमड़ता हुआ लज्जा और आत्म-ग्लानि का समुद्र अन्तरात्मा की ही विरोध-सूचक चेष्टा है। प्रारम्भ मे यह बड़ी प्रबल होती है, मानो बुराई से युद्ध कर रही होती है। परन्तु फिर,—'केवल एक बार'—'केवल इस बार'—के पाशविक भाव का मुक़ाबिला कौन करे? मनुष्य का अध पतन प्रारम्भ हो जाता है, यहाँ तक कि आत्मिक-बल सर्वथा लुप्त हो जाता है। फिर वह पर्वा नही करता। उस समय वह जो-जो कुछ कर बैठता है उसके सामने हस्त-मैथुन भी साधारण-सी बात जान पड़ती है। आत्मा सर्वथा सो जाता है। उस का जीवन वासनामय हो जाता है, ऊँचा उडने की खरी-खरी भावनाएँ सब कुचली जाती है। जिन्दगी एक परेशानी की चीज बन जाती है। ऐसे ही क्षणों में व घृणित पाप हो जाते हैं जिन की बदबू से अदालतें भरी रहती हैं। जीवन के बोझ को अपने कन्धों पर उठाये, कुचेष्टाओं का दास, लज्जा और धर्म को ताक में रख, उस दिन की घड़ियाँ गिनने लगता है जिस दिन पृथिवी उस के बोझ से हल्की हो जायगी!

कुचेष्टाओं में मनुष्य कैसे फँस जाता है इस बात पर विचार किया जाय तो पता लगेगा कि ऐसे व्यक्ति में 'इन्द्रिय-निग्रह' तथा 'आत्म-विश्वास' का कतरा तक नहीं रह जाता। आदत की बेडियों से बँध कर वह उन्हीं का गुलाम हो जाता है। जिस मनुष्य की इच्छा-शक्ति प्रबल होती है उस के मुख से—'केवल एक बार'—'बस, एक मिन्ट के लिये'—'आखीरी वार'—ये शब्द

माता-पिताओ ! तुम्हें छोड़ कर किस पर होगी ? याद रखो, परमात्मा के दरबार में तुम पर अपनी सन्तान की हत्या करने का अभियोग चलेगा ! इस में सन्देह नहीं कि माता-पिता के पाप सन्तान को भोगने पड़ते हैं, परन्तु इस में भी तो सन्देह नहीं कि अनेक मूर्ख पिता इस दर्द को दिल में लेकर ही मरते हैं कि उन्हीं की असावधानी से उन की सन्तान का सत्यानास हो गया, और उन की आँखें तब खुलीं जब मामला उन के काबू से निकल गया और वे हाथ मलते रह गये ! इस समय तक अँग्रेजी में अनेक पुस्तकें निकल चुकी हैं जिन के आधार पर माता-पिता अपनी सन्तान के सन्मुख इन बातों को अच्छी तरह रख सकते हैं। माता-पिता तथा अध्यापकों को इस तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये। हमारे समाज में इस विषय पर बाहर-बाहर की चुप्पी का जो दूषित वातावरण बना हुआ है उस से अन्दर अन्दर कुचेष्टाओं की भयंकर आग सुलग रही है जिसे बुझाना कठिन जान पड़ रहा है।

ये आदतें ऐसी हैं जो यदि एक बार जड़ पकड़ गईं तो इन का उखाड़ना कठिन हो जाता है। फिर भी किसी बुरे काम से जब भी पीछे कदम हटा लिया जाय तभी अच्छा है। जिस बुरी आदत पड़ ही गई है उसे निम्न-लिखित नियमों से अपने जीवन को नियन्त्रित कर लेना चाहिये —

(१) भोजन शुद्ध तथा सात्त्विक हो। मैदे की जगह मोटे आटे का इस्तेमाल हो। मिर्च, मसाले, मिठाई, खटाई आदि को छोड़ दिया जाय। फलों तथा दूध का प्रयोग ज़्यादह हो।

(२) चाय, काफी, पान, तम्बाकू, सिगरट, भँग, शराब आदि नशीले पदार्थो का सेवन कतई न किया जाय। उत्तेजक पदार्थो के सेवन की आवश्यकता युवक को न होनी चाहिये और यह स्मरण रखना चाहिये कि सब से अच्छा सात्विक उत्तेजक 'ब्रह्मचर्य्य' ही है। इस से शरीर मे जो शक्ति आती है वह चाय पी-पी कर नही लायी जा सकती। इस की शक्ति टिकने वाली है, और चाय से आयी शक्ति तभी तक है जब तक पेट में चाय की गर्मी रहती है।

(३) जननेन्द्रिय को पर-ब्रह्म की उत्पादक-शक्ति का चिन्ह-मात्र समझना चाहिये। उस की तरफ ध्यान जाते ही दैवीय भाव का उदय होना चाहिये। इन्द्रिय-स्पर्श कभी न करना चाहिये। ऐसे काम की तरफ भूल कर भी ध्यान नहीं ले जाना चाहिये जिसे खुले मे करते हुए हृदय म पाप की, लज्जा तथा भय की आशका होती हो। ऐसा कार्य सदा पापमय होता है। यही तो पाप की पहचान है।

(४) जननेन्द्रिय के अगले हिस्से को, धीरे से, उस की उपरली त्वचा पीछे हटा कर, शुद्ध भाव से, प्रतिदिन धोना एक धार्मिक कृत्य के तौर से करना चाहिये। इस समय हृदय में परमात्मा की मातृ-शक्ति का ध्यान रहना चाहिये। यह सफाई ठीक ऐसी ही करनी चाहिये जस कान, नाक आदि की सफाई। यदि उपरली त्वचा बहुत तग हो या बहुत लम्बी हो तो डाक्टर से सलाह कर के उसे कटवा डालना चाहिये। यदि ठीक सफाई न

कर सकने के कारण इस त्वचा के नीचे, शिश्न-मुण्ड पर, ज़ख्म-से हो जायँ, सूजन या खाज होने लगे, तो डरना नहीं चाहिये। जिस ने अपने को दूषित नहीं किया उसे बीमारी ऐसे-ही नहीं आ चिपटती। छोटे बालक जिन्हों ने समाचार पत्रों के इश्तिहारों में सुजाक आदि भयंकर रोगों का नाम पढ़ लिया होता है ज़रा-सी खुजली से डर जाते हैं। इसीलिये इस अंग की सफ़ाई ज़रूरी है। यदि कभी साफ़ न रहने से जलन-सी होने लगे तो निम्न औषध का प्रयोग करना चाहिये, शिकायत शीघ्र दूर हो जायगी —

i अंग्रेज़ी दवा — डस्टिंग पाउडर का उपयोग करना, अथवा धोकर बोरिक आयन्टमेन्ट लगाना। बोरिक आयन्टमेन्ट किसी भी डाक्टर से मिल सकती है।

ii देसी दवा —त्रिफला के पानी से अंग को धोकर त्रिफला की मरहम बना कर लगाना। यह मरहम त्रिफला को जला कर उस की राख को घी या वैसलीन में मिलाने से आसानी से बन जाती है।

(५) उक्त चार बातों के साथ दैनिक-चर्य्या को भी नियमित रखना चाहिये। इस का महत्त्व जितना हमारे पूर्वजों ने समझा था उतना आजकल नहीं समझा जाता। जल्दी उठना, जल्दी सोना, सोते हुए मुँह न ढँकना, शौच नियमित रूप से जाना, पेट साफ़ रखना, दातुन करना, व्यायाम, प्राणायाम, स्नान तथा सन्ध्या आदि बातें साधारण मालूम पड़ती हैं परन्तु ब्रह्मचर्य-। पर इन का कम असर नहीं पड़ता।

ब्रह्मचर्य्य-साधना के लिये ये बाह्य-साधन अपेक्षित है। परन्तु न साधनों के अतिरिक्त आभ्यन्तर साधनों की भी आवश्यकता है। स बात को कभी न भूलना चाहिये कि कुचेष्टा—चाहे वह अपनी इच्छा' के कितनी ही विरुद्ध क्यों न हो—अपनी 'इच्छा' के बना नही हो सकती। शरीर तो मन की 'इच्छा' का ही पालन रता है, कुचेष्टा में प्रवृत्त व्यक्ति की 'इच्छा' के ही दो टुकड़े ो चुके होते है। उस की इच्छा 'एक' नहीं रहती। इसीलिये किसी भी बुरी लत को दूर करने के लिये, और खास कर कुचेष्टा को हटाने के लिये, 'इच्छा-शक्ति' का दृढ करना जरूरी । अपनी इच्छा को 'एक'—अविभक्त बनाओ। उसे सशक्त नाओ। जिस काम को तुम अच्छा समझो, वह कितना ही कठिन क्यों न हो, उसे कर दिखाओ। जब तक सकल्प शक्ति और प्रतिरोध-शक्ति का सञ्चय न किया जाय तब तक किसी भी बुराई को जीतना असम्भव है, कुचेष्टाओं के लोह-मय पञ्जे से छुटकारा पाना तो अत्यन्त असमव है। पीठ सीधी कर के, गरदन तान कर, इन्सान बन कर रहो! शैतान के प्रलोभनों को पाँवों से ठुकराना सीखो! आँखें ताने रहो! कमर को झुकने मत दो! —फिर देखो, कुचेष्टाओं का भूत तुम्हारे सन्मुख कैसे ठहरता है? तुम पीछे से पछताते हो, इस का कारण तो तुम्हारी ही भूल है। कुचेष्टाओं का शिकार तो बनता ही कमजोर 'इच्छा शक्ति' का आदमी है। सकल्प-शक्ति को दृढ बनाने का अभ्यास करो। इस विषय पर जो साहित्य मिले उस का अध्ययन करो। प्रो०

जेम्स ने अपनी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ साइकोलोजी' में 'आदत' पर एक बहुत अच्छा अध्याय लिखा है, उसे पढ़ें। उसे पढ़ने से समझ आ जायगा कि मनुष्य के आयु-चक्र का 'इच्छा-शक्ति' को बनाने तथा बढ़ाने में कितना बड़ा हिस्सा है। उस अध्याय में दिये गये निर्देश क्रियात्मक तथा उपयोगी हैं अतः उन का संक्षेप में सारांश नीचे दिया जाता है, जो विस्तार से पढ़ना चाहें वे उसी पुस्तक को पढ़ें।

१. पहला नियम :—किसी भी आदत को नये सिरे से बनाने, अथवा पड़ी हुई को छोड़ने, का पहला सिद्धान्त यह है कि उस का प्रारम्भ बड़े जोरों से—सारी इच्छा-शक्ति के जोर से—करें। पहले तो संकल्प करने में मन का पूरा बल लगा दें, कोई मीन-मेख न रखें। फिर उस संकल्प को सफलता-पूर्वक निभाने में जितने भी उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है सब का सहारा लें। यदि कोई बुराई प्रतीत न हो तो बेशक सब के सामने प्रतिज्ञा करें, और निम्न प्रकार से धीरे-धीरे, परन्तु पूरे जोर से, अपनी आत्मा को लक्ष्य में रख कर अपने को ही निर्देश करें :—

मैं इस बुरी आदत को छोड़ रहा हूँ,
हाँ—हाँ, छोड़ रहा हूँ, बिलकुल छोड़ रहा हूँ,
वह देखो, यह छूट रही है,
आ—हा ! यह तो बहुत-सी छूट ही गई है,
छूट गई—बिलकुल छूट गई,
अब यह न आ-य-गी, आ ही न स-क-गी !!

इन शब्दो को दोहराने मे मन की सारी सकल्प शक्ति लग जानी चाहिये। शान्त-एकान्त स्थान मे, नीरवता की गम्भीरता मे, सायँकाल सोने से पूर्व और प्रात काल सोकर उठते ही इन शब्दो को बार २ दोहराये। ये साधारण शब्द नहीं, जादू भरे शब्द हैं, और इन का असर किसी मन्त्र से कम नही। रात्रि को दोहराये गये ये वाक्य रातभर आत्मा मे शक्ति भरते रहेंगे और प्रात-काल के दोहराने से शक्ति का द्विगुणित वेग पाकर कुचेष्टा के टुकडे-टुकडे कर देंगे। पहले जैसे प्रलोभन से बचना असम्भव था वैसे अब उस से गिरना असम्भव हो जायगा! याद रखो, गिरावट से बचने के लिये रखा हुआ एक एक कदम उन्नति के मार्ग मे आगे बढाया हुआ कदम है!

२ दूसरा नियम — जब तक नई आदत पूरी तरह से तुम्हारे जीवन मे अपना स्थान न बना ले तब तक एक क्षण के लिये भी उस में अपवाद न होने दो। युद्ध मे छोटी-सी भी विजय आगे आने वाली बडी विजय मे सहायक होती है, इसी प्रकार छोटी-सी पराजय भी और पराजयों की तरफ ले जाती है। शुरु-शुरु मे ढील करना अपने को तबाह कर लेना है। पराजय के पक्ष का जरा भी समर्थन हुआ तो जय के पक्ष को ही ठेस पहुँचेगी। 'एक बार और'— एक ऐसा कुल्हाडा है जो 'इच्छा-शक्ति' के वृक्ष को जडा से काट डालता है। एक बार 'न' कह दिया, और सोच-समझ कर कह दिया, तो उसे 'हाँ' में तबदील कराना किसी के लिये भी असम्भव हो जाना चाहिये। जो कुछ

एक बार सङ्कल्प कर लो, जब तक उसे आदत न बना लो तब तक डटे रहो, उस में जरा-सी भी ढील न आने दो। अन्त तक अपवाद न आने पाये, यही नियम बना लो।

३ तीसरा नियम — जिस सङ्कल्प को करो उस क्रिया में लाने का जो भी मौका मिले उसी को पकड़ लो। मौका यदि हाथ से निकला तो सदा के लिये ही निकला समझो। समय लौट-लौट कर नहीं आता। यदि अभी से हल लेकर जुत जाओगे तो जल्दी-ही तुम्हारी खेती भी हरी भरी हो जायगी। जो मौके एक बार हाथ से निकल जाते हैं वे दूर जाकर आदमी को ललचाते ही रहते हैं। उन्हें देख-देख कर तक़दीर को कोसता हुआ अभागा आदमी चिल्लाता है, 'यदि ये मौका मुझे एक बार फिर मिल जाय!'— परन्तु शोक कि वह मौका फिर हाथ नहीं आता!!

४ चौथा नियम — जो आदत डालना चाहते हो उस के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ काम प्रतिदिन बिना जरूरत के भी करते रहो। अर्थात्, कुछ न करने को अपना रोज छोटे छोटे कामों में भी अपने में वीरता, धीरता आदि गुणों को उत्पन्न करो। जब परीक्षा का अवसर आयगा तो तुम एकदम नौसिखिये की तरह घबरा न जाओगे। यह एक तरह का बीमा कराना है। जो आदमी अपने घर का बीमा करा लेता है उसे तात्कालिक कुछ फायदा नहीं होता, अपने पल्ले से देना पड़ता है। यह भी सम्भव है कि उस का फायदा

इन शब्दों को दोहराने में मन की सारी संकल्प शक्ति लग जानी चाहिये। शान्त-एकान्त स्थान में, नीरवता की गम्भीरता में, सायँकाल सोने से पूर्व और प्रातःकाल सोकर उठते ही इन शब्दों को बार २ दोहराये। ये साधारण शब्द नहीं, जादू भरे शब्द हैं, और इन का असर किसी मन्त्र से कम नहीं। रात्रि को दोहराये गये ये वाक्य रातभर आत्मा में शक्ति भरते रहेंगे और प्रातःकाल के दोहराने से शक्ति का द्विगुणित वेग पाकर कुचेष्टा के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। पहले जैसे प्रलोभन से बचना असम्भव था वैसे अब उस से गिरना असम्भव हो जायगा! याद रखो, गिरावट से बचने के लिये रखा हुआ एक-एक कदम उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ाया हुआ कदम है!

२ दूसरा नियम — जब तक नई आदत पूरी तरह से तुम्हारे जीवन में अपना स्थान न बना ले तब तक एक क्षण के लिये भी उस में अपवाद न होने दो। युद्ध में छोटी-सी भी विजय आगे आने वाली बड़ी विजय में सहायक होती है, इसी प्रकार छोटी-सी पराजय भी और पराजयों की तरफ ले जाती है। शुरु-शुरु में ढील करना अपने को तबाह कर लेना है। पराजय के पक्ष का जरा भी समर्थन हुआ तो जय के पक्ष को ही ठेस पहुँचेगी। 'एक बार और'— एक ऐसा कुल्हाड़ा है जो 'इच्छा-शक्ति' के वृक्ष को जड़ों से काट डालता है। एक बार 'न' कह दिया, और सोच-समझ कर कह दिया, तो उसे 'हाँ' में तबदील कराना किसी के लिये भी असम्भव हो जाना चाहिये। जो कुछ

एक बार सकल्प कर लो, जब तक उसे आदत न बना लो तब तक डटे रहो, उस मे जरा-सी भी ढील न आने दो। अन्त तक अपवाद न आने पाये, यही नियम बना लो।

३ तीसरा नियम — जिस सकल्प को करो उसे क्रिया में लाने का जो भी मौका मिले उसी को पकड़ लो। मौका यदि हाथ से निकला तो सदा के लिये ही निकला समझो। समय लौट-लौट कर नहीं आता। यदि अभी से हल लेकर जुत जाओगे तो जल्दी-ही तुम्हारी खेती भी हरी-भरी हो जायगी। जो मौके एक बार हाथ से निकल जाते हैं वे दूर जाकर आदमी को तरसाते ही रहते हैं। उन्हें देख-देख कर तकदीर को कोसता हुआ अभागा आदमी चिल्लाता है, 'यदि ये मौका मुझे एक बार फिर मिल जाय !'— परन्तु शोक कि वह मौका फिर हाथ नहीं आता !!

४ चौथा नियम — जो आदत डालना चाहते हो उस के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ काम प्रतिदिन बिना जरूरत के भी करते रहो। अर्थात्, कुछ न करने की अपना रोज छोटे छोटे कामों में भी अपने में धीरता, वीरता आदि गुणों को उत्पन्न करो। जब परीक्षा का अवसर आयगा तो तुम एकदम नौसिखिये की तरह घबरा न जाओगे। यह एक तरह का बीमा कराना है। जो आदमी अपने घर का बीमा करा लेता है उसे तात्कालिक कुछ फायदा नहीं होता, उलटा पल्ले से देना ही पड़ता है। यह भी सम्भव है कि उस का फायदा उठाने का अन्त तक उसे

अवसर ही न मिले ! परन्तु यदि किसी दिन घर को आग लग जाय तो बीमे के लिये खर्च करने के कारण उस का सत्यानास होने से भी तो बच जाय । इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रतिदिन धीरता, वीरता, त्याग, ध्यान तथा सकल्प का कोई-न-कोई कार्य बिना जरूरत के भी करता रहता है वह मानो अपनी मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का बीमा कराता है । यदि कभी कोई आपत्ति आ पडेगी तो जहाँ गदेलों में लोटने वाले गदेलों के साथ हवा में फूस की तरह उड जायँगे, वहाँ प्रतिदिन आत्मा की साधना में लगे रहने वाले चट्टान की तरह अचल खडे रहेंगे।

सकल्प शक्ति को बढाने के साथ-साथ अपने मन के पर्दों को खोल-खोल कर उन की परख भी करनी चाहिये । सोचो, तुम्हारी शिकायत का कारण क्या है ?—कहीं 'कुत्सित-सकल्पों' से तो तुम्हारा नाश नही हो रहा ?—कहीं तुम अकेले बैठे-बैठे तो मन के घोडे को नही दौडाया करते ?—कही मानसिक-चित्रपट पर कल्पना की रेखाओं से ऐसे चित्र तो नहीं बनाते रहते जिन से मिलती-जुलती ठोस वस्तु इस दुनियाँ में ढूँढने से भी नहीं मिलती ? यदि ऐसा है तो अब 'बस' कर दो । एकान्त में बैठना छोड दो । याद रखो, दो तरह के आदमियों को समाज से डर लगता है। या महात्माओं को, या पापियों को । यदि तुम एक नहीं हो तो दूसरे होगे। ये 'कुत्सित-सकल्प' तुम्हारा सर्वनाश कर के छोडेंगे। ये तुम्हारे हृदय में उन-उन चित्रों की रचना करेंगे जो मनुष्यों के ससार मे दिखाई नहीं देते ।—कहीं उपन्यास पढते-पढते तो तुम्हारा

मानसिक-क्षितिज धुँधला नहीं हो गया ? यदि ऐसा है तो इन्हें जमीन पर पटक दो, ऐसी पुस्तकें पढ़ो जिन से तुम्हारे पल्ले कुछ पड़े। जिस मनुष्य का मन पवित्र है, जिस में 'कुत्सित-सङ्कल्पों' की बाढ़ नहीं आयी वह कुचेष्टाओं में भी नहीं पड़ता। अच्छी पुस्तकें पढ़ो। यदि तुम अभी छोटे हो तो अपने बड़े भाई से या अध्यापक से पूछ कर ही किसी पुस्तक को हाथ लगाओ, यदि तुम समझदार हो तो अपने छोटे भाई के हाथ में कोई गन्दी किताब न आने दो। छापखाने चल रहे हैं, किताबों के भी ढेर-के-ढेर निकल रहे हैं। लोग कमाने के लिये सब-कुछ बेतहाशा लिख रहे हैं, इसलिये यदि दो अक्षर सीख गये हो तो समझने भी रहो। बुरे साथियों का संग छोड़ दो। आग लगे उस दोस्त की दोस्ती को जिस का उद्देश्य तुम्हारा शिकार खेलने के सिवाय कुछ नहीं है। साथ ही 'निठल्ले' मत बैठो। निठल्लेपन के चर्खे से ही तो कुत्सित-सङ्कल्पों का सूत काता जाता है। काम में लगे रहो, क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। मन को बन्दर की तरह हर समय कुछ-न-कुछ करने को मिलना चाहिये। काम को बदल देना ही मन का आराम है। काम को छोड़ देने से तो यह तबाही मचा देता है। खाली मत बैठो। मन में पवित्र विचार और पवित्र सङ्कल्प भर दो, फिर, शर्तिया कहा जा सकता है कि तुम कुचेष्टा में कभी न पड़ोगे। तुम्हारे पास समय ही कहाँ होगा ?

मन के लिये तीन चीजें जहर हैं। 'खालीपन', 'कुत्सित-सङ्कल्प', 'चिन्ता'। खालीपन का मतलब है जब मन खाली हो,

कुत्सित-सकल्प का मतलब है जब मन भरा हुआ हो—बदबू से भरा हो। परन्तु मन खाली तो रह ही नही सकता। मनुष्य खाली हुआ नहीं और सकल्प-विकल्पों ने अपने साज-सामान के साथ डेरा डाला नही। चिन्ता—यह मन की तीसरी अवस्था है। इस में मन भरा होता है, परन्तु खाली होना चाहता है, और खाली होने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता—बस, यह दुविधा की अवस्था ही चिन्ता है। चिन्ता से अनेक उच्च-आत्माओं का पतन हुआ है। चिन्ता-ग्रस्त व्यक्ति के लिये कुचेष्टाओं का शिकार हो जाना असाधारण बात नही है। शायद इस प्रकार वह अपने को थोडी देर के लिये चिन्ता के असीम बोझ से मुक्त पाता है, परन्तु यह मुक्ति उस पर पहले से भी ज़्यादह आत्म-ग्लानि का बोझ लाद देती है। 'खालीपन', 'कुत्सित-सकल्प' तथा 'चिन्ता'—ये तीनों मानसिक पाप हैं। इन से मस्तिष्क की स्नायवीय शक्ति पर आघात पहुँचता है, मनुष्य के अखण्ड शक्ति भण्डार का ह्रास होता है। इन तीनों के उपद्रवों से बचने के लिये 'सकल्प-शक्ति' का सचय करना ही सर्वोत्तम उपाय है।

अष्टम अध्याय

'इन्द्रिय-निग्रह'

[स्व-पत्नी व्यभिचार]

हम पहले देख चुके हैं कि 'अमीबा' की रचना में लिंग-भेद नहीं होता। उस के उत्पन्न होने तथा बढ़ने में नर-तत्त्व तथा मादा-तत्त्व कारण नहीं होते। उसी के टुकड़े होते जाते हैं और नये अमीबा पैदा होते जाते हैं। एक ही अनेक हो जाता है। और क्योंकि एक ही अनेक होता है, उस में नवीन तत्त्व का समावेश नहीं होता, इसलिये उस में कोई परिवर्तन भी नहीं आता। अमीबा मरता भी नहीं, भागों में विभक्त हो जाता है। विभजन क्रिया से यह सृष्टि के अन्त तक जीता रहेगा। अमीबा की इस प्रकार की उत्पत्ति को एक-लिंगी-उत्पत्ति (ए-सैक्सुअल जनरेशन) कह सकते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक यदि प्रकृति एक-लिंगी-उत्पत्ति द्वारा ही कार्य करती तो प्राणियों की रचना में परिवर्तन तथा उन्नति दोनों न दिखाई देते। इसलिये शरीर-रचना में विविधता उत्पन्न करने के लिये प्रकृति ने अपने पुराने तरीके को बदल कर नये तरीके से काम लेना शुरू किया। यह तरीका लिंग-भेद का है। इस में द्वि-लिंगी-उत्पत्ति (सैक्सुअल या बाई-परैंटल जनरेशन) होती है। प्राणि-रचना में नर-तत्त्व तथा

मादा-तत्व दोनों काम करते है और अमीबा की तरह मूल तत्व का आधा-आधा हिस्सा अलग होकर ही काम नही चल जाता। दो भिन्न-भिन्न तत्वों का सयोग होता है, और क्योंकि वे तत्व भिन्न-भिन्न हैं इसलिये उन के मिलने से अनेक नवीन गुणों के प्रादुर्भूत होने की सम्भावना बनी रहती है। जिन भिन्न-भिन्न शरीरों में ये दोनों तत्व उत्पन्न होते हैं वे तो अपनी आयु भुगत कर नष्ट हो ही जाते है परन्तु उन के गुण इन दोनों तत्वों—शुक्र-कण तथा रज कण—द्वारा अमर हो जाते हैं।

शुक्र-कण तथा रज कण के सयोग में जो नियम काम कर रहे है वही मनुष्य-शरीर में काम कर रहे हे। दो मूल-उत्पादक-तत्त्व तो 'पुरुष' तथा 'स्त्री' है। इन तत्वों का सयोग 'विवाह' कहाता है। शुक्र-कण तथा रज कण का जो पारस्परिक स्वाभाविक आकर्षण है वही मानव-जीवन में 'प्रेम' है। जिस प्रकार इन दोनों उत्पादक-तत्वों के सयोग से नव-जीवन प्रारम्भ होता है इसी प्रकार दम्पती के पारस्परिक प्रेम से ही 'गृहस्थ' चलता है। इन दोनों परस्पर विरोधी तत्वों के मिलने से ही प्राणि-जीवन में नवीनता आती है, इसी प्रकार समाज के सगठन में पुरुष तथा स्त्री दोनों के सहयोग से मानव-समाज की 'उन्नति' हो सकती है।

पुरुष स्त्री की तरफ खिचता है, स्त्री पुरुष की तरफ खिचती है। यह अनुभव विश्व-व्यापी है। इस में कुछ बुरा भी नही, यह सृष्टि का नियम ही है, इस के बिना सृष्टि ही नही चल सकती। इसीलिये शास्त्र ने विवाह की आज्ञा दी है।

विवाह एक बन्धन है परन्तु जब तक इस बन्धन में प्रेम के तन्तु ओत प्रोत हैं तब तक यह बन्धन भी मोक्ष से बढ़ कर है। प्रेम एक आग है। भोले गृहस्थी नहीं समझते कि प्रेम की आग को किस प्रकार सुलगती रखा जाय। वे पतंग की तरह दीप शिखा पर प्राण न्यौछावर कर देना जानते हैं—कविता के अर्थों में नहीं, किन्तु मोटे अर्थों में। विवाह के बाद स्त्री-पुरुष दोनों कामाग्नि को प्रचण्ड कर उस में कूद पड़ते हैं। उन्हें पता नहीं होता कि प्रचण्ड लपटों के बाद आग शान्त हो जाती है, कुछ ही देर में राख का ढेर लग जाता है। यह सच है कि स्त्री तथा पुरुष एक दूसरे के भूखे होते हैं परन्तु यह भी सच है कि भूखा सदा ज्यादह खा जाता है। ज्यादह खाने वाले का मेदा बिगड़ जाता है, वह भूख लगने की दवाइयाँ खाने लगता है। दवाइयों से नकली भूख जागती है, परन्तु नकली भूख से कौन कितने दिनों तक जी सकता है? ज्यादह खाने से कुछ दिनों में खाना ही मुश्किल हो जाता है। विषय भोग में बह जाने वाले भी विषय-भोग के काम के नहीं रहते। भूख का सब से बड़ा शत्रु ज्यादह खाना है, प्रेम का सब से बड़ा शत्रु विषय में लिप्त हो जाना है। भूखे को सब से पहले ग्रास में जो आनन्द आता है वही नवदम्पती को विषय में आता है, भूखे को ज्यादह खाकर अपचन हो जाता है, नया जोड़ा भी संयम तोड़ कर विषय में लिप्त हो जाने से ठण्डा पड़ जाता है। एक दूसरे के प्रति नूतन स्नेह को लेकर थोड़े ही दिनों में ठण्डे हो जाने

वाले स्त्री-पुरुषों की गणना की जाय तो सहज समझ पड़ जाय कि प्रेम की विषय-भोग के साथ कितनी शत्रुता है !

विवाह रूपी रथ को चलाने के लिये उस की धुरी में प्रेम रूपी तेल पड़ता रहना चाहिये, नहीं तो रगड़ पैदा हो जाती है, और यह गाड़ी रास्ते में ही खड़ी हो जाती है। मूर्ख दम्पती समझते हैं कि विषय-भोग से ही गृहस्थ सुखी रह सकता है। उन्हें मालूम नहीं कि विषय-भोग प्रेम का भद्दे-से-भद्दा रूप है। असली प्रेम आत्मा से सम्बन्ध रखता है, शारीरिक-प्रेम आध्यात्मिक-प्रेम की केवल छाया है, यह उस की वास्तविकता को नहीं पा सकता। जिस प्रकार का जीवन नवयुवक विवाह के बाद व्यतीत करते हैं वह तूफान का जीवन होता है। उस तूफान में उन्हें आगा-पीछा कुछ नहीं सूझता, तूफान निकल जाने पर साँस के लिये हवा का एक झोंका मिलना भी मुश्किल हो जाता है। शुरू-शुरू में मानो प्रेम उमड़ा पड़ता है, बाद को प्रेम की एक बूँद भी नहीं बच रहती। वे कहने लगते हैं कि 'प्रेम' वस्तु ही ऐसी है। परन्तु यह उन की भूल है। डाक्टर लूथर एच गुलिक महोदय 'डायनेमिक्स ऑफ मैनहुड' नामक पुस्तक में लिखते हैं — "यह बिल्कुल सम्भव है कि एक पुरुष किसी स्त्री से विवाह करे और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाय त्यों-त्यों उसे अनुभव हो कि उस की पत्नी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक होती जा रही है, कोमलता तथा सौन्दर्य में बढ़ती जा रही है, लता की तरह अपने प्रेम के तन्तुओं से उस के हृदय

को चारों तरफ से आवेष्टित करती जा रही है। उसे अनुभव होने लगता है कि स्त्री-पुरुष का शारीरिक आकर्षण यद्यपि आवश्यक है तथापि वास्तविक प्रेम का आधार कोई ऊँची ही वस्तु है। उसे अपनी पत्नी की बातों में आनन्द आने लगता है, उस का दृष्टि-बिन्दु एक नवीन सौन्दर्य को उत्पन्न कर देता है। वह अपनी पत्नी के लिये कोई नई चीज लाता है—नई पुस्तक लाता है, या नया चित्र ही ले आता है— इन सब से उस के हृदय में जो विचार पहले नहीं उठे थे वे उसे अपनी पत्नी से सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है क्योंकि पुरुष प्रत्येक वस्तु को पुरुष की तथा स्त्री, स्त्री की दृष्टि से देखती है। इस प्रकार दोनों का प्रेम बढ़ता चला जाता है। प्रेम के इस स्वरूप को समझने वाले थोड़े हैं— वे विषय भोग को ही प्रेम समझते हैं, परन्तु वास्तव में प्रेम मर्यादित वस्तु नहीं है, वह रात्रि के पापमय एकान्त में ही नहीं परन्तु चौबीसों घण्टे प्रकट हो सकता है और इसी प्रकार का प्रेम टिकने वाला भी होता है।'

पुरुष अपनी बेवकूफी से समझता है कि स्त्री का सन्तोष काम भाव में ही होता है। उसे मालूम नहीं कि स्त्री से बातचीत क्या करे, उस के साथ काम चर्चा को छोड़ कर २४ घण्टे किस तरह बिताये? साथ ही हमारा समाज इतना गन्दा है कि प्रत्येक पुरुष के दिमाग में भर दिया जाता है कि स्त्री का सन्तोष काम-भाव से ही हो सकता है। स्त्री के विषय में ये गन्दे विचार इतना घर कर गये हैं कि गृहस्थी आवश्यकता ही नहीं समझता

कि अपनी स्त्री की इच्छा को भी जाने। गृहस्थियों पर काम का भूत इतना सवार नहीं रहता जितना इन विचारों का भूत। काम से प्रेरित हो कर नही, परन्तु इन विचारों से प्रेरित होकर गिरने वालों की सँख्या कही अधिक हे। प्रत्येक गृहस्थी को स्मरण रखना चाहिये कि विषय-वासना स्त्री में सदा नहीं होती, वह कभी ही उठती है। स्त्री की इच्छा क बिना पुरुष का उसे हाथ लगाना भी बलात्कार है। अनियमित विषय-भोग से प्रेम नष्ट हो जाता है। काम-चर्चा को छोड कर अपनी पत्नी के साथ २४ घण्टे बिताना प्रत्येक गृहस्थी को सीखना चाहिये, जैसे अपने साथियों के साथ पुरुष समय बिता सकता है वैसे अपनी स्त्री के साथ क्यों नही बिता सकता। चाहे स्त्री पढी-लिखी हो, चाहे न हो, प्रत्येक पुरुष को अपनी स्त्री के साथ समय बिताना सीखना चाहिये, ऐसे उपाय निकालने चाहियें जिन से समय बिताया जा सके। तभी उन मं स्थिर प्रेम उत्पन्न हो सकता है।

विषय मे लिप्त हो जाने से मनुष्य उस से भी हाथ धो बैठता है। इस से स्त्री-पुरुष का एक दूसरे से जी ऊब जाता है, कभी-कभी घृणा भी पैदा हो जाती है, जीवन शून्य, आत्म-हीन हो जाता है। विवाह-बन्धन मे पड़ने से पहले प्रत्येक दम्पती को डाक्टर कोवन की निम्न पंक्तियाँ अवश्य पढ लेनी चाहियें —"नई शादी कर के पुरुष तथा स्त्री विषय-भोग की दलदल में जा धँसते है। विवाह के प्रारम्भ के दिन तो मानो नैतिक व्यभिचार के दिन होते है। उन दिनों में ऐसा जान पडता है जैसे विवाह

जैसी उच्च तथा पवित्र संस्था भी मानो मनुष्य को पशु बनाने के लिये ही गढ़ी गई हो। ऐ नव विवाहित दम्पती! क्या तुम समझते हो कि यह उचित है?— क्या इस प्रकार तुम्हारी आत्मा नहीं गिरती?—क्या विवाह के पर्दे में छिपे इस व्यभिचार से तुम्हें शान्ति, बल तथा सन्तोष मिल सकते हैं?—क्या इस व्यभिचार के लिये छुट्टी पाकर तुम में प्रेम का पवित्र भाव बना रह सकता है? देखो, अपने को धोखा मत दो। विषय-वासना में इस प्रकार पड़ जाने से तुम्हारा शरीर और आत्मा दोनों गिरते हैं, और प्रेम! प्रेम तो, यह बात गाँठ बाँध लो, उन लोगों में हो ही नहीं सकता जो संयम-हीन जीवन व्यतीत करते हैं। नई शादी के बाद लोग विषय में बह जाते हैं, इस तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता, परन्तु इस अन्धेपन से पति पत्नी का भविष्य — उन का आनन्द, बल, प्रेम—खतरे में पड़ जाता है। व्यभिचारमय जीवन से कभी प्रेम नहीं उपजता—संयम को तोड़ने पर सदा घृणा उत्पन्न होती है, और ज्यों-ज्यों जीवन में संयम-हीनता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों पति-पत्नी का हृदय एक दूसरे से दूर होने लगता है। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री को यह बात समझ लेनी चाहिये कि विवाहित होकर विषय-वासना का शिकार बन जाना, शरीर, मन तथा आत्मा के लिये वैसा ही घातक है जैसा व्यभिचार। स्त्री पुरुष के पारस्परिक रति भाव के लिये स्त्री की स्वाभाविक इच्छा का होना आवश्यक है और यह इच्छा ऋतु-धर्म के ठीक बाद ही होती है, फिर नहीं। ऋतु-धर्म

के बाद प्रत्येक स्वस्थ स्त्री को इच्छा होती है, यदि वह पति पर अपनी इच्छा किसी प्रकार प्रकट कर दे तभी पुरुष का स्त्री-सग होना चाहिये, अन्यथा नहीं, कभी नहीं ! इस के विपरीत यदि पति अपनी इच्छा, अथवा कल्पित इच्छा, पूर्ण करना अपना वैवाहिक अधिकार समझे, और स्त्री केवल पति से डर कर उस की इच्छा को पूर्ण करे तो परिणाम पुरुष के मस्तिष्क पर वैसा ही होगा जैसा हस्त-मैथुन का।"

'विवाह' और 'व्यभिचार'—वह भी 'पत्नी-व्यभिचार' ! इस शब्द को बोलते और लिखते ही शर्म आती है, परन्तु अफसोस ! यह शब्द सच्चा है, अत्यन्त सच्चा ! विवाह कर के तो पुरुष समझते है उन्हें व्यभिचार के लिये कानूनी पर्वाना मिल गया—अब दिन-रात व कुछ भी करें, उन्हें रोक सकने वाला कोई नहीं ! परन्तु वे भोले समझते नहीं कि सयम-हीन जीवन चाहे विवाह कर के बिताया जाय चाहे बिना विवाह के, ईश्वरीय नियमों के सन्मुख दोनों अवस्थाओं में वह व्यभिचार है, मनुष्य चाहे 'विवाह' शब्द की दुहाई दे कर अपनी आत्मा को धोखा देने की कितनी ही कोशिश क्यों न करता रहे ! जब मुकद्दमा बड़ी अदालत मे पेश होगा तब व्यभिचार के लिये समाज की आज्ञा ले लेना कुदरती कानूनों से छुटकारा नही दिला सकेगा। इच्छा न होते भी पत्नी-सग करना हस्त-मैथुन से भी बुरा है। हस्त-मैथुन में तो पुरुष अपनी ही तबाही करता है, पत्नी-व्यभिचार में वह उस पापी की तरह आचरण करता है जो आत्म-घात करता हुआ

दूसरे की भी निर्दयता-पूर्वक हत्या कर डालता है। जीवन-संगिनी अपनी पत्नी को विषय-वासना की तृप्ति का साधन-मात्र बना लेना संसार का सब से बड़ा पाप है और स्त्री के साथ किया गया सब से बड़ा अन्याय है। हस्त-मैथुन पाप है, वेश्यागमन भी पाप है, परन्तु जो पति अपनी पत्नी की इच्छा के बिना उस पर बलात्कार करता है वह इन सब पापों को एकत्र कर बैठता है—इसलिये पत्नी-व्यभिचार महापाप है। विवाह जैसी पवित्र-संस्था की ओट में यह महा पातक होता है इसलिये इस के परिणाम भी कम भयङ्कर नहीं हैं।

गृहस्थी जान-बूझ कर संयम तोड़ते हैं, इस से वे कैसे बचें? बचने का उपाय अत्यन्त सरल है। स्त्री को पशु न समझ कर उसे मनुष्य समझा जाय। यह अनुभव किया जाय कि जिस प्रकार पुरुष, समाज की तथा देश की घटनाओं पर विचार कर सकते हैं इसी प्रकार स्त्रियाँ भी इन विषयों में दिलचस्पी ले सकती हैं। वे पुरुषों के ही समान हैं, पुरुषों की साधन-मात्र नहीं हैं। स्त्रियों में जहाँ यह भावना उठेगी वहाँ संयम स्वयं आ जायगा। इस समय स्त्री का स्थान पुरुष के जीवन में उस की काम-वासना को तृप्त करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है, पुरुष स्त्री के निकट आता ही काम-भावों के सिवाय कुछ नहीं सोच सकता। जब पुरुष तथा स्त्री किसी एक विषय पर बातचीत ही नहीं कर सकते, दोनों की प्रगति अलग-अलग, दोनों की मानसिक रचना अलग-अलग, दोनों का क्षेत्र अलग अलग, तब वे मिल कर यही तो बात करेंगे

जो दोनों कर सकते हैं। यदि दोनों, जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाओं में समान हिस्सा ले सकें, साथ-साथ बैठ कर भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार कर सकें, इकट्ठे काम कर सकें तो स्त्री-पुरुष की एक दूसरे के प्रति जो स्वाभाविक आकाँक्षा होती है वह पूरी होती रहे और विषय-भोग ही स्त्री-पुरुष के एक लेवल पर आने का एकमात्र माध्यम न रहे। प्रत्येक पति का कर्तव्य है कि अपनी पत्नी की रुचि अपने दैनिक कार्यों में उत्पन्न करे, उस में देश तथा समाज की घटनाओं पर स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति पैदा करे, उसे समाज का एक अंग बनाने की कोशिश करे। यदि ऐसा न होगा, स्त्री को पर्दे की चीज समझा जायगा, उसे चिड़िया और बुलबुल बना कर उस के साथ खेलने के समय ही उसे पिंजड़े में से निकाला जायगा तो गृहस्थ भी पाप का गढा बना रहेगा, जैसा कि इस समय बना हुआ है।

विषय में ज्यादह फँसावट का कारण समाज में फैले हुए कई झूठे विचार भी हैं। हरेक गृहस्थी को उस के दोस्त यह समझाने की कोशिश करते हैं कि स्त्री काम-भाव को पसन्द करती है। इस झूठी बात के सिवा स्त्री के विषय में उसे न कुछ पता ही होता है, न बताया ही जाता है। वह समझता है कि यदि वह यह सब-कुछ न करेगा तो स्त्री उसे नपुँसक समझेगी, उस से घृणा करेगी। उसे बतलाया जाता है कि स्त्री के लिये पुरुष का पुरुषत्व यही है—बस, और कुछ नहीं! जैसा पहले कहा गया, इन 'विचारों' का भूत पुरुष को जितना डिगने की तरफ ले जाता

है उतना 'काम' का भूत नहीं। कौन पुरुष है जिस पर काम का भूत सदा सवार रहता हो, परन्तु कौन पुरुष है जो इन झूठे, गन्दे, सत्यानाशी विचारों के चक्कर में आकर अपने ऊपर काम के भूत को सवार न कर लेता हो? स्त्री के विषय में इस प्रकार की धारणा रखना उस की आध्यात्मिकता का तिरस्कार करना है। पुरुष तथा स्त्री दोनों को समझ रखना चाहिये कि काम का भूत न पुरुष पर ही सवार रहता है, न स्त्री पर ही, झूठे फैले हुए विचारों से ही दोनों इस भूत के शिकार हो रहे हैं और एक दूसरे की आत्मिक उन्नति में सहायक होने के बजाले एक दूसरे को गिराने में बढ़-चढ़ कर हाथ ले रहे हैं।

नवम अध्याय

'इ न्द्रि य - नि ग्र हः'

[ग. वेश्या व्यभिचार]

विवाह सम्बन्ध क अतिरिक्त स्त्री पुरुष का सम्बन्ध व्यभिचार कहाता है। आत्म-व्यभिचार तथा पत्नी-व्यभिचार की तरह यह भी जान-बूझ कर किये आत्म-पतन में गिना जाता है क्योंकि इस म भी मनुष्य जानता-बूझता गढे मे कूद पड़ता है। इस समय हमारा समाज कुत्सित वासना की दुर्गन्ध क रौरव नरक मे पड़ा सड़ रहा है। स्त्री को काम-क्रीड़ा की कठपुतली समझा जाता है—पुरुष जब चाहे उस से खेलता है। भोग और लालसा की वेदी पर स्त्री का सतीत्व नित्य बलि चढ़ाया जाता है। नारी के प्रति उच्च-विचार उपहास की वस्तु समझे जाते है। कहने को कितना ही क्यों न कहा जाय कि इस समय पाश्चात्य-जगत् में स्त्री की स्थिति पुरुष के समान होती जा रही है परन्तु जब तक पूर्व-पश्चिम—कहीं भी समाज के मस्तक पर वेश्यावृत्ति के कलङ्क का टीका विद्यमान है तब तक वह समाज गिरा हुआ है, समस्त स्त्री-समाज के घोर अपमान का अपराधी है। इस समय भारत में ५ लाख से अधिक वेश्याएँ हैं जिन की वार्षिक आय मिला कर लगभग पौन अरब रुपया है। 'न स्वैरी स्वैरिणी कुत' की

साभिमान घोषणा करने वाले अश्वपति कैकय के देश की आज यह दुर्दशा है ! क्या उस महीपति की आत्मा इस देश की दशा को देख कर गर्म आहें नहीं भर रही होगी ?

इस पतन का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?—इस का प्रारम्भ होता है समाज द्वारा स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों से ! यदि कोई नर-पिशाच बलात्कार से भी किसी अबला का सतीत्व अपहरण कर ले तो उस निर्दोष अबला को समाज में से धक्के देकर बाहर निकाल दिया जाता है, परन्तु वह पापी पहले की तरह ही दनदनाता हुआ अपने पैसे के जोर से समाज के वक्ष-स्थल को पसलियों के नीचे कुचलता चला जाता है। वह अबला क्या करे ?—क्या खाये ?—क्या पहने ?—कहाँ रहे ? दुःखों की सताई, आफत की मारी, समाज के अन्याय-पूर्ण अत्याचारों से पीड़ित होकर वह झुँझला उठती है, लज्जा के आवरण को ताक में रख देती है, क्योंकि समाज उसे चुनौती दे-दे कर कहता है—'तुम्हारे लिये यही रास्ता है, तुम पीछे कदम नहीं रख सकती' ! अनुभव उसे सिखा देता है कि जो लोग माँगने से पैसा तक नहीं निकालते वही नराधम अपनी पाशविक काम पिपासा की तृप्ति के लिये खजाना लुटा देते हैं ! वह बालिका जो किसी घर का आभूषण बनती, जिन्हीं पुत्र-रत्नों की जननी, समाज से ठोकरें खाकर चौराहे में अपने शरीर को बेचने के लिये बैठ जाती है मानो घृणित-से-घृणित कृत्य कर के अन्यायी समाज का इन्तकाम ले रही हो।

भारत में वेश्यावृत्ति का सम्बन्ध विधवाओं की दिनों-दिन बढ़ रही सख्या से अत्यन्त घनिष्ठ है। इस अभागे देश में विधवाओं की सख्या २॥ करोड से अधिक है। यदि भारत में स्त्रियों की सख्या १५ करोड मान लें तो मानना पडेगा कि यहाँ प्रत्येक ६ स्त्रियों में १ विधवा है। आयु का एक-एक पल दुराचार में व्यतीत करने वाले भी इन विधवाओं से, जिन में से हजारों ने पति के दर्शन तक नहीं किये होते, आशा रखते हैं कि वे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहें। धन्य हैं इस देव-भूमि की विधवाएँ जो, पति-दर्शन हुए हों या न हुए हों, विधवा हो कर पर-पुरुष के विचार को भी मन में नहीं लाती। उन्ही के सतीत्व से इस भूमि में अब तक भी कुछ दम है। परन्तु विधवाओं पर यह कैद लगा कर यदि पुरुष भी उन पर बुरी नजर न उठाते तभी तो वे बच सकतीं! वे विवाह न करें, और ये उन पर अपना जाल फैलाने से बाज भी न आयें तो व्यभिचार फैलने के सिवाय और परिणाम ही क्या हो सकता है?

इस के अतिरिक्त विधवाओं के साथ बर्ताव क्या होता है? एक समृद्ध पुरुष की स्त्री जो पति के जीते समय रानी थी, सारे घर पर राज करती थी, उस के मरते ही घर में दासी से बुरी हो जाती है। जिसे खाने-पीने की कमी न थी वह सूखे चनों को मोहताज हो जाती है। इस घृणित व्यवहार से, इस आर्थिक समस्या से छुटकारा पाने की चाह यदि किसी अबला को गिरा देती है तो उस के पाप का उत्तर-दायित्व समाज के सिर है, क्योंकि

समान अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाता परन्तु उस अबला को गढ़े में गिरा कर उस का पालन करने के लिये तैयार रहता है। यह अपने हाथों पाप के बीज को बोना नहीं तो क्या है?

स्त्री चारों तरफ से समाज की सताई हुई ही इस जघन्य कृत्य में पड़ सकती है। वह अपने पापी पेट की खातिर इस नरक में कूद पड़ती है। समाज अपने व्यवहार को बदलने की अपेक्षा इस पाप को पालना ज्यादह पसन्द करता है, तभी यह पाप पल रहा है, नहीं तो कोई वेश्या ऐसी न होगी जिसे अपने पेशे से तीव्र घृणा न हो। 'चाँद' के वेश्या-अंक में उस के योग्य सम्पादक लिखते हैं—"एक युवती वेश्या ने एक बार हमें एक पत्र लिखा था, जिस का आशय इस प्रकार है—क्या आप समझते हैं कि अनेक पुरुषों के साथ शयन करने से हमें बिल्कुल दुःख नहीं होता? हमारे भी हृदय हैं और उस हृदय में एक प्रकार की तीव्र पिपासा है, वह क्या इस प्रकार के पतित जीवन से शान्त हो सकती है? हम तो पैसे से खरीदी जाने वाली काम की मूर्तियाँ हैं—एक सुन्दर युवक को हम प्रेम करती हैं परन्तु एक धनी कुत्सित वृद्ध के लिये हम उस के संग-सुख का आनन्द नहीं मिलता। हमारा जीवन भयंकर अग्नि-कुण्ड के समान है।'

वेश्या-वृत्ति का परिणाम क्या होता है?—इस पर माननीय मिस्टर डा० कुट ने यूँ लिखा है—"कल्पना करो कि कोई व्यक्ति ऐसे स्थान पर खड़ा हो जाय जहाँ से सब लोग आते-जाते हों, वहाँ खड़ा होकर यह कहे कि यदि पैसा मिलता

तो उसे जो-कुछ खाने को दिया जायगा वह खा लेगा। फिर कल्पना करो कि सैंकड़ों मन-चले नौजवान उस की बेवकूफी की तारीफ करते हुए उसे खाने को ला-ला कर देने लगें, एक आदमी ऐसी चीज ला दे जो उसे पसन्द हो, दर्जनों लोग ऐसी चीज लाएँ जिसे खाते ही उल्टी आती हो, और बीसियों ऐसी चीज लाएँ जिस की उसे जरूरत ही न हो या उस के शरीर में गुंजाइश न हो। पेट पर यह अत्याचार दिनों तक, महीनों तक और वर्षों तक होता रहे। दुनियाँ में कौन-सा आदमी है जिस का पेट इस दुरुपयोग से बीमारियों का घर नहीं बन जायगा? खाने में थोड़ा-बहुत अनियम कर देने से ही पेट खराब हो जाता है, अपचन की शिकायत हो जाती है, फिर जिस व्यक्ति का चित्र ऊपर खींचा गया है उसे जो बीमारी होगी उस का नाम तो भगवान् ही जाने क्या होगा! बस, यह समझ रखना चाहिये कि उत्पादक-अंगों की रचना पेट से भी कोमल है और यदि उन का दुरुपयोग किया जायगा तो उन की बीमारी इतनी भयकर होगी जिस का कोई ठिकाना ही नहीं। अधिक विषयासक्ति से ही प्रदर, गर्भ का गिर जाना आदि अनेक उपद्रव उठ खड़े होते हैं, और फिर जब कोई स्त्री पैसे मिलने पर किसी को भी अपने पास आने दे, एक-ही दिन-रात में कईयों को आने दे, जिन की वह रत्ती-भर भी पर्वा नहीं करती या जिन से वह पूरी तौर पर घृणा करती है उन सब को अपने पास आने दे तो उस के गुह्य अंगों में विष भर जाना स्वाभाविक है, जो

परन्तु स्वभावों की अनुकूलता को, योग्यता की समानता को देखना वे आवश्यक नहीं समझते। इस से बढ़ कर दुःख की बात क्या हो सकती है कि विवाह जैसी घटना, जो जीवन में एक बार ही होती है, जिस पर मानव-जीवन का भविष्य निर्भर है, हो जाती है, और उस का जिन से सब-से-ज्यादह सम्बन्ध है उन से एक अक्षर तक नहीं पूछा जाता! माता पिता आपस में ही सब तय कर डालते हैं, मानो लड़के-लड़की की शादी क्या होगी, माता-पिता की शादी हो रही हो! यह अवस्था गृहस्थों को अशान्त बना देती है, वे सीधे मार्ग से न चल कर उलटे मार्ग से चलने लगते हैं। इसी दुर्व्यवस्था को रोकने के लिये प्राचीन काल में 'स्वयंवर' होता था—माता पिता की देख रेख में उन की संरक्षा में, उन की सलाह से, लड़की लड़के को वरती थी, और लड़का लड़की को स्वीकार करता था। इसी प्रथा का फिर से प्रचार होना चाहिये। देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने, विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार को रोकने तथा गुण-कर्मानुसार विवाह की प्रथा को चलाने से ही वेश्यावृत्ति के प्रश्न को हल किया जा सकता है।

दशम अध्याय

'इन्द्रिय-निग्रह'

[घ स्वप्न दोष]

अस्वाभाविक जीवन पर विचार करते हुए पहले लिखा गया था कि इसे दो भागों में बाँ ता है

कर प्रथम जानना और बिना

बूझ कर

जिन पर

है।

अध्यायों पाप

मनुष्य

सकता है,

इच्छा

उस से कुछ हानि नहीं होती। कम-से-कम जिस स्वप्न-दोष के पीछे सिर-दर्द, भारीपन आदि न हों वह मनुष्य-शरीर के लिये स्वाभाविक है, फिर चाहे वह सप्ताह में एक बार हो या दो बार। जिस के पीछे मनुष्य अपने को खोखला-सा, थका हुआ-सा अनुभव करे वह चाहे महीनों में एक बार ही क्यों न होता हो, अस्वाभाविक है, रोग का सूचक है। दूसरे लोगों का कथन है कि स्वप्न-दोष चाहे किसी प्रकार भी क्यों न हो, जीवन में चाहे केवल एक बार क्यों न हो, अस्वाभाविक है, रोग का सूचक है, स्वाभाविकता का कभी नहीं, किसी प्रकार भी नहीं!

इन दोनों विचारों में से पिछला विचार ही ठीक है। प्रकृति में इतनी फिजूलखर्ची नहीं हो सकती कि वह जीवन के सार भाग को इस प्रकार लुटाने लगे। प्राणी का शरीर अटकल से बना हुआ नहीं है। जिन निस्सार पदार्थों की शरीर को आवश्यकता नहीं होती उन्हें भी शरीर से निकालने के लिये खास-खास रास्ते बनाये गये हैं, ताकि जब चाहें तब उन्हें शरीर से खारिज कर दें। मलाशय तथा मूत्राशय म[illegible] [illegible]। होता रहता है और प्राणी अपनी सुविधानुसार [illegible] । हैं

नहि कोई बाजार बैठा बैठा [illegible] [illegible]

में पड़ा पड़ा आजमाने दे[illegible]

कोई बीमारी है, और [illegible]

मूत्र भी मनमाने नहीं।

सोते या जागते किसी

क्या कभी स्वाभाविक हो सकता है? मल-मूत्र का तो वेग होता है, इन के वेग को रोकना कठिन होता है, फिर भी इन का यूँ ही निकल जाना बीमारी है, वीर्य का तो, जब तक मनुष्य अपने को विषय-धारा में बहा न दे, कोई ऐसा वेग ही नहीं होता, फिर इस का यूँ ही निकल जाना बीमारी नहीं तो क्या है? असल में यह बात ठीक मालूम पडती है कि मृत-देह की चीरा-फाड़ी करने वाले जीवित-देह के विषय में कुछ नहीं जानते, नहीं तो किसी डाक्टर को यह कहने का साहस न होता कि स्वप्न-दोष किसी अवस्था में स्वाभाविक भी है।

प्रश्न हो सकता है कि, फिर, कई वार स्वप्न-दोष के बाद सिर-दर्द, भारीपन थकावट आदि क्यों नहीं होते, यही नहीं, कई लोग तो स्वप्न-दोष के बाद हल्का-सा अनुभव करते हैं, उन की बेचैनी दूर-सी हुई जान पड़ती है — इन दोनों बातों का क्या कारण है?

शरीर-शास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी को ज्ञात होना चाहिये कि शरीर में एक आश्चर्य-जनक जीविनी-शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक क्षत का और रोग का स्वयं इलाज करती रहती है। औषधियों का काम उस सजीविनी-शक्ति को केवल सहायता पहुँचाना है। हृष्ट-पुष्ट लोगों के शरीर के किसी भाग से रुधिर बहने लगता है, परन्तु उन्हें मालूम नहीं होता कि चोट कब लगी थी। कभी-कभी तो मनुष्य अपने शरीर पर खुरण्ट देख कर आश्चर्य करने लगता है, क्योंकि उसे मालूम ही नहीं होता

कि वह कभी स्वप्न के रूप में भी था। शरीर की सञ्जीविनी शक्ति उस के पता लगने से भी पूर्व उसे ठीक कर छोड़ती है। देर-देर से होने वाले स्वप्न-दोषों से, जिन का कोई बुरा असर दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार की हानि शरीर को पहुँचती है। शरीर की सञ्जीविनी-शक्ति उस थोड़ी सी हानि की पूर्ति कर देती है और मनुष्य समझने लगता है कि उसे कुछ नुकसान ही नहीं पहुँचा। यह मनुष्य की मूर्खता है। असल बात यह है कि हानि पहुँची, और अवश्य पहुँची, परन्तु सृष्टि की संहारक शक्तियों पर रचनात्मक शक्तियों ने विजय पाया। वीर्य के एक बिन्दु का नाश भी शरीर के लिये हानि-कारक है, यद्यपि जब तक यह हानि छोटे रूप में होती है, शरीर की सञ्जीविनी-शक्ति उस हानि की स्वयं पूर्ति कर लेती है। इसलिए स्वप्न-दोष, जिस में अनजाने वीर्य-नाश हो जाता है, अस्वाभाविक तथा रुग्ण अवस्था ही है, स्वाभाविक तथा स्वस्थावस्था नहीं।

'स्वप्न-नाश से कई लोग बेचैनी दूर-सी हुई अनुभव करते हैं'—इस का भी खास वजह है। स्वस्थ पुरुष स्वप्न-दोष के बाद कोई शारीरिक हानि अनुभव न करे यह तो सम्भव है, परन्तु वह इस से 'बेचैनी दूर-सी हुई' अनुभव करे यह असम्भव है, महा असम्भव! हाँ, अस्वस्थ पुरुष, ऐसा पुरुष जिस ने शारीरिक अथवा मानसिक अतिक्रिया से अपने अन्दर काम-भाव उत्तेजित कर लिया हो, जिस ने गन्दे विचारों को मन में ला-ला कर स्नायु-तन्तुओं में तनाव उत्पन्न कर लिया हो, जो मनोविकारों से उत्तेजित हो उस

हो परन्तु काम-वासना को पूर्ण न कर सका हो, ऐसा पुरुष ही स्वप्न-दोष से 'बेचनी दूर-सी हुई' अनुभव कर सकता है। और, ठीक भी है। उस ने अपने काम-तन्तुओं को कृत्रिम उपायों से उत्तेजित कर के उन में जो बेचैनी पैदा कर दी है वह इसी प्रकार तो दूर हो सकती है। जब काम-भाव की गर्मी पैदा कर दी गई तो उस का निकास भी किसी न-किसी प्रकार होगा— चाहे जान-बूझ कर, चाहे बे-जाने-बूझे, नहीं तो सारा स्नायु-चक्र अस्त-व्यस्त हो जायगा। परन्तु इस प्रकार क्या सचमुच बेचैनी दूर हो जायगी ?—कभी नहीं! इस प्रकार कुछ क्षणों के लिये बेचैनी मिट कर दुगुने और तिगुने वेग से उठ खड़ी होगी और कुछ मिन्टों के बेचैन और दीवाने को उम्र भर का बेचैन और उम्र भर का दीवाना बना देगी क्योंकि शक्ति-हीनता की बेचैनी सब से बड़ी बेचैनी है। स्वप्न-दोष से किसी की बेचैनी दूर हो जाती है, समझना, कुछ बेवकूफों का चलाया हुआ वहम है—इस से बेचैनी दूर नहीं होती, बढ़ती है!

इसलिये यह मानना चाहिये कि स्वप्न-दोष का शरीर के स्वाभाविक विकास में एक क्षण भर के लिये भी स्थान नहीं है। स्वप्न-दोष शरीर की रुग्णावस्था है। शायद यह कथन सुन कर कई युवक चौंक उठें और पूछ बैठें —'तो क्या संसार के किसी कोने में कोई ऐसा पुरुष है जिसे एक बार भी स्वप्न-दोष न हुआ हो ?' इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है — 'यदि ऐसा पुरुष संसार में है नहीं, तो हो सकता है, और

यदि कोई पुरुष पूर्ण-स्वस्थ है तो वह ऐसा ही है।' साधर यह उत्तर अत्यन्त कठिन है अत इसे समझाने के लिये आवश्यक है कि पूर्ण स्वस्थ पुरुष के जीवन के स्वाभाविक विकास का एक खाका खींच दिया जाय जिस से स्पष्ट हो जाय कि उस के जीवन में स्वप्न-दोष का कोई स्थान है भी या नहीं।

कल्पना करो कि एक सात वर्ष का बालक है जो पैत्रिक कुसंस्कारों से सर्वथा मुक्त है, पवित्र तथा शुद्ध परिस्थितियों में रहता है। वह नियमित भोजन से बचता, शरीर तथा मन को पवित्र रखता, अच्छे साथियों से मिलता-जुलता और ब्रह्मचर्य के सब नियमों का विधिवत् पालन करता है। ऐसे बालक को जो वर्तमान सभ्यता के कलुषित सम्पर्क से बचा हुआ है दस, बीस, पचास, सत्तर या सौ वर्ष—जितनी देर तक भी वह जीवित रहे—एक बार भी स्वप्न-दोष नहीं होगा। प्रकृति की ऐसी ही रचना है, परमेश्वर का ऐसा ही विधान है। इस मार्ग से अणु-मात्र भी विचलित होने वाले को दैवीय शासन के भग करने का दण्ड मिलता है। हमारी कल्पना के जगत् का यह बालक आदर्श बालक होगा। वह मन में कुविचार का बीज तक न पड़ने देगा और इसीलिये १८ वर्ष की आयु में, कुमारावस्था आ जाने पर भी, उसे काम-वासना का अनुभव तक न होगा। उस के शरीर की रचना में इस आयु में वीर्य का 'अन्तःस्राव' ही हो रहा होगा। और यह 'अन्तःस्राव' अन्दर-ही-अन्दर उस के शरीर में रस होगा, उस का गुप्तांग कभी तर गीला ही होगा।

उसे, जानते हुए या अनजाने, किसी प्रकार के वीर्य-स्राव का अनुभव ही नहीं होगा। वह इस घटना से ही अनभिज्ञ होगा। कुमारावस्था के अनन्तर, जब वह पचीस वर्ष के लगभग होने लगेगा, युवक हो जायगा, तब 'बहि स्राव' स्वय प्रकट होकर शुक्राशय को भरने लगेगा। पचीस वर्ष की अवस्था में बहि स्राव का प्रकट होना उस के शरीर के स्वाभाविक विकास का परिणाम होगा, इस के लिये मानसिक उत्तेजना की आवश्यकता न होगी। इस आयु में 'बहि स्राव' का प्रकट होना ऐसा ही स्वाभानिक होगा जैसा पकने पर फल का शाखा से टपक पड़ना। अब तक जो शारीरिक वृद्धि हुई उस का यह अवश्यम्भावी परिणाम होगा। इस स्थल पर यह न भुलाना चाहिये कि 'बहि स्राव' केवल अन्त स्राव + शुक्र-कीटाणु का ही नामान्तर है। इन शुक्र-कीटाणुओं मे स्वाभाविक गति होती है। यही गति, हमारे काल्पनिक पूर्ण-स्वस्थ पुरुष में काम-भाव के उत्पन्न होने का भौतिक कारण होती है। शुक्र-कीटाणुओं की गति भौतिक गति है, काम भाव मानसिक गति है, दोनों का एक दूसरे के साथ कारण-कार्य का सम्बन्ध स्पष्ट है। जब काम-भाव इस प्रकार उत्पन्न होता है तब वह स्वाभाविक होता है, बन्ते हुए शरीर की एक आवश्यक अवस्था का द्योतक होता है, और इसीलिये आदर्श होता है। पचीस वर्ष की आयु के बाद उक्त पुरुष के सामने दो रास्ते खुले हो सकते हैं। यदि वह आजन्म ब्रह्मचर्य्य का जीवन बिताना चाहता हो तो उसे 'बहि स्राव' को शरीर में खपा लेने के रहस्य मय

मार्ग था, जिसे प्राचीन परिभाषा में 'ऊर्ध्वरेता' का मार्ग कहा जाता था और जिस का अभ्यास ऋषियों के आश्रमों—गुरुकुलों—में किया जाता था, अवलम्बन करना होगा और आस्तिक-ब्रह्मचारी के आदर्श को जीवन में घटाना होगा। 'बहि स्राव' को, अर्थात् शुक्र के उस भाग को जो शुक्राशय में आ पहुँचा है, शरीर में रचा लेना एक क्रिया थी, जिस का अभ्यास कोई विरला ही करता था। 'बहि स्राव' में एक नवीन प्राणी को उत्पन्न करने की शक्ति है, इसे यदि अपने अन्दर रचाया जा सके तो इस के द्वारा पुरुष के अपने शरीर तथा मन में भी नवीन शक्ति उत्पन्न हो सकती है। ब्रह्मचर्य का अभिप्राय वीर्य की भौतिक शक्ति को, भावना से, आध्यात्मिक शक्ति के रूप में बदल देना है। प्राणि-जगत् में काम-भाव एक अत्यन्त उग्र, उत्कट, शक्ति की धारा है जिसे पशु-पक्षी रूपान्तरित नहीं कर सकते, जिस से वे अपने जैसे दूसरे प्राणी ही उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु मानव-जगत् में इस प्रबल, वेगवती धारा को जहाँ नये प्राणी उत्पन्न करने में लगाया जा सकता है वहाँ, इस की दिशा बदल कर, इस की असीम शक्ति के बल से ही, आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश किया जा सकता है। नदी का जल प्रपात जल का जल ही तो है, परन्तु इसी जल को रूपान्तरित कर के विद्युत् का असीम भण्डार पैदा किया जा सकता है। वीर्य को नष्ट न किया जाय, उसे अन्दर-ही अन्दर रचाया जाय, तो वह भी जल के जल की तरह रूपान्तरित होकर विद्युत् की-सी शक्तियाँ उत्पन्न कर सकता

स मार्ग के अतिरिक्त दूसरा मार्ग भी पच्चीस वर्ष के बाद है। यदि वह पुरुष, जिस का हम चित्र खींच रहे है, म ब्रह्मचारी नहीं रहना चाहता तो वह विवाह करा सकता स प्रकार वह अपनी उत्पादक-शक्ति का उपयोग नवीन उत्पन्न करने में करेगा। विवाह में भी वह प्राकृतिक जीवन तीत करेगा। जिस प्रकार उस में कामेच्छा प्राकृतिक तौर से ' हुई, उसी प्रकार स्त्री-प्रसग की इच्छा भी उस में प्रकृति ही नियमित होगी। शुक्र-कीटाणुओं की स्वाभाविक गति से ने काम-भाव उत्पन्न हुआ, शुक्राशय के पूरा भर जाने से ी प्रसगेच्छा उत्पन्न होगी। उस का शुक्राशय जल्दी-जल्दी गा। उस ने काम-भाव को जगाने के लिये कभी अपने उत्तेजित करने का तो प्रयत्न किया ही नहीं—कामेच्छा तो में प्रकृति क नियमों के अनुसार शरीर की एक खास अवस्था । स्वय उत्पन्न होती है। क्योंकि वह शुक्रोत्पादक अवयवों उन की स्वाभाविक गति से चलने देता है, उन पर अप्राकृतिक । नही डालता, इसलिये उस के शरीर में 'अन्त स्राव' तो ही रहता है, परन्तु 'बहि स्राव' होकर शुक्राशय को भरने र्याप्त समय लगता हे। प्राणि-शरीर का स्वभाव है कि उसे अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में रखा जाय वह उन्ही के कूल बन जाता हे। शुक्रोत्पादक अवयव 'बहि स्राव' उत्पन्न ' है। यदि किसी को इस की जल्दी जल्दी आवश्यकता होती ो व भी जल्दी-जल्दी शुक्राशय को भरते रहते हैं, यदि

किसी को देर में आवश्यकता होती है तो वे भी धीरे धीरे काम करते हैं। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले आदर्श-व्यक्ति के लिये यह जो माना है कि वह अढ़ाई या तीन साल में एक सन्तान उत्पन्न करे इसलिये उस के उत्पादक अंग इस गति से काम करते हैं कि उस के शुक्राशय अढ़ाई साल में, या तीन साल में भरते हैं। शुक्राशय के भरने के समय को इच्छा पूर्वक घटाया या बढ़ाया जा सकता है। जल्दी जल्दी शुक्राशय के भर जाने का अभिप्राय यह है कि 'बहिःस्राव' बार बार निकले। 'बहिः-स्राव' जब भी निकलेगा 'अन्तःस्राव' में रुकावट डाल कर ही निकलेगा। 'अन्तःस्राव' की रुकावट का अभिप्राय शरीर की वृद्धि का रुकना है। अतः कुदृश्यों और कुविचारों से बार बार शुक्राशय को भर कर खाली होने में बहादुरी नहीं, बहादुरी है कुदृश्यों तथा कुविचारों की जड़ काट कर 'बहिःस्राव' न होने देने में, और 'अन्तःस्राव' में क्षण भर के लिये भी रुकावट न आने देने में। इस प्रकार काम भाव को अपने काबू कर लेने का नाम ही गृहस्थी का ब्रह्मचर्य है, और निस्सन्देह यह ब्रह्मचर्य ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य से भी कठिन है। गृहस्थी के लिये यही योग है क्योंकि योग 'निरोध' का ही दूसरा नाम है। जिस आदर्श व्यक्ति का हम ने चित्र खींचा है उस के समान निरोध करने वाला दूसरा कौन हो सकता है!

मैं मानता हूँ कि यह चित्र एक आदर्श व्यक्ति का है। संसार में ऐसा व्यक्ति, जिस का आन्तरिक विकास

उक्त रूप से हुआ हो, मिलना प्राय असम्भव है। परन्तु यह चित्र जान-बूझ कर खींचा गया है। इस का उद्देश्य केवल यह बतलाना है कि मनुष्य के स्वाभाविक विकास में स्वप्न दोष का कोई स्थान नहीं है। स्वस्थ व्यक्ति के जीवन में वीर्य के निकास का केवल एक ही उपाय है, और वह है जानते हुए निकास, अनजाने निकास का होना अस्वाभाविक तथा रुग्ण अवस्था का सूचक है। यदि पुरुष स्वस्थ रहना चाहे तो जानते हुए वीर्य का निकास भी केवल गृहस्थ-धर्म में, और वह भी तब, जब प्रकृति की माग हो, होना चाहिये। अस्वाभाविक, कृत्रिम उपायों से, भावावेशों में आकर ऐसा काम कर बैठना महा-भयकर पाप है।

परन्तु हमें आदर्श व्यक्तियो से काम नही पड़ता। जिन युवकों की जीवन समस्याओं को हम हल करना है व वंशानुगत रोगों से भी मुक्त नही होते। भगवान जाने उन के माता-पिता, दादा-पड़दादा तथा अन्य पूर्वजों ने किन-किन रोगों का सग्रह किया होता है। आज का बालक उन सब पूर्वजों के पापों की गठरी सिर पर लाद कर पैदा होता है। पैदा होने के बाद भी उस का पालन-पोषण स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार नहीं होता। बालक के पेट को उत्तेजक पदार्थों से भर देने में कोई कसर नहीं उठा रखी जाती, उसे गन्दगी मे खुला छोड़ दिया जाता है, आचार-भ्रष्ट, पतित साथियों के साथ बे-रोक-टोक खेलने दिया जाता है, ब्रह्मचर्य्य के एक-एक नियम को गिन गिन

कर खूब सावधानी से तोड़ा जाता है। यदि ऐसी गन्दी हुई परिस्थितियों में पल कर बालक १४-१५ वर्ष की आयु में ही स्वप्न-दोष की शिकायत करने लगें तो आश्चर्य की कौन सी बात है? जिस अस्वाभाविक जीवन में उन्हें रखा जाता है उस से उन में काम की प्रवृत्ति शीघ्र-ही जाग उठती है। पूर्ण स्वस्थ पुरुष के वीर्य-कोश बीस वर्ष की आयु में भी बिल्कुल खाली होते हैं, परन्तु यहाँ छोटे-छोटे बच्चों के वीर्य-कोश, बारह तेरह वर्ष की आयु में ही उन्मादक-अंगों के रस से भर जाते हैं। यह तो संसार का मोटा-सा नियम है। कोश जल्दी पुष्ट हो गए—छोटी आयु में ही अपना काम करने लगे—'बहि स्राव' भी जल्दी-ही निकलना शुरू हो गया। ज्यों-ज्यों कोश भरते गए, त्यों-त्यों स्राव भी बढ़ता गया। वीर्य कोश भर कर खाली हुए—फिर भरे, फिर खाली हुए—बस, स्राव-द्वार का सिलसिला जारी हो गया। सप्ताह में एक बार—दो दिन में एक बार—हर रोज—और एक रात में कई बार,—कोश के पैदा होने और पुष्ट होने का क्रम इस प्रकार मन में चलता रहता है। यह 'बहि स्राव' जितना बढ़ता है उतना ही 'अन्तः स्राव' घटता है, क्योंकि वास्तव में तो 'अन्तः स्राव' ही 'बहि स्राव' के रूप में प्रकट होता है, और कहीं उस में 'अन्तः स्राव + शुक्र-कीटाणुओं' का मेल ही 'बहि स्राव' है। 'अन्तः स्राव' के पूरा न होने से जो हानियाँ होती हैं वे स्वप्न-दोष के रोगी के चेहरे पर झलकने लगती हैं।

यह सब स्वीकार करते हैं कि वर्तमान सभ्यता की सन्तान प्राय सभी अस्वस्थ है। आदर्श, पूर्ण-स्वस्थ व्यक्ति से हम लोग कोसों की दूरी पर खड़े हैं—लक्ष्य से अत्यन्त अधिक विचलित हुए पड़े हैं। ऐसी अवस्थाओं में साधारण रूप से स्वस्थ कहे जाने वाले व्यक्ति के लिये क्रियात्मिक सलाह यही दी जा सकती है "जब रात को अनजाने किसी स्वप्न में काम-वश बहुत वार वीर्य नाश होने लगे तो उस से भारी हानि पहुँचती है। यदि दो या तीन सप्ताह में एक वार ही हो, और ऐसा होने पर कमजोरी के लक्षण न दिखाई देते हों, तो ज्यादह चिन्ता करने की जरूरत नही। परन्तु यदि सप्ताह में दो वार या इस से अधिक वार स्वप्न-दोष होने लगे तो उसे रोकने के लिये अवश्य हाथ पैर मारने चाहियें, नहीं तो इस का परिणाम स्नायु-शक्ति के लिये अत्यन्त घातक होगा। रोगी कमजोर तथा चिड-चिडा हो जायगा, उस का स्वास्थ्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।" यह सब-कुछ होते हुए भी यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि स्वप्न-दोष चाहे कितनी देर के बाद ही क्यों न हो सदा शरीर की अस्वाभाविक अवस्था का ही सूचक है, स्वाभाविक का कभी नहीं।

स्वप्न-दोष कैसे होता है? पहले-पहल उत्तेजना होती है, फिर कोई कामुकता का स्वप्न आता है, उसी स्वप्न में वीर्य-स्राव हो जाता है। वीर्य स्राव होते ही एक-दम आँखें खुल जाती हैं, आत्म-ग्लानि, असमर्थता, लज्जा और निस्सारता के भाव चारों तरफ से घेर लेते हैं। स्वप्न-दोष के बाद चित्त-वृत्ति का यही

मनोवैज्ञानिक निर्बलता है। कभी स्वप्न से उत्तेजना हो जाती है, कभी उत्तेजना से बुरा स्वप्न आने लगता है। उत्तेजना तथा स्वप्न दोनों वीर्य-स्राव से पहले होते हैं। यदि वीर्य-स्राव न हो तो कोई ज्यादह हानि नहीं होती। परन्तु यदि बुरे स्वप्न आने लगें तो अन्त में स्वप्न-दोष भी होकर ही रहता है, और यदि स्वप्न-दोष होने लगें तब तो नाजुक हालत आ पहुँचती है। धीरे-धीरे ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब बिना उत्तेजना के ही वीर्य-स्राव होने लगता है—बुरा विचार मन में आते ही स्वप्न-दोष हो जाता है, उत्तेजना होने भी नहीं पाती। बार-बार उत्तेजना होने का [illegible] परिणाम उत्तेजना का मिट जाना होता है। बस, इसी का नाम नपुंसकता है। परन्तु इतने पर भी बस नहीं होता। स्वप्न-दोष के रोगी के सम्मुख इस से भी भयंकर अवस्था आने वाली होती है। अब [illegible], रात को स्वप्न में ही नहीं परन्तु जागते हुए दिन को भी, उस का वीर्य स्खलित होने लगता है और वह बेचारा जीवन से निराश होकर दुःख की सिसकियाँ भरता हुआ अपनी आत्मा से पूछता है—'क्या मेरे बचने का कोई उपाय नहीं?'

पहले पहल स्वप्न-दोष का अनुभव कर बालक 'किंकर्तव्य-विमूढ़' सा हो जाता है। वह ज्यों ज्यों इसे रोकने की कोशिश करता है त्यों-त्यों इसे [illegible] दूर कर तो बहुत-सी [illegible] जाता है। अब इस के कारण उसे अनेक अन्य कमजोरियों के चिह्न [illegible] दिखाई देने लगते हैं तब तो उस की चिन्ता [illegible]

तक पहुँच जाती है। यदि बालक स्वभाव से धार्मिक प्रवृत्ति का है और समझता है कि उस ने जानते-बूझते कोई ऐसा काम नहीं किया जिस से उसे स्वप्न-दोष की शिकायत हो तब तो उस की चिन्ता सीमा को भी लाँघ जाती है। वह निस्सहाय अवस्था में चिल्ला पड़ता है—"मेरी साधनाओं का क्या फल, मेरे उपवासों का क्या फायदा ?" परन्तु उसे निराश होकर हिम्मत हार देने की अपेक्षा शिकायत के कारण का अनुसन्धान करना चाहिये। स्वास्थ्य के छोटे-छोटे नियमों के उल्लघन से कई विषम समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। इसलिये, हम यहाँ स्वप्न-दोष के कारणों तथा उस की चिकित्सा पर कुछ विचार करेंगे।

कारण तथा चिकित्सा

जैसा पहले कई वार दोहराया जा चुका है, अनजाने वीर्य का नाश हो जाना रोग की अवस्था का सूचक है। 'पूर्ण-स्वस्थ पुरुष मे कुमारावस्था के आने पर भी वीर्य-कोश खाली ही रहने चाहियें क्योंकि उस समय शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिये अन्त स्राव की अत्यन्त आवश्यकता होती है। परन्तु क्योंकि हम अस्वाभाविक अवस्थाओं में जीवन यापन कर रहे हैं इसलिये आजकल बालकों में काम भाव की जागृति बहुत छोटी आयु में हो जाती है, फलत उन के वीर्य कोश में छोटी आयु में ही वीर्य सञ्चित होने लगता है, और छोटी आयु म ही वह नष्ट भी होने लगता है। यद्यपि वीर्य-नाश के भौतिक तथा मानसिक कारणों को

३॥ दूर्वा घास, मौलसरी के फलों की गुठली, आंवला, कपूर—इन्हें समभाग लेकर पुराने गुड़ के साथ मिला कर छोटे बेर के समान गोलियाँ बना ले और सोने से पहले ठण्डे जल के साथ एक गोली खा ले।

४. सफेद मुसली १२ रत्ती, जायफल ४ रत्ती, आँवला १२ रत्ती—इन को मक्खन तथा मिस्री के साथ मिला कर खाये।

५ कीकर की गोंद २ तोला, रूमी मस्तकी १ तोला, आँवला २ तोला, कपूर ३ माशा—इन्हें गोकार के रस में मर्दन कर के धूप में सुखा ले। फिर गोकार के रस में मर्दन कर के सुखाये। दो-तीन बार ऐसा कर के चूर्ण कर के रख ले। प्रात काल १॥ माशा मक्खन और मिस्री के साथ सेवन करे।

मानसिक-कारण तथा चिकित्सा

स्वप्न-दोष के जिन भौतिक कारणों का उल्लेख किया जा चुका है उन के अतिरिक्त इस के मानसिक कारण भी हैं। थके हुए आदमी को स्वप्न नहीं सताते। सोने से पहले खूब व्यायाम कर के जो लोग थक कर सोते हैं उन्हें स्वप्न-दोष नहीं होता क्योंकि उन्हें स्वप्न ही नहीं आता। स्वप्न-रहित निद्रा का ला सकना स्वप्न-दोष का सब से बढ़िया इलाज है। हम प्राय यूं ही बिस्तर पर लेट जाते हैं, चाहे नींद आ रही हो, या न आ रही हो, और यदि नींद उचट गई हो तो भी [illegible] करवटें बदलते रहते हैं। जीवन के म [illegible]

गाढ निद्रा आती हो ! बहुत-सा समय तो बिस्तर में पड़े-पड़े ही गुजर जाता है। मध्य-रात्रि के समय प्रगाढ निद्रा आती है, उस समय स्वप्न भी नहीं आते। यदि कोई तभी तक सोए जब तक गाढी नींद आती हो और नींद टूट जाने पर बिस्तर छोड़ उठ बैठे तो उसे स्वप्न-दोष का डर नहीं रहेगा। खूब व्यायाम कर के, शरीर को थका कर, बिस्तर पर पाँव रखो, और नींद टूटते ही उसे छोड़ अलग हो जाओ। गाढी नींद आने से पहले और पीछे दो अवसर हैं जिन की ताक में शैतान हर समय आँख लगाये बैठा रहता है। उस समय मनुष्य न जाग ही रहा होता है, न सो ही रहा होता है, ना ही उस समय वह अपने काबू में होता है। ऐसी अवस्था में ही पैशाचिक भाव चोरी से मन में प्रविष्ट होते हैं—प्रविष्ट क्या होते है, मन में जाग जाते हे। बस, उस समय स्वप्न आने लगते हैं—भयकर स्वप्न—कामुकता के स्वप्न—उत्तेजना-पूर्ण स्वप्न—चिन्ता-पूर्ण स्वप्न—और उन स्वप्नों के साथ ही आत्म-ग्लानि उत्पन्न करने वाले स्वप्न-दोष !

मनुष्य का मन, यदि जाग रहा हो तो, खाली नही रह सकता। वह कुछ-न-कुछ अवश्य करेगा। बिना नींद के बिस्तर पर पड़ जाने का क्या परिणाम होगा ? नींद तो आयी नहीं, पड़े हुए कुछ काम भी नहीं, परन्तु मन को कुछ काम जरूर चाहिये ! बस, मन सपने लेने शुरू करता है। सब स्वप्नों से मनुष्य को हानि नही पहुँचती। कई स्वप्न तो बड़े मजेदार होते हे। कई स्वप्नों से भविष्य की छिपी कोठरी की झाँकी भी मिल

जाती है। परन्तु उन स्वप्नों से हम यहाँ मतलब नहीं। हम तो उन्हीं स्वप्नों से मतलब है जो स्वप्न-दोष का कारण होते हैं। ऐसे स्वप्न दो प्रकार के होते हैं —कामुकता के स्वप्न और चिन्ता उत्पन्न करने वाले स्वप्न।

(१) कामुकता के स्वप्न—ऐसे स्वप्न मन की आधी जागती, आधी सोती अवस्था में आते हैं। ऐसी अवस्था दिन में भी आती है, रात में भी। दिन में मनुष्य कुर्सी पर पड़ा-पड़ा ऊँघा करता है, और यह ऊँघना स्वप्नमय होता है, रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे कामुकता के विचारों में खेलने लगता है। दिन को तो ये स्वप्न प्राय: लगातार चलते हैं, रात को टूट-टूट कर आते हैं। लगातार चलने वाले स्वप्न एक दिन एक जगह समाप्त होकर अगले दिन फिर आगे चल पड़ते हैं। स्वप्न लेने वाले के ध्यान में कोई प्रेमी होता है, उसी को लक्ष्य में रख कर स्वप्न चलता रहता है। प्रतिदिन वीर्य-स्राव अथवा अन्य किसी आकस्मिक घटना से यह ऊँघ टूटती है। असम्बद्ध-से, टूटे हुए-से, और अचानक उपज जाने वाले स्वप्न भी दिन को आते हैं, परन्तु प्राय: ये रात को ज्यादह आते हैं। रात को सोते हुए अचानक ही कोई स्वप्न आने लगता है, और स्वप्न-दोष होते भी देर नहीं लगती। स्वप्न का मसाला मन को जागती अवस्था से ही मिलता है। जो विचार तथा अनुभव दिन को हुए होते हैं वे ही नया-नया वेष धारण कर सोते समय मनुष्य के सामने आ खड़े होते हैं। इन स्वप्नों का आधार प्राय: जागृतावस्था में मिल ही जाता है।

(२) चिन्ता उत्पन्न करने वाले स्वप्न—चिन्ता का अभिप्राय है बेचैनी, और बेचैनी से सारा स्नायु-समुदाय तना रहता है। यह समझना कि कामुकता के गन्दे स्वप्नों से ही स्वप्न-दोष हो सकता है, भूल है। चिन्ता-ग्रस्त रहने से प्राय स्वप्न-दोष हो जाता है और इस का स्वास्थ्य पर अत्यन्त बुरा असर होता है, क्योंकि चिन्ता से एक तरफ स्नायु-मण्डल का ह्रास होता है और वीर्य-नाश से दूसरी तरफ जीविनी-शक्ति का ह्रास होता है। डा० मौल का कथन है —'चिन्ता से तो स्वप्न-दोष होता ही है, परन्तु कई वार स्वप्न में भी कोई चिन्ता-जनक स्वप्न आने लगे तो उस से भी स्वप्न दोष की आशंका हो जाती है। कई वार ऐसा स्वप्न आने लगता है कि डाकू या हिंस्र पशु पीछा कर रहे है, और जब भय का भाव चारों तरफ से आक्रान्त कर लेता है तो स्वप्न-दोष हो जाता है। कई वार स्वप्न में गाड़ी पकड़ने लगते है, और स्टेशन पर पहुँचते ही गाड़ी छूट जाती है, इस से भी स्वप्न-दोष हो जाता है।' अभिप्राय यह है कि किसी प्रकार के भी स्नायु-मण्डल के तनाव से स्वप्न-दोष हो सकता है। बहुत खाने से, न खाने से, बहुत थक जाने से, बिल्कुल हाथ-पैर न हिलाने से, काम से, क्रोध से, लोभ से, मोह से, भय से, चिन्ता से—इन सब की अति से स्नायु-समुदाय तन जाता है और उस का परिणाम स्वप्न-दोष हो जाता है!

इस प्रकार के मानसिक कारणों से स्वप्न-दोष का शरीर पर अत्यन्त घातक परिणाम होता है। डाक्टर फुट लिखते हैं —

"पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनों को, स्वप्न-दोष होता है और दोनों को ही इस से अत्यन्त हानि पहुँचती है। यद्यपि स्त्री का स्वप्न-दोष में वीर्य जैसा कोई तत्त्व स्रवित नहीं होता तथापि उस की स्नायु-शक्ति का भारी ह्रास होता है। कामुकता का स्वप्न एक प्रकार का अनजाने हस्त-मैथुन ही है। कहा जाता है कि कोई व्यायाम इतना थकाने वाला नहीं जितना शून्य में हाथ चलाना या शून्य में पाँव मारना। सीढ़ियों के नीचे उतरते हुए यदि मालूम न हो कि एक डण्डा और नीचे उतरना है तो पाँव नीचे ले जाते ही शरीर को कितना धक्का पहुँचता है—यदि पहले ही मालूम होता कि नीचे डण्डा नहीं है तो पाँव उस के लिये तय्यार होकर नीचे जाता और जरा-सा भी धक्का न लगता। शरीर के लिये जैसे यह धक्का है, स्नायु-मण्डल के लिये वैसे ही कामुकता का स्वप्न है। शरीर के अंग अंग में से स्नायु-शक्ति एकत्र होकर बड़े वेग से एक ऐसे व्यक्ति के आलिंगन में लगती है जिस की सत्ता ही नहीं! यह शक्ति स्वप्न-दोष के रूप में निकल जाती है, परन्तु उस की प्रतीकारक शक्ति दूसरे व्यक्ति की तरफ से नहीं मिलती, क्योंकि उस की सत्ता तो काल्पनिक ही है! स्नायु-शक्ति का यह ह्रास, और स्नायु-शक्ति को यह धक्का ऐसा भयंकर होता है जो यदि कई बार दोहराया जाता रहे तो मनुष्य को सर्वथा शक्ति-हीन बना दे, स्मृति-शक्ति का सर्वनाश कर दे और मानसिक-शक्ति को कमजोर बना दे।"

यदि जागते हुए काम-भाव के विचारों को मन में स्थान दिया जायगा तो सोते समय ये अवश्य मन को घेरे रहेंगे। कल्पना के सम्पर्क से उन की घातक शक्ति भी बहुत बढ जायगी क्योंकि वह तो विचार रूपी कुण्ठित-कुठार पर धार लगा देती है। जागते हुए मुख से निकला हुआ एक भी अश्लील शब्द स्वप्नावस्था में अनेक अपवित्र स्मृतियों को जगा सकता है। इसलिये जागृतावस्था में ही अधिक सावधान रहने की जरूरत है। जो लोग जागते समय मन को गढ़ों में नहीं गिरने देते व सोते समय भी बचे रहते हैं। गन्दे उपन्यास पढ़ने से, पतित साथियों के साथ मिलने-जुलने से, खाली रहने से, मन को स्वप्नावस्था के लिये काफी गन्दा मसाला मिल जाता है। ऐसे मसाले को पाकर फिर मन उसे छोडना भी नहीं चाहता। जो कामुकता के स्वप्नों से बचना चाहे वह यदि दिन के समय अपनी विचार-शृखला पर ध्यान देता रहे, बुरे विचारों को मन में न आने दे, तो रात को स्वय बचा रहेगा। परन्तु विचारों को कामुकता की तरफ से बचा लेना ही पर्याप्त नहीं है—विचारों का सशक्त होना उस से भी ज्यादह आवश्यक है। कई लोग, जो काम-स्वप्नों से भयभीत रहते हैं, घबरा उठते हैं, वे जितना बचने की कोशिश करते है उतना ही इस के शिकार होते जाते हैं। इस का कारण मुख्यत उन का भय ही होता है। भय विचार-शक्ति को सशक्त होने के स्थान पर अशक्त बना देता है। विचार-शक्ति को दुर्बल कभी न होने देना चाहिये। स्वप्न-दोष होना बुरा है, परन्तु उन्हें देख कर घबरा

उठना और भी बुरा है । घबराने से उन की संख्या घटने के स्थान पर बढ़ती है । ऐसे व्यक्तियों को मोलिनोस के निम्न शब्द जिन्हें विलियम जेम्स महोदय ने 'वराइटीज ऑफ रिलिजियस एक्सपीरियन्स' में उद्धृत किया है, सदा स्मरण रखने चाहियें —

"यदि तुझ से कोई अपराध हो जाय, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, तो उसे सोच-सोच कर दुःखी मत हुआ कर । अपराध तो मनुष्य से हुआ ही करते हैं । क्योंकि तू एक-दो बार गिर गया है इस का यह अभिप्राय नहीं कि तू सदा गिरता ही चला जायगा, ईश्वर की तरफ से सदा दुत्कारा ही जायगा । ए अमृत-पुत्र ! आँखें खोल, और अपनी गिरावट के किनारों पर पर्दा डाल कर ईश्वर की दया पर भरोसा रख । क्या वह बेवकूफ न होगा जो किसी सान्मुख्य में तेज दौड़ता हुआ यदि कीच में गिर पड़े तो बैठ कर अपने गिरने पर ही अश्रु धारा बहाने लगे ? बुद्धिमान् लोग उसे यही कहेंगे, ऐ खिलाड़ी ! समय मत खो, उठ,—उठ कर फिर भागना शुरू कर, क्योंकि जो गिर कर उठ खड़ा होता और फिर फौरन भागने लगता है वह तो ऐसा है मानो कभी गिरा ही न हो ! तू एक बार क्या, हजारों बार भी क्यों न गिर जाय, घबरा कभी मत, जो औषध तुझे दी है इसे गाँठ बाँध रख, ईश्वर पर भरोसा कर । इस शस्त्र से तू कई लड़ाइयाँ मार लेगा और दिल की कमजोरी पर विजय प्राप्त करेगा ।"

अपनी कमजोरियों को ही सदा मत सोचते रहो । मन को दृढ़ तथा सशक्त बनाओ । बुरी परिस्थितियों से बचो । गौर

से पहले अच्छे भजन गाओ, वेद-मन्त्र पढ़ो, उत्तम पुस्तकों का पाठ करो, देखोगे कि बुरे स्वप्नों की जगह अच्छे स्वप्न आने लगते हैं। स्वप्नों की समस्या से निकलने का इस से उत्तम दूसरा उपाय क्या हो सकता है। इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मैं डा० कोवन की निम्न-लिखित सलाह के उद्धृत करने के प्रलोभन का सँवरण नहीं कर सकता। वे लिखते हैं —

"प्रत्येक व्यक्ति जिस ने अपनी इच्छा-शक्ति का सर्वथा संहार नहीं कर दिया कम-से-कम जागृतावस्था में अपने विचारों को अच्छी प्रकार वश में कर सकता है, उन्हें पवित्र रख सकता है। यदि वह गिरता है, पाप करता है, तो जानते-बूझते! जिस प्रकार वह जागते हुए अपने विचारों को पवित्र रख सकता है उसी प्रकार सोते हुए भी रख सकना कठिन नहीं है। साथ-ही प्रत्येक का कर्तव्य है कि सोते-जागते सदा विचारों को पवित्र रखे। लोग कहते हैं कि व स्वप्नों को वश में नहीं कर सकते। यह बात भ्रम मूलक है। मनुष्य के मन में जागते हुए जो विचार आते हैं उन का स्वप्नों से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। जागती हालत में जिन्हें 'विचार' कहते हैं, सोती हालत में उन्हीं को 'स्वप्न' कहते हैं। अत यह स्वाभाविक है कि यदि मनुष्य ने जागृतावस्था में अपने विचारों को अश्लीलता तथा अपवित्रता की तरफ जाने दिया है तो रात को भी मन वैसे ही विचारों से भर जाता है—स्वप्नावस्था के विचार तो जागृतावस्था के विचारों क फल हैं—और इसीलिये यदि दिन का समय गन्दे विचारों में

बीता हो, कामोद्दीपन हो चुका हो तो रात को स्वप्न-दोष हो ही जाता है। यदि जागते हुए हम ने कुवासनाओं को दबाने के लिये इच्छा-शक्ति का कोई उपयोग नहीं किया तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि सोते समय जब पैशाचिक-भाव आ घेरेंगे तब हृदय से 'नकार' निकल पड़ेगी? इच्छा-शक्ति सोते समय हमें गिरने से उतना ही बचा सकती है जितना वह हमें जागते समय बचा चुकी है—उस से ज़्यादह नहीं। एक उच्च स्थिति का इटेलियन जिसे स्वप्न-दोष से बहुत परेशानी हो चुकी थी लिखता है कि जब और कोई चारा न रहा तो अन्त में उस ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि आगे से जब भी कोई अपवित्र विचार उस के मन में प्रविष्ट होने लगेगा, वह जाग जायगा। इस भाव का उस ने दिन को खूब अभ्यास किया। जब कभी कोई अश्लील विचार उस के मन में आने लगता, वह एकदम चौंक उठता। सोने से पूर्व वह यही विचार कई बार दोहरा कर सोता, सारी संकल्प-शक्ति इसी विचार में लगा देता। इस का बड़ा उत्तम परिणाम निकला। 'बुरा विचार एक बड़ा भारी खतरा है'—यह भावना उस के हृदय में इतना घर कर गई कि सोते समय भी वह उस की चेतना का अंग बनी रहती और मन के ज़रा-सा इधर उधर भटकते ही वह उठ बैठता। इस अभ्यास से उसे बहुत लाभ पहुँचा और स्वप्न-दोष से वह सर्वथा बच गया।"

एकादश अध्याय

'ब्र ह्म च र्य'

[वीर्य क्या है ?—उस की महत्ता !]

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा ॥

अथर्व वेद

मनुष्य के शरीर का तत्व-भाग वीर्य है। वीर्य का स्तम्भन कठिन कार्य है। इस की रक्षा की चिन्ता योगियों की उन्निद्र आँखों में, ऋषियों के चेहरों की झुर्रियों म और ब्रह्मचारियों की नियन्त्रित दिन-चर्या में किसे नहीं दीख पडती ? मूर्ख लोग भले-ही जीवन-शक्ति के रहस्य को न समझते हुए उल्टे मार्ग पर चलें परन्तु समझदार लोग वीर्य-रक्षा को जीवन का लक्ष्य-बिन्दु जानत है। इस हिमाद्रि-सम-कठिन दुरूह कार्य में तत्व-ज्ञानियों के चिन्तित रहने का मुख्य कारण यह है कि शरीर के सार अश को अन्दर-ही-अन्दर खपा लेने से विद्या और बल की सतत वृद्धि होती है, वीर्य-नाश से मनुष्य का चौगुणा ह्रास होता है ! वीर्य-रक्षा बडे महत्व का कार्य है।

वीर्य-रक्षा के महत्व को समझने के लिये—'वीर्य क्या वस्तु है'—इस बात को समझ लेना आवश्यक है। हम यहाँ

पर भारतीय-आयुर्वेद तथा पाश्चात्य-आयुर्विज्ञान, दोनों के वीर्य विषयक मुख्य-मुख्य विचारों का उल्लेख करेंगे ताकि हमारे पाठक इस विषय को भली प्रकार समझ सकें।

१. भारतीय-आयुर्वेद

'अष्टाग-हृदय', शारीर स्थान, अध्याय ३, श्लोक ६ में लिखा है —

"रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं ।"

भोजन किये हुए पदार्थ से पहले रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य,—वीर्य अन्तिम धातु है। मशीन में इस के बनने का दर्जा सातवाँ है। इस के बनाने में, शरीर को, जीवन के लिये आवश्यक अन्य सब पदार्थों की अपेक्षा अधिक मेहनत करनी पड़ती है। रस की अपेक्षा रक्त में तत्व भाग अधिक है। उत्तरोत्तर सार-भाग बनता ही जाता है। शरीर की भौतिक शक्तियों का अन्तिम सार वीर्य है। थोड़े-से वीर्य को बनाने के लिये रक्त की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। किंचिन्मात्र वीर्य का नष्ट हो जाना अत्यधिक रुधिर के नष्ट हो जाने के बराबर है। आयुर्वेद के इस सिद्धान्त को अनेक पाश्चात्य-पण्डितों ने भी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। डा० कोवन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सायन्स ऑफ ए न्यू लाइफ' के १०६ पृष्ठ पर लिखा है —

"शरीर के किसी भाग में से यदि ४० औंस रुधिर निकाल लिया जाय तो वह एक औंस वीर्य के बराबर होता है—अर्थात् ४० औंस रुधिर से एक औंस वीर्य बनता है।"

अमेरिका के प्रसिद्ध शरीर-वृद्धि-शास्त्रज्ञ, मैक्फेडन महोदय ने अपनी पुस्तक 'मैनहुड एण्ड मैरेज' में इसी विचार को प्रकट किया है। 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिजिकल कल्चर' के २७७२ पृष्ठ पर व लिखते हैं —

"कई विद्वानों के कथनानुसार ४० औंस रुधिर से १ औंस वीर्य बनता है परन्तु कुछ-एक विद्वानो का कथन हैं कि १ औंस वीर्य की शक्ति ६० औंस रुधिर के बराबर है।"

सम्भवत इस विषय में पूरा-पूरा हिसाब न हो सकता हो, तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि थोड़े-से भी वीर्य को उत्पन्न करने के लिये रक्त की बहुत अधिक मात्रा खर्च होती है। भारतवर्ष म तो यह चर्चा सर्व-साधारण तक में पाई जाती है। यहाँ हर-कोई जानता है कि वीर्य के बनने में उस से ४०,५० या ६० गुना रुधिर काम म आ जाता है। पाश्चात्य लोगो में यह विचार हाल ही मे उत्पन्न हुआ है। मूलत, यह भारतीय आयुर्वेद का विचार है। जब रुधिर में शरीर को जीवित या मृत बना देने की शक्ति हे तब वीर्य में—जो रुधिर का सार-भाग है —वह शक्ति अप्रत्याख्यात रूप से कई गुनी होनी ही चाहिये।

आयुर्वेद का कथन है कि रुधिर से वीर्य की अवस्था तक पहुँचने मे उपर्युक्त सात मंजिलें तय करनी पड़ती हैं। इन का

पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, अन्त में रक्त से वीर्य किस प्रकार बन जाता है—इस विषय पर आयुर्वेद की दृष्टि से अभी तक पूरा-पूरा अनुसन्धान नहीं हुआ। आयुर्वेद से हमें इतना अवश्य पता चलता है कि रुधिर को वीर्य बनने के लिये बड़े लम्बे चौड़े सात फेरों वाले रास्ते में से गुजरना पड़ता है। रक्त का सार-भाग बनते-बनते अन्त में वीर्य बनता है।

आयुर्वेद के अनुसार वीर्य का स्थान सम्पूर्ण शरीर है। हृदय में विकार उपस्थित होने पर वीर्य शरीर में से मथा जाकर अण्डकोशों द्वारा प्रकट रूप में उत्पन्न हो जाता है। इसी विषय को स्पष्ट करते हुए 'भाव-प्रकाश'-कार लिखते हैं —

"यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ यथा रसः।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ २४० ॥
हृष्टस्त्रदेहस्थितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥ २४२ ॥"

अर्थात्, जिस प्रकार दूध को मथने से घी निकल आता है उसी प्रकार बहु-वीर्य वाले देह को भी मथने से वीर्य निकल आता है, जिस प्रकार ईख को पेरने से रस निकलता है उसी प्रकार अल्प-वीर्य वाले पुरुष के शरीर में से भी, अत्यन्त मथन करने से, वीर्य प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शरीर में रहने वाला वीर्य मानसिक प्रसन्नता तथा सम्भोग के समय प्रवृत्त होता है। इस प्रकार भारतीय-आयुर्वेद के अनुसार वीर्य का स्थान सम्पूर्ण शरीर है, केवल अण्ड कोश नहीं।

१ पाश्चात्य आयुर्विज्ञान

पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के पण्डित वीर्य को सात धातुओं का सार नहीं मानते। उन के कथनानुसार वीर्य सीधा रक्त से उत्पन्न होता है—उसे सात मंजिलों में से गुजरने की आवश्यकता नहीं होती। वे लोग वीर्य को सम्पूर्ण शरीरस्थ नहीं मानते। उन का कथन है कि मनोविकार उपस्थित होने पर अण्ड-कोश अपनी क्रिया द्वारा एक द्रव उत्पन्न करते हैं। यही द्रव 'उत्पादक-वीर्य' है। जिस प्रकार उत्तेजक पदार्थ के सन्मुख आने पर आँखों से आँसू तथा मुख से लार टपकती है उसी प्रकार अण्ड-कोशों की ग्रन्थियों (ग्लैंडस) में से वीर्य निकलता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, अण्ड-कोशों में से दो प्रकार का रस उत्पन्न होता है। एक भीतरी, दूसरा बाहरी। भीतरी को 'इन्टरनल सिक्रीशन'—अन्त स्राव—तथा बाहरी को 'एक्सटरनल सिक्रीशन'—बहि स्राव—कहते हैं। अन्त स्राव हर समय अण्ड-कोशों से होता रहता है और शरीर में अन्दर-ही-अन्दर खपता रहता है। यह रस सम्पूर्ण देह में व्याप्त होकर आँखों को तेज, मुख को कान्ति तथा अंग-प्रत्यंग को सुडौलपन देता है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में बालक के शरीर में जो अचानक परिवर्तन देख पड़ते हैं उन का कारण अन्त स्राव का भीतर-ही-भीतर खप जाना है। जिन प्राणियों के अण्ड-कोश निकाल दिये जाते हैं वे क्रिया-शून्य तथा स्फूर्ति-हीन हो जाते हैं। घोड़े,

३ पाश्चात्य आयुर्विज्ञान में वीर्य के दो रूप, अन्त स्राव (इन्टरनल सिक्रीशन) तथा बहि स्राव (एक्सटरनल सिक्रीशन) स्पष्ट रूप से माने गये हैं , आयुर्वेद में यह भेद नहीं दीख पड़ता।

४ पाश्चात्य-विज्ञान में शुक्र कीटाणु, (स्पर्मेटोजोआ)की परिभाषा पाई जाती है। शुक्र-कीटाणु 'उत्पादक-वीर्य' का नाम है। आयुर्वेद में उत्पादक-वीर्य को 'कीटाणु-विशेष' नहीं माना गया। उन के मत में शुक्र ही से जीवन की उत्पत्ति होती है।

साधारण बुद्धि द्वारा पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारों में वीर्य के सम्बन्ध में यही चार मोटे-मोटे भेद दीख पड़ते हैं । हमारी सम्मति में सूक्ष्म-दृष्टि से विचार करने पर इन भेदों का बहुत सा अंग लुप्त होकर दोनों विचारों में अनेक समानताएँ दृष्टि-गोचर होने लगती हैं।

समानताएँ

१ निस्सन्देह आयुर्वेद वीर्य को सात धातुओं में से गुजर कर बना हुआ मानता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि आयुर्वेद के कई ग्रन्थों में वीर्य के सात धातुओं में से गुजर कर बनने के सिद्धान्त को नहीं भी माना गया। वे यही मानते हैं कि 'केदार-कुल्या-न्याय' से रुधिर ही शरीर के भिन्न भिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न रस देता जाता है। जैसे बगीचे में पानी सब जगह बहता है और उस में से भिन्न भिन्न वृक्ष भिन्न-भिन्न रस खींच लेते हैं उसी प्रकार रुधिर भी अंग प्रत्यंग को सींचता हुआ सम्पूर्ण शरीर

को पुष्ट करता है। जब रुधिर अण्ड-कोशों में पहुँचता है तब वे रुधिर में से वीर्य खींच लेते हैं। यह विचार अंशतः पाश्चात्य-आयुर्विज्ञान के विचार के साथ मिलता है परन्तु निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि यही विचार ठीक है।

२ आयुर्वेद वीर्य को सम्पूर्णशरीरस्थ मानता है, पाश्चात्य-विज्ञान इसे अण्ड-कोशों द्वारा जनित मानता है। कईयों के कथनानुसार, वीर्योत्पत्ति में यह स्थान-सम्बन्धी भेद है। परन्तु यह भेद वास्तविक भेद नहीं। पाश्चात्य पण्डित यह नहीं मानते कि वीर्य अण्ड-कोशों में रहता है, वे यही मानते है कि वीर्य के उत्पत्ति-स्थान अण्ड-कोश हैं। मनोमन्थन के बाद वीर्य अण्ड-कोशों में प्रकट होता है, यह बात दोनों पक्षों को सम्मत है। वीर्य का स्रवण दोनों के मतों में सम्पूर्ण शरीर में से होता है। आयुर्वेद के मुख्य-सिद्धान्त के अनुसार सात धातुओं के क्रम से बना हुआ वीर्य सरता है, पाश्चात्य-आयुर्विज्ञान के अनुसार वह सीधा रुधिर में से सरता है—सरता या निकलता दोनों मतों में सम्पूर्ण शरीर में से है।

३ यद्यपि भारतीय आयुर्वेद में अन्त स्राव तथा बहि स्राव का भाव स्पष्ट रूप से नहीं पाया जाता तथापि जहाँ तक हम ने विचार किया है उस के आधार पर हमारी सम्मति है कि आयुर्वेद में 'तेज' तथा 'ओज' शब्दों का प्रयोग अन्त स्राव (इन्टरनल सिक्रीशन) और 'रेतस्' तथा 'बीज' शब्दों का प्रयोग बहि स्राव (एक्सटरनल सिक्रीशन) के लिए किया गया है। 'शुक्र'

तथा 'वीर्य' शब्द भीतरी तथा बाहरी, दोनों स्रावों के लिये प्रयुक्त हो जाते हैं। वाग्भट्ट ने 'ओज' का निम्न वर्णन किया है —

"ओजश्च तेजो धातूना शुक्रान्ताना पर स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिफलोदया ।
यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ॥
निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रया ।
उत्साह प्रतिभा धैर्य लावण्य सुकुमारता॥"

अर्थात्, ओज सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, देह की स्थिति का कारण है। ओज के बढने से तुष्टि, पुष्टि तथा बल का उदय होता है, ओज के नष्ट हो जाने से यह सब कुछ नष्ट हो जाता है। ओज ही से उत्साह, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता आदि नाना-विध भाव प्रकट होते हैं।

यह वर्णन अन्त स्राव के विषय में लिखे गये पाश्चात्य आयुर्विज्ञों के वर्णनों से बिल्कुल मिलता है। मैकफैडन महोदय 'इन्टरनल सिक्रीशन'—अन्त स्राव—के विषय में लिखते हैं —

"इन ग्रन्थियों से निकली हुई एक-एक बूँद उत्पन्न होते ही शरीर में खप जाती है। इस का परिणाम अनवरत उत्साह-वृद्धि तथा स्वास्थ्य है जो बचपन में विशेष रूप से दीख पडता है।"

जैसा ऊपर दर्शाया गया है 'अन्त स्राव' के विषय में वाग्भट्ट तथा मेकफेडन के वर्णनों में कोई भेद नहीं। 'बहि स्राव' पर पूर्वीय तथा पाश्चात्य आयुर्विज्ञान की सम्मतियों में कुछ भेद अवश्य

है परन्तु बहि स्राव की सत्ता को आयुर्वेद में स्वीकार अवश्य किया गया है। भाव प्रकाश में लिखा है --

"शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्ध बलपुष्टिकर स्मृतम्।
गर्भबीजं वपु सारो जीवस्याश्रय उत्तमः। २३७॥"

अर्थात्, वीर्य सोमात्मक, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टि-कारक, गर्भ का बीज, देह का सार-रूप और जीव का उत्तम आश्रय-रूप है। वीर्य का यह वर्णन किसी भी पाश्चात्य लेखक के 'बहि स्राव' के वर्णन से अक्षरश मिलता है।

४ हाँ, 'बहि स्राव' के स्वरूप के विषय में दोनों विज्ञानों में अत्यन्त सम्मति भेद है। आयुर्वेद में बहि स्राव के लिए शुक्र-कीटाणु (स्पर्मेटोजोआ) का शब्द नहीं पाया जाता, पाश्चात्य-विज्ञान में पाया जाता है, आयुर्वेद में 'शुक्र', एतावन्मात्र शब्द का प्रयोग होता है।

अण्ड-कोशों के 'बहि स्राव' के विषय में दो कल्पनाएँ है। आयुर्वेद के कथनानुसार शुक्र ही बहि स्राव है, पाश्चात्य आयुर्विज्ञों के अनुसार शुक्र-कीटाणु बहि स्राव है। स्मरण रखना चाहिए कि आयुर्वेद ने शुक्र को बहि स्राव कहते हुए शुक्र-कीटाणु से इनकार नहीं किया। उस 'शुक्र' का नाम यदि 'शुक्र-कीटाणु' रखा जा सके तो आयुर्वेद को कोई आपत्ति नहीं।

परन्तु क्या बहि स्राव (शुक्र) का नाम शुक्र-कीटाणु रखा जा सकता है? क्या यह पदार्थ जो हिलता-जुलता, गति करता मालूम पड़ता है उस में कोई पृथक्-चेतनता है, उस में

मनुष्य के आत्मा से भिन्न आत्मा है, या यह प्राणी की भौतिक चेतनता का ही रूपान्तर है ?

हमारी सम्मति में उत्पादक-वीर्य को कीटाणु विशेष कहना अनुचित है। क्योंकि उत्पादक-वीर्य में गति होती है, वह चलता फिरता है, अत उसे पाश्चात्य आयुर्विज्ञों ने 'स्पर्मेटोज़ोआ' या चेतना-विशिष्ट-जीवाणु का नाम दे दिया है—वास्तव में यह शुक्र ही है। भारतीय आयुर्वेद के साथ अध्यात्म-शास्त्र भी मिला हुआ है। यदि शुक्र को शुक्र-कीटाणु का नाम दे दिया जाय तो उस में मनुष्य से पृथक् चेतनता मानने का भाव झलकने लगेगा। यह बात भारतीय अध्यात्म-शास्त्र स्वीकार नहीं करता। अत आयुर्वेद में शुक्र को शुक्र-कीटाणु का नाम नहीं दिया गया और ना ही यह नाम देना किसी प्रकार उचित प्रतीत होता है। उन्हें 'कीटाणु' या 'जीवाणु' का नाम क्यों दिया जाय ? उन की गति का कारण उन की पृथक्-चेतनता नहीं है। शुक्र-कीटाणुओं की गति, अथवा चेतनता, मनुष्य के मस्तिष्क की गति अथवा चेतनता से उत्पन्न होती है अत उन्हें यथार्थ में 'शुक्र' नाम ही देना चाहिये, 'कीटाणु' या 'जीवाणु' नहीं। हाँ, केवल व्यवहार के लिए—क्योंकि उन में गति दिखलाई देती है इसलिए—यदि उन्हें 'कीटाणु' कह दिया जाय तो इस में हमें कोई आपत्ति नहीं। हमें आपत्ति तभी हो सकती है जब प्रत्येक कीटाणु में आत्मा माना जाय, और क्योंकि एक वीर्य-स्राव में ही सैंकड़ों कीटाणु होते हैं, अत प्रत्येक 'स्पर्मेटोज़ोआ' में आत्मा माना जाय!

३. तीसरा विचार

हम ने अभी कहा कि 'उत्पादक-वीर्य' की गति का कारण मस्तिष्क है, 'उत्पादक-वीर्य' की 'पृथक्-चेतनता' नहीं। यह कथन हमें वीर्य के स्वरूप के सम्बन्ध में तीसरे विचार की तरफ ले आता है। आयुर्वेद तथा पाश्चात्य-आयुर्विज्ञान के अतिरिक्त वीर्य के स्वरूप के विषय में एक तीसरा विचार भी है जिस का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है।

कई विचारकों का कथन है कि 'उत्पादक-वीर्य' (स्पर्मेटोजोआ) की उत्पत्ति रुधिर अथवा अण्ड-कोशों से नहीं बल्कि सीधे मस्तिष्क से होती है। उनका कथन है —"वीर्य का नाश मस्तिष्क का नाश है क्योंकि वीर्य तथा मस्तिष्क दोनों एक ही पदार्थ हैं।" इस में सन्देह नहीं कि वीर्य तथा मस्तिष्क को बनाने वाले रासायनिक पदार्थ एक ही हैं। दोनों की तुलना करने पर उन में बहुत ही थोडा अन्तर प्रतीत हुआ है। इस विषय पर अभी गहरे अन्वेषण की आवश्यकता है। यदि रसायन-शास्त्र से सिद्ध हो जाय कि 'उत्पादक-वीर्य' तथा 'मस्तिष्क' की रचना में कोई भेद नहीं तो ब्रह्मचर्य के लिए एक अकाट्य युक्ति तैयार हो जाय। हम यहाँ पर डाक्टरों तथा रसायन-शास्त्र के विद्यार्थियों को सङ्केत करना चाहते हैं कि यदि वे इस विषय पर अधिक मनन कर कुछ क्रियात्मक विचारों तक पहुँच सकें तो बहुत लाभ हो।

इस सिद्धान्त के सब से प्रबल पोषक अमेरिका के प्रसिद्ध डा० एन्ड्रू जैक्सन डेविस थे। वे अपनी पुस्तक 'ऐन्सर्स टु एवर रिकरिंग क्वेश्चन्स फ्रॉम दि पीपल' के २६३ पृष्ठ पर लिखते हैं —

"कई शारीर-शास्त्रियों ने यह भ्रम-मूलक विचार फैला दिया है कि वीर्य की उत्पत्ति रुधिर से होती है। इस सिद्धान्त से बुद्धिमान् व्यभिचारी लोग खूब फायदा उठाते हैं। वे कहते हैं कि यत रुधिर से ही वीर्य बन कर अण्ड-कोशों द्वारा प्रकट होता है अत व वीर्य का दुरुपयोग करते हुए भी खा-पी कर उस की कमी को पूरा कर सकते हैं। व लोग कुछ नहीं जानते। वास्तव में सचाई यह है कि 'उत्पादक-वीर्य', वीर्य-कीटाणु' अथवा 'स्पर्मैटोजोआ' की उत्पत्ति मस्तिष्क से होती है और अन्य द्रवों के साथ मिल कर वह अण्ड-कोशों में बहि स्राव के रूप में प्रकट होता है।

"उत्पत्ति का कार्य जीवन के सब कार्यों की अपेक्षा अधिक बड़ा और थकाने वाला कार्य है। इस में मनुष्य की प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक भाव तथा शरीर और मन का हरेक हिस्सा भाग लेता है। मस्तिष्क से उत्पन्न हुआ प्रत्येक 'शुक्र-कीटाणु' यदि बाहर निकलता है तो मस्तिष्क के उतने अश का पूरा नाश समझना चाहिये।

"शारीरिक परिश्रम, मानसिक कार्य तथा किसी एक काम की तरफ लगातार लगे रहने से 'वीर्य-कीटाणु' अथवा 'स्पर्मैटोजोआ' मस्तिष्क मे ही खप जाता है। यदि 'वीर्य कीटाणु'

को केवल उत्पत्ति के लिए काम में लाया जाय तो मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियाँ नष्ट होने से बच जाती है।

"इसलिए स्मरण रखना चाहिये कि उत्पादक पदार्थों का उचित मात्रा से अधिक खर्च करना अथवा प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना मस्तिष्क पर अत्याचार करना है। ऐसा करने से दिमाग की सब तरह की बीमारियों के होने का पूरा निश्चय है। जिन लोगों पर बच्चों की रक्षा की जिम्मेवारी है उन्हें इन बातों को कभी न भूलना चाहिये।"

मस्तिष्क तथा वीर्य में कोई खास सम्बन्ध अवश्य है। वीर्य-नाश का दिमाग पर सीधा असर होता है, यह किसी से छिपा नहीं। डा० कोवन यह मानते हैं कि दिमाग से एक द्रव उत्पन्न होकर उस तरफ को, जिस तरफ मनुष्य के मनोभाव केन्द्रित होते हैं, बहने लगता है। डाक्टर हॉल का कथन है कि अण्ड-कोशों से एक पदार्थ उत्पन्न होकर मस्तिष्क में पहुँचता है, जहाँ से वह यौवनावस्था में प्रकट होने वाले सब शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों को प्रादुर्भूत करता है। डाक्टर ब्लौश कहते हैं कि मस्तिष्क तथा वीर्य का पारस्परिक सम्बन्ध देर से माना जा रहा है। यहाँ तक कि शैलिंग की 'नेचुरल फिलॉसफी' में मस्तिष्क के लिए—'अण्ड-कोशों के रस से बना हुआ दिमाग'—यह नाम पाया जाता है।

'वीर्य के स्वरूप' के सम्बन्ध में हम ने तीनों मुख्य विचारों का उल्लेख इसलिए कर दिया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति इस बात

को भली प्रकार समझ ले कि वीर्य-रक्षा किये बिना उस का कोई निस्तार नहीं। तीनों विचार तत्वत एक ही हैं। किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाय, वीर्य-रक्षा करना जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक—अत्यन्त आवश्यक—प्रतीत होता है। हमारे नव-युवक पाश्चात्य विचारों के पर्दे के पीछे अपनी कमजोरियों को छिपाने का प्रयत्न करते हैं, जान-बूझ कर अपनको धोखे में डालते हैं, परन्तु उन्हें अपने आत्मा की आवाज सुन कर अवश्यम्भावी नाश से बचने की फिक्र करनी चाहिये। पश्चिमीय विज्ञान ने अभी तक जो कुछ पता लगाया है वह ब्रह्मचर्य्य के हक़ में ही जाता है। उस का दुरुपयोग करने की कोशिश न कर, उस से शिक्षा लेनी चाहिये। डाक्टर स्टाल ने अपनी पुस्तक "वट ए यंग हसबैण्ड औट टु नो" में जीवन-शास्त्र की दृष्टि से बहुत ही उत्तम लिखा है —

"जो लोग वृक्षों की रक्षा करना जानते हैं उन्हें यह भी मालूम है कि वृक्षों के सौन्दर्य को कायम रखने के लिए आवश्यक है कि उन के फलोत्पादन के समय को जितना हो सके उतना पीछे हटाने का प्रयत्न किया जाय। जब तक हम उन के बीज न बनने देंगे तब तक व हरे-भरे, लहलहाते और फूलों से लदे रहेंगे। पुष्प के बीज बनने की सम्भावना को दूर कर दो, तुम देखोगे कि वह फूल पहले की अपेक्षा कई घण्टे अधिक देर तक खिला रहता है। कीड़ों का भी यही हाल है। देखा गया है कि जब उन के वीर्य नष्ट होने की सम्भावना को रोक दिया

जाय तब वे अपनी जाति के दूसरे कीड़ों की अपेक्षा बहुत अधिक जीते हैं। एक तितली पर परीक्षण कर के देखा गया कि जहाँ जनन-शक्ति का उपयोग करने वाली तितलियाँ कुछ ही दिनों की मेहमान थीं वहाँ वह तितली दो साल से भी ऊपर जीती रही।"

ऐसे परीक्षणों से वीर्य-रक्षा का जीवन के लिए महत्व अखण्डित रूप से सिद्ध है—इस में क्षण-भर के लिए भी सन्देह नहीं करना चाहिये।

द्वादश अध्याय

'ब्र ह्म च र्य'

[वीर्य-रक्षा ही जीवन है, वीर्य-नाश ही मृत्यु है !]

शरीर की प्रारम्भिक अवस्था में सचय-शक्ति प्रधान रहती है। हम खाते-पीते और मौज उड़ाते हैं। किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करते। शरीर बनता चला जाता है। कहाँ बचपन का एक हाथ नन्हा-सा पुतला और कहाँ छ फीट लम्बा, डेढ मन का बोझ! परन्तु इस वृद्धि में वही आँखें, नाक, कान, अग, प्रत्यग तथा आत्मा विद्यमान हे। वही छोटी चीज बडी हो गई है, वही हल्की वस्तु भारी हो गई है। इस आश्चर्य-जनक परिवर्तन का कारण शरीर की सचय-शक्ति है। हम ने बड़े परिश्रम से उपादेय पदार्थो का शरीर में सग्रह किया हे, इसी से आज देह उन्नत तथा प्रवृद्ध दिखाई देता है।

परन्तु यह उन्नति चिर-स्थायिनी नहीं। दिन चढ कर ढलना है, लहर उठ कर गिरती है। शरीर भी हट्टा-कट्टा होकर क्षीण होने लगता हे। 'सचय' के अनन्तर 'विचय' प्रारम्भ होता है। जीवन के बाद मृत्यु पदार्पण करने लगती है। हम दैनिक-व्यवहार में देखते हैं कि मनुष्य की समृद्ध होती हुई शक्तियाँ किसी समय आकर ठहर जाती हैं, रुक जाती हैं, कई बार पतनोन्मुख

होने लगती हैं। मनुष्य जैसे-का-तैसा नहीं बना रहता। यह ऊँच-नीच क्यों ?—यह परिवर्तन क्यों ?

जिन्हों ने सचय के पश्चात् विचय, अथवा उन्नति के बाद नाश के अवश्यम्भावी चक्र पर विचार किया है उन का कथन है कि इस का कारण, जीवन की प्रौढावस्था के अनन्तर, दो परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियों का टक्कर खाना है। शरीर-वृद्धि की स्वार्थमयी प्रवृत्ति प्रजा-जनन की परमार्थ-प्रवृत्ति से दब जाती है। मनुष्य घर बना कर बैठ जाता है। अपने शरीर में सचय करना छोड कर सन्तानोत्पत्ति करना प्रारम्भ करता है। प्रकृति खेल करती हुई उसे अपनी उँगलियों पर नचाती है। जो व्यक्ति खाने, पीने और अपने शरीर के विषय में सोचने से आराम नहीं लेता था वही परमार्थ के चक्कर में घूमने लगता है। अपनी सन्तान के लिये कठिन-से-कठिन कष्ट भोगने के लिये तय्यार हो जाता है। स्वभाव-सिद्ध क्रम से, स्वार्थ की अवस्था के पीछे स्वार्थ-त्याग की अवस्था आ जाती है।

मनुष्य की 'शक्तियों का ह्रास' तथा 'प्रजा-जनन' दोनों एक ही समय मे प्रारम्भ होते हैं। प्रजोत्पत्ति के पश्चात् अधिक शारीरिक उन्नति की सम्भावना नही रहती। जिस तत्व से शारीरिक उन्नति हो सकती थी वह प्रजोत्पत्ति में काम आ जाता है, फिर शारीरिक उन्नति क्यों न रुक जाय ? प्रजा उत्पन्न करना बुरा कार्य नहीं। ऊँचे अर्थों में सन्तान उत्पन्न करना ब्रह्म का अनुकरण करना है। परन्तु इतने से क्या प्रजोत्पत्ति क

अवश्यम्भावी परिणाम रुक सकते हैं ?—नहीं, कभी नहीं। प्रजोत्पत्ति के प्रारम्भ होते ही शारीरिक शक्तियों का ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। सचय की शक्तियों को विचय की शक्तियाँ आ घेरती हैं। मनुष्य का कदम मृत्यु की तरफ बढ़ने लगता है, क्योंकि सजीवनी-शक्ति के बीज का शरीर से बाहर जाना जीवन का प्रतिद्वन्द्वी है। जब शरीर में वृद्धि अधिक नहीं समा सकती तब उत्पत्ति प्रारम्भ करने से किसी हानि की सम्भावना नहीं, परन्तु इस से पूर्व उत्पत्ति का कार्य प्रारम्भ करने पर मनुष्य किसी प्रकार भी नाश से नहीं बच सकता। प्रजा-जनन, शरीर-वृद्धि के चरम-सीमा तक पहुँच जाने का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये—इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। जब भी शरीर-वृद्धि के समय में प्रजोत्पत्ति की जाती है तभी ब्रह्मचर्य्य के नियमों का उल्लङ्घन होता है। 'शरीर-वृद्धि' अथवा 'सचय' की अवस्था में वीर्य का हस्त-मैथुन, व्यभिचार अथवा बाल विवाह आदि किसी रूप में भी नाश करना 'मृत्यु' का आह्वान करना है, क्योंकि ब्रह्मचर्य्य ही जीवन है, अब्रह्मचर्य्य ही मृत्यु है।

उत्पत्ति के साथ नाश का अविनाभाव सम्बन्ध है। प्रजोत्पत्ति में वीर्य का क्षय होता है। वीर्य के क्षय का बदला चुकाने के लिए प्रत्येक प्राण धारी को मृत्यु की गठड़ी सिर पर उठानी पड़ती है। जीवन-शास्त्र पर जिन्हों ने लिखा है उन की पुस्तकों से कई ऐसे दृष्टान्त सगृहीत किये जा सकते हैं जिन से उत्पत्ति तथा नाश का सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होने लगे। पाठकों को वीर्य-रक्षा

के महत्व को दर्शाने के लिए हम यहाँ ऐसे-ही कुछ दृष्टान्तों का संग्रह करेंगे।

हैवलाक एलिस महोदय अपनी पुस्तक 'एरोटिक सिम्बोलिज्म' के १६८ पृ० पर इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं —

"वीर्य-नाश में वेदना-तन्तुओं का जो तनाव होता और उस से शरीर को जो धक्का पहुँचता है वह इतना भयकर होता है कि उस से सम्भोग के बाद अनुभव होने वाले दुष्परिणामों का होना सर्वथा स्वाभाविक है। पशुओं में यही देखने में आया है। प्रथम सम्भोग के बाद बडे-बडे तय्यार बैल और घोडे वेहोश हो कर गिर पडते हैं, सूअर सज्ञा-हीन हो जाते है, घोडियाँ गिर कर मर जाती है। मनुष्यों में मौत तो देखी ही गई है परन्तु उस के साथ ही सम्भोग के बाद की थकान से अनेक उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी कई दुर्घटनाएँ होती देखी गई हैं। नव-युवकों में प्रथम सम्भोग से वेहोशी तथा कय आदि होती है, कई बार मिरगी हो जाती है, अग ढीले पड जाते हैं, तिल्ली फट जाती है। रुधिर के दबाव को न सह सकने के कारण कइयों के दिमाग की नाडियाँ खुल जाती है, अर्धांग हो जाता है। वृद्ध पुरुषों के वेश्याओं के साथ अनुचित सबन्ध का परिणाम अनेक वार मृत्यु देखा गया है। अनेक पुरुष नव-विवाहिता वधुओं के आलिंगन के आवेग को नहीं सह सके और उसी अवस्था में प्राण-विहीन हो गये।"

शहद की मक्खियाँ प्रथमालिंगन के सम-काल ही जीवन से हाथ धो बैठती हैं। तितलियों का श्वास सम्भोग के साथ ही समाप्त हो जाता है। कीड़ियों की भी यही कहानी है। मछलियाँ सन्तानोत्पत्ति के अनतर अत्यन्त क्षीण हो जाती हैं। मृत्यु उन से दूर नहीं रहती। कीड़ों, पतंगों में, प्रजोत्पत्ति तथा मृत्यु, दोनों, ऐसे मिले-जुले हैं कि एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। चूहे, गिलहरी, खरगोश प्रजोत्पत्ति के बाद कई बार मर जाते हैं, कई बार बेहोश होकर एक ओर को गिर पड़ते हैं। पक्षियों में सम्भोग का परिणाम सर्वत्र तात्कालिक मृत्यु नहीं पाया जाता परन्तु इस के दुष्परिणाम उन में भी किसी-न किसी रूप में बने ही रहते हैं। जीवन की लहर के आवेग में उन के जो मधुर गीत निकलते थे व अब सूख जाते हैं, चित्रकार को चकित कर देने वाले पँखों के रंग उड़ जाते हैं, नाचना भूल जाता है, कदम ढीला हो जाता है। ज्यों-ज्यों जीवन उन्नति की तरफ चलता जाता है त्यों-त्यों उत्पत्ति के साथ जुड़ी हुई मृत्यु भी अपने भयंकर स्वरूप को सौम्य बनाने का प्रयत्न करती है, परन्तु कितना भी क्यों न हो, उस की भयंकरता का रुद्र-रूप शिथिल होता हुआ भी दुष्परिणामों में वैसे-का-वैसा ही बना रहता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पत्ति की थकान का प्रथम शिकार, नाटक का सूत्रधार, 'नर' ही होता है। मरना हो तो वही पहले मरता है, बेहोश होना हो तो वही पहले होता है। वही इस उपाख्यान का प्रधान पात्र है, उसी ने रंगीलेपन में फाग उड़ाया है, उसी

से क़िस्सा भी खतम होता है। 'मादा' का जीवन भी सकट में पडता है परन्तु 'नर' की अपेक्षा बहुत कम। क्षुद्र-प्राणियों में प्रजोत्पत्ति की ज्वाला भयकर रूप धारण कर 'नर' को तत्काल भस्म कर देती तथा 'मादा' को स्वल्प-काल में ही भस्मावशेष कर देती है। मनुष्य में इस ज्वाला की शिखा धीमे-धीमे जलती है। कभी ज्वाला चमक उठती, और कभी दब जाती है। इस ज्वाला की गर्मी से मनुष्य की अनेक प्रसुप्त शक्तियों का क्रमिक विकास होता है, परन्तु इस की शिखाओं को भयकर रूप देने वाले को स्मरण रखना चाहिये कि यदि इस आग ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया तो उसी को, स्वय बलि बन कर, अग्नि-देव की रुधिर-पिपासा को शान्त करना होगा।

जेड्डीज और थौमसन ने 'दि एवोल्यूशन ऑफ सेक्स' में जो विचार प्रकट किये हैं उन का इस प्रकरण में उल्लेख करना अत्यन्त शिक्षा-प्रद सिद्ध होगा। अपनी पुस्तक के २५५ पृ० पर वे लिखते हैं —

"मृत्यु तथा उत्पत्ति का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है, परन्तु साधारण बोल-चाल मे इस सम्बन्ध को शुद्ध रूप मे नहीं कहा जाता। लोग कहते हैं कि सब प्राणियों को मरना अवश्य है अत उन्हें सन्तानोत्पत्ति जरूर करनी चाहिये। ऐसा न करने से प्राणियों का सर्वथा लोप हो जायगा। परन्तु यह बात अशुद्ध है। पीछे क्या होगा या क्या न होगा, यह सोचने वाले ससार में थोड़े है। यथार्थ बात जो प्राणियों के जीवन के इतिहास से समझ

पड़ती है यह नहीं है कि—'वे प्रजोत्पत्ति इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें मरना है'—परन्तु यह है कि—'वे मरते इसलिए हैं क्योंकि वे प्रजोत्पत्ति करते हैं'। गेटे का कथन सत्य है कि 'मृत्यु से बचने के लिए हम प्रजोत्पत्ति नहीं करते परन्तु क्योंकि हम प्रजोत्पत्ति करते हैं इसलिए उस के अवश्यम्भावी परिणाम, मृत्यु, से नहीं बच सकते।'

"विजमैन तथा गेटे, दोनों ने भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से ऐसे कीटों तथा पतगों के जीवनों को दर्शाया है जो 'वीर्य-कीटाणु' के उत्पन्न करने के कुछ घण्टों के बाद मर जाते हैं। 'नर' में विनय-शक्ति अधिक है अत उस के जल्दी खतम होने की सम्भावना है। नर-मकड़ी सम्भोग के बाद मर जाती है। उस का मरना अन्य प्राणियों के मरने पर प्रकाश डालता है। उच्च प्राणियों में उत्पत्ति के लिए किये जाने वाले त्याग के साथ मिला हुआ नाश का अश कम अवश्य हो जाता है परन्तु फिर भी प्रेम का बदला चुकाने के लिए मृत्यु का भूत बिल्कुल पीछा नहीं छोड़ता। प्रेम के प्रभात का अन्त प्राय मृत्यु की घोर-निशा में होता है।"

उपर्युक्त उद्धरण में एक कथन बड़े महत्व का है। गिड्डीस तथा थोमसन की सम्मति है कि प्राणि-जगत् में उत्पत्ति इसलिए प्रारम्भ नहीं होती क्योंकि उन की मृत्यु अवश्य होनी है, परन्तु उन की मृत्यु इसलिये होती है क्योंकि वे उत्पत्ति प्रारम्भ कर देते हैं। मृत्यु सन्तानोत्पत्ति का अवश्यम्भावी परिणाम है। निम्न-

न्देह यह एक स्थापना है, परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस स्थापना के करने वाले साधारण व्यक्ति नहीं है। यह स्थापना ऐसे व्यक्तियों ने की है जिन का विज्ञान पर ऋण है, जिन्हों ने जीवन-शास्त्र के प्रश्न पर अपना बहुत समय बिताया है। अनुभव इस स्थापना की पुष्टि करता है। उत्पत्ति के साथ विनाश के इस नित्य-सम्बन्ध को ही तो देख कर ऋषि-मुनियों ने ब्रह्मचर्य्य पर इतना बल दिया था, ब्रह्मचर्य्य के आदर्श को उत्तरोत्तर बढाया था। वसु, रुद्र तथा आदित्य ब्रह्मचारियों में वसु को निकृष्ट ब्रह्मचारी ठहराया था। कितना ऊँचा लक्ष्य है! चौवीस साल तक ब्रह्मचर्य रखना पर्याप्त नहीं समझा गया। प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के प्रश्न को विवाद अथवा व्याख्यान देने तक सीमित नहीं रक्खा था। ब्रह्मचर्य का प्रश्न उन के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। इस पर उन्हों ने ऐसे ही विचार किया था जैसे आजकल के विद्वान् किसी 'सायन्स' के विषय पर करते हैं। संयम तथा ब्रह्मचर्य्य को लक्ष्य में रख कर उन्हों ने नियन्त्रित पाठशालाएँ चलाई थी जिन का नाम 'गुरुकुल' था। गुरुकुलों में आजकल के स्कूलों और कालिजों की तरह किताबें रटवा कर विद्यार्थियों को पैसा पैदा कर सकने की मैशीन बना देना उद्देश्य न होता था। आचार की मर्यादा तक पहुँचना वहाँ का ध्येय रक्खा गया था। जिस प्रकार आजकल किताबें पढना स्कूलों का अन्तिम उद्देश्य समझा जाता है ठीक इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य का पालन कराना, संयम-पूर्वक जीवन बिता सकने की शिक्षा देना,

गुरुकुलों का चरम लक्ष्य था। प्राचीन-काल में यह कार्य, आज कल के शब्दों में एक 'सायन्स' का महत्त्व रखता था, इस के लिए बड़े-बड़े मस्तिष्क दिन-रात लगे रहते थे। ऋषियों ने जीवन के महत्व-पूर्ण प्रश्न का एक हल निकाला था—वह था 'ब्रह्मचर्य्य'। उन के गुर बड़े सरल थे, परन्तु ब्रह्मचर्य के भावों से पूर थे। वे कहते थे—'ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'—ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त किया, 'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः'— ब्रह्मचर्य के स्थिर रखने से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल प्राप्त होता है, 'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'—बिन्दु-पात में जीवन का नाश तथा बिन्दु-रक्षण में जीवन की रक्षा है। कैसे छोटे-छोटे संस्कृत के सुन्दर टुकड़े हैं परन्तु इन्हीं में जीवन की विकट समस्याओं के कैसे जीवन-शास्त्र तथा शरीर-शास्त्र के महत्त्व पूर्ण हल भरे हुए हैं।

त्रयोदश अध्याय

'ब्रह्मचर्य'

[ब्रह्मचर्य के नियम और ऋषियों की बुद्धिमत्ता]

ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के प्रश्न पर पूरा-पूरा विचार कर लिया था। सदाचार का जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जा सकता है इस की उन्हों ने पूरी-पूरी खोज की थी और उसी क आधार पर ब्रह्मचर्य के नियमों को घड़ा था। इस प्रकरण मे हम ब्रह्मचर्य के नियमों का उल्लख करते हुए यह भी दर्शाने का प्रयत्न करेंगे कि ऋषियों-मुनियों ने ब्रह्मचर्य के लिए जिन नियमो का प्रतिपादन किया है, यद्यपि व साधारण-दृष्टि से मामूली-से जान पड़ते हैं तथापि उन मे गहन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त कार्य कर रहे है। उन की आज्ञाएँ वर्तमान परीक्षणों, वैज्ञानिक गवषणाओं तथा सार्वभौम अनुभवों से भी पूर्णतया सिद्ध होती है।

निम्न लिखित श्लोकों में ब्रह्मचर्य क सिद्धान्त सक्षिप्त-रूप से समाविष्ट है —

> "स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
> संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥
> एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
> विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥"

इन्हीं अष्टांग मैथुनों का निषेध, उपनयन-संस्कार के समय 'मैथुन वर्जय' उपदेश द्वारा किया जाता है—'हे बालक ! यौवन काल में से गुजरते हुए आठ प्रकार के मैथुनों से बचना। ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकान्त-वास और समागम में से किसी एक का भी शिकार मत बनना, वीर्य-रक्षा करना। जो मनुष्य इन का शिकार हो जाता है वह किसी भी अवस्था में ब्रह्मचारी नहीं रह सकता।'

आत्म-संयम तथा वीर्य-रक्षा के लिए ये शिक्षाएँ ब्रह्मचारी को गुरुकुल में प्रविष्ट होते ही दी जाती थीं। इन शिक्षाओं का, संक्षेप में यही अभिप्राय है कि ज्ञान की साधन पाँचों इन्द्रियों को मार्ग से विच्युत न होने देना चाहिए। उन का सदा सदुपयोग करना चाहिए। उन्हें भटकने न देना चाहिए। ब्रह्मचर्य के उपदेश में एक-एक इन्द्रिय को वश करने पर विशेष बल दिया गया है। सन्ध्या में प्रत्येक इन्द्रिय का नाम लेकर उसे सीधे मार्ग पर चलाने की प्रेरणा की गई है। प्रत्येक इन्द्रिय के दुरुपयोग से ब्रह्मचर्य-हानि की सम्भावना है, अत ऋषियों ने एक-एक इन्द्रिय को लक्ष्य में रख कर ऐसी आज्ञाएँ प्रचलित की थीं जिन के पालन करने से उन सम्भावनाओं को सर्वथा रोक दिया जाय। उन की आज्ञाओं का आधार बिल्कुल वैज्ञानिक है। यही दर्शाने के लिए हम एक-एक इन्द्रियार्थ का वर्णन करते हुए पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों पर अर्वाचीन तथा प्राचीन विचारों की दृष्टि से कुछ लिखेंगे।

१ रूप

मनुष्य के मनोविकारों को जागृत करने में आँखों का हिस्सा बहुत बड़ा है, इसलिए संयमी मनुष्य के लिए उन पर नियन्त्रण रखने की बहुत आवश्यकता है। आजकल का शहरों का जीवन बालक तथा बालिकाओं के सन्मुख अधःपतन तथा नाश के दरवाजे खोल देता है। वे जिधर आँखें उठाते हैं उधर ही उन्हें बलात्कार-पूर्वक खींच ले जाने वाले प्रलोभन उमड़ते हुए नजर आते हैं। वे अपने को रोक नहीं सकते। प्रत्येक शहर, नाटक तथा सिनेमाओं से भरा हुआ है। नाच, गीत, रंग, रूप—सब मिल कर नव-युवक पर आक्रमण करते हैं—बेचारा सामर्थ्य न होने से दब जाता है। प्लेटो ने नाटकों के देखने के विषय में लिखा है कि उन के द्वारा मनुष्य पर कृत्रिम वस्तुओं का प्रभाव वास्तविक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक होने लगता है। मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स ने इसी प्रकरण में एक रशियन महिला का उल्लेख किया है जो नाटक के दृश्य में सर्दी से ठिठरते हुए मनुष्य को देख कर आँसू बहाती रही परन्तु उस का घोड़ा तथा कोचवान नाटक-शाला के बाहर रूस के खून जमा देने वाले पाले में मरते रहे। नाच देखने का शौक, युरप तथा भारत, दोनों जगह पर्याप्त मात्रा में है, परन्तु इस के भयंकर दुष्परिणामों की तरफ आँखें खोल कर नहीं देखा जाता। यह युवाओं का अन्धापन है। डा० कैलोग 'प्लेन फैक्ट्स' के ३२१ पृष्ठ पर लिखते हैं —

"आत्म क्षय, रात्रि-जागरण, मध्य-रात्रि-भोजन, फ्लानेल और अनुचित ड्रेस का परिधान तथा शीत—इन दोषों के अतिरिक्त यह भी दिखाया जा सकता है कि नाचने से मनोभाव उत्तेजित हो जाते हैं और कुवासनाएँ जाग उठती हैं जिन के कारण मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत्त हो जाता है। ऐसे घृणित-कृत्य आचार-शास्त्र को धक्का पहुँचाने वाले तथा व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक उन्नति के घातक हैं।" चक्षुरिन्द्रिय का यह दुरुपयोग प्राचीन ऋषियों से छिपा न था। इसीलिए उन्हों ने ब्रह्मचर्य के नियमों का वर्णन करते हुए—'नर्तन गीतवान्नम्'—इस प्रकार की आज्ञाओं में नाचने-गाने का सर्वथा निषेध कर दिया था।

ब्रह्मचर्य के नियमों में दर्पण देखने का भी निषेध है, इस का यही कारण है कि दर्पण के उपयोग से कई नव-युवक अनुचित मानसिक-भावों के शिकार बन जाते हैं। इन विषयों पर हेवलॉक एलिस ने बड़े परिश्रम से अनुसन्धान किये हैं। वे अपनी पुस्तक 'सैक्सुअल सिलेक्शन इन मैन' के १८७ पृ० पर लिखते हैं —

"आजकल वेश्या-घरों तथा अन्य फैशनों की जगहों पर सर्वत्र दर्पणों का प्रयोग बहुतायत से पाया जाता है। भोले भाले बालक तथा बालिकाएँ अपने को दर्पण में देख कर अपने विषय में तरह-तरह की कल्पनाएँ करने लगते हैं और इस प्रकार उसके द्वारा पहले-पहल कुवासनाओं को सीख जाते हैं।"

क्या एलिस महोदय के कथन में किञ्चिन्मात्र भी सन्देह है? दर्पण का प्रयोग फैशन के लिए बढ़ता चला जा रहा है।

युवक लोग शीशे में चेहरे की एक-एक रेखा को देखते हैं। उन के हृदय में तरह-तरह की भावनाएँ उठती हैं। उन सब के होते हुए ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकना असम्भव है।

पाँचों इन्द्रियों से गिरावट किस प्रकार होती है इस पर विचार करते हुए शायद 'मौके' पर कुछ लिख देना प्रकरणान्तर न होगा, क्योंकि 'मौका' पाकर ही 'रूप' आदि मनुष्य पर धावा बोल देते हैं। 'मौका' मनुष्य की गिरावट का शायद सब से बड़ा साधन है। बालकों को गिरने के लिये मौका मिल जाता है, बालिकाओं को गिरावट के लिये अवसर प्राप्त हो जाता है, बड़ी उम्र के पुरुष तथा स्त्रियों को भी गिरने के लिये अवसर ढूँढने की कठिनता नहीं होती। 'मौका' ऐसी चीज है जिस के मिलते ही मनुष्य का धर्म-कर्म कूच कर जाता है। संसार को उपदेश देने वाला महात्मा आत्म-हत्या का महा-पातक कर बैठता है।

बच्चों को खुला छोड़ देना भयंकर पाप है। यदि उन की प्रत्येक गति पर प्रेम-मय नियन्त्रण की आँख न रक्खी जाय तो उन का घृणित-तम पातकों को सीख जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। हमें माता-पिता की मूर्खता पर हँसी आती है जब वे अपनी संतान की पवित्रता के गीत गाते सुन पड़ते हैं। वे समझते हैं कि उन के बच्चे गलियों में निकम्मे फिरते हुए भी आचार में किसी तरह गिर नहीं सकते। कितनी भारी भूल है। बच्चों को जब तक काम में नहीं लगाये रक्खा जायगा तब तक उन के

सदाचारी बने रहने की आशा रखना निराशा को निमन्त्रण देना होगा। काम में लगे हुए बच्चों को गाली-गलौज सीखने का 'मौका' ही नहीं मिलता, वे अध पतन के पाठ को सीख ही नहीं सकते। इसीलिये ऋषियों ने वेदारम्भ-संस्कार के उपदेश में सब से प्रथम उपदेश—'कर्म कुरु'—रखा था। 'काम करो, खाली मत रहो, अपनी शक्तियों का प्रतिक्षण संचय, सदुपयोग तथा सद्व्यय करते रहो।' जिन बालकों को गिरने का मौका मिल जाता है, उन का नाश, दु ख तथा आश्चर्य से, हमें, अपनी आँखों से, अपने सामने देखना पड़ता है। 'सैक्सुअल लाइफ ऑफ दी चाइल्ड' के लेखक ने एक बालक के विषय में लिखा है —

"मैं एक १४ वर्ष के बालक को जानता हूँ जो लगातार चर्च में जाता था और बड़ा मेहनती विद्यार्थी था। उसे भग-भग की बीमारी थी। उस की माता बालक को दिखाने के लिए मेरे पास ले आई। परीक्षा करने पर मैंने देखा कि बालक को सुजाक की बीमारी थी। जब मैंने बच्चे की माँ को सब-कुछ सच-सच कह दिया तब उस की माता मुझ से क्रुद्ध हो उठी, क्योंकि वह अपनी सन्तान के विषय में ऐसी बात सुन ही नहीं सकती थी। अधिक अन्वेषण करने पर मालूम हुआ कि तेरह वर्ष की अवस्था से भी पहले से यह बालक वेश्याओं के भी पास आता-जाता था।"

इस बालक का जो हाल था इस तरह का हाल न जाने कितने बच्चों का होगा परन्तु माता-पिता अपनी सन्तान के विषय

में यह सब-कुछ सुनने के लिए तय्यार नहीं होते और जब तक बच्चे का सम्पूर्ण नाश उन की आँखों के सामने नहीं हो लेता तब तक निश्चिन्त हुए बैठे रहते हैं।

इसी 'मौके' की सम्भावना को दूर करने के लिए गुरुकुलो के नियमों के अनुसार लड़कों का, लड़कियों के गुरुकुलो में, तथा लड़कियों का, लड़कों के गुरुकुलो में आना निषिद्ध ठहराया गया था। बुरे मौकों से बचने के विचार को दृष्टि में रख कर ही प्राचीन काल मे गुरुकुलों की स्थापना जगलों में की जाती थी। मौका मिलने पर रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श सभी द्वारा मनुष्य की गिरावट होती है इसलिए ब्रह्मचर्य्य रक्षा का सब से बड़ा साधन ऐसे मौकों से बचना है। प्राचीन-शिक्षा क्रम में तभी तो ब्रह्मचारी तथा आचार्य, दिन-रात, २४ घण्टे साथ-साथ जीवन व्यतीत करते थे, गिरावट के 'मौके' से ही बालक को बचाये जाने का प्रयत्न किया जाता था।

२ शब्द

मनुष्य के अनुचित मानसिक आवेगों को रोकने के लिए शास्त्रों मे नृत्य का निषेध किया गया है। नृत्य के साथ-साथ कान के व्यसन, गीत आदि में मस्त रहने की भी ब्रह्मचर्य्य के नियमों में मनाई है। गाने-बजाने का अधिकार ब्रह्मचारी को नहीं दिया गया। इस का कारण यही है कि गाना-बजाना ब्रह्मचर्य्य में हानिकर है। इस से मनोविकारों का उत्पन्न होना

स्वाभाविक है। हेविलौक एलिस ने गाने तथा मानसिक विकारों की उत्पत्ति का सम्बन्ध बड़ी सफलता से अपनी पुस्तक 'सैनुअल सिलैक्शन इन मैन' में दर्शाया है। वे उस पुस्तक के १२३ पृष्ठ पर लिखते हैं —

"इस में कोई सन्देह नहीं कि भिन्न-भिन्न प्राणियों में—विशेष रूप से कीड़ों, पतगों तथा पक्षियों में—संगीत का उद्देश्य 'नर' का 'मादा' को अपनी तरफ लुभाना ही होता है। डार्विन महोदय ने इस दृष्टि से बहुत अन्वेषण किये और व इसी सिद्धान्त पर पहुँचे। इस विषय पर हर्बर्ट स्पन्सर तथा उन के अनुयायियों ने शंका उठाई है, परन्तु वर्तमान गवेषणाओं से यह बात स्थिर रूप से सिद्ध हो चुकी है कि मधुर शब्दों तथा गीतों का परिणाम पक्षियों में नर और मादा का मिलना ही होता है। गीत तथा प्रेम के सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि प्राणि-जगत् में नर तथा मादा में से एक ही को मधुर-स्वर दिया गया है, दोनों को नहीं। इस का उद्देश्य मानसिक प्रसुप्त भावों को उद्बुद्ध करना नहीं, तो क्या है।"

जिस प्रकार पशुओं में गाने तथा प्रेम के भाव प्रकट करने का भारी सम्बन्ध पाया जाता है उसी प्रकार मनुष्यों में भी यह नियम काम करता दिखाई देता है। एलिस महोदय पशु पक्षियों में इस नियम को दर्शा कर मनुष्यों के विषय में लिखते हैं —

"जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि पशु पक्षियों में ही नहीं अपितु मनुष्यों में भी, यौवनावस्था में, ग्रीवा के उस भाग

की रचना में भारी परिवर्तन उत्पन्न होते हैं जिस का गाने में अधिक उपयोग होता है तब इस में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि गाने का यौवन के मानसिक भावों के साथ बड़ा भारी सम्बन्ध है।

"इसी सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए, प्लेटो ने अपने काल्पनिक-राज्य में, किस प्रकार की गान-विद्या की आज्ञा देनी चाहिये, इस प्रश्न पर विचार किया है। यद्यपि प्लेटो ने यह नहीं कहा कि सगीत का सदा ही मनुष्य पर उत्तेजक प्रभाव होता है तथापि वह विशेष प्रकार के सगीत का मानसिक विकारों को उत्पन्न करने के साथ सम्बन्ध अवश्य मानता है। ऐसे सगीत से शराबीपन, औरतपन और निकम्मापन बढ़ता है, और प्लेटो की सम्मति में, पुरुषों का तो कहना ही क्या, स्त्रियों को भी ऐसा सगीत नहीं सिखाना चाहिये। प्लेटो दो ही प्रकार के सगीत सिखाने के हक में है युद्ध का अथवा प्रार्थना का।"

जब हम पशुओं, पक्षियों तथा मनुष्यों में सर्वत्र सगीत का सम्बन्ध विषय की वासना को जगाने के साथ ऐसा प्रबल देखते हैं तब प्राचीन ऋषियों का ब्रह्मचारियों के लिए गाने-बजाने का निषेध करना ही उचित प्रतीत होता है। इस में कोई सन्देह नहीं कि गाने और गाने में भेद है। प्रत्येक गाना विषय-विकार को उत्पन्न करने वाला नहीं होता। इसलिए प्रत्येक प्रकार का गाना भी ब्रह्मचारी के लिए रोका नहीं गया। सामवेद के गाने का तो ब्रह्मचारी के लिए विधान ही किया गया है। क्योंकि, अधिकांश,

गीत का सम्बन्ध विषय-वासना के साथ है, इसीलिए ब्रह्मचारियों के लिए गाने-बजाने का निषेध करना पूर्ण-बुद्धिमत्ता का कार्य है, इस में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

३ गन्ध

नासिका तथा जनन-शक्ति में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राचीन रोम के लोग इस सम्बन्ध से भली प्रकार परिचित थ , वर्तमान काल में भी इन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विश्वास पाया जाता है। यौवन-काल में लड़कों तथा लड़कियों को नकसीर बहुत फूटने का कारण, नासिका तथा जननेन्द्रिय का सम्बन्ध ही है। इसी समय नासिका के दूसरे रोग भी उठ खड़े होते हैं। अनेक बार नकसीर को, जनन प्रदेश में बर्फ से ठण्डक पहुँचा कर, बन्द किया गया है। कमजोर पुरुषों तथा स्त्रियों में हस्त-मैथुन अथवा सम्भोग के बाद नकसीर फूटती देखी गई है। कई बार वीर्य क्षय के पीछे नासिका द्वार का अवरोध तथा छींक आना आदि देखा गया है। इस विषय पर कई लेखकों ने प्रकाश डाला है। एलिस महोदय एक स्त्री का उल्लेख करते हैं जिस में उपर्युक्त कथन पूरा-पूरा घटता था। फीरी ने एक स्त्री के विषय में लिखा है जिसे विवाह के बाद नाक की बीमारियों की लगातार शिकायत रहने लगी थी। जे० एन० मैकेन्जी ने अनेक दृष्टान्त देते हुए लिखा है कि नव विवाहित पति-पत्नियों में जुकाम के बहुधा पाये जाने का मुख्य कारण भी यही है।

इस गिरावट के जमाने में परमात्मा की दी हुई प्रत्येक वस्तु का दुरुपयोग हो रहा है। बाजार तरह-तरह के गन्धों से भरा हुआ है। कस्तूरी का बहुत प्रयोग दिखाई देता है। पशुओं के शरीर से बने हुए गन्ध उत्तेजक होते हैं, अत जगली लोगों में उन का बहुत प्रचार था, परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्य होता जाता है त्यों-त्यों पशुओं के शरीर की गन्ध के स्थान में फूलों की गन्ध का उपयोग बढ़ता जा रहा है। फूलों से जो गन्ध बनते हैं वे भी मनुष्य की कुवासनाओं को उद्बुद्ध करते हैं, क्योंकि उन की रचना में वही पदार्थ होते हैं जो कस्तूरी आदि पशुओं के गन्ध में पाये जाते है। पशुओं से अथवा फूलों से, दोनों ही से, निकला हुआ गन्ध सर्वथा समान है और दोनों के दुष्परिणाम ब्रह्मचर्य के लिए भयकर है।

एलिस महोदय ने 'जरनल ऑफ साइकोलौजिकल मैडिसिन' में से उद्धरण दिया है, जिस का आशय यह है कि बनावटी फूलों के गन्धों का प्रयोग सदाचार के लिए अत्यन्त हानिकारक है और सदाचार का जीवन व्यतीत करने के लिए फूलों से बचना ही उत्तम है। इसी कारण प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य के नियमों का उपदेश देते हुए आचार्य गन्ध-फूल-माला आदि उत्तेजक पदार्थों से बचने का आदेश करता था। आजकल के स्कूलों तथा कालिजों के विद्यार्थी गन्धों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि यह ब्रह्मचर्य्य के नियमों के प्रतिकूल है, सादा जीवन तथा पवित्र जीवन ही आदर्श जीवन है।

४ स्पर्श

बेन महोदय अपनी पुस्तक 'इमोशन्स एण्ड विल' में लिखते हैं कि 'स्पर्श, प्रेम का आदि और अन्त है'। स्पर्श, मनोभावों को जागृत करने का सब से बड़ा साधन है—इस बात को भारत के ऋषि, युरप के फौरी, मेन्टगेजा, पेन्टा तथा एलिस सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं। स्पर्श का मनुष्य को उत्तेजित करने में इतना भारी असर है कि कई पश्चिमीय लेखकों की सम्मति में वर्तमान सभ्यता की बढ़ती के साथ साथ साधारण-से स्पर्श को भी बुरा समझा जाने लगेगा। निस्सन्देह सभ्यता में ऐसे युग का आना सभ्यता की गिरावट का ही सूचक होगा, परन्तु, यदि ऊँची दृष्टि से देखने पर मनुष्य उन्नति के स्थान में अवनति ही कर रहा हो, तब, ऐसे युग का आ पहुँचना आश्चर्य की बात भी न होगी।

डा० ब्लौच अपनी पुस्तक 'दि सैक्सुअल लाइफ ऑफ आवर टाइम' के ३० पृ० पर लिखते हैं—

"स्पर्श से मानसिक विकार उत्पन्न हो जाने का मुख्य कारण यह है कि त्वचा के संवेदना-तन्तुओं की रचना तथा उत्पादक अंगों के तन्तुओं की रचना एक ही पदार्थ से हुई है, इसलिए प्राणिमात्र के सब अवयवों की अपेक्षा त्वचा का असर मानसिक दुर्भावों को जागृत करने में तत्काल होता है। जो व्यक्ति, स्पर्श की भयानकताओं से बच जाता है वह इस के उन दुष्परिणामों से भी बच जाता है जो उसे अन्धा बना देने वाले होते हैं।"

बालक तथा बालिकाओं में प्राय एक दूसरे को गुदगुदी करने की आदत देखी जाती है। गुदगुदी से त्वचा के उत्तेजन द्वारा मनोविकृति का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। बच्चों को इस आदत से बचाना चाहिए। अनावश्यक स्पर्श का कभी न होने देना ही ब्रह्मचर्य का नियम है।

कोमल बिस्तरों का भी ब्रह्मचर्य पर बुरा असर होता है। बच्चों के विषय म डा० ब्लाच ने बहुत अन्वषणा की है। उन का कथन है कि बच्चों को गद्देदार बिस्तरों पर सोने देने से उन के हस्त-मैथुनादि अनेक पैशाचिक दुर्व्यसनों को सीखने की सम्भावना है। इसीलिए ब्रह्मचर्य के नियमों में—'उपरि शय्या वर्जय'—कोमल, गद्देदार बिस्तरों पर सोने का निषेध किया गया है।

एलिस महोदय अपनी पुस्तक 'मौडेस्टी, सैक्सुअल प्रिकौसिटी, ऑटो-इरौटिज़्म' के १७५ पृ० पर लिखते हैं —

"कई लेखकों ने लिखा है कि घोड़े की सवारी ब्रह्मचर्य के लिए ठीक नहीं है। घोड़े की सवारी से वीर्य स्खलित हो जाने का ज्ञान कैथोलिक पादरियों को भी था। पुरुषों तथा स्त्रियों मे रेल गाड़ी की गति से भी दुष्प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, यह बहुतों का अनुभव है।"

शास्त्रों में, ब्रह्मचारी को उपदेश देता हुआ आचार्य कहता है—'गवाश्वहस्त्युष्ट्रादि यान वर्जय'—बैल, घोड़े, हाथी, ऊँट आदि की सवारी मत करो। कई जगह तो सवारी मात्र का निषेध किया गया है। ब्रह्मचारी को, जिस तरह से भी हो सके, ब्रह्मचर्य के

खण्डित होने से बचाया जाय, यही भाव प्राचीन गुरुओं के मस्तिष्क में काम करता रहता था। स्पर्श के विषय में लिखा है –

'अकामत स्त्रयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलन विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेता सतत भव'—इन्द्रिय-स्पर्श कभी न करते हुए वीर्य-रक्षा करो।

इन उपदेशों को पढ़ कर प्राचीन गुरुओं और आधुनिक गुरुओं में भेद स्पष्ट दीख पड़ता है। क्या आजकल, गुरुकुलों के आचार्यों को छोड़ कर, किसी स्कूल अथवा कालिज का प्रिन्सिपल जनता के सन्मुख खड़े होकर अपने शिष्य को यह उपदेश देने का साहस कर सकता है कि, 'ऐ बालक! इस संस्था में वीर्य-रक्षा करना तेरे जीवन का लक्ष्य होगा!'—नहीं। शिक्षा का इसे उद्देश्य नहीं समझा जाता। पढ़ा लिखा कर, रोटी कमाने लायक बना देने में स्कूल का काम खतम हो जाता है। प्राचीन गुरुकुलों का उद्देश्य ही पृथक् होता था। बालक को संयमी, सदाचारी बनाना उन का ध्येय था। पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं परन्तु आत्मिक उन्नति को सम्पूर्ण शिक्षा का लक्ष्य समझा जाता था। यह भेद प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षकों के नामों में भी दीख पड़ता है। आधुनिक शिक्षक का नाम 'हेड-मास्टर' या 'प्रिन्सिपल' है। 'हेड-मास्टर' का अर्थ है—'मालिक'। 'प्रिन्सिपल का अर्थ है— 'मुखिया'। जिन्हें अपने रोब जमाने से छुट्टी न मिलती हो, जो 'मालिकपन' और 'मुखियापन' के विचारों के नीचे दबे हुए हों, वे आचार की देख-भेख क्या करेंगे!

प्राचीन शिक्षक के लिए शब्द ही 'आचार्य' का व्यवहृत होता था। शिक्षक, मुखिया (गुरु) अवश्य था, परन्तु वह 'आचार्य' भी था—सदाचार की शिक्षा देना उस का प्रधान-कर्त्तव्य था।

५ रस

रस मे कई विषय मिले हुए हैं। गन्ध, स्पर्श तथा रूप का भी इस में समावेश है। गन्धादि विषयों का सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकर है अत रसीले पदार्थों का सेवन हानिकर स्वत हो जाता है। शराब, चाय, काफी, तम्बाकू तथा मिठाईयों का व्यसन सभ्यता की उन्नति (?) के साथ उन्नत होता चला जा रहा है। लोग पेटू होते जा रहे हैं। इन सब का ब्रह्मचर्य पर बहुत बुरा असर होता है।

शराब का जीवन के सार-तत्वों को बिगाडने में जो हाथ है उसे दर्शाने के लिए किसी डॉक्टर का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। शराबी का नशे में अपने को भूल कर सदाचार के क्षेत्र से कोसों दूर चला जाना रोज की घटना है। हम इस के विषय में कुछ न लिखना ही सब-कुछ लिख देने के बराबर समझते हैं। चाय तथा काफी के भयकर दुष्परिणामों से सर्व-साधारण परिचित नहीं हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि अनेक व्यक्ति चाय, काफी के बुरे परिणामों से अपरिचित होने के कारण ही उन का उपयोग करते हैं। यथार्थ बात के ज्ञात होते ही व इन्हें छोडने के लिए उद्यत हो जायँगे। डा० ब्लोच का कथन है —

"चाय, काफी तथा मौरफीन को अधिक मात्रा में लेने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है। ड्यूपी ने परीक्षण कर के देखा है कि कई लोग जो दिन में ५-६ बार काफी पीते थे नपुंसक हो गये। काफी छोड देने से व ठीक हो जाते और शुरू कर देने से फिर नपुंसक हो जाते थे।"

तम्बाकू के विषय में डा० कैल्लोग 'प्लेन फैक्ट्स' में लिखते हैं —

"मनुष्य के आचार पर तम्बाकू का क्या असर होता है इस बात को बहुत थोडे लोग जानते हैं। बचपन में इस दुर्व्यसन के लग जाने से शीघ्र-ही कुवासनाएँ प्रदीप्त हो उठती हैं और कुछ ही वर्षों में सदाचारी तथा पवित्र युवक को काम-वासनाओं का ज्वालामुखी बना देती हैं। उस के अन्त करण की धधकती हुई कुवासनाओं की ज्वालाओं से अश्लीलता तथा दुराचार का काला धुआँ निकलने लगता है। देर तक तम्बाकू का प्रयोग करते रहने से नपुंसकता आ पहुँचती है।"

मिठाईयों का शौक कुप्रवृत्तियों का कारण और परिणाम दोनों ही है। डा० क्लोव 'सैक्सुअल लाइफ ऑफ आवर टाइम्स' के ३४ पृ० पर लिखते हैं —

"मिठाईयों के लिए शौक का कुप्रवृत्तियों के साथ सम्बन्ध है। जो बच्चे मिठाईयों के बहुत शौकीन होते हैं उन के गिरने की बहुत अधिक सम्भावना बनी रहती है और वे दूसरे बच्चों की अपेक्षा हस्त-मैथुनादि कुकर्मों की तरफ अधिक झुकते हैं।"

पेटूपन आजकल की नई बीमारी है। इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि वर्तमान युग में भूख से इतने लोग नहीं मरते जितने पेटूपन से मरते हैं। वीर्य-रक्षा न करने का अवश्यम्भावी परिणाम पेटूपन है। दुराचारी व्यक्ति का रसनेन्द्रिय पर वश नहीं रहता। पेट भरे रहने पर भी उस की भूख नहीं मिटती और वह सदा आवश्यकता से अधिक खा जाता है। उपवास करना उस के लिए असम्भव-सा जान पडता है। डा० कैल्लौग लिखते हैं कि पेटूपन सदाचार का शत्रु है। अधिक खा जाने से वीर्य-नाश होना निश्चित है, इसलिये जितनी भूख लगी हो उस से कुछ कम ही खाना चाहिये।

ब्रह्मचर्य के प्राचीन नियमों मे इस सिद्धान्त को प्रधानता दी गई थी कि हमारा मन भोजन से बनता है। उपनिषद् में लिखा है—'अन्नमय हि सौम्य मन'। सात्विकाहार के लिये जगह-जगह प्रेरणा की गई है। ब्रह्मचारी को गुरुकुल मे प्रविष्ट करता हुआ आचार्य कहता है —'तैलाभ्यङ्गविमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व'—बहुत खट्टे, तीखे, नमकीन पदार्थ मत खाना, राजसिक भोजन से कुसस्कार जाग उठते हैं। बहुत वार भोजन करन का निषेध करते हुए प्रात-सायँ दो ही वार ब्रह्मचारी क लिए भोजन का विधान किया गया है। मनुस्मृति में ब्रह्मचर्य के प्रकरण में ब्रह्मचारी को नीरोग तथा स्वस्थ रहन के लिये किस प्रकार का भोजन करना चाहिये इस पर लिखा है —

"चाय, काफी तथा मौरफीन को अधिक मात्रा में लेने से मनुष्य नपुँसक हो जाता है। डयूपी ने परीक्षण कर के देखा है कि कई लोग जो दिन में ५-६ बार काफी पीते थे नपुँसक हो गये। काफी छोड़ देने से व ठीक हो जाते और शुरू कर देने से फिर नपुँसक हो जाते थे।"

तम्बाकू के विषय में डा० कैल्लौग 'प्लेन फैक्ट्स' में लिखते हैं—

"मनुष्य के आचार पर तम्बाकू का क्या असर होता है इस बात को बहुत थोड़े लोग जानते हैं। बचपन में इस दुर्व्यसन के लग जाने से शीघ्र-ही कुवासनाएँ प्रदीप्त हो उठती हैं और कुछ ही वर्षों में सदाचारी तथा पवित्र युवक को काम-वासनाओं का ज्वालामुखी बना देती हैं। उस के अन्तःकरण की धधकती हुई कुवासनाओं की ज्वालाओं से अश्लीलता तथा दुराचार का काला धुआँ निकलने लगता है। देर तक तम्बाकू का प्रयोग करते रहने से नपुँसकता आ पहुँचती है।"

मिठाईयों का शौक कुप्रवृत्तियों का कारण और परिणाम दोनों ही है। डा० क्लौच 'सैक्सुअल लाइफ ऑफ आवर टाइम' के ३४ पृ० पर लिखते हैं—

"मिठाईयों के लिए शौक का कुप्रवृत्तियों के साथ सम्बन्ध है। जो बच्चे मिठाईयों के बहुत शौकीन होते हैं उन के गिरने की बहुत अधिक सम्भावना बनी रहती है और वे दूसरे बच्चों की अपेक्षा हस्त मैथुनादि कुकर्मों की तरफ अधिक झुकते हैं।"

उपसंहार

ब्रह्मचर्य्य का सन्देश एक महान सन्देश है—यह जीवन का, अमरता का सन्देश है। यह प्राचीन भारत का सन्देश है। हिमालय के गगन-भेदी शिखर से, गगा और यमुना की अनवरत उठने वाली ध्वनि से, समुद्र की अथाह नीरवता से, काननों की दुर्भेद्य निर्जनता से तपस्यामय जीवन बिताने वाले प्राचीन ऋषियों का सन्देश मुझे सुनाई दे रहा है,—और वह है, 'ब्रह्मचर्य्य'! इस सन्देश को सुनने वाले आत्माओं की भारत-माता को जरूरत है।

'ब्रह्मचर्य्य' एक चार अक्षरों का छोटा-सा शब्द है परन्तु इस में जो भाव आ जाते हैं उन का सौवाँ हिस्सा भी इन २५० पृष्ठों मे नहीं लिखा जा सका। वीर्य-रक्षा, 'ब्रह्मचर्य्य' का स्थूल रूप है, 'ब्रह्मचर्य्य' वीर्य-रक्षा से बहुत कुछ ज्यादह है—बहुत-कुछ ज्यादह! 'ब्रह्मचर्य्य' एक व्यापक शब्द है। 'ब्रह्मचर्य्य' का अर्थ है—शक्तियों का सग्रह करना, उन्हें बिखरने न देना, उन्हें अपनी उन्नति में लगाना। व्यक्ति को ही नहीं, समाज को भी ब्रह्मचर्य्य की जरूरत है। हमारा समाज बिखरा हुआ है, वह शक्ति-हीन हो चुका है—इस का यही अभिप्राय है कि समाज में ब्रह्मचर्य्य की शक्ति नहीं रही। व्यक्तियों को, समाजों को, देशों को, 'ब्रह्मचर्य्य की जरूरत है—बड़ी भारी जरूरत है, क्योंकि ब्रह्मचर्य्य से ही शक्ति का सचय हो सकता है। इस

"सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं स्मृतिनोदितम्।
नान्तरे भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमोविधिः॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यंचातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥"

वर्तमान गवेषकों के उक्त अनुभवों से स्पष्ट है कि ऋषियों ने ब्रह्मचर्य्य के लिये जिन नियमों का निर्माण किया था उन के आधार में बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त काम कर रहे थे।

है — 'मैंने आप की अंग्रेजी में लिखी ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तक को पढा, और बार-बार पढा। इसे पढ कर मेरी आँखें खुलीं। हाय! मैं कितना अभागा था, मुझे तो अब-तक कुछ मालूम ही न था। मैंने आप की पुस्तक अपने सब छोटे भाइयों, भानजों और भतीजों को मगा कर दी है। मैं चाहता हूँ कि यह पुस्तक हरेक हाई-स्कूल में हरेक लडके के लिये पढना लाजमी हो जाय।' दूसरा युवक अकोला से लिखता है —'मैंने ब्रह्मचर्य्य पर ऐसी पुस्तक अब तक नहीं पढी थी। मैं ऐसी पुस्तक की ही तलाश में था। आप की पुस्तक को पढने से मालूम होता है कि आप के हृदय में नव-युवकों के लिए तडपन है। मैं एक विषम-समस्या में फँसा हुआ हूँ। आप कृपा कर मुझे इस में से निकालिये। मेरे पिता बड़े धनी है। व मुझे जबर्दस्ती मिठाइयाँ खिलाते और चाय पिलाते हैं—मैं इन्कार करूँ तो वे मुझे बनाते हैं। मैं जानता हूँ कि इन चीजों के खाने से मेरे स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है पर वे नहीं मानते। क्या कृपा कर आप उन्हें इस विषय में लिख कर समझाने का कष्ट उठा सकेंगे!' एक और युवक बम्बई से लिखता है —'मेरा एक मित्र ५-६ वर्ष से बुरी आदतों का शिकार है। अचानक आप की पुस्तक उस के हाथ में पड गई। इसे पढने पर वह प्रतिज्ञा करता है कि आगे से वह कभी अपने आत्मा को गिरने नहीं देगा। पीछे जो कुछ हुआ उस पर वह पछताता है। क्या आप उस के आत्मा को शान्ति देने के लिये नीचे के पते पर पत्र

समय जब कि चारों तरफ असमर्थता, शक्ति-हीनता तथा भय के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, जब कि जीवन की बत्ती बग से जल रही है क्योंकि वह शीघ्र-ही बुझा चाहती है—इस समय उत्साह हीन, जीवन-हीन, निराश समाज के लिये केवल एक सन्देश है—'ब्रह्मचर्य्य'! 'ब्रह्मचर्य्य'!! 'ब्रह्मचर्य्य'!!!—'चौमुखा-ब्रह्मचर्य्य'—केवल शरीर का नहीं, मन का, आत्मा का, समाज का, देश का,—सब का 'ब्रह्मचर्य्य'।

नव-युवको! इस सन्देश को कान खोल कर सुनो। इस विचार में पागल हो जाओ, तुम पागल होते हुए भी सही दिमाग वालों से कहीं अच्छे होगे। शक्ति को बिखरने मत दो, नहीं तो पीछे से पछताओगे। इन पृष्ठों में ब्रह्मचर्य्य के केवल एक स्वरूप पर ही लिखा गया है, क्योंकि इस समय शायद इसी की सब से ज्यादह जरूरत है। वीर्य-रक्षा करो, क्योंकि वीर्य-रक्षा करना ब्रह्मचर्य्य के जीवन के लिये पहला कदम है। खुद मत गिरो और दृढ़ सङ्कल्प कर लो कि अपने आस-पास के किसी नौ-जवान को गिरने नहीं दोगे। हरेक नौ-जवान भारत-माता का लाल है, माता को उस की जरूरत है, प्यारो! नौ-जवान तो भारत-माता की सम्पत्ति है, उन्हें लुटने मत दो।

मैं जानता हूँ, नव-युवक इस सन्देश के लिये तरस रहे हैं। मेरे पास नव-युवकों की जो चिट्ठियाँ आयी पड़ी हैं उन से मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि युवक इस सन्देश के लिये लालायित हैं। एक युवक हजारीबाग से अपनी चिट्ठी में लिखता

है — 'मैंने आप की अंग्रेजी में लिखी ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तक को पढा, और बार-बार पढा। इसे पढ कर मेरी आँखें खुलीं। हाय! मैं कितना अभागा था, मुझे तो अब-तक कुछ मालूम ही न था। मैंने आप की पुस्तक अपने सब छोटे भाइयों, भानजों और भतीजों को मंगा कर दी है। मैं चाहता हूँ कि यह पुस्तक हरेक हाई-स्कूल में हरेक लडके के लिये पढना लाजमी हो जाय।' दूसरा युवक अकोला से लिखता है —'मैंने ब्रह्मचर्य्य पर ऐसी पुस्तक अब तक नहीं पढी थी। मैं ऐसी पुस्तक की ही तलाश में था। आप की पुस्तक को पढने से मालूम होता है कि आप के हृदय में नव-युवकों के लिए तडपन है। मैं एक विषम-समस्या में फँसा हुआ हूँ। आप कृपा कर मुझे इस में से निकालिये। मेरे पिता बडे धनी हैं। वे मुझे जबर्दस्ती मिठाइयाँ खिलाते और चाय पिलाते हैं—मैं इन्कार करूँ तो वे मुझे बनाते हैं। मैं जानता हूँ कि इन चीजों के खाने से मेरे स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है पर वे नहीं मानते। क्या कृपा कर आप उन्हें इस विषय में लिख कर समझाने का कष्ट उठा सकेंगे!' एक और युवक बम्बई से लिखता है —'मेरा एक मित्र ५-६ वर्ष से बुरी आदतों का शिकार है। अचानक आप की पुस्तक उस के हाथ में पड गई। इसे पढने पर वह प्रतिज्ञा करता है कि आगे से वह कभी अपने आत्मा को गिरने नहीं देगा। पीछे जो कुछ हुआ उस पर वह पछताता है। क्या आप उस के आत्मा को शान्ति देने के लिये नीचे के पते पर पत्र

लिख मरूँगे ?" ऐसा ही एक युवक लाहोर से लिखता है — 'मैंने आप की पुस्तक पढ़ी। इस ने मेरे जीवन में क्रान्ति मचा दी है और मुझ में आश्चर्य-जनक परिवर्तन ला दिया है। ओह! मैं कितना चाहता हूँ कि यह पुस्तक कुछ पहले मिल गई होती!'—ये तथा ऐसे ही सैंकड़ों पत्र मेरे सामने पड़े हैं। क्या इन के होते हुए भी मैं यह न समझूँ कि नव-युवक इस सन्देश को सुनने के लिए तरस रहे हैं। नव-युवको! इस सन्देश को सुनो, यह मेरा सन्देश नहीं, ऋषियों का सन्देश है। इस सन्देश की गूँज से देश का कोना-कोना गुँजा दो। प्रण कर लो कि स्वयं ब्रह्मचारी रहोगे और जिस युवक के सम्पर्क में भी आओगे उस के कान में इस मन्त्र को जरूर फूँक दोगे!

इस से पहले कि मैं पाठकों से विदा लूँ, एक बात लिख देना आवश्यक समझता हूँ। ब्रह्मचर्य की चर्चा जितनी पञ्जाब तथा युक्त-प्रान्त में है इतनी शायद अन्यत्र कहीं नहीं, परन्तु मुझे दुःख है कि इन्हीं प्रान्तों के लोगों में ब्रह्मचर्य के विषय में ऐसे भ्रम-पूर्ण विचार फैले हुए हैं जिन का निराकरण करना ब्रह्मचर्य की महिमा के गीत गाने की अपेक्षा भी अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। सर्व-साधारण में यह विचार घर कर चुका है, और दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है, कि ब्रह्मचारी और पहलवान का एक ही अर्थ है। वे कहते हैं, ब्रह्मचर्य सब रोगों की एक महौषध है। किसी को जुकाम हुआ नहीं कि झट इन्होंने बेचारे रोगी के आचार पर सन्देह किया नहीं!

जैसा पहले भी लिखा जा चुका है, ऐसे लोगों के कारण ही 'ब्रह्मचर्य्य' बदनाम हो चुका तथा हो रहा है। ब्रह्मचर्य्य के महान् विषय पर बोलने का अधिकार उन्हीं लोगों को है जिन्हों ने इस विषय को भली-भांति समझा हुआ हो। ब्रह्मचर्य्य का नाम लेकर चिल्लाने वालों में से बहुत से ब्रह्मचर्य्य की महिमा को बढ़ाने के स्थान पर उसे घटाने में सहायक बन रहे हैं क्योंकि, स्मरण रहे, किसी कार्य की हानि अन्य उपायों से इतनी नहीं होती जितनी उस के स्वरूप को न समझ कर उस के साथ अन्धे प्रेम से !

इस में सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य से शारीरिक वृद्धि होती है। इस में भी सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य की शक्ति बड़ी है। परन्तु यह बात बिल्कुल गलत है कि ब्रह्मचारी पतला नहीं हो सकता, वह पहलवान ही होना चाहिये। हाँ! ब्रह्मचर्य और दुर्बलता का साथ नहीं, दुर्बलता का कई मौकों पर अर्थ ही ब्रह्मचर्य का अभाव होता है, परन्तु इस से यह परिणाम निकालना कि ब्रह्मचारी पतला नहीं हो सकता, सर्वथा भ्रम-मूलक है। ब्रह्मचर्य का अर्थ शक्ति है, क्रिया-शीलता है, तत्परता है, उत्साह है, ओजस्विता है, सहन-शीलता है। इस का अर्थ मोटापन नहीं, पहलवानी नहीं, शरीर में मांस या वजन का बढ़ जाना नहीं। वे लोग बड़ी भूल करते हैं जो किसी व्यक्ति को कार्य-शील तथा स्वस्थ्य देख कर भी केवल उस के पतले होने के कारण अपने दिमाग में तरह-तरह की कल्पनाएँ करने लगते हैं। वे ब्रह्मचर्य्य का नाम लेते हैं, परन्तु उस के रहस्य को नहीं समझते।

मोटे आदमियों की संख्या दुनियाँ में कम नहीं। बैठ रहने से मुटापे को छोड़ कर और क्या आयगा ? परन्तु इस से मोटे आदमी को आदर्श ब्रह्मचारी समझ लेना और शरीर से पतले दिखने वाले व्यक्ति को व्यभिचारी समझना ब्रह्मचर्य के तत्व को ही न समझना है। अथर्ववेद के ११ वें काण्ड का ५ वाँ सूक्त 'ब्रह्मचर्य्य-सूक्त' है। इस सूक्त में जहाँ पर भी ब्रह्मचर्य का नाम आया है वहीं साथ में 'तप' का नाम भी मौजूद है। २६ मन्त्रों के इस सूक्त में १५ वार 'तप' शब्द को दोहराया गया है। 'स आचार्यं तपसा पिपर्ति', 'ब्रह्मचारी घर्मं समानस्तपसोदतिष्ठत्', 'रक्षति तपसा ब्रह्मचारी'— इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र में तप की शुहारनी जपी गई है। तप से मुटापे का वही सम्बन्ध है जो ३ का ६ से। इसलिए ब्रह्मचर्य्य से जो लाभ होते हैं उन के विषय में सोचते हुए सदा ध्यान रखना चाहिये कि ब्रह्मचर्य शारीरिक स्वास्थ्य देता है, सहन-शक्ति, उत्साह तथा साहस देता है, ब्रह्मचर्य से मानसिक शक्तियों का विकास होता है, आत्मा उन्नति के मार्ग पर चलने लगता है, ब्रह्मचर्य का यही दावा है— दूसरा कुछ नहीं।

इस के अतिरिक्त यह भी न भूलना चाहिये कि संसार में किसी भी बात के अनेक कारण हो सकते हैं। इस में सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य्य स्वास्थ्य देने तथा जीवनी-शक्ति के स्थिर रखने वाला बड़ा भारी कारण है, शायद सब से बड़ा, परन्तु यह समझ बैठना कि यही एक कारण है, और कोई कारण है ही नहीं, सभी

भारी मूल है। संसार में भयकर-से-भयकर रोग हैं, और कई तरह के रोग है, छूत से लग जाने वाले रोग भी है, ब्रह्मचारी तथा व्यभिचारी दोनों को ही वे सता सकते है। कई रोग माता-पिता से आ सकते हैं और आजन्म ब्रह्मचर्य्य भी उन्हें दूर नही कर सकता। कई लोग सब नियमों का पालन करते हुए भी दुबले-पतले होते हैं, वही अचानक सम्पत्ति मिल जाने पर हृष्ट-पुष्ट, तरोताजे हो जाते हैं। कहीं हवा खराब, कहीं पानी खराब, कहीं भोजन खराब, कहीं निर्धनता—भिन्न-भिन्न कारण संसार में काम करते है परन्तु बहुधा परिणाम एक ही पाया जाता है। इसलिये 'ब्रह्मचर्य्य' के गीत गाने वाले को सदा स्मरण रखना चाहिये कि वह जब 'ब्रह्मचर्य्य' शब्द का प्रयोग वीर्य-रक्षा क अर्थों में करता है तब वह जीविनी-शक्ति के केवल एक कारण पर ही विचार कर रहा होता है, चाहे वह कारण कितना ही महान् क्यों न हो। यही दृष्टि वास्तविक है, सत्य है!—हाँ, इस में सन्देह नहीं कि जीवन के सम्बन्ध में जो नियम काम करते हैं, उन में सब से बडा नियम ब्रह्मचर्य है, यही भारत क प्राचीन तपस्वियों का दावा है, और यही इस युग में नव-जीवन का सञ्चार करने वाले आदित्य-ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द का सन्देश है!

सहायक पुस्तक-सूची

[BIBLIOGRAPHY]

इस पुस्तक के लिखने में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उन में से मुख्य-मुख्य पुस्तकें निम्न लिखित हैं:—

१ अथर्व वेद

२ अष्टाङ्ग हृदय—वाग्भट्ट प्रणीत

३ 'चाँद' का वेश्या अङ्क

४ दस उपनिषदें

५ भाव प्रकाश—भावमिश्र कृत

६ मनुस्मृति—मनु प्रणीत

७ सत्यार्थ प्रकाश—ऋषि दयानन्द कृत

८ सुश्रुत संहिता—सुश्रुताचार्य प्रणीत

९ संस्कार विधि—ऋषि दयानन्द कृत

10 Bain, Emotions and Will

11 Bloch, Dr Sexual Life of our Time

12 Burman, Donis, Dr : The Glands Regulating Personality

13 Cocks, Orrin G. Sex Education Series

14 Cowan The Science of A New Life

15 Dawson Causation of Sex

16 Davis, Jackson Answers to Ever Recurring Questions from the People

17 Elis, Havelock Erotic Symbolism

18 —Modesty, Sexual Precocity and Auto Erotism

19 Ellis, Psychology of Sex
20 —Sexual Selection in Man
21 Foote, Dr Home Cyclopedia
22 Geddes & Thomson The Evolution of Sex
23 Grey Anatomy
24 Gullick, Luther H Dr Dynamics of Manhood
25 Hall, Winfield S From Youth into Manhood
26 —Reproduction & Sexual Hygiene
27 Halliburton Physiology
28 James, William Principles of Psychology
29 —Varieties of Religious Experiences
30 Kellog, Dr Living Temple
31 —Plain Facts
32 Kieth, Dr Seven Studies for Youngmen
33 Lowson Text Book of Botany
34 Madras Publication The Sexual Science
35 Moll, Albert Sexual Life of the Child
36 Macfaden Encyclopedia of Physical Culture
37 —Manhood and Marriage
38 Reeder, David H Sex Lessons of a Physician
39 Shelling Natural Philosophy
40 Stall, Dr What a Young Boy Ought to Know
41 —What a Young Husband Ought to Know
42 Stopes, Marie Married Love

इस पुस्तक पर कुछ सम्मतियाँ

BOMBAY CHRONICLE How many young men have not cried in the agony of shame and self pity, "Oh, if I could get this knowledge in my early days" But it is never too late to mend and to such youngmen this excellent book will give a new hope as it will be a timely warning to those who are still in innocent ignorance It should be translated in every Indian language, for it is a book which every youngman and woman should read

THE VEDIC MAGZINE The learned author undertakes to address youngmen on a most delicate topic, viz, that of sexuality He takes the greatest care to avoid the possibility of any immoral association arising from a perusal of this book The writer is an advocate of Brahmacharya the cause of which he pleads with convincing force Youngmen with a serious outlook on life will necessarily be benefitted by a study of Prof. Satyavrata's Confidential Talks

THE STUDENT The author has indeed rendered a very valuable service to the student community of India particularly, in writing this highly useful and interesting book The very first chapter puts forth very lucidly the circumstances which necessitated such a task being undertaken If seriously studied the book is sure to yield immense

good to the reader and repay more than its cost. The very fact that the book contains a foreword from the pen of no less a person than Swami Sraddhanand is a very strong recommendation in itself

PRATAP Lahore The learned author has ably thrown a flood of light in this book on the most difficult and important subject of Brahmacharya It contains thirteen instructive chapters, each full of practical lessons on Brahmacharya The book is immensely useful to Youngmen for whom it is intended The speciality of the book lies in its charming and captivating style which makes it a very interesting and delightful reading

चाँद—इस में सन्देह नहीं कि, आचार्य प्रो० सत्यव्रत जी ने इस पुस्तक को लिख कर भारत में मातृ भूमि की एक महान् सेवा की है। आप ने एक सर्वोपकारी विषय को सरल भाषा में प्रकट कर के प्रेम राज्य में गुप्त, अबोध दम्पति को वीर्य रक्षा का महत्व दिखा कर—ब्रह्मचर्य की महिमा की ओर उन का ध्यानाकर्षण चित्त आकर्षित किया है और 'एक नारी ब्रह्मचारी' की कहावत को चरितार्थ किया है। इस कार्य के लिए अध्यापक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।.... कहने का तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होने वाले प्रभावों का वर्णन करते हुए हमारे ऋषियों द्वारा वर्णित तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का बड़ी योग्यता से प्रतिपादन किया है।.... पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। इस का प्रत्येक अध्याय मनन करने योग्य है। इस में वीर्य कोष, ग्लैंड्स, ओजस, स्पर्मेटोजोआ, ओवम, हिस्टोन आदि विषय की प्रशंसनीय विवेचना की गई है। समझाने का ढंग अच्छा है। प्रमाद की भी कमी नहीं है। प्राचीन मत का भी दिग्दर्शन अच्छा किया है। जिन जिन विषय के ज्ञान में पाश्चात्य विद्वान् पिछड़े हुए हैं, उन का भी उल्लेख कर दिया है....।

Printed By Ch. Hulas Rai

GURUKULA UNIVERSITY PRESS, KANGRI

"जब अंग्रेज़ नहीं आये थे"

"India Reform Society"

की रिपोर्ट

राष्ट्र-जागृति-माला

वर्ष २, पुस्तक १

Printed By Ch. Hulas Rai
GURUKULA UNIVERSITY PRESS, KANGRI.

"जब अंग्रेज़ नही आये थे"

"India Reform Society"

की रिपोर्टें

-आगृति माला

३, पुस्तक ६

Printed By Ch. Hulas Rai
GURUKULA UNIVERSITY PRESS, KANGRI.

जब अंग्रेज़ नहीं आये थे

(श्री दादाभाई नौरोजी लिखित 'Poverty and Unbritish rule in India' नामक ग्रंथ के 'India Reform Society' अंश का हिंदी अनुवाद)

अनुवादक
शिवचरणलाल 'शर्मा'

सस्ता-साहित्य-मण्डल
अजमेर

प्रथमावृत्ति २१००] १९२८ [मूल्य ।)

प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य मंडल, अजमेर

खर्चा जो लगा है

कागज	११०)
छपाई	१०५)
बाइंडिंग	१५)
लिखाई	१०)
	२४०)
व्यवस्था, विज्ञापन, आदि खर्च	२६०)
	५००)

कुल प्रतियाँ २१००

लागत मूल्य प्रति कापी ।)

खर्चा जो पुस्तक पर लगाया गया

प्रेस का बिल व छपाई	२९०)
व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१००)
	३९०)

एक प्रति का मूल्य ≡)

इस प्रकार इस पुस्तक में फी प्रति -) और कुल १३०) की घटी उठाई गई है।

प्राक्कथन ।

जब अगरेज नहीं आये थे, भारतवर्ष कितना हरा भरा सम्पन्न और समृद्ध देश था, उसके स्मरण मात्र से आज के भारतवर्ष की दु खद अवस्था देखकर रोना ही आता है। इसकी वह विपुल सम्पत्ति,कहाँ गई ? इसका वह वैभव कहाँ गया। एक समय था, जब इस देश की सौम्य शीतल छाया के लिए अन्य देश के निवासी तरसते थे, इसकी सम्पत्ति और वैभव को देखकर आश्चर्य्य चकित होते थे। आज वही देश प्रखर पराधीनता के ताप में तड़फ रहा है, गैरों के पैरों तले रोंदा जा रहा है। इस देश के लाखों प्राणी भूखों मरते हैं और करोड़ों को एक समय भी भर पेट भोजन मयस्सर नहीं होता। इस देश की यह दशा क्यों हुई और किसने की ? इस छोटी सी पुस्तिका का यही विषय है। जिन्होंने इस देश को इस अधोगति को पहुँचाया, उनकी उसी जमाने की लेखनी का पुस्तिका में अक्षरश अनुवाद ही है। हमने अपनी तरफ से एक शब्द भी नहीं लिखा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जिन कुटिल और घृणित उपायों तथा नृशस अत्याचारों द्वारा इस देश को हथिया लिया इसका रोमांचकारी विवरण एक पृथक पुस्तक का विषय है। इस पुस्तिका में तो अग्रेजों के इस देश में आगमन तथा भारत के हितों के प्रति उनकी निन्दनीय और घृणित उदासीनता से इस देश की सम्पत्ति किस प्रकार शनै शनै विलीयमान हो गई यही बताया गया है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इंग्लैण्ड के राजा द्वारा एक निश्चित अवधि तक भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए चार्टर मिला करता था। उस अवधि के समाप्त होते ही फिर दूसरा चार्टर दिया जाता था। नये चार्टर दिये जाने से पहले एक सरकारी कमेटी अवस्था की जाँच किया करती थी और उसीकी रिपोर्ट के अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाता था। इसी नियम के अनुसार सन् १८५३ में पार्लियामेंट के सदस्यों की एक कमेटी बैठी था। उसने भारतवर्ष की अवस्था का अनुसंधान करके जो रिपोर्ट प्रकाशित की उसी का यह अक्षरशः अनुवाद मात्र है। स्व० दादा भाई नौरोजी की Poverty of India नामक पुस्तक से हमने इसका अनुवाद किया है।

अंग्रेजी शासन को इस देश में एक युग बीत गया। विदेशी शासकों को किसी विशाल देश पर शासन करने के लिए यह आवश्यक होता है कि वे वहाँ की जनता की मनोवृत्ति को ही बदल दें। इसी नियम के अनुसार हमारे प्रभुओं ने हमारे इतिहास को बिगाड़ा और जनता को अन्धेरे में रखकर हर एक बात को इस प्रकार पेश किया, मानों इनके आगमन के पूर्व यहाँ प्रत्येक बात बिगड़ी हुई थी, यहाँ के निवासी असभ्य और जंगली थे, उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता था, वे एक दूसरे से लड़ते थे, न यहाँ पर सड़कें थीं, न व्यापार के लिए कोई सुविधा। सर्वत्र, अन्याय अत्याचार, बेईमानी और लूट-खसोट का साम्राज्य था। यह सब देखकर ईश्वर को इस देश पर दया आई और उसने अंग्रेजों को यह हुक्म और अधिकार दिया

कि वे यहां आकर सुशासन और सुव्यवस्था स्थापित करें। इसी लिए उन्होंने यहां पधारने का कष्ट उठाकर इस देश पर असीम कृपा की। यहां आकर उन्होंने परस्पर लड़ने वाली हिन्दु और मुसलमान नाम की दो जातियों को एक दूसरे का गला काटने से रोका, सुशासन स्थापित किया, सड़कें, रेल, तार बनवाये और व्यापार तथा आवागमन की अनेक सुविधाएं कर दीं। परन्तु तनिक दृष्टिपात करने से पता चल जाता है कि यह सब झूठ है, धोखा है। सड़कें, रेल तार यह इस देश के लाभ के लिए नहीं, प्रत्युत इस देश को सदा अपने फौलादी पंजे में पकड़े रखने के लिए बनाये गये हैं। अगर इसके कारण जनता को भी सुविधा होगई है तो वह अनयास ही। वास्तव में इनसे भारतवासियों को नहीं, इङ्गलैण्ड के निवासियों को लाभ पहुँचा है, हमारे हित के लिए बनाई गई तलवार ने हमारा रक्त शोषण किया है। यह बात आज निर्विवाद सिद्ध है कि अंग्रेजों ने यहां के व्यापार को नष्ट कर अपने देश के व्यापार को बढ़ाया, हथियार छीनकर इस देश को नपुंसक बना दिया, और शासन के प्रत्येक विभाग को अपने हाथ में शनै शनै लेकर हमें बिलकुल परावलम्बी बना दिया। यहां के व्यापार को नष्ट करने तथा यहां से अपने देश को धन ढोने की अंग्रेजों की नीति जैसी पहले थी वैसी ही आज भी है। अन्तर केवल इतना है कि पहले उनके ढंग बर्बरतापूर्ण थे, अब उन पर सभ्यता का नक़ाब चढ़ा दिया गया, जो कहीं अधिक घातक है। उदाहरण के लिए सन् १९२१ की सरकारी रिपोर्ट देखिए। उस समय सरकार द्वारा संचालित यानी सरकार के अधीन आठ रेलें थीं। इस सन में उनके

से जापान गई जाने का भाड़ा ८-९ रु० प्रति टन और लायलपुर से दिल्ली ३८७ मील का भाड़ा २८-३० रु० प्रति टन है। कलकत्ते की जूट मिलें गोरों के हाथ में हैं, इस लिए ई० बी० रेलवे हानि सहकर भी कम भाड़ा लेती है। ई० बी० रेलवे गोरे चाय वालों के लिए ही बनाई है। यह चाय पर इतना कम भाड़ा लेती है कि इसे सदैव हानि रहती है। इस बात को औद्योगिक कमीशन तथा स्वयं सरकार तक ने स्वीकार किया कि रेलवे के भाड़े की दर के कारण देशी उद्योग धन्धों को लाभ के बजाय उल्टी हानि ही होती है। पाठक इतने ही से सहज ही में अनुमान लगा सकेंगे कि हमारे हित के लिए किये गये कामों ने हमारा कितना गला काटा है, काट रहे हैं। समाचार-पत्रों के पाठक अभी भूले न होंगे कि दो साल पहले करेन्सी कमीशन ने यहां के रुपये की दर बढ़ा दी थी। जन साधारण क्या समझे कि यह चाल यहां का धन इङ्गलैण्ड को ढोने तथा यहां के उद्योग धन्धे नष्ट करने में कितनी घातक सिद्ध हुई है। पाठकों को यह भी पता होगा कि यहां के मिलों के बने माल पर ड्यूटी देनी पड़ती थी और विलायती माल उससे मुक्त था, जिसके कारण देशी माल विदेशी के मुकाबिले में कभी सस्ता बिक ही नहीं सकता था। इधर असहयोग के बाद इस विषय में आन्दोलन बहुत हुआ और सरकार की इस घातक नीति की कड़ी निन्दा होने लगी तो सरकार को लाचार होकर देशी मिलों के बने माल पर से ड्यूटी उठा लेनी पड़ी। लेकिन एक हाथ देकर सवा हाथ खींच लेने में हमारे प्रभु बड़े दक्ष हैं। उन्होंने रुपये की दर बढ़ा दी। इसका परिणाम यह

हुआ कि विलायत से जो माल पहले अठारह सौ का चलकर यहां अठारह सौ का ही बिकता था और वापिस उन्हें उतना ही मिलता था, अब १८ सौ का भेजकर वे उसे यहां सस्ता करके १६ सौ को बेचने लगे और चूकि यहाँ के रुपये की दर सरकार ने बढ़ा दी है इसलिए सोलह सौ रुपया यहाँ से चलकर वहाँ उन्हें १८ सौ का १८ सौ ही मिलने लगा। इस प्रकार डियूटी उठ जाने से देशी माल विलायत । अपेक्षा जो सस्ता पड़ने लगा था उस सस्ते-पन का इस प्रकार मुक़ाबिला कर दिया गया। भोले भाले भारतवासी ताकते ही रह गये, वे समझ भी न सके कि रुपये का मूल्य बढ़ जाने के क्या मानी हैं। रुपये की दर बढ़ जाने का असर अमीरों तक ही सीमित नहीं रहा। इससे गरीबों को तो बहुत ही अधिक हानि हुई है। एक ग़रीब किसान या मज़ूर आज एक रुपये का माल अपने घर से लाकर बाज़ार में बेंचता है तो उस रुपये का मूल्य एक रुपया नहीं है, और उसी रुपये का माल यदि वह बाज़ार से अपने घर के खर्च के लिए द कर ले जाय तो रुपये की दर बढ़ जाने के कारण इस बेचने और खरीदने में उसे चार आने का घाटा रहता है। इस प्रकार यहाँ का धन इस खूबी से खींचा जा रहा है कि लोगों को पता ही नहीं चलता कि उनसे उनका धन कोई सूत रहा है। व्यापारी लोग केवल इतना कहते हुए सुने जाते हैं कि पैसा नहीं रहा, व्यापार नहीं चलता। परन्तु पैसा क्यों नहीं रहा और कहाँ चला गया, इसे वे नहीं समझते।

कैसी कैसी कुटिल और घातक चालों से यहाँ का धन और

सम्पत्ति को ढोया गया, इसको विस्तार पूर्वक बताना हमारे लिए इस प्राक्कथन में असम्भव है। इसलिए इसे हम यहीं छोड़ कर केवल एक बात और कह देना चाहते हैं। कहा जाता है कि हम हिन्दू और मुसलमान अंगरेजों के आगमन के पूर्व एक दूसरे की गर्दन नापने में लगे हुए थे और यदि आज अंगरेज यहाँ से चले जायें तो फिर वही हालत हो जायगी। पाठक इस छोटी सी पुस्तिका में पढ़ेंगे कि ये दोनों जातियाँ अंगरेजों के यहाँ आने से पहले किस तरह रहती थीं। पर स्कूलों और कालेजों में हमें और ही इतिहास पढ़ाया जाता है। आज कल कालेजों में जो इतिहास हमें पढ़ाये जाते हैं वे इतनी विद्वेष भरी बातों से परिपूर्ण हैं कि यदि हमारी अपनी सरकार होती तो इन पुस्तकों को जलवा दिया गया होता और उनके लेखकों को कड़ी से कड़ी सजा दी गई होती। आजकल देश में सर्वत्र जिस पापी फूट को हम देख रहे हैं उसके लिए अगर सबसे अधिक जिम्मेदार कोई चीज है तो ये पुस्तकें ही हैं, जिन्हें इतिहास के रूप में हमें पढ़ाया जा रहा है। इन पुस्तकों को पढ़कर, कोई भी युवक हृदय, यदि वह हिन्दू है तो मुसलमानों के लिए, और यदि मुसलमान है तो हिन्दू के लिए, अच्छे भाव कैसे रख सकता है?

अपने कथन को सप्रमाण पाठकों के सामने रख देने के लिए हम यूनिवर्सिटीयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की अनेक विषैली पुस्तकों में से केवल एक पुस्तक से कुछ बातें उद्धृत किये देते हैं। इसीसे पाठकगण सहज ही समझ सकेंगे कि हमारे दिमाग और हृदय बचपन से ही ऐसे साँचे में ढाले जा रहे हैं

जिनसे हम दूसरे से घृणा और द्वेष करें, तथा अपने बुजुर्गों को अत्याचारी असभ्य और अनाचारी समझें, और अगरेजों को अपना उद्धारक।

अपनी "दी आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया" में २५० वें पृष्ठ पर विन्सेन्ट ए० स्मिथ महाशय लिखते हैं कि "सौभाग्य से हमें फीरोजशाह के हाथ की लिखी एक पुस्तक प्राप्त हो गई है। उस पुस्तक में उसने उन कार्य्यों का उल्लेख किया है, जिन्हें वह सत्कर्म समझता था। उसने अग-भग करने की सजा की प्रथा को जो उठा दिया, वह तो अवश्य ही एक सराहनीय कार्य्य था" आगे चल कर लेखक फीरोजशाह की लिखी हुई पुस्तक से कुछ उद्धरण अपनी पुस्तक में देते हैं। वे इस प्रकार लिखते हैं—फीरोजशाह में जब धर्मान्धता जागृत हो जाती थी, तब वह बड़ा ही भयकर हो जाता था। हिन्दुओं के कुछ नये मदिर बनने की बात सुनकर उसे घोर दु ख हुआ वह लिखता है—

'ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने इन इमारतों को विध्वस करा दिया, और नास्तिकों के उन नेताओं को मरवा डाला। जो दूसरों को गलत रास्ते पर चलने के लिए बहका देते थे। इन नेताओं के अलावा साधारण आदमियों को मैंने बेंत लगवाये और उन्हें कठोर दण्ड दिये, यह मैंने तबतक किया कि यह बुराई समूल नष्ट न हो गई।'

"वह (फीरोजशाह) देहली के निकटवर्त्ती मलूह नामके एक गाँव में गया। वहाँ पर एक धार्मिक मेला होता था। उस मेले में कुछ 'अपवित्र और अविश्वासी मुसलमान' भी सम्मिलित होते थे। आगे वह लिखता है—'मैंने हुक्म दिया कि इन लोगों के

नेता और इस कुकर्म में सहयोग देने वाले सब के सब मार डाले। जायँ आम हिन्दू जनता को सख्त सजा देने की तो मैंने मुमानियत कर ही दी थी, परन्तु मैंने उनके मंदिरों को तुड़वा कर उनके स्थान पर मसजिदें बनवा दी थीं।'

"कोहाव के कुछ हिन्दुओं ने महल के सामने एक नया मन्दिर बनवाया था। उन्हें उसने मरवा डाला, जिससे कि भविष्य में कोई अन्य गैर-मुसलिम एक मुसलमानी देश में फिर ऐसी शैतानी करने की हिम्मत न करे। एक ब्राह्मण जिसने खुली हुई जगह में अपना पूजा-पाठ किया था, जिन्दा ही जलवा दिया गया था। ये असंदिग्ध और सत्य घटनायें इस बात का प्रमाण हैं कि फीरोजशाह प्रारंभिक मुसलमान आक्रमण कारियों की 'जंगली परम्परा' के अनुसार ही कार्य्य करता रहा। और इस बात में पूर्णत विश्वास करता रहा कि उसकी अधिकांश प्रजा के धर्म के अनुसार खुले आम पूजा-पाठ करने वाले को, वह मौत की सजा देकर ईश्वर की सेवा कर रहा है।"

इसी प्रकार स्मिथ महाशय इसी पुस्तक के २१३वें पृष्ठ पर हिन्दू सम्राटों के विषय में लिखते हैं:—

"वास्तव में सभी या लगभग सब की सब प्राचीन हिन्दू सरकारें प्रारम्भ से ही मुसलमानों की भाँति ही अत्याचारी थीं जैसा कि अनेक प्रमाणों से स्पष्टत: प्रतीत होता है।"

उक्त उद्धरणों से विचारवान पाठक सहज ही अनुमान लगा सकेंगे कि इतिहास में इस प्रकार की बातें भर देने से कोमल और शुद्ध हृदय युवकों पर कैसा प्रभाव पड़ता है। बेशक, इतिहास लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य को छिपाये न रक्खे। हम

स्मिय महाशय के हेतु पर कभी आक्षेप नहीं करते अगर वे ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा भ्रम पूर्ण धार्मिक विचारों से नहीं जान-बूझ कर धन के लिए किये गए। इनसे भी अधिक बर्बरता पूर्ण अत्याचारों का सच्चा सच्चा हाल लिख देते। अगरेज लेखकों ने हिन्दू या मुसलमान नरेशों के कुशासन और अत्याचारों का जहाँ खूब बढ़ा चढा कर वर्णन किया है वहाँ ईस्टइण्डिया कम्पनी के समय में की गई लूट-खसोट, वेईमानी, धोखेबाजी और प्रजा के कष्टों का जिक्र तक नहीं किया जैसा कि इस पुस्तिका से पता चलेगा, अकाल वगैरह का इन्होंने जहाँ कहीं एक आध जगह जिक्र भी किया है वहाँ उसका सारा दोष अनावृष्टि इत्यादि पर डाल दिया है। परन्तु इसके बिलकुल ही विपरीत मुसलमान बादशाहों के जमाने के अकालों का सारा दोष उस समय के बादशाह के सरे मढ़ दिया है। इसी पुस्तक में ३९३ पन्ने पर सन १६३०-२ के अकालों का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि "शाहजहाँ के जमाने में दरबार की शान शौक़त, तड़क भड़क और फ़िज़ूल खर्ची के कारण प्रजा इतनी दरिद्र और पीड़ित थी, जैसा कि बहुत कम देखने में आया होगा। शाहजहाँ के शासन-काल के चौथे और पाचवें साल में, जब कि वह खान देश में बुरहानपुर में डेरे डाले दक्खिन के सुल्तान के विरुद्ध आक्रामक हम्ला करने के लिए पड़ा हुआ था, उसी समय एक अत्यन्त भीषण दुर्भिक्ष ने दक्खिन और गुजरात को वीरान कर दिया था। उस अकाल के बारे में, उस समय के सरकारी इतिहास लेखक अब्दुल हमीद ने इस प्रकार लिखा है —

'दक्खिन और गुजरात के निवासी अत्यन्त तंग हो गये थे।

लोग एक रोटी के लिए अपना जीवन बेच देते थे, परन्तु कोई खरीदता नहीं था। एक चपाती के लिए पद बेचे जाते थे, परन्तु उन्हें कोई पूछता तक न था। मुद्दत तक बकरे के गोश्त की जगह कुत्ते का मांस बेचा जाता था और मृतकों की पिसी हुई हड्डियाँ आटे में मिला कर बेची जाती थीं। अन्त में दरिद्रता उस चरम सीमा को पहुँच गई कि लोग एक दूसरे को खाने लगे। और बेटे के प्रेम से उसका माँस अधिक प्यारा समझा जाने लगा। मृतकों की लाशों के मारे सड़कों के रास्ते रुक गये थे।

"इस दुर्भिक्ष के बारे में स्मिथ महाशय लिखते हैं कि जब दक्खिन और गुजरात की प्रजा इस प्रकार दुर्भिक्ष के मारे पीड़ित थी, उस समय बरहनपुर में शाहजहा के डेरों में हर प्रकार की खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में मौजूद थी। और आज क्या दशा है?"

खैर, यही स्मिथ महाशय अपनी इसी किताब में ५०७ वें पन्ने पर सन १७७० के एक अकाल के बारे में लिखते हैं कि "कार्टियर महाशय के शासनकाल में एक दुर्भिक्ष पड़ा। इसका कारण सन् १७६९ में वर्षा का जल्दी समाप्त हो जाना था, जिसके कारण चावल की छोटी छोटी फसल मुरझा कर सूख गई और उस बड़ी फसल की बाढ रुक गई जो दिसम्बर में कटने को थी। सड़कों की कमी तथा कुछ दूसरी विरुद्ध परिस्थितियों के कारण अकाल इतना बढ़ गया था, जितना कि सिर्फ वर्षा की कमी से नहीं बढ़ सकता था। ढाका और दक्षिण-पश्चिमी प्रान्त तो इससे लगभग बिलकुल बच गये। गगा के दक्खिन और उत्तर का बंगाल और बिहार का सारा प्रान्त वीरान हो गया था। परन्तु जहा तक फसल का सम्बन्ध है, सन् १८८० में

मारे कष्ट का पूरे तौर पर अन्त हो गया था, और अगले तीन वर्षों में तो बहुत अधिक पैदावार हुई।

ईस्टइण्डिया कम्पनी के जमाने में क्यों और कैसे, कितने और कैसे भीषण अकाल पड़े, तथा प्रजा कितनी पीड़ित रही यह बात भी इस छोटी सी पुस्तिका से पाठकों को सच्चे और ईमानदार अगरेजों की लेखनी द्वारा ही मिलेगी। इसे पढ कर पाठक समझ लेंगे कि अगरेजों के आगमन से पूर्व हमारा देश कितना सम्पन्न और समृद्ध था, प्रजा कितनी सुखी और शान्त थी। तथा इनके आगमन के पश्चात् वह किस प्रकार क्रमश दीन, दुर्बल और दरिद्र होता गया।

स्कूलों और कॉलेजों में पढने वाले विद्यार्थी कोर्स में रक्खे गये इतिहासों के घातक परिणामों से अपने दिल को अगर भी बचाना चाहें तो वे उन किताबों के साथ साथ (यदि मजबूरन उन्हें वे किताबें पढनी ही पड़ें तो) इस छोटी सी पुस्तक को भी पढ़ लिया करें। नशा करना बुरा है, पर यदि कोई उससे अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता, तो उसके मारक प्रभाव को रोकने के लिए मनुष्य को कुछ पौष्टिक पदार्थ खाने चाहिएँ। अन्यथा नशा उसकी जान का गाहक हुए बिना न रहेगा। यह वही पौष्टिक पदार्थ है। जो आज कल पढ़ाये जाने वाले इतिहासों के विष के प्रभाव को कुछ अशों में मार सकता है।

आगरा
शरत्पूर्णिमा
सवत् १९८५

शिवचरन लाल शर्मा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भारत का शासन और उसकी दशा (देशी राजाओं के अधीन)	२३
यहां और वहाँ (इण्डिया रिफार्म १८५३)	२७
यूनानी आक्रमण के समय	३३
मुसलिम आक्रमण काल	३५
अफगान बादशाह	३६
दक्षिण के मध्य युगीन हिन्दू राज्य	३७
तुगलक बादशाह	३८
वह शाही जमाना	४०
अकबर	४१
राजा नहीं, पिता	४४
सदाचार का आदर्श	४७
पेशवाओं का शासन का काल	४९
हैदरअली और टीपू	५३
नन्दन वन की शोभा	५७
बंगाल में सतयुगी शासन	५८
सिर्फ दस वर्ष में कलि	६३
मैसोर की शासन-व्यवस्था	६५

विषय पृष्ठ

नाना फड़नवीस ६५
अहल्याबाई-पवित्रम शासक ७१
राजपूत राज्य ७४
अंगरेजी राज्य की नयी देन ८४
देशी नरेशों तथा अंग्रेजी शासन के विषय में
कुछ सम्मतियाँ ८७
राष्ट्र को चूसना ९३

—※—

भूमिका

देशी राजाओं के राज्यकाल में भारतीय-शासन की भलाइयां और बुराइयां चाहे जो कुछ भी क्यों न रही हों, परन्तु यह बात तो निश्चय है कि मौजूदा अंगरेजी शासन-पद्धति में जो सब से बड़ी और भयंकर-बुराइयां हैं, वे तो उनके शासन-काल में हरगिज नहीं थीं। आजकल का अंगरेजी शासन तो ऐसा है जो, अंगरेजों के लिए नितान्त अशोभनीय है। इसकी बुराइयां भयंकर हैं॥ भारत को लूटने और उसका खून चूसने की नीति सदा बढ़ती ही जा रही है। केवल ब्रिटेन ही की भलाई के लिए जो खर्च किया जा रहा है उसका बोझ भी भारत के सर पर ही लादा जा रहा है। भारत को "लूटने और उसका खून चूसने की ये बुराइयां ऐसी हैं, जो तब तक बराबर वहां बनी रहती हैं, जब तक एक सुदूरवर्ती देश दूसरे देश पर शासन करता रहता है।"* इन बुराइयों को लार्ड सैलिसबरी के शब्दों में "राजनैतिक मक्कारी" और लार्ड लिटन की भाषा में "इरादतन की गई स्पष्ट धोखेबाजी" ने और भी बदतर बना दिया था, जिसके कारण लॉर्ड सैलिसबरी के मतानुसार भारत में "भीषण कंगाली पैदा हो गई है। इसी दुरवस्था से प्रभावित होकर लॉर्ड लारेन्स ने लिखा था कि "भारत के लोग बहुत थोड़ा खाना खा कर अपना गुजर बसर करते हैं।"

*ये शब्द सर जॉन शोमर के हैं जो उन्होंने सन् १७८७ में कहे थे।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना खासकर भारत के धन और भारत के ही बल पर हुई है, और इन्हीं के बल पर यह टिका हुआ है। इसके अलावा ब्रिटेन भारत से लाखों करोड़ों पौंड ले चुका है, और प्रतिवर्ष लेता जा रहा है।

कोई भी निष्पक्ष और शुद्ध-हृदय अंगरेज एंग्लो-इण्डियनों की कपोल-कल्पित गाथाओं पर ध्यान न देकर यदि भारत के "गैर अंगरेजी" (Un British) शासन की वास्तविक खूबियों से परिचित हो जाय तो वह अवश्य ही इस नतीजे पर पहुँचेगा कि अंगरेजों के मौजूदा शासन में हिन्दुस्तान की भौतिक और आर्थिक दशा इतनी गिर गई है, कि उस देश पर यह अंगरेजी शासन एक अभूतपूर्व अभिशाप कहा जा सकता है। यह दुःखदायक और दयनीय स्थिति अधिक दिन तक नहीं टिक सकती। जैसा कि अनेक सुप्रसिद्ध अंगरेजों ने पहले ही से एक प्रकार की 'भविष्यवाणी के रूप में' कह दिया है, इसका अन्त अत्यन्त भयानक होगा। सर जान मालकम का कहना है कि "इस दुरवस्था और शासन के कुकर्मों के साथ-साथ इस बुराई के बदले की भावना भी आ रही है, जिसे हम साम्राज्य के नाश का बीज कह सकते हैं।" लॉर्ड मैलिसबरी ने कहा था "अन्याय के वह ताकत है जो सर्वशक्तिमान को भी नष्ट कर देगी।"

अंगरेजों को कोई न्यायोचित अधिकार नहीं है कि वे अशोभनीय ब्रिटिश निरंकुशता के साथ-साथ विदेशी निरंकुशता की सारी बुराइयों लेकर, जिनमें कि एक शासित जाति सदा कुचली जाती है, इस देश में रहें। जैसा कि लॉर्ड मेकाले ने कहा है "विदेशी शासन के जुँए का बोझ अन्य सब जुओं

से भारी होता है।" बारबार अनेक सुप्रसिद्ध अंगरेजों ने और लॉर्ड मेयो ने भी कहा है कि "हमारा सर्वप्रथम उद्देश तो हिन्दुस्तानियों कीभलाई करना है। अगर हम यहाँ पर उनकी भलाई के उद्देश्य से नहीं आये हैं, तो हमें यहाँ पर कदापि न रहना चाहिए।"

अगर भारत के पहिले शासक निरकुश थे तो थे। अंगरेज अपनी खून-चूस नीति और निरंकुशता का समर्थन उनका उदाहरण देकर नहीं कर सकते।

वाशिंग्टन हाउस,
७२, ऐनरली, पार्क
लंदन S E

दादाभाई नौरोजी

---

* एक पौंड लगभग पन्द्रह रुपये का होता है।

जब अंगरेज नही आये थे !

"मेरे ऊचे ऊचे कोट जो थे,
वह पडे जमीं म हैं लोटते,
वहां उल्लू आके हैं बोलते,
जहा बाज पर न हिला सके।"

जब अँगरेज नहीं आये थे !

[यह पुस्तिका भारत-सुधार संस्था India Reform Society द्वारा ई० सन् १८५३ में प्रकाशित की गई थी और सन् १८९९ में वह पुनः मुद्रित हुई थी]

भारत सुधार नं० ६—देशी राजाओं के अधीन

भारत का शासन और उसकी दशा।

इण्डिया रिफार्म सोसायटी १८५३

शनिवार ता० १२मार्च सन १८५३ ई० को चार्ल्स स्ट्रीट के सेण्ट जेम्स स्क्वेयर में, भारत के शुभचिन्तकों की एक सभा हुई थी। इसका उद्देश्य था भारतवासियों की शिकायतों और अधिकारों के लिए लोकमत तैयार करना और उसके द्वारा पार्लियामेंट का ध्यान उस विशाल-देश की शिकायतों और दावों की ओर आकर्षित करना। उस दिन सभा ने श्रीयुत एच डी सिमूर, एम पी के सभापतित्व में निम्न लिखित प्रस्ताव पास किये —

—(१) भारत में व्यापार करने का जो अधिकार-पत्र (चार्टर) ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के पास है, उसकी अवधि ३० अप्रेल सन १८५४ को समाप्त होती है, अतः इस अवधि के बाद भारतीय शासन

के सघटन में परिवर्तन करने का प्रश्न इतना महत्व-पूर्ण है कि उस पर पूरी रीति से गभीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

(२) सदा की भाँति अधिकार-पत्र (चार्टर) के परिवर्तन के लिए पार्लियामेंट की दोनों सभाओं द्वारा जो कमिटियाँ नियुक्त की जाया करती थीं, उन्हें भारतीय-शासन-प्रणाली और उसके परिणाम की जाच के लिए इस बार भी नियुक्त किया गया है। पर ये कमिटियाँ इस बार पहले की अपेक्षा बहुत देर बाद नियुक्त की गई हैं, जिसके कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार-पत्र की अवधि समाप्त होने में अब इतना थोड़ा समय रह गया है, कि हमारी भारतीय सरकार के शासन विधान में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए जो गवाहियाँ इकट्ठी करना जरूरी था। वह अब नहीं की जा सकतीं।

(३) चूंकि अब उक्त कमिटियों ने तहक़ीकात करना शुरू कर ही दिया है, इसलिए यह बता देना आवश्यक है कि यदि वे कमिटियाँ ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के नौकर और अफ़सरों की गवाहियों पर ही निर्भर रहीं और बुद्धिमान भारतवासियों की दरख्वास्तों और इच्छाओं की उपेक्षा करते हुए उन्होंने अपनी जाँच समाप्त कर दी, तो उस जाँच का बिलकुल असन्तोष प्रद होना निश्चित है।

(४) इसलिए भारत के शुभचिन्तकों को इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि एक ऐसा अस्थायी क़ानून बना दिया जाय जिसके अनुसार मौजूदा भारत सरकार तीन साल तक और इसी प्रकार अपना काम करती रहे। इससे जाच और विचार-विमर्श करने के लिए पूरा समय मिल जायगा, और पूरी जाच हो जाने पर इसी बीच में पार्लियामेंट हमारे भारतीय साम्राज्य के भावी शासन प्रबन्ध के लिए स्थायी शासन-विधान बना सकेगी।

(५) अत उक्त नीति के अनुसार काम करने के लिए आज यह सभा अपने को इण्डियन रिफार्म सोसायटी (भारत-सुधार-समिति) के रूप में सगठित करती है और नीचे लिखे सज्जनों की एक कमिटी बनाती है।

श्री० टी० बारनेस, एम० पी०
,, जे० बेल, एम० पी०
,, डब्ल्यू बिग्ज, एम० पी०
,, जे० एफ० बी० ब्लैकेट, एम० पी०
,, जी० बोयर, एम० पी०
,, जे० ब्राइट, एम० पी०
,, एफ० सी० ब्राउन
,, एच० ए० बूस, एम० पी०
,, ले० क० जे० एम० कौल फील्ड, एम० पी०
श्री० जे० चीथम, एम० पी०
,, डब्ल्यू० एच० क्लार्क
,, जे० क्रूक, एम० पी०
,, जे० डिकिन्स, जन०
,, एम० जी० फील्डन, एम० पी०
,, ले० ज० सर जे० एफ० फिजेरल्ड, के० सी, बी०, एम० पी०
,, डब्ल्यू० आर० एस०

श्री० सी० हिण्डले
,, टी० हण्ट
,, ई० जे० हचिन्स, एम० पी०
,, पी० एफ० बी० जॉन्सटन
,, एम० ल्यूइन्
,, एफ० ल्यूकस, एम० पी०
,, टी० मेक् कुलघ
,, ई० मिसल, एम० पी०
,, जी० एच० मूर, एम० पी०
,, बी० ओलिवीरा, एम० पी०
,, ए० जे० ओटवे, एम० पी०
,, सी० एम० डब्ल्यू० पीकॉक
,, एप्सली पेलाट, एम० पी०
,, जे० पिलकिंगटन एम० पी०
,, जे० जी० फिलीमोर, एम० पी०
,, टी० फिन, एम० पी०
,, एच० रोव्हो०
,, डब्ल्यू० स्कोल फील्ड,
,, डब्ल्यु व्ही० सैमूर एम० पी०

फिथेरल्ड, एम॰ पी॰

,, एम॰ फोर्स्टर॰

,, आर॰ गार्डनर, एम॰ पी॰

रा॰ मा॰ टी॰ एम॰

गिल्सन, एम॰ पी॰

वाय काउण्ट गोडेरिच

एम॰ पी॰

,, जी॰ हैड फील्ड, एम॰ पी॰

,, जे॰ बी॰ स्मिथ, एम॰ पी॰

,, जे॰ सुलीवान

,, डब्ल्यू॰ हारकोर्ट

एल॰ हीवर्थ, एम॰ पी॰

,, सी॰ हिन्डले, एम॰ पी॰

,, जॉ॰ थाम्पसन, एम॰ पी॰

,, एफ॰ वारन

,, जे॰ ए॰ वाइज एम॰ पी॰

सोसायटी से सम्बन्ध रखनेवाला सारा पत्र व्यवहार कमिटी के अवैतनिक मंत्री से करना चाहिए और उन्हींके पास इस कार्य्य की पूर्ति के लिए चन्दा भेजा जाना चाहिए।

कमिटी रूम्स, हौरिंग्स चेम्बर्स
१० हे—मारकेट
१२, अप्रैल १८५२ ई॰

जॉन डिकिन्सन जन
अवैतनिक मंत्री

इण्डिया रिफार्म १८५३

यहा और वहा

भारत के सब देशी राजा सधि द्वारा सुख दुख मे साथ देने वाले हमारे मित्र हैं। परन्तु हम उनके अवगुणो को बताकर और अपने गुणों की दुहाई देते हुए उनका राज्य छीनने की उन्हें धमकी देते है। हमारा दावा है कि देशी राज्य सभी बुरे हैं और उनके सब के सब देशी शासक अत्याचारी और विलासी। उनकी प्रजा अत्याचारों के मारे कराह रही है। अत हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनके दुख दूर करें। पगड़ी बांधने वाले सब निकम्मे और अयोग्य हैं। परन्तु टोपधारी सभी योग्य हैं। अगरेजो के भारत मे आने से पूर्व हिन्दुस्तान में किसी भी तरह का सुशासन नहीं था, यह अगरेज ही हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तानियो को सभ्यता सिखाई है, और वही यह बता रहे हैं कि शासन कैसा हो। रोम और ग्रीस के प्राचीन मन्दिर और मकबरों के खण्डहर तो सब प्रशसा के योग्य हैं, वे अपने बनानेवालों की प्रतिभा और सुरुचि के प्रमाण हैं। परन्तु भारत के इनसे कहीं अधिक शानदार खण्डहर निरे दिखावटी और स्वार्थपरता के सूचक हैं। लार्ड एलनबरो ने इन्हें देख कर कहा था कि "हमसे पहले के शासकों का बखान करते हुए और अपनी कमजोरियों पर लज्जित होते हुए मैंने इन खण्डहरों को देखा, इन पर विचार किया।" लार्ड एबरडीन ने तत्काल

उत्तर देते हुए कहा—"हाँ, पिरामिडों को देख कर भी तुम इसी तरह लज्जा का अनुभव कर सकते हो।"

पश्चिम में जिन चीजों की हम दिल से प्रशंसा करते हैं, पूर्व में वही चीजें हमारी प्रशंसा के योग्य नहीं होतीं। पश्चिम में जब हम कहीं किसी बड़े उपयोगी और सजावट के काम को देखते हैं, तो हम उसे समृद्धि एवं शान्ति-पूर्ण सुशासन का एक चिन्ह मानते हैं; परन्तु पूर्व में जब हमारी नजर ऐसी चीजों पर पड़ती है, तब हम कुछ और ही खयाल करने लगते हैं। इस समय करोड़ों रुपये की जो आमदनी हो रही है वह हमारे पहले भारत का शासन करनेवालों की अद्भुत नहर-व्यवस्था का ही प्रतिफल है। देश में इन अद्भुत कार्य्यों के चिन्ह अब भी सर्वत्र पाये जाते हैं। पर हम उनकी ओर आँख उठा कर देखते भी नहीं। हाँ, अपने अपेक्षाकृत छोटे छोटे नकली कामों पर ही हम अभिमान जरूर करते हैं।

यह कहा जाता है कि हमने हिन्दुस्तानियों को, पतित और रग-रग में मूठा पाया, हिन्दू धर्म में दुर्गुणों को पैदा करने की सहज और घातक प्रवृत्ति है, जो मुसलमानी राज्य में एक बार खूब खुली-खिली थी। हमारे अत्यधिक आलसी और स्वार्थी, गवर्नर पड़-म-पड़े देशी राजाओं के मुकाबिले में, दया और भलाई की प्रतिमा समझे गये। मुगल बादशाहों की निनामी स्वार्थपरता ने लोगों को पतित और निर्बल बना दिया। मुगलों से पहले के बादशाह भी या तो विवेक हीन और अत्याचारी थे, या आलसी और व्यभिचारी। न इनके पूर्वाधिकारी, हिन्दू बादशाह ही कुछ अच्छे थे।

इस समय इस देश के सार्वजनिक समाचारपत्रों पर हमारा आधिपत्य है, जनता की सहानुभूति भी हमारी ही तरफ़ है, अत. भारत में हमसे पहले राज्य करनेवालों की बुराई करके लोगों की नजरों में अपने को ऊँचा उठा लेना हमारे लिए बड़ा आसान काम है। हम अपनी ही प्रशंसा की बातें कहते हैं और कहते हैं कि हमारा कथन अविश्वास के पात्र नहीं हैं। लेकिन जब पहले के शासन की प्रशंसा का जरा भी कहीं उल्लेख पाते हैं तो झट से उसे सन्देहास्पद करार देते हैं। चौदहवीं शताब्दी में मुगलों ने भारत पर जो विजय प्राप्त की उसकी तुलना हम पूर्व में, उन्नीसवीं शताब्दी की विजयी, किन्तु सौम्य और दयापूर्ण अंगरेजी युद्धों की प्रगति से करते हैं। परन्तु यदि हमारा उद्देश पवित्र और निष्पक्ष होता तो हम मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तान पर किये गये इन हमलों का मुक़ाबला उसी ज़माने के नारमनों द्वारा इङ्गलैण्ड पर किये आक्रमणों से करते। मुसलमान बादशाहों के चरित्र की तुलना उन्हींके समय के पश्चिमी बादशाहों के चरित्र से करते, उनकी लड़ाइयों और युद्धों को हम अपने फ्रान्सीसी युद्धों या धर्म के नाम पर लड़ी गई लड़ाइयों के साथ एक ही तराजू पर तौलते। इसी प्रकार मुसलमानों की विजयों से हिन्दुओं के चरित्र पर जो प्रभाव पड़ा, उसकी तुलना हम उस प्रभाव से करते जो ऐंग्लो-सैक्सनों के चरित्र पर नारमनों की विजय से हुआ था। नारमनों की विजय के पश्चात् ऐंग्लो सैक्सन लोगों का स्वभाव ऐसा बन गया था कि यदि कोई किसी से "अंगरेज" कह कर सम्बोधन करता, तो वह उसे अपना बड़ा अपमान समझता। "उस समय

"अंग्रेज शब्द" एक गाली सा बन गया था।' उस समय जो लोग न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे, वे ही सारे अन्यायों और विषमताओं की जड़ थे। उस समय के मजिस्ट्रेट, जिनका धर्म उचित फैसला देना था, सबसे अधिक निर्दय थे और साधारण चोर, डाकू और लुटेरों से भी अधिक लूटने-खसोटने वाले थे।" उस जमाने के बड़े आदमी इतने अर्थ-लोलुप थे, कि वे धनोपार्जन में इस बात की वे बिलकुल परवा नहीं करते थे कि फलां उपाय उचित है या अनुचित। उस समय लोगों का चरित्र इतना भ्रष्ट था कि स्काटलैण्ड की एक राजकुमारी को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक दीक्षिता ईसाइन साधुनी के वस्त्र पहन लेने पड़े।*

हमारा कहना है कि मुसलमान बादशाहों का इतिहास प्रारंभिक विजेताओं की निर्दयता और लूट-मार की घटनाओं से परिपूर्ण है। परन्तु इनका समकालीन किश्चियन इतिहास भी क्या ठीक वैसा ही नहीं है ? आप ईसाई-इतिहास के पन्ने पलटिए। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में, जब जेरूसलम पर सब से प्रथम धर्म के नाम पर युद्ध करने वालों का कब्जा हुआ था, उस समय जेरूसलम की चहार दीवारी के अन्दर चालीस हजार आदमी थे। वे सब के सब बिना किसी भेद-भाव के उन धर्म-योद्धाओं द्वारा तलवार के घाट उतार दिये गये। उस समय तलवार बहादुरों की रक्षा न कर सकी। उसी प्रकार कमजोर और डरपोकों का गिड़गिड़ाना तथा प्राणों की भीख मांगना भी उन्हें न बचा सका।

---

* हमरी, भाफ हटिंगडन हिस्त्री सेक्शन कॉमोस्फ यू ए ए रमर

बूढ़े, बच्चे, स्त्री, पुरुष किसी के भी हाल पर रहम नहीं किया गया। जिस तलवार ने माता को मौत के घाट उतारा था, उसीने उसके दुध-मुँहे बच्चे का भी खून पीया। जेरुसलम शहर की गलियाँ लाशों और लोथों के ढेरों से पट गई थीं। प्रत्येक घर से निराशा और दुःख की चीत्कारों की करुणध्वनि गूंजती हुई सुनाई पड़ रही थीं।

बारहवीं शताब्दी की बात है। फ्रान्स के सातवें लुई ने जब विट्री (Vitri) नामक शहर पर अपना अधिकार जमाया, तो, उसने उसमें आग लगवा दी, जिसके कारण तेरह सौ जीवित प्राणी स्वाहा हो गये। जिस समय फ्रान्स का यह अत्याचारी शासक विट्री की निरीह जनता के प्राणों के साथ यह खेल खेल रहा था, उसी समय इङ्गलैण्ड में, स्टीफन के शासनकालमें ऐसी प्रचण्डता के साथ युद्ध हो रहा था कि, किसान लोग जमीन को बिना जोते-बोये ही छोड़कर अपने हल आदि को या तो नष्ट करके या वैसे ही छोड़ कर, अपने प्राणों को लेकर इधर-उधर भागे-भागे फिरते थे।

इसके बाद चौदहवीं शताब्दी की हमारी फरासीसी लड़ाइयों का ही लीजिए। उनका जितना "भयावना और नाशकारी परिणाम हुआ, उतना आज तक किसी भी देश या युग में नहीं देखा गया।" कहा जाता है कि मुसलमान विजेताओं की घोर निर्दयता के जितने उल्लेख प्रामाणिक लेखकों द्वारा पाये जाते हैं, उतने उनके द्वारा किये गये बड़े से बड़े सत्कार्यों के नहीं। परन्तु हमारे पास इन्हीं के समकालीन ईसाई-विजेताओं की घोरतम निर्दयताओं के काफ़ी प्रमाण मौजूद हैं। लेकिन क्या हमारे पास उनकी दया और सत्कार्यों के भी प्रमाण हैं?

। चूँकि बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकर, बड़े ढंग से लगातार इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि जन-साधारण की दृष्टि में देशी सरकारों और देशी-राजाओं को गिरा दिया जाय जिससे कि उनका राज्य हड़प लेने में सुविधा हो, इसलिए हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि हर एक हिन्दुस्तानी ओलिवर के लिए हमारे पास एक क्रिश्चियन रोलेण्ड भी मौजूद है जिससे लोग यह समझ लें कि अगर हिन्दुस्तान में मुसल्मान विजेता निर्दय और लुटेरे थे, तो पश्चिम में उनके समकालीन ईसाई बादशाह उनसे भी अधिक बड़े-बड़े लुटेरे और अत्याचारी थे। आज-कल हमारी कुछ ऐसी आदत बन गई है कि हम पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी के हिन्दुस्तान की तुलना उन्नीसवीं सदी के इंगलैंड से करते हैं और उसी के अनुसार झट नतीजे पर पहुँच जाते हैं।

एक सावधान और गम्भीर समीक्षक* का कहना है कि "जब दूसरे देशों के साथ हम इङ्गलैंड का वर्णन करते हैं, तब हम, इङ्गलैंड आजकल जैसी है उसीका चित्र करते हैं। रिफार्मेशन† के समय के पूर्व के समय को तो शायद, हम कभी विचार ही में नहीं लाते। हमारी यह एक आदत सी बन गई है कि हम दूसरे देशों को अज्ञानी और असभ्य समझते हैं, और ऐसा विश्वास बनाये रखते हैं कि वे हमारे बराबर उन्नतिशाली नहीं हैं, फिर चाहे उनकी उन्नति कुछ ही समय पहले हमारी उन्नति से कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो।"

* सर थॉमस मनरो।
† यूरोप का क्रान्ति-युग

अगर सोलहवीं शताब्दी के हिन्दुस्तान की तुलना उन्नीसवीं शताब्दी के इङ्गलैंड से करना उचित हो सकता है, तब तो फिर ईसवी सन् की पहली सदी के समय में इन दोनों देशों की तुलना करना कहीं अच्छा होगा, क्योंकि उस समय भारत की सभ्यता अपनी उन्नति के शिखर पर थी और इङ्गलैंड की सभ्यता का कहीं नाम निशान भी न था। भारतीय सभ्यता का अवनति-काल अलेक्जेण्डर द्वारा हिन्दुस्तान पर की गई चढ़ाई के समय से लेकर मुसलमानों की विजय तक का समय है। लेकिन हमारे पास इस बात के काफी प्रमाण हैं कि उस समय में, और उससे पूर्व के समय में हिन्दुस्तान एक हरा भरा, समृद्धिशाली और हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न देश था, और उसकी यह उन्नति मुगल साम्राज्य के विध्वंस तक बनी रही। मुगल साम्राज्य के विध्वंस का समय, अठारहवीं शताब्दी का आरम्भ-काल है।

यूनानी आक्रमण के समय

ऐल्फिन्स्टन् का कहना है कि "यूनान से आये हुए यात्रियों ने भारत के जिन जिन भागों को देखा उनका वर्णन किया है। उस से पता चलता है कि उस समय भारतवर्ष की जन-संख्या खूब बढ़ी-चढ़ी थी और यहाँ के निवासी खूब सुखी और सम्पन्न थे।" सिंधु और सतलज नामक नदियों के बीच में १५०० शहर बने हुए थे। पेलिलोथ्रा (?) नामक शहर ८ मील लम्बा, और डेढ मील चौड़ा था, उसके चारों ओर एक गहरी खाई थी। शहर के चारों ओर चहारदीवारी थी, जिसमें ५७० बुर्ज और १६४ फाटक बने हुए थे। विदेशों में व्यापार करने के

प्रत्येक मुसलमान शाही घराने में अनेक बादशाह असाधारण चरित्रवान हुए हैं। मुहम्मद गजनी की बुद्धिमत्ता, शील और साहस के साथ-साथ उसका कला और साहित्य के लिए उत्साह सर्वत्र प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध कला और साहित्य सेवियों के प्रति अत्यधिक उदारता के कारण उसकी राजधानी में प्रतिभाशाली साहित्यज्ञों का इतना बड़ा जमाव रहने लगा था कि एशिया में वैसा कभी देखा तक न गया था। अगर सम्पत्ति इकट्ठा करने में वह लुटेरा था, तो सम्पति का अच्छे से अच्छा और शान के साथ उपयोग करने में उसका कोई बराबरी नहीं कर सकता था उसके चार उत्तराधिकारी कला और साहित्य के बडे पुरस्कर्त्ता थे और उनकी प्रजा उन्हें अच्छा शासक मानती थी। क्या इनके समकालीन पश्चिमी बादशाह विलियम दी नोरमन तथा उसके उत्तराधिकारियों के विषय में भी हम यही कह सकते हैं। जो बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में हुए थे। आम तौर पर सब लोग यही समझते हैं कि मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान की विजय बड़ी आसान बात थी, परन्तु इतिहास हमें बतलाता है कि कोई भी हिन्दू राज्य बिना करारे संघर्ष के नहीं जीता जा सका। उनमें से अनेक तो कभी जीते ही न जा सके, जो कि आज तक प्रभावशाली राज्य बने हुए हैं। हिन्दुस्थान में मुसलमानी राज्य का संस्थापक शाहबुद्दीन बारहवीं सदी के अन्तिम काल में देहली में राजपूत सम्राट द्वारा बिलकुल परास्त कर दिया गया था।

अफगान बादशाह

शाहबुद्दीन के उत्तराधिकारियों में से कुतुबुद्दीन भी एक था।

पूर्लफिन्स्टन, "हिस्ट्री आफ इंडिया" (पहला हिस्सा।)

इसने कुतुब मीनार बनवाई थी। जिसके समान ऊँची मीनार ससार भर में नहीं है। इसने मीनार के निकट ही मसजिद भी बनवाई थी जिसकी विशालता और कारीगरी की सुन्दरता हिन्दुस्तान की अन्य किसी मसजिद में नहीं पाई जाती।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक फरिश्ता लिखता है कि "सुल्ताना रजिया में वे सब गुण थे, जो एक रानी में होने चाहिए उसके कार्यों को अधिक तीव्र दृष्टि से देखने वाले भी उसमें कोई ऐब नहीं पा सकते। परन्तु वह स्त्री थी।" एक योग्य और न्याय-प्रिय शासक के सब गुणों से वह सम्पन्न थी। परन्तु इतिहास सुल्ताना रजिया के समकालीन, इंग्लैंड के राजा जोन या फ्रान्स के राजा फिलिप के सम्बन्ध में हमें ऐसी अच्छी बातें नहीं बताता। इसी घराने का बादशाह जलालुद्दीन भी अपने साहित्य-प्रेम, हृदय की विशालता तथा दया के लिए अपनी प्रजा के आदर का पात्र था।[1]

दक्षिण के मध्य युगीन हिन्दू-राज्य

चौदहवीं सदी के मध्य-काल में करनाटक और तैलिंगण के हिन्दू राज्य फिर से स्थापित हुए थे। कर्नाटक की राजधानी विजयनगर तो इस बीच में उन्नति के शिखर पर पहुँच गई थी। वह इतना शक्तिशाली बन गया था कि इससे पूर्व के किसी राजघराने के शासन-काल में उसकी इतनी उन्नति हुई ही नहीं थी। उस समय दक्खिन के हिन्दू-मुसलमान राजाओं में इतना सद्भाव था कि उनके आपस में विवाह-शादी भी होने लगे थे। मुसलमान बादशाहों के यहां सब से बड़े फौजी अफसर हिन्दू होते

---

[1] एल्फिन्स्टन का "हिस्ट्री आफ इण्डिया" (II. 101)

थे। और हिन्दू राजाओं के यहां मुसलमान। विजयनगर के एक हिन्दू राजा ने तो अपनी मुसलमान प्रजा के लिए एक मसजिद भी बनावा दी थी।

तुगलक बादशाह

सन् १३५१ ई० में मुहम्मद तुगलक के शासन काल में राजधानी से लेकर सीमा-प्रान्त तक सुसंगठित पैदल और घुड़सवारों की चौकियां थीं, जिनका काम सड़क पर चौकी-पहरा देना था। हिन्दुस्तान की राजधानी देहली शहर को अम्न शहर कहा गया है- और उसकी मसजिदें तथा चहार दीवारी आलीशान। इसके उत्तराधिकारी फीरोजशाह ने कृषि की उन्नति के लिए दरियाओं के किनारे पचास बांध बँधवाये थे और चालीस मसजिदें, तीस कालेज, सौ सरायें, तीस तालाब, एक सौ अस्पताल एक सौ नहाने के घाट और एक सौ पचास पुल इसके अतिरिक्त आश्चर्य जनक कारीगरी की अनेक इमारतें तथा सबके मनो-विनोद के लिए अनेक स्थानों का निर्माण भी कराया था। इसके अलावा यमुना से एक नहर भी निकाली थी, जिसे पीछे से अंग्रेज सरकार ने मरम्मत कराके पूरा किया। यह नहर उस स्थान से निकाली है, जहां से यमुना करनाल के पहाड़ों से पृथक् होकर हांसी और हिसार की ओर जाती है।

इस बादशाह के बारे में इतिहास लेखक, आगे चलकर यह लिखता है कि फीरोजशाह के शासन-काल में प्रजा बड़ी सुखी थी, लोगों के घर अच्छे और सुसज्जित थे, और प्रत्येक घर में स्त्रियों के पास सोने-चांदी के काफी जेवर थे। प्रजा में प्रत्येक

व्यक्ति के पास एक अच्छा तख्त और एक सुन्दर बाग अवश्य था। यह इतिहास लेखक, चाहे विश्वसनीय भले ही न हो परन्तु यह बात तो निश्चय ही है कि भारतवर्ष उस समय एक हरा-भरा और शांति सम्पन्न देश था। इस कथन की पुष्टी इटली से आये हुए एक यात्री के बयान से भी होती है। यह यात्री सन् १४२० ई० में भारत में आया था। गुजरात की सम्पन्नावस्था देखकर तो यह चकित रह गया था। उसने गंगा के किनारे, सुन्दर-सुन्दर बाग बगीचों से घिरे हुए, अच्छे-अच्छे शहर देखे। मराज्रिया नगर को जाते समय उसे चार सुप्रसिद्ध शहरों में हो कर जाना पड़ा था। मराज्रिया नगर को उसने सोना, चांदी और जवाहरातों से भरा हुआ पाया, एक शक्तिशाली नगर पाया इस कथन का समर्थन बारबोरा और बार टेमा के कथन द्वारा भी होता है, जिन्होंने सोलहवी सदी के प्रारम्भ में हिन्दुस्थान में भ्रमण किया था। पहले व्यक्ति ने खम्भात को एक सुदृढ नगर बताया है जो कि एक सुन्दर तथा उपजाऊ भूमि में बसा हुआ था, और जिसमें फ्लेंडरस (हालैण्ड) की भांति सब देशों के व्यापारी तथा कारीगर रहते थे। सीजर फ्रेडरिक ने गुजरात के ऐश्वर्य्य का वर्णन भी ठीक ऐसा ही किया है।

पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य-काल की बात है, मुहम्मद तुगलक के अत्याचारों और अराजकता के राज्य में, जब कि देश के अधिकाश भागों में इधर-उधर आक्रमण और लड़ाइयां हो रही थीं, इब्नबतूता नाम के एक यात्री ने इस देश का पर्यटन किया था। वह अपनी यात्रा के वर्णन में अनेक बड़े-बड़े तथा आबाद शहरों का जिक्र करता हुआ कहता

कि जब अराजकता और अशान्ति के युग में भी इस देश का इतनी अच्छी अवस्था है तो शान्ति और सुशासन के समय में तो न मालूम यह कितनी उन्नतावस्था में रहा होगा।

सन् १४४२ ई० में, तैमूरलंग के राजदूत अब्दुर्रज़ाक ने दक्षिण भारत का निरीक्षण किया था। यह भी अन्य समीक्षकों और दर्शकों के दिये गये इस देश की समृद्धि के वर्णनों से पूरी तरह सहमत है। खानदेश का राज्य तो इस समय में बड़ा ही समृद्धि-शाली राज्य था। दरियाओं के किनारे जगह-जगह पर पत्थर के अनेक सुन्दर घाट बने थे, जिनके कारण खेतों की सिंचाई बड़ी सुगमता से हो सकती थी। घाटों की बनावट इस देश की कारीगरी और इस देश के निवासियों की योग्यता का ज्वलंत प्रमाण है।

वह शाही ज़माना

मुग़ल घराने का पहला बादशाह बाबर भी हिन्दुस्तान को उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखता था जितनी घृणा की दृष्टि से यूरोपियन उसे अब भी देखते हैं। परन्तु वह कहता है कि यह देश अत्यन्त सभ्य और धनवान है। उसने यहां की इतनी बड़ी आबादी तथा हर पेशे के अनेक हुनरमन्द आदमियों को देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है। अपने शासन के आवश्यकीय कामों के अतिरिक्त वह सदा तालाबों और छोटी नहरों के बनवाने और अन्य देशों के फल वगैरा अनेक जरूरत की चीजों को यहां पर पैदा कराने के प्रयोग में लगा रहता था।

बाबर का बेटा हुमायूं बड़ा चरित्रवान् और सदाचारी था। इसे शेरशाह ने हराकर हिन्दुस्तान से मार भगाया था। शेरशाह बड़ा योग्य और अत्यन्त बुद्धिमान था। उसके कार्य्य बुद्धि और प्रजा की भलाई से परिपूर्ण होते थे। यद्यपि उसे अपने अल्प शासन-काल में सदा लड़ाई के मैदान में ही रहना पड़ा; परन्तु उसने अपने राज्य में प्रशंसनीय शांति स्थापित कर दी थी और शासन विभाग को बहुत कुछ उन्नत बना दिया था उसने बंगाल से लेकर पश्चिम रोहतास तक जो सिंधु नदी के निकट है, एक पुख्ता सड़क बना दी थी। इस सड़क पर जगह-जगह सरायें और हर डेढ़ मील पर एक एक कुआ भी बनवा दिया था। हर मसजिद म एक एक इमाम और एक-एक मुअज्जिम रहता था और हर सराय में ग़रीबों और कंगालों के लिए सदावर्त्त का प्रबन्ध था। हिन्दुओं और मुसलमानों की जात-पात के अनुसार ही सेवा सुश्रूषा के लिए इन सरायों में नौकर चाकर भी मिलते थे। सड़कों पर छाया के लिए पेड़ों की कतारें लगवा दी थीं। और इस इतिहास लेखक के अनुसार कहीं-कहीं अस्सी वर्ष तक पुराने दरख्त पाये जाते थे।

अकबर

सुप्रसिद्ध अकबर के चरित्र के सम्बन्ध में तो विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। वह शासन-सभा म जितना चतुर था। लड़ाई के मैदान में उतना ही वीर था। अपने ज्ञान, सहिष्णुता, उदारता, दया, साहस, संयम, उद्योग-शीलता तथा हृदय की विशालता के लिए तो वह बहुत प्रसिद्ध था। पर अपने शासन की आन्तरिक नीति के कारण अकबर की गणना उन अच्छे मे

अच्छे सम्राटों में है, जिनका राज्य मानव-जाति के लिए एक ईश्वरीय आशीर्वाद और नियामत सिद्ध हुआ है। (१) उसने अपने शासन काल में अपराधियों की "अग्नि परीक्षा बन्द कर दी थी। लड़कों की चौदह वर्ष और लड़कियों की बारह वर्ष की अवस्था से पूर्व विवाह करने की सख्त मनाई करदी थी। कुर्बानी में जानवरों का मारा जाना रोक दिया था। हिन्दू धर्म के विरुद्ध, उसने बेवाओं को अपना दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे दी थी। उसने उन बेवाओं का सती होना रोक दिया था जो स्वेच्छा से अपने पति के साथ जलने के लिए तैयार न थीं। उसके यहां हिन्दुओं को मुसलमानों के समान ही नौकरी मिलती थीं। उसने काफ़िरों पर लगने वाला कर (जज़िया) उठा दिया था। यात्रियों को जो टैक्स देना पड़ता था वह भी माफ कर दिया था। लड़ाई में कैद कर लिये गये लोगों को, गुलाम बनाने की प्रथा को कड़ाई के साथ रोक दिया था। लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए शेरशाह ने जो काम शुरू किया था, उसे अकबर ने पूरा किया था। अपने साम्राज्य के अन्तर्गत खेती करने योग्य सारी जमीन की उसने दुबारा पैमाइश कराई। हर बीघे की पैदावार का ठीक ठीक पता लगाया। उसमें से जनता को कितना भाग दिया जाय उसका निश्चय किया और उसीके अनुसार उस पर एक निश्चित कर रुपये के रूप में मुकर्रर कर दिया। परन्तु किसानों को इस बात की स्वतन्त्रता दे दी थी कि उन्हें रुपये के रूप में कर प्रतीत होतो वे पैदावार के उस निश्चित हिस्से को ही दे दें। इसके

1 एल्फिन्स्टन का इतिहास भाग २ पृ० २७०

साथ साथ उसने अन्य अनेक दुःखदायी करों को बन्द कर दिया था, अफसरों को प्रजा से नजराना लेने की भी मनाई कर दी थी। इन बुद्धि पूर्ण कार्यों और उपायों द्वारा जनता के सर से बहुत से कर उठ गये। उसने अपने मुल्की अधिकारियों (Revenue officers) को जो हिदायतें दी थीं, और जो हमें भी प्राप्त हो गई हैं, उनसे उदार शासन-प्रबन्ध तथा प्रजा के सुख और आराम के लिए उसकी उत्कट इच्छा का पता चलता है। न्याय-विभाग के अधिकारियों को उसने जो हिदायतें दी थीं, उनसे उसके प्रजा के प्रति न्याय और भलाई करने के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। उसने उन्हें आज्ञा दे रक्खी थी कि जहां तक हो सके वे अपराधियों को फांसी की सजा न दें और भयंकर राज-विद्रोह के अपराधों के अलावा वे उसकी स्वीकृति लिये बिना किसी को भी फांसी न दें। फांसी की सजा के साथ-साथ अपराधियों के अंग-भंग की सजा को भी उसने रोक दिया था। उसने अपनी फौजों में सुधारकर उनका पुनर्संगठन किया था। पहले ऐसा नियम था कि सरकार को करों से जो आय होती थी, उसीमें से एक खास हिस्सा सिपाहियों के लिए निश्चित कर दिया जाता। परन्तु अकबर के नये सुधारों के अनुसार उन्हें सरकारी खजाने से प्रति मास पृथक वेतन मिलने लगा था। प्रजा की रक्षा के प्रबन्ध तथा अन्य सार्वजनिक हित के कामों के अलावा उसने अनेक भव्य भवनों का निर्माण भी कराया था, जिसकी प्रशंसा बिशप हेबर ने हृदय से की है। उसने शासन के प्रत्येक विभाग में काम करने की पद्धति और नियम निश्चित किये और उनके अनुसार काम करना शुरू कराया। उसकी प्रस्थापित संस्था में 'सुशासन

और सुन्दर व्यवस्था की आश्चर्य-जनक प्रतिमूर्ति थी, यहां असख्य लोग बिना किसी गुल-गपाडे के शान्ति पूर्वक काम करते रहते थे। और राज्य में अत्यधिक आमदनी के होते हुए भी पूरी क़िफायत शारी से काम लिया जाता था।"

अकबर जितना शानदार था उतना ही सरल भी था। जिन यूरोपियनों ने उसे देखा था उन्होंने उसे स्वभाव का मिलनसार, उदात्त, दयावान और सत्त्व, खान-पान में सयमी, कम सोने वाला, तोपें और बन्दूक बनाने में चतुर, तोप चलाने में दक्ष, तथा यन्त्र-कला में निपुण, अद्भुत उद्योगशील, गवारों तक के प्रति मिलनसार अपनों के लिए प्यारा और रौबीला तथा दुश्मनों के लिए खौफनाक था। क्या अकबर के समकालीन फ्रान्स के राजा चौथे हैनरी या इंग्लैण्ड की रानी एलीजाबेथ के विषय में भी हम यही कह सकते हैं।

राजा नहीं, पिता

ई० सन् १६२३ में इटली के पीट्रो डील वैले नामक यात्री ने, जहांगीर के शासन-काल के अन्तिम वर्ष में जहांगीर के चरित्र और भारतवर्ष की दशा के सम्बन्ध में लिखा था कि "आम तौर पर सब लोग ऊँचे दरजे के लोगों की तरह शान के साथ रहते हैं, हिन्दुस्तानियों में ठाट-बाट के साथ रहने की आदत सी है। जहांगीर के शासन-काल में वे इस शान-बान के साथ बड़ी आसानी से इसलिए रह लेते हैं कि बादशाह उनको शान-शौकत में रहता देखकर उनका धन धान्य छीनने की नियत से उनपर किसी प्रकार के झूठे दोषारोपण नहीं करता, जैसा कि उस समय दूसरे मुसलमान देशों में होता था।"

लेकिन अकबर के नाती शाहजहा के राज्य-काल में भारतवर्ष अत्यधिक समृद्धिशाली हो गया था। उसकी प्रजा ने निर्विघ्न शांति और सुशासन का पूरा आनन्द और लाभ उठाया था। यद्यपि सर थोमस रो ने, सन १६१५ ई० में शाहशाह की छावनी में उससे भेंट की थी तथापि उस समय उसने वहा विपुल सम्पत्ति देखा और उसे देखकर वह आश्चर्य चकित हो गया था। उसने देखा था कि कम से कम दो एकड़ जमीन सोने और चादी के काम से सुसज्जित दरी और कालीनों तथा परदों से बिछी पडी थी, जिनका मूल्य सोने और जवाहरात से जडी हुई मखमल के बराबर होता है। परन्तु थोमस रो के अलावा हमारे पास टेवरनियरके कथन का प्रमाण भी मौजूद है। उसका कहना है कि तख्त ताऊस के बनवाने वाले ने, जब वह सिंहासनारूढ हुआ तब सोना और कीमती जवाहरात का तुलादान कर लोगों में लुटवा दिया था। फिर भी उसका अपनी प्रजा पर शासन एक राजा की भाति नहीं, बल्कि एक बड़े परिवार पर एक उदार हृदय पिता के समान था।" अपने शासन के आन्तरिक प्रबन्ध पर वह सदा कड़ी नजर रखता था। अपने राज्य मे शान्ति और सुप्रबन्ध तथा शासन के प्रत्येक विभाग में सुव्यवस्था की दृष्टि से शाहजहा का शासन भारत में अद्वितीय रहा है। अपने प्रत्येक काम में वह इतना मितव्ययी था कि अपनी कन्धार की चढ़ाई और बाल्क प्रदेश की लड़ाई आदि के भारी खर्चे के अलावा दो लाख घुड़ सवारों की स्थायी सेना के व्यय के लिए नियमित रूप से व्यय करते हुए भी, सोना, चादी और जवाहरात के ढेरों के अतिरिक्त, लगभग, चौबीस करोड़ नक़द मुद्रा उसने खजाने में

छोड़े थे। उसका व्यवहार अपनी प्रजा के प्रति दया-पूर्ण और पितृवत् था। अपने आस-पास के लोगों के प्रति उसके भाव कितने उदार थे, इसका पता अपने बेटों में उसके विश्वास में चलता है (१)

देश की इस समृद्धि की नींव इतनी दृढ़ हो गई थी कि औरंगजेब के दीर्घ, असहिष्णु और अत्याचारी राज्य में भी वह एक मुद्दत तक हरा भरा बना रहा। औरंगजेब के बाद उसके उत्तराधिकारी बादशाह कमजोर और दुष्ट निकले। इसी कारण तीस वर्ष के अन्दर ही कुशासन के कारण मुगल साम्राज्य का विध्वस हो गया। फिर सन १७३९ में नादिरशाह जो विपुल धन यहा से ढोकर ले गया उससे इस बात का पता चलता है कि उस समय भी तुलनात्मक दृष्टि से भारतवर्ष कितनी सम्पन्नावस्था में था।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के दक्खिन के अनेक विख्यात राजाओं में बीजापुर का दीवान मलिकअम्बर एक वीर योद्धा और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के नाम से विख्यात था। उसके अन्दर एक असाधारण प्रतिभा थी। उसने अपनी शासन निपुणता का भीतर और बाहर दोनों जगह एक ही मान बढ़ाया था, उसने इजारे की प्रथा तोड़ दी। पहले पैदावार का एक हिस्सा लगान के रूप में दिया जाता था, उसके बजाय भी उसने लगान रुपये के रूप में निश्चित कर दिया। जिन गावों का दशा

१ ऐलफिन्स्टोन खंड २ पृष्ठ ३००।

● ग्रैंट डफ खंड १ पृष्ठ ९४-९६।

बिगड़ गई थी, उनको फिर से सुधारा। इन उपायों तथा सुधारों से देश कुछ ही दिनों में हरा-भरा और समृद्धिशाली बन गया। यद्यपि उसके शासन प्रबन्ध में व्यय बड़ी उदारता से किया जाता था तथापि उसके राज्य की आय भी विपुल थी। बीस वर्ष से भी अधिक समय तक वह विदेशी विजेताओं के लिए एक अभेद्य दुर्ग के समान दृढ़ बना रहा। यद्यपि मलिकअम्बर को लगातार लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, तथापि इस अद्भुत व्यक्ति को अपने राज्य में शान्ति कालीन कलाओं की वृद्धि के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। उसने किरकी नामक शहर बसाया था, और अनेक भव्य महल बनवाये थे। अपने राज्य-काल में मलिक ने आन्तरिक शासन विभाग में ऐसी प्रबन्ध-पद्धति को शुरु किया, जिसके कारण राज्य के प्रत्येक गाव में सेनापति की अपेक्षा उसका नाम अब भी शासक के रूप में आदर से लिया जाता है।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में मुसलमान बादशाहों के समकालीन हिन्दू राजाओं के चरित्र के बारे में तो हमें कुछ नहीं मालूम, परन्तु हमें इतना पता तो जरूर है कि इस जमाने में इनके राज्य अपने पूर्वजों के समान ही काफ़ी शान और शक्ति से परिपूर्ण थे। हमें यह भी पता है कि एकाध को छोड़कर सभी खास-खास मुसलमान बादशाहों के प्रधान हिन्दू ही थ। अर्थ-सचिव और प्रधान सेनापति का काम उन्हीं के हाथों में थे।

सदाचार का आदर्श

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में और, औरंगजेब के

शासन-काल में मुगल साम्राज्य की जड़ से हिला देने वाला "लुटेरा" शिवाजी एक बहुत ही योग्य और अत्यन्त व्यवहार-चतुर सेनापति था। उसकी मुल्की शासन-व्यवस्था बड़ी सुव्यवस्थित और नियमित थी। प्रान्तीय तथा ग्रामीण अफसरों से, अपनी प्रजा की रक्षा के लिए बनाये गये नियमों के पालन कराने की कार्यक्षमता उत्तम थी। शिवाजी के दुश्मन भी इस बात के साक्षी हैं कि वे न्यायपूर्ण नियमों द्वारा लड़ाई की उन बुराइयों को कम कर देने के प्रबल इच्छुक थे। और इनका पालन वे बड़ी सख्ती से कराते थे, सब बातों का विचार करने पर कहना पड़ता है कि यह वीर पुरुष अपने सदाचार का वह आदर्श उपस्थित कर गया है जिसकी समता करना तो दूर की बात है पर उसका कोई देशवासी उसको पहुँच तक नहीं पाया है। पर शिवाजी की आन्तरिक शासन-प्रबन्ध की शक्ति उनकी युद्ध-चातुरी से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। (२) उनकी इस आन्तरिक शासन-कुशलता का प्रभाव अस्सी वर्ष बाद सन् १७५८ ई० में भी दिखाई पड़ता है। मराठा साम्राज्य के बारे में ऐनक्वेटिल डू पेरन ने सन् १७५८ में जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है—

"चौदह फरवरी सन १७५८ ई० को मैं सूरत जाने के उद्देश से, माही से गोआ के लिए रवाना हुआ। अपनी सारी यात्रा में, प्रत्येक राज्य के सिक्कों के नमूने मैं लेता गया, फलतः कन्याकुमारी से देहली तक इस समय जितने सिक्के प्रचलित हैं, उन सब के नमूने मेरे पास मौजूद हैं।"

(२) ग्रैन्ट डफ लिखित मराठों का इतिहास खण्ड २।

उसी वर्ष २७ मार्च को दिन के दस बजे मैं पश्चिमी घाट की पर्वतमाला से गुजरता हुआ जब मराठों के प्रदेश में मैं पहुँचा, तो मुझे प्रतीत होने लगा कि, मैं सत्य-युग की उस सादगी और सुख के बीच में हूँ, जहा प्रकृति अभी तक अपनी पूर्वावस्था में ही है, जहा पर लड़ाई और कष्टों का लोगों ने नाम तक नहीं सुना। लोग प्रसन्न, उत्साही और पूर्णतया स्वस्थ थे। असीम आतिथ्य सत्कार वहा का सार्वभौम गुण था। प्रत्येक दरवाजा सदा खुला था और पड़ौसी, मित्र, एवं विदेशियों का भी एक सा स्वागत होता। घर में जो कुछ भी होता उनके सामने खुले हृदय से रख दिया जाता। चलते चलते मैं औरंगाबाद के नजदीक जा पहुँचा। शहर कोई सात मील रहा होगा। यहा से मैं एलोरा की प्रसिद्ध गुफाओं को देखने गया था।*

पेशवाओं का शासनकाल

शिवाजी के कई उत्तराधिकारी बड़े योग्य थे। उनमें से पेशवा बालाजी विश्वनाथ और उनके सुपुत्र बाजीराव बल्लाल के नाम उल्लेखनीय हैं। बाजीराव में एक महाराष्ट्रीय राजा के सब गुण विद्यमान थे। वह साहसी, उत्साही और कष्टों को धैर्य पूर्वक सहनेवाले थे। व्यवहार कुशलता बुद्धिमत्ता और तत्परता आदि कोंकन के ब्राह्मणों के प्रसिद्ध सद्गुण तो उनमें विद्यमान थे ही। पर उनका मस्तिष्क उर्वर था और भुजाओं में अपनी सोची

---

* एम एन्क्वेटिक डू पेरन के भारतीय प्रवास का संक्षिप्त विवरण नामक एक लेख से, जो १७६२ में जन्टलमन्स मेगाजिन नामक एक पत्र में छपा था। पृ० ३७६।

योजनाओं को कार्य में परिणत करने का बल था। उनकी अदक उद्योगशीलता और सूक्ष्म दृष्टि ने उनके अन्दर एक शक्ति पैदा कर दी थी, जिससे कि गंभीर और राजनैतिक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भी भलीभांति विचार कर वे बहुत जल्दी अपना मत स्थिर कर सकते थे। वह एक असाधारण वक्ता थे, उनकी बुद्धि तलस्पर्शी थी और वह स्वभाव के सीधे सादे थे। लेकिन वे बड़े चतुर और साहसी सेना नायक थे, अपने अदने से अदने सिपाही के सुख दुःख में सदा सम्मिलित होने के लिए उनके पास हृदय था।

इनके उत्तराधिकारी बालाजी राव में पर्याप्त राजनैतिक बुद्धिमत्ता, व्यवहार कुशलता और महान विनम्रता थी। स्वभाव से कुछ आलसी और विलासी होते हुए भी वह उदार और दानी थे। वह अपने सम्बन्धियों और आश्रितों के प्रति दयावान, किन्तु अपनी प्रजा पर आक्रमण करनेवालों के घोर शत्रु थे। लगातार-युद्ध की चिन्ता में लगे रहने पर भी वे अपना अधिकांश समय, राज्य की आन्तरिक शासन-व्यवस्था में ही लगाते थे। उनके शासन-काल में सारे महाराष्ट्र की दशा बहुत कुछ सुधर गई थी। बालाजी राव ने इजारे की पद्धति को उठा दिया और न्याय विभाग की साधारण दीवानी अदालतों में पर्याप्त सुधार किया था। नाना लैरा (?) पेशवा के जमाने को तो सारे महाराष्ट्र के किसान "अब तक दुआयें देते हैं।"* यद्यपि बालाजी राव के उत्तराधिकारी श्री माधवराव

* Grant Duff's History of the Marathas Vol II P 160

बड़े युद्ध-प्रवीण थे तथापि एक शासक की हैसियत से बालाजी-राव के चरित्र का महत्त्व अधिक है।

"गरीबों की धनिकों और निर्बलों की अत्याचारियों से रक्षा करने तथा उस समय की समाज-रचना जहां तक आज्ञा देती थी, उसके अनुसार सबके साथ समानता का व्यवहार करने के लिए वह सुप्रसिद्ध थे।" बालाजीराव ने अपने सुप्रबन्ध में किसानों की शिकायतों पर ध्यान दे कर राज्य के मुल्की अधिकारियों को अपने पद और अधिकारों का दुरुपयोग करने से रोक दिया था। उस जमाने में खेतों की पैदावार की दृष्टि से महाराष्ट्र प्रान्त भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक उन्नतावस्था में था। परम्परागत हकों का दावा रखने वाले लोगों को ऊँचे अधिकार देने और उदारता पूर्वक उनकी तरक्की करने की नीति, उनके अन्दर देश-भक्ति बढाने और सुशासन की दृष्टि से उनमें राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने का बढ़िया काम करती थी। पेशवा माधवराव को राज काज में, अपने मंत्री सुप्रसिद्ध रामशास्त्री से, बड़ी सहायता मिलती थी। रामशास्त्री इतने पवित्र और धर्मात्मा न्यायाधीश थे, कि किसी भी परिस्थिति में उनका चरित्र सदा आदरणीय समझा जाता था। खासकर अपने चरित्र के प्रत्यक्ष उदाहरण से उन्होंने अपने देशवासियों का बड़ा उपकार किया। उनके जीवन-काल में ही उनकी राय का सब बड़ा आदर करते और वह पुख्ता समझी जाती थी। उनके समय की पचायतों के फैसले जिनमें लोगों पर डिक्रिया भी दी जाती थीं, आज भी प्रमाण माने जाते हैं। लोक-सेवा के लिए उनके उज्वल चरित्र और अथक परिश्रम के पुनीत प्रभाव ने सब श्रेणी के लोगों की दशा सुधारने में

जादूसा काम किया था। बड़े से बड़े आदमियों के लिए उनका जीवन एक नमूना था। अपराध या भूल करने वाले बड़े से बड़े आदमी भी रामशास्त्री के नाम से भयभीत हो जाते थे। यद्यपि बड़े-बड़े पदाधिकारी तथा धनवानों ने उन्हें रिश्वत आदि का लालच दिखाया, परन्तु वे अपने चरित्र से कभी नहीं गिरे, और एक बार लोभ देने वाले को दुबारा उनके पास जाकर लोभ देने की बात का जिक्र तक करने का साहस न हुआ। न कभी किसी ने उनकी ईमानदारी के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उनकी रहन सहन अत्यधिक सादी थी। उनका यह नियम था, कि वे अपने घर में एक दिन से अधिक के लिए खाने को नहीं रखते थे। (१) वे इतने धर्मात्मा और न्याय प्रिय थे कि जब रघुनाथराव ने, माधवराव के भाई और उत्तराधिकारी पेशवा नारायणराव की हत्या में भाग लेने के अपराध का प्रायश्चित रामशास्त्री से पूछा, तो उन्होंने बड़ी निर्भीकता से कहा कि "इस पाप का प्रायश्चित तो तुम अपने प्राण दे कर ही कर सकते हो, क्योंकि अपने भावी जीवन में अब तुमसे यह पाप और तरह नहीं धोया जा सकता और इसी कारण न तुम और तुम्हारा राज्य ही अब फूले-फलेगा। रही मेरी बात, सो मैं अपने लिए तो यहा तक कह देता हूँ कि जब तक शासन की बागडोर तुम्हारे हाथ में है, तब तक मैं न तो तुम्हारी नौकरी स्वीकार करूँगा और न पूना में पैर ही रक्खूगा।" अपनी इस बात पर वह अन्त तक कायम रहे और वाई के पास के एक गाव में अपने जीवन के शेष दिन उन्होंने एकान्तवास में बिता दिये।(२)

१ अण्टडफ का इतिहास खण्ड २ पृ० २०८
२ ग्रण्टडफ खण्ड २ पृ० २ ३०

नारायणराव जिसका कि खून किया गया था, अठारह वर्ष का एक युवक था। वह अपने सम्बन्धियों को बहुत प्यारा तथा अपने नौकर-चाकरों के प्रति बहुत कृपालु था। वह इतना भला था कि उसके दुश्मनों को छोड़कर सब कोई उसे प्यार करते थे।

हैदरअली और टीपू

सुप्रसिद्ध हैदरअली माधवराव का समकालीन तथा शत्रु था। माधवराव ने लड़ाई में उसे कई बार बुरी तरह हराया था। परन्तु जार पीटर की भांति उसने अपनी हार की परवा नहीं की, और बड़प्पन पाने की इच्छा से इससे भी बुरा परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो गया। अपने मालिक, मैसूर के राजा से राज्य छीन कर तथा लगातार विजय प्राप्त करता हुआ वह, उत्तर से दक्खिन चार सौ मील लम्बे तथा तीन सौ मील चौड़े घनी बस्ती वाले राज्य का मालिक बन बैठा। उसके पास तीन लाख सेना थी। और उसके राज्य की आमदनी लगभग सात करोड़ पचास लाख रुपये सालाना थी। यद्यपि वह लगातार लड़ाइयों में लगा रहा, तौभी अपनी प्रजा की उन्नति और अपने राज्य में सु-व्यवस्थित शासन-प्रणाली बनाये रखने के लिए सदा चिन्तित रहा करता था। उसके राज्य के प्रत्येक भाग में क्या व्यापारी और क्या कारीगर सभी खुशहाल थे। खेती में तरक्की हुई, नये-नये कारीगर तथा कारखाने खोले गये, जिसके कारण राज्य में धन का प्रवाह बहने लगा। राज्य के कर्मचारियों तथा अफसरों की लापरवाही और अधिकारों के दुरुपयोग के प्रति वह बड़ा कठोर था। मुल्की अधिकारी उससे सदा भयभीत ही रहते और यरांते

हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। ज़रा से ग़बन या धोखे के लिए उन्हें कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जाती थी। अपने राज्य के कोने-कोने पर तथा हिन्दुस्तान के प्रत्येक देशी राजा पर सदा उसकी नज़र रहती थी। राज्य में होने वाली प्रत्येक छोटी से छोटी बात का उसे पता रहता, सुदूर राज्य के भागों में होने वाला ज़रा सा काम भी उसके नज़र से न छिप सकता था। उसके पड़ोसियों की थोड़ा भी काना-फूँसी या इच्छा ऐसी न होती जो उसके पास न पहुँच जाती हो। एक-एक करके उसके सब सेक्रेटरी रोज़ आये हुए सब पत्र पढ़ कर उसे सुनाते, और चूंकि स्वयं लिखने में वह असमर्थ था, इस लिए संक्षेप में उन सबका जवाब वह लिखा देता, जो कि उसी समय लिख कर उसे सुना दिया जाता और तुरत ही रवाना भी कर दिया जाता। प्रत्येक बात की बारीक़ से बारीक तफ़सील को खूब अच्छी तरह विचारने और साहस के साथ उसे पूरा करने के रहस्य को वह भली-भाँति जानता था।

उसके अध्यवसाय और काम को झटपट निपटा देने की शक्ति की तुलना तो केवल उसकी स्वराज्य पर-राज्य से सम्बन्ध रखने वाली तथा नित्य होने वाली ताज़ी से ताज़ी घटनाओं की संपूर्ण जानकारी रखने की शक्ति से ही की जा सकती थी। शासन-संचालन में बिना व्यर्थ की कार्यवाही बढ़ाये काम निपटाने तथा निर्णय-शक्ति में तो वह मानव-जाति के इतिहास में केवल अद्वितीय ही था।*

*हैदर के इस चरित्र-चित्रण के लिए कर्नल फलर्टन लिखित View of the Interest of India और विल्क की History of India खण्ड २ को देखिए।

हैदरअली, अपने हाथों से लबालब भरा हुआ एक खजाना, अपने हाथों खड़ा किया हुआ एक शक्तिशाली साम्राज्य, और तीन लाख सैनिकों की स्वयं तैयार की हुई सुसगठित विजयोत्सुक सेना अपने बेटे टीपू सुल्तान के लिए छोड़ गया था। और उस समय के इतिहास-लेखकों तथा प्रत्यक्ष द्रष्टाओं का कहना है कि टीपू सुल्तान को जो विरासत अपने पिता से मिली थी, वह उसके शासन काल में किसी प्रकार भी कम नहीं हुई थी।

"जब कोई किसी अपरिचित देश में जाय वहा की भूमि को भली प्रकार जोती-बोई पावे वहा के निवासियों को उद्यमी देखे नये-नये शहरों, बढ़ते हुए व्यापार-धन्धों, तरक्की करते हुए, नगरों, और हर बात में उन्नति देखे, तो वह निश्चय ही इस नतीजे पर पहुँचेगा कि यहा का शासन लोगों की इच्छा के अनुकूल है। टीपू सुल्तान के देश का यही चित्र है और उसके शासन के समय में हम जिस नतीजे पर पहुँचे वह भी यही है। भाग्यवश टीपू के राज्य में हमें कुछ दिन ठहरना पड़ा था, और यदि अधिक नहीं तो लड़ाई के दिनों में घूमने वाले अन्य अफसरों के इतना तो अवश्य ही हमें उसके राज्य में होकर सफर करनी पड़ी थी।" इसीलिए ऐसा मान लेने के लिए हमारे पास काफी सबूत है कि उसकी प्रजा उसके शासन-काल में इतनी सुखी थी, जितनी कि किसी भी दूसरे राजा की प्रजा हो सकती है। क्योंकि हमने उन्हें किसी प्रकार की शिकायतें करते नहीं देखा। अगर शिकायतें होतीं ही तो, टीपू की प्रजा के लिए, टीपू की शिकायत करने का वह सब से अच्छा अवसर था, क्योंकि उस समय टीपू के दुश्मनों के हाथों में काफी शक्ति थी और उस समय उसके चरित्र

पर लोगों को आक्षेप करते देख कर उन्हें खुशी ही होती। विजित देशों की प्रजा विजेताओं की आज्ञा का चुपचाप पालन करती थी। परन्तु इसमें यह पता हरगिज नहीं चलता था कि उनके कंधे से किसी अत्याचारी या दुःखदाई सरकार के जुए का बोझ हटा दिया गया है। परन्तु इसके ठीक विपरीत ज्योंही उन्हें कभी कोई अवसर प्राप्त होता, वे झट अपने नय प्रभुओं को दूधकी मक्खी की तरह निकाल फेंकते और अपने पुराने राजा के अनुयायी बन जाते।"*

"याता हैदर की नई शासन-पद्धति के कारण, या टीपू के सुच रित्र और सिद्धान्तों की वजह से, अथवा राज्य पर अधिक दिनों से कोई आक्रमण न होने के कारण, और या फिर इन सब कारणों के संयुक्त फल से टीपू के साम्राज्य में हर जगह खूब आबादी थी, जोतने बोने योग्य सारी ज़मीन फसल से हरी-भरी थी। उसकी अन्तिम पराजय तक उसकी सेना में अनुशासन और वफादारी देखने में आई, जो उसकी सेना की सुव्यवस्था का सबूत था। उसकी सरकार यद्यपि कठोर और निरंकुश थी, परन्तु वह निरंकुशता एक ऐसे नियमनिष्ठ और योग्य शासक की निरंकुशता थी, जो अपनी प्रजा को सताती नहीं, बल्कि उसका पालन पोषण करती है। क्योंकि उसी प्रजा पर तो आखिर उसकी भावी उन्नति और युद्धों की विजय निर्भर थी। वास्तव में वह उन्हीं लोगों के साथ निर्दयता का व्यवहार करता था, जिन्हें वह अपना शत्रु समझता था।"†

---

* मूर लिखित टीपू सुलतान के साथ किये गये युद्ध की कथा पृ० २०१

† Dirom's Narrative P 249

पर यह मान लेना भी एक बड़ी भारी भूल होगी कि लोगों की इस सम्पन्न अवस्था का सारा श्रेय हैदर या उसके बेटे को ही है। उनके पचास वर्ष का अल्प शासन काल इतने बड़े काम के लिए नगण्य-सा था। इस काम की नींव हैदर से पूर्व के हिन्दू राजाओं ने डाली थी। जिन्होंने बहुत सी बड़ी-बड़ी नहरें बनवाई थीं, जो मैसूर राज्य को कई भागों में बाँटे हुए हैं। इनकी सिंचाई के कारण किसानों के खेतों की पैदावार निश्चित और विपुल हो गई है।*

नन्दनवन की शोभा

अंगरेजी सरकार और उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी हैदरअली भारतवर्ष के राजनैतिक रंग-मंच पर एक ही साथ अवतीर्ण हुए। जिस वर्ष हैदरअली ने मैसूर में वहां के असली राजा से राज्य छीन कर, अपना राज्य स्थापित किया था, उसी वर्ष मुग़ल-साम्राज्य का सब से अधिक मूल्यवान और चमकता हुआ रत्न बङ्गाल, हमारे कब्जे में आया। यद्यपि बङ्गाल उस समय मरहठों के एक ताजे

* मैसूर की कितनी ही नहरें तो इतनी बड़ी हैं, जिनमें व्यापारी नौकाएँ तक आ जा सकती हैं। उनको बड़े ही कौशल के साथ पहाड़ियों और कभी कभी खोहों के ऊपर से ले गये हैं, जहां ढाल इतना कम है कि पानी भी मुश्किल से बह सकता है। वे उस सारी जमीन को सींचती हैं जो टनक और नदी के बीच में पड़ती है। ये नहरें बहुत पुरानी हैं, श्रीरंगपट्टम को जो नहर पानी देती है वह इन सब में अर्वाचीन है। यह शिवदेवराज ओडयार के द्वारा बनाई गई थी और सन् १६९० में समाप्त हुई थी। राज्य के शासन सम्बन्धी कई दीवानी कानून भी इन्होंने ही बनाये हैं।

आक्रमण की मार से सम्हल नहीं पाया था, फिर भी क्लाइव ने इस नवीन प्राप्त देश को "अटूट सम्पत्ति से परिपूर्ण" एवं ऐसा देश बताया है* जो अपने स्वामियों को संसार में सब से अधिक सम्पत्ति शाली बनाये बिना रह नहीं सकता। मि०मैकाले का कहना है कि मुसलमान अत्याचारी शासकों और मरहठों की लूट-खसोट के रहते हुए भी पूर्वीय देशों में बङ्गाल, "नन्दनवन" यानी अत्यधिक समृद्धि-शाली प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था† । उसकी जन संख्या बहुत बढ़ गई थी। बंगाल के अन्न की पैदावार इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि दूर दूर के प्रान्त बङ्गाल के छलकते हुए अन्नागारों से अपना पेट पालते थे। इसके अतिरिक्त लण्डन तथा पैरिस क उच्चतम घरानों की महिलायें बङ्गाल के करघों पर बुने हुए नाजुक महीन कपड़ों से अपना तन ढकती थीं।

बंगाल में सतयुगी शासन

भारतवासियों के शासन में बंगाल की स्थिति कैसी थी इसका वर्णन एक और दूसरे लेखक ने भी किया है वह यदि भारतवर्ष में अनेक वर्षों तक न रहा होता और इस विषय से वह भलीभाँति परिचित न होता तो हम उसकी बात को बनावटी और

* क्लाइव का जीवन चरित्र।

† उस जमाने में लोगों के पास कितना धन रहता था इसके प्रमाण में एक ही उदाहरण दूना काफी होगा। सन १७४२ की मराठों की चढ़ाई में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के जगतसेठ की दूकान लूटी गई। जिसमें नगद २५,००,००० मुहरें मराठों को मिली। डफ लिखित मराठों का इतिहास खंड २ पृष्ठ १२।

अत्युक्ति पूर्ण समझते । मि० हालवेल कहते हैं कि "वास्तव में इन लोगों को सताना एक बड़ी भारी निर्दयता होगी, क्योंकि इस प्रान्त मे प्राचीन भारतीय-शासन की सुन्दरता, पवित्रता, धार्मिकता, नियमितता निष्पक्षता और प्रबन्ध की कठोरता के चिन्ह अभी तक पाये जाते हैं । यहा के लोगों की सम्पत्ति और स्वतन्त्रता सुरक्षित है । यहा खुली या छुपी लूट-मार और डकैती का नाम तक नहीं सुना जाता । मुसाफिरों की रक्षा को सरकार अपना प्रधान कर्तव्य समझती है । उनकी रक्षा के लिए सरकार की ओर से, एक स्थान से दूसरे स्थान तक सिपाही मिलते हैं । फिर चाहे उनके पास कोई कीमती माल हो चाहे न हो । उनकी रक्षा और उनके ठहराने की जिम्मेदारी भी इन्ही सिपाहियों पर होती है । एक मजिल के सिपाही दूसरी मजिल पर पहुँचने पर मुसाफिर को, बड़े आदर, और उदारता पूर्वक दूसरी मजिल के सिपाहियों के सुपुर्द कर देते हैं । ये सिपाही, मुसाफिर से उसके साथ पिछली यात्रा में सरकारी सिपाहियों द्वारा किये गये व्यवहार के विषय में कुछ पूछ-ताछ करते, तथा उन सिपाहियों को मुसाफिर के साथ अच्छा व्यवहार करने और सब सामान के उसे अपनी रक्षा में लेने का दाखला देकर छुट्टी दे देते थे । यह प्रमाणपत्र या दाखला पहली मजिल के प्रधान अफसरों को दिया जाता था और अपने यहा उसकी लिखा-पढ़ी करके राजा को नियमित रूप से इस बात की रिपोर्ट भेजा करते थ ।"

"इस प्रकार मुसाफिर के सफर का प्रबन्ध किया जाता है । अगर वह केवल सफर करता है तो उसके खाने-पीने, सवारी तथा माल असबाब की ढुवाई का खर्च उसे कुछ नहीं देना पड़ता।

परन्तु बीमारी और आकस्मिक घटना को छोड़ कर यदि वह किसी स्थान पर तीन दिन से अधिक ठहरता है, तो उसे वहा अपना खर्चा देना पड़ता है। अगर इस प्रांत में किसी की कोई चीज, मसलन रुपये-पैसों की थैली या अन्य क़ीमती चीजें गुम जाती हैं तो पाने वाला उन्हें नजदीक के किसी पेड़ पर टाग देता है, और उसकी सूचना पास की पुलिस-चौकी में कर देता है। और चौकी का पुलिस अफसर ढोल पिटवाकर उसकी सूचना सर्व साधारण से करवा देता है।"*

शासन-नीति दया शील होने के कारण और उस पर बुद्धि तथा दूरदर्शिता के साथ अमल होने के कारण ढाके का प्रान्त समृद्धि शाली था। प्रत्येक भाग में खेती होती थी और उसके निवासियों के आराम तथा आवश्यकता की सामग्री वहा काफ़ी तादाद में पैदा होती थी। लोगों को निष्पक्ष न्याय मिलता था। वहा के सूबा गुलाम अलीखां और जसवन्तराय के उज्ज्वल चरित्र ने उनके स्वामी सरफ़राजख़ां के शासन के लिए अच्छा नाम पैदा किया था जसवन्त राय ने नवाब अलीखा से ही शिक्षा पाई थी। और नवाब अलीखा के चरित्र की पवित्रता, ईमानदारी, काम करने की अथक लगन आदि गुणों को उसने अपने चरित्र में ढाला था। इस तरह उसने शासन प्रबन्ध की एक ऐसी पद्धति का अध्ययन किया था, जिसके द्वारा जनता के आराम और सुख की वृद्धि हो सके। उसने व्यापार के एकाधिकार को नष्ट कर दिया था और अन्न-कर को उठा दिया। †

* Holwelts Tractys Upon India

† स्टूअर्ट लिखित बंगाल का इतिहास पृ० ५१०

बङ्गाल की यह अवस्था अलीवर्दीखा के शासन-काल में थी। अलीवर्दीखा "ब्लेक होल" की स्मृति के सम्बन्ध में बदनाम सिराजुद्दोला का पूर्वाधिकारी और नाम मात्र के लिए दिल्ली के बादशाह का गवर्नर था। यद्यपि उसका चरित्र अच्छा नहीं था और उससे कुछ घृणित कुकृत्य भी बन पड़े थे, परन्तु फिर भी उसके शासन-काल में देश की बहुत बड़ी उन्नति हुई थी। उसने अपने अनेक योग्यतर सम्बन्धियो तथा दोस्तों को राज्य के जिम्मेदारीपूर्ण पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। पर अगर उनमें से कोई असावधानी या अत्याचार करता हुआ पाया जाता तो वह उसे तुरन्त बरखास्त कर देता। योग्यता और उत्तम चरित्र ही उसके लिए प्रमाण पत्र थे। अपनी सारी प्रजा को वह एक ही ईश्वर के पुत्र-पुत्री समझता था और हिन्दुओं को मुसलमानों के बराबर का ही स्थान देता था, और मंत्री-पद के लिए सदा हिन्दुओं को ही वह चुनता। फौज तथा मुल्की शासन के काम में ऊँचे ऊँचे पदों पर भी वह हिन्दुओं को नियुक्त करता। इस लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं, कि हिन्दुओं ने उसको तथा उसके परिवार की बड़े उत्साह और स्वामि-भक्ति के साथ सेवा की। उसके शासन-काल में प्रान्त से वसूल किया गया कर देहली के सुदूरस्थ खजाने को भरने की अपेक्षा वहीं पर खर्च कर दिया जाता। यह एक बहुत बड़े लाभ की बात थी, और यही कारण था कि उसके राज्य-काल में प्रजा इतनी धन्य-धान्य पूर्ण थी। उस समय समृद्धि, शान्ति और व्यवस्था का सर्वत्र साम्राज्य था। प्रान्त के किसी सुदूरस्थ कोने में किसी कट्टर और बागी जमींदार के कभी कभी के बखेड़े को छोड़कर, प्रजा

की गठरी और सार्व भौम शान्ति में कभी विघ्न पड़ता ही नहीं था।*

सिर्फ दस वर्ष में काल !

परन्तु अंग्रेजी शासन में आने के दस वर्ष के भीतर ही बङ्ग प्रदेश की स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया था।

मि० मैकाले का कहना है कि "कुछ समय तक तो बङ्गाल से आने वाला प्रत्येक जहाज बड़े भयानक समाचार लाया करता था। प्रान्त का आन्तरिक कुशासन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। ऐसे सरकारी नौकरों से क्या आशा की जा सकती थी, जिनके सामने लार्ड क्लाइव के शब्दों में ऐसे प्रलोभन थे, जिनका प्रतिकार, रक्त और मांस का बना हुआ यह शरीर किसी प्रकार भी नहीं कर सकता था? उस समय भारत-स्थित अंगरेजों के हाथों में दुर्दमनीय शक्ति थी, और वे उत्तरदायी थे एक ऐसी पतित, उपद्रवी, और अशान्त कम्पनी के प्रति, जिसे यहां की पूरी खबरें मिलती ही नहीं थीं। कैसे मिलतीं? वह इतनी दूर थी, कि उसके पास यदि कोई समाचार भेजा जाता तो उसके पहुँचने और उत्तर आने में डेढ़ साल से भी अधिक समय लग जाता। इसका फल यह हुआ था कि क्लाइव के चले जाने के बाद पांच वर्ष में बङ्गाल में अंग्रेजों का कुशासन उस चरम सीमा तक पहुँच गया था, जिसे देखकर यह आश्चर्य होता था, कि इतने कुशासन के होते हुए भी समाज का अस्तित्व कैसे बना हुआ है। एक रोमन राजदूत की बात है, उसने एक-

* स्ट्युअर्ट लिखित बङ्गाल का इतिहास

दो साल के अन्दर ही एक प्रान्त से इतना धन चूँस लिया कि जिससे उसने कैम्पेनिया नदी के किनारे नहाने के लिए घाट और रहने के लिए संगमरमर के महल बनवाये, और वह अन्त तक उनकी शान-शौक़त और चमक-दमक को कायम रख सका। उसने इतना धन खींच लिया था कि जिससे वह हमेशा उत्तमोत्तम शराब पीता था, और मांस खाता सो भी गाने वाली चिड़ियों का ही। विदूषकों की एक फौज की फौज और जिराफों के झुण्ड के झुण्ड वह रखता था। एक स्पेनिश वाइसराय जिसने मैक्सीको और लीमा पर अनेक और अभूत पूर्व अत्याचार किये थे, वहा की जनता के शापों को वहीं छोड़कर वह अपनी जन्म-भूमि मैड्रिड में सोने-चांदी के काम से चमकती हुई गाड़ियां, बड़े बड़े घोड़े, जिनके खुर चांदी से मढ़े हुए थे, लेकर लौटा था। पर इन दोनों की यह सब लूट-खसोटें बङ्गाल में पांच वर्ष के अन्दर की गई इस लूट खसोट के सामने न-कुछ थी। हां, कम्पनी के कर्मचारियों के अन्दर अनेक अवगुण तो थे परन्तु निर्दयता नहीं थी। लेकिन अनीति से धनवान होने की उन्हें बड़ी उत्सुकता थी। और इसने जो बुराइयां उनके अन्दर पैदा कर दीं वे निरी निर्दयता से न होतीं। उन्होंने अपने बनाये नवाब मीरजाफर को गद्दी से उतार कर उसकी जगह पर मीरक़ासिम को सिंहासनारूढ कर दिया था।

लेकिन मीरक़ासिम योग्य और निश्चयी था। और यद्यपि वह स्वयं अपनी प्रजा पर अत्याचार करने का इच्छुक था, परन्तु वह अपनी प्रजा को उस अत्याचार से पिसते हुए नहीं देख सकता था कि जिससे उसे कोई लाभ न हो। बल्कि जिससे उसकी आय के सोतेपर ही कुल्हाड़ी पड़ती हो। इसी लिए अंग्रेजों ने

मीरक़ासिम को भी गद्दी से उतार कर उसकी जगह पर मीरजाफ़र को फिर बिठा दिया। मीरक़ासिम ने इसका बदला एक ऐसा हत्या काण्ड करके लिया कि उसके सामने "ब्लैक होल" की क्रूरतायें भी मात हो गईं, और इसके पश्चात् वह अवध के नवाब की राजधानी में भाग गया। इन सारी क्रान्तियों में गद्दी पर बैठने वाला नया नवाब अपने से पहले शासन करनेवाले नवाब के खजाने में जो कुछ भी उसे मिलता उसे, अपने विदेशी मालिकों के साथ मिलकर बाँट लेता। उसके राज्य की बहु संख्यक जनता उन लोगों के हाथ का शिकार बन जाती, जो उसे गद्दी पर बिठाने और फिर उतारने की भी शक्ति रखते थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने मालिकों के लिए नहीं, प्रत्युत अपने लिए लगभग समस्त आन्तरिक व्यापार का एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। वे इस देश के निवासियों को महगा खरीदने तथा सस्ता बेचने के लिए बाध्य करते थे। देशी शासकों के कर-विभाग के अधिकारियों अदालतों और पुलिस का वे बड़ी निरंकुशता के साथ अपमान करते। क्योंकि उन्हें सज़ा का कोई डर न था। अपनी रक्षा में उन्होंने कुछ ऐसे देशी गुण्डे रख छोड़े थे जो प्रान्त भर में घूमते और जिस स्थान पर पहुँचते उसे लूट लाटकर प्रजा पर आतंक का साम्राज्य फैला देते। कम्पनी में काम करने वाले प्रत्येक शख्स के नौकरों की पीठ पर कम्पनी की सारी शक्ति रहती थी। इस प्रकार कलकत्ते में तो विपुल सम्पत्ति इकट्ठी कर ली गई, वहाँ दूसरी ओर तीन करोड़ भारतवासियों को दुरवस्था की चरम सीमा को पहुँचा दिया गया था। वे बहुत दिन से अत्याचार सहने के अभ्यासी अवश्य थे, परन्तु इस प्रकार के अत्याचार के

नहीं। कम्पनी के छोटे से छोटे नौकर से भी वे इतना डरते जितना मिराजुद्दौला से भी नहीं। अपने पुराने शासकों के समय में उनके पास कम से कम एक उपाय तो था। जब बुराई असह्य हो जाती, तब लोग बलवा करके सरकार को नष्ट भ्रष्ट तो कर सकते थे। परन्तु अंगरेज़ी सरकार ने इस तरह की गुंजाइश नहीं रक्खी थी। जंगलियों की घोर निरंकुशता के साथ-साथ यह तो उन सारी शस्त्र-सामग्री से सुसज्जित थी जो आधुनिक सभ्यता उसे दे सकती थी।[†]

मैसोर का शासन-व्यवस्था।

पुर्णैया के सुप्रबन्ध के कारण ही मैसूर राज्य की लगान से होने वाली आमदनी में इतनी वृद्धि हो सकी है। उन्होंने तालाबों और नहरों की मरम्मत कराई है, अनेक सड़कें और पुल बनवा दिये हैं, परदेशियों को मैसूर राज्य में आने तथा वहां बस जाने के लिए हर प्रकार का उत्साह प्रदान किया है, और अपने राज्य के अन्दर खेती की उन्नति तथा जन-साधारण की दशा सुधारने के लिए पूरा पूरा ध्यान दिया है।[*]

नाना फड़नवीस।

दीवान पूर्णैया के समकालीन नाना फड़नवीस थे। नाना फड़नवीस दीवान पुर्नैया से किसी बात में भी कम न थे। इन्होंने बाजीराव के बाल्यकाल में लगभग पचीस वर्ष तक पेशवा के

---

†लार्ड क्लाइव पर मेकाले का निबन्ध।

*मैसोर पर सरकारी रिपोर्ट १८०४ एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर, १८०५,

प्रदेश का शासन किया था। इस महान राजनीतिज्ञ के चरित्र के वर्णन करने का यदि प्रयत्न किया जाय तो पिछले पचीस वर्ष की मराठों के राजनैतिक इतिहास की घटनाओं की तफसील में पड़ना होगा। इस बीच में इन्होंने मंत्री के कर्त्तव्य का पालन जिस योग्यता से किया, उसका उदाहरण नहीं मिलता। अपने शासन काल के लम्बे और आवश्यक समय में अपने अकेले दिमाग के ही बल-बूते पर उन्होंने ऐसे विशाल साम्राज्य के भार को सँम्हाला था जिसके अंग रूप राज्यों के हित एक-दूसरे के विरोधी थे। एक ही साथ में कई कामों को अपने हाथ में ले लेने की प्रतिभा, बुद्धिमानी और दृढ़ता तथा शासन की उदारता आदि अनेक विचित्र गुणों के कारण उन्होंने इन असमान स्वभाव वाले लोगों को एक ही सर्व हितकारी काम में लगा दिया, जिसमें वे एक दूसरे की नीति का विरोध करने के बजाय परस्पर सहायता करने लग गये। उनकी नीति व्यापक प्रचुर और दूरदर्शी होती थी जिसमें विश्वास और निराशा की अति के लिए स्थान ही नहीं होता था। वे इतने प्रत्युत्पन्न मतिवाले थे, कि आने वाले प्रत्येक अनपेक्षित घटना के लिए वे तैयार रहते और फौरन उसका उपाय भी सोच लेते थे। *

मराठा के साम्राज्य में।

इस सुविख्यात पुरुष द्वारा दीर्घ काल तक शासित प्रदेश का इस पुरुष की मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद स्वर्गीय सर जॉन

---

* एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर खंड ५ पृ० ७० स्फुट उद्धरण Vol V 70 miscebaneous extracts

मालकम ने निरीक्षण किया था। उसकी दशा का वर्णन करते हुए व लिखते हैं —

"सन् १८०३ में ड्यूक ऑफ वैलिंग्टन के साथ मुझे दक्षिण महाराष्ट्र देखने का अवसर मिला था। उस प्रदेश के समान उपजाऊ भूमि और यहा की भूमि की हर प्रकार की पैदावार तथा व्यापारिक सम्पत्ति मुझे अन्य किसी दूसरे देश में आज तक कभी देखने को नहीं मिली। यहां पर मैं विशेष कर कृष्णानदी के किनारे की भूमि के विषय में संकेत करता हूँ। पेशवाओं की राजधानी पूना, एक अत्यन्त समृद्धिशाली और उन्नतिशील व्यापारिक शहर है। बजर और अनुपजाऊ जमीन में जितनी खेती हो सकती है उतनी दक्षिण में मैंने देखी।"※

महाराष्ट्र सल्तनत का एक बहुत बड़ा भाग मालवा कहलाता है। यह पहले समय में और आजकल भी होल्कर घराने के शासनान्तर्गत है। मालवा और उसके कुछ शासकों के चरित्र में सबंध में हमारे पास उपर्युक्त प्रतिष्ठित द्रष्टा द्वारा कुछ अनुकूल प्रमाण मौजूद हैं। वे लिखते हैं —

"मालवा को मैंने नष्ट-भ्रष्ट दशा में पायी। पचास वर्ष से अधिक समय तक उस सुन्दर भूमि में मरहठों की फौजों का अधिकार रहने से तथा पिंडारी और भारत की अन्य लुटेरी जातियों से मालवे की बड़ी बरबादी हुई थी।

※ कमिटी ऑफ कॉमन्स, के सामने दिये गये बयान से। सन् १८३२ पृ० ४१।

Evidence Before Cmmittee of Commons, 932

इस अवस्था में दूर से हम ऐसे देशों की अवस्था के संबंध में जो कल्पना करते हैं उसमें और उनकी प्रत्यक्ष आंखों देखी अवस्था में अन्तर था। उसे देख कर मैं बड़ा चकित हुआ। मुझे इस प्रदेश में फौजी और मुल्की शासन के सब अधिकार प्राप्त होने से, सरकारी कागजातों तथा अन्य दूसरे साधनों द्वारा, उसकी वास्तविक दशा को अध्ययन करने का पूरा अवसर मिला। अत: जिस समय मैंने अपने काम को हाथ में लिया उस समय मुझे तो सचमुच यह पूरा विश्वास था कि यहां पर व्यापार का नाम-निशान भी न होगा और ऐसे प्रान्त में, जो कि बहुत लम्बे समय तक, अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण पश्चिमी भारत के समृद्धप्रान्त और हिन्दुस्तान के समस्त उत्तर-पश्चिमी प्रान्त तथा सागर और बुन्देलखण्ड के बीच होनेवाले व्यापार का मध्यवर्त्ती केन्द्र था, अब वीरान हो रहा होगा और वहां वह अपनी साख तक खो चुका होगा। परन्तु मैं तो यह देख कर दंग रह गया कि उज्जैन तथा दूसरे शहरों से राजपूताना, बुन्देलखण्ड, युक्तप्रान्त और गुजरात का जहां पर कि पहली श्रेणी के सेठ-साहूकार बड़ी-बड़ी रकमों का व्यापारिक लेन-देन चल रहा था। यहां चरित्रवान तथा बड़ी साखवाले व्यापारी और साहूकार बसते थे। एक देश का माल यहां होकर दूसरे देश को जाने के अलावा, यहां पर बीमे का जो कि सारे भारतवर्ष में फैला हुआ था यहां काम भी बराबर जारी था ? इसमें बड़े बड़े सेठ साहूकार शामिल थे। हां, खतरे के समय किश्त की रकम अवश्य बढ़ जाया करती थी। हमारे शस्त्रास्त्रों द्वारा शान्ति स्थापित हो जाने के बाद मालवा की सरकार को केवल इसी बात की आव-

श्यकता रह गई थी कि वहां के निवासी अपने देश को वापिस लौट आवें। सभी भारतीयों की भाँति मालवा के निवासियों में भी अपने देश के प्रति प्रेम था। अतः शान्ति स्थापित होते ही वे तुरन्त वापस आकर बस गये। हमने अपने शस्त्रास्त्रों के बल से वहां के पुराने नरेशों के राज्य की पुनः स्थापना कर दी थी। हम बाहरी आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे परन्तु अपने आन्तरिक शासन में ये बिलकुल स्वतन्त्र थे। लेकिन मेरा इस बात में कतई विश्वास नहीं है कि देशी नरेशों के सीधे शासन द्वारा इस देश में कृषि और व्यापार की जो उन्नति हुई है, उसमें अधिक उन्नति होना तो दूर रहा, उसके बराबर उन्नति भी हमारे सीधे शासन द्वारा वहां हो जाती। दक्षिणी महाराष्ट्र प्रान्तों की समृद्धि के विषय में तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ। इसलिए यदि यहां पर मैं बाजीराव के पिछले कुछ वर्षों के कुशासन से पूर्व की अवस्था का वर्णन करूँ तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि हमारे शासन में वहां के व्यापार और खेती की इतनी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। परन्तु हमारे शासन में उन्हें जो सब से बड़ी नियामत प्राप्त है, वह यह है कि हमारी अधीनता में युद्धों के कष्टों से उनकी रक्षा हो गई है। इस आनन्द का लाभ सब लोग समान रूप से उठाते हैं। लेकिन मुझे यहां पर निस्संकोच होकर यह भी कह देना चाहिए कि, पटवर्द्धन घराने के आधीन तथा कुछ अन्य नरेशों द्वारा शासित कृष्णातट के प्रदेश भारतवर्ष के अन्य किसी भी प्रान्त के मुकाबले में, व्यापार तथा कृषि में सब से अधिक उन्नतावस्था में हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो उनकी सुव्यवस्थित शासन पद्धति है। यद्यपि वहां पर, कभी-

कभी अनुचित रूप से रुपया वसूल कर लिया जाता होगा, परन्तु साधारणतया उनका शासन सौम्य और पितृवत है। दूसरा कारण है हिन्दुओं का ध्यान और खेती, तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी कामों में उनकी रुचि-बल्कि श्रद्धा, तीसरा कारण है उनकी समझदारी अथवा शासन के अनेक विभागों में कम से कम हम से अधिक योग्यता पूर्वक काम करने की शक्ति। और खास कर पूँजीपतियों को उत्साहित करके तथा गरीबों को सूद पर रुपया देकर शहरों और देहातों को समृद्ध बनाने में वे बहुत कुशल हैं। इसका एक कारण यह भी है और वह सब से अधिक महत्त्व पूर्ण है कि जागीरदार लोग अपने जागीर में ही रहते हैं। इन प्रान्तों का शासन इन्हीं उच्चकोटि के स्थानीय आदमियों द्वारा होता है। जो वहीं काम करते-करते जीते और मरते हैं। इन जागीरदारों की मृत्यु के पश्चात उनकी जागीर के मालिक प्रायः उनके पुत्र-पौत्र और सम्बन्धी ही होते हैं। अगर संयोगवश ये लोग कभी-कभी निरंकुशता पूर्वक प्रजा से धन घसोट भी लेते हैं, तो उनका सारा खर्च, और उन्हें जो कुछ प्राप्त होता है वह, सब उनके प्रान्त की सीमा के अन्दर ही रहता है। परन्तु उस प्रदेश को समृद्धिशाली बनाने के अनेक कारणों में से सर्वश्रेष्ठ कारण यह है कि वहा पर सब वर्ग के लोगों को रोजगार मिलता है और देहातों तथा संस्थाओं को निश्चित रूप से सहायता दी जाती है। जिसकी कि हमारी शासन प्रणाली में कहीं गुजाइश ही नहीं है। ॐ

ॐSir John Malcolm

अहल्याबाई पवित्रतम शासक

"अपने राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध में अहल्याबाई की सफलता अद्भुत थी। उसके राज्य को बाहरी आक्रमणों से जो मुक्ति और निश्चिन्तता प्राप्त थी उसकी अपेक्षा देश की निर्विघ्न आन्तरिक शान्ति अधिक उल्लेखनीय है। ऐसी शान्ति-पूर्ण अवस्था पैदा होने का कारण था शान्तिशील, उपद्रवी लुटेरों वर्ग के प्रति अहिल्याबाई का यथायोग्य व्यवहार। शान्तिशील वर्ग के प्रति उसका प्रेम-पूर्ण व्यवहार रहता था। परन्तु उपद्रवी और लुटेरे वर्ग के प्रति उसका व्यवहार कठोर, किन्तु विचार-पूर्ण और न्यायी होता था अपनी प्रजा की समृद्धि को बढाना उसके जीवन का सर्वप्रिय उद्देश था। हमें पता चला है कि जब कभी वह साहूकारों, व्यापारियों और किसानों को सम्पन्न देखती तो बड़ी प्रसन्न होती। उनके धन को बढ़ता हुआ देख कर, उनसे खसोटना तो एक ओर, वह तो उन्हें अपनी कृपा और रक्षा का और भी अधिक अधिकारी समझती। अहल्याबाई के आन्तरिक शासन नीति और उस पर अमल करने के लिए काम में लाये गये उपायों का विस्तार पूर्वक वर्णन करना तो असम्भव है। सक्षेप में यहा पर इतना कह देना ही पर्याप्त है कि मालवे की प्रजा एक मत होकर अहल्याबाई को सुशासन की साक्षात् प्रतिमा समझती है। उसने कितने ही किले बनवाये थे। और विंध्याचल में जाम के पहाड़ पर तो बड़े परिश्रम और धन व्यय के साथ, एक सड़क बनवाई थी। जहा पर पहाड़ की

चढ़ाई बिलकुल सोची है। उसके समकालीन भारतीय नरेश, उसके राज्य पर चढ़ाई करना, अथवा किसी दूसरे के द्वारा उसके राज्य पर आक्रमण होते देखकर उसकी रक्षा के लिए न दौड़ पड़ना तो महापाप समझते थे। सब लोग उसे इसी दृष्टि से देखते थे। पेशवाओं से लेकर दक्खिन के निजाम और टीपू सुल्तान तक उसे उसी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे। और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों एक साथ होकर ईश्वर से उसकी चिरआयु और अभ्युदय के लिए प्रार्थना करते थे। अत्यधिक गम्भीरता पूर्वक उसके चरित्र पर दृष्टिपात करने पर भी प्रतीत होता है कि वह एक अत्यन्त पवित्र और आदर्श शासक थी। उसके जीवन से यह उदाहरण और शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन करते समय किस प्रकार उनके लिए अपने को ईश्वर के समक्ष जिम्मेदार समझना चाहिए।"[*]

महाराष्ट्र प्रान्त के छोटे-छोटे देशी राज्यों के समूह में बरार के राजा भी थे। इनके राज्य में प्रजा की वास्तविक दशा के सम्बन्ध में एक यूरोपियन यात्री ने अपनी आंखों देखा यह वर्णन लिखा है —

"उस प्रान्त की सम्पन्नावस्था का पता उसकी राजधानी पर एक दृष्टिपात करने ही से चल सकता था। लेकिन बाद में जब हमें उस प्रान्त में होकर यात्रा करनी पड़ी तब तो वहां की प्रजा की समृद्धावस्था के विषय में और भी निश्चय हो गया। उसे देख कर मुझसे उस प्रदेश के प्राचीन राजाओं की प्रशंसा किये

* उमाशंकर लिखित मध्यभारत का इतिहास खण्ड १ पृ० १०६।१२।

बिना नहीं रहा जाता। उस प्रदेश मे नर्मदा नदी इतनी गहरी नहीं कि जल मार्ग से वहा व्यवहार हो सके। यह प्रदेश उसके लाभ से भी वे वचित था। भीतरी व्यापार भी अधिक नहीं था। परन्तु प्रजा पालक नरेशो की छत्र-छाया मे वहाँ के किसान खूब खेती करते थे, उनके घर सदा स्वच्छ रहते थे, वहा पर अनेक बड़े-बड़े मन्दिर, तालाब, तथा अन्य सार्वजनिक लाभ की अनेक चीजें थी। वहा के नगरो का विस्तार, खेतों का साल मे कई बार बोया जाना, आदि बातें निश्चय ही स्पृहणीय समृद्धि के चिन्ह हैं। इसका सारा श्रेय यहा की पहली सरकार को है। क्योंकि मरहठा नरेश तो अपने सुशासन के लिए अत्यधिक प्रशंसा के पात्र हैं। पहले शासन के लिए यह बात काफी प्रशसा के योग्य है कि सागर नरेश के अपने बीस साल के शासन काल में और बरार के राज के अपने चार वर्ष के राज काल में भी प्रदेशों की समृद्धि को कोई अधिक हानि नहीं पहुँची थी।"*

बरार प्रदेश में यात्रा करनेवाले एक दूसरे यात्री का कहना है कि "अब हमने एक हरे-भरे सम्पन्न प्रदेश में से होकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। आस-पास के पहाड़ो से निकलनेवाले नालों के जल से खेत भली प्रकार सिंचे हुए थे। इस प्रदेश में जगल नहीं थे, चारों ओर गाव ही गाव थे और जगह-जगह पानी से भरे हुए तालाब और दरख्तों व झुण्डों के कारण भूमि बड़ी सुन्दर दिखाई देती थी। हमारी पहली सफर की कठिनाइयाँ अब बिलकुल नहीं रहीं। और इस प्रदेश की यात्रा म

*एशियाटिक सोसायटी के एक सभ्य के "१ ९८ म, मिर्जापुर से नागपुर का प्रवास" से एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर, स्फुट ट्रैक्ट पृ० १२

हमें जो आनन्द मिला उसका वर्णन करने की अपेक्षा उसकी कल्पना करना ही अधिक आसान है। इस प्रदेश में महाराष्ट्र-सरकार के सुशासन के कारण सफर में हमारे साथ हर प्रकार का आदर पूर्ण व्यवहार हुआ। यहां पर हमें हर प्रकार का अन्न काफी मात्रा में बहुत ही सस्ते मूल्य पर मिला जो कि यहां की उपजाऊ भूमि में पैदा होता था। और यद्यपि यहां पर भीतरी व्यापार के लिए सरकार की ओर से बहुत ही कम प्रोत्साहन मिलता था, क्योंकि सरकार सड़कों की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देती थी, परन्तु फिर भी फसल के समय पर यहां से इतना माल बाहर जाता था कि करीब एक लाख बैल उसके ढोने में लगे रहते थे।*"

राजपूत राज्य

मरहठों के राज्य से अब हम राजपूत राज्यों की ओर आते हैं। और यहां भी हम एक प्रत्यक्ष द्रष्टा का ही निम्न लिखित बयान देते हैं "अवध के नवाब के किसानों की खेती के मुक़ाबले में मुझे अंग्रेजी राज्य के किसानों की खेती सदा उन्नत अवस्था में दिखाई पड़ी। परन्तु यह कह देना केवल न्याय युक्त ही है कि हिन्दू राजाओं द्वारा शासित छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में, कम्पनी द्वारा शासित प्रदेशों से खेती की पैदावार कहीं अधिक अच्छी थी। यहाँ के तेजस्वी स्वाश्रयी किसानों को देखकर यही प्रतीत होता था कि राज्य में उनके अधिकारों और मतों का अधिक ख्याल रक्खा जाता है। सन १८१० ई० में जब कम्पनी की फौज ने अंग्रेजी प्रदेश से बाहर कूच किया, तो अंग्रेजी सेना

---

* एशियाटिक जर्नल रजिस्टर, खण्ड २, स्फुट ट्रैक्ट पृ० ११६।

ने टिहरी के राज्य में लगभग दो मास तक विश्राम किया। उस प्रदेश की समृद्धि और सम्पन्नावस्था को देख कर सारी फौज आश्चर्यान्वित हो गई थी।"*

"रामपुर राज्य से गुजरते हुए उस प्रदेश की खेती की अच्छी अवस्था हमारी नजर से छिप नहीं सकी। आस-पास के प्रदेशों से यहाँ की खेती कहीं अच्छी अवस्था में है, मुश्किल से ही कहीं पर खेती का कोई ऐसा हिस्सा मिलता जिसकी ठीक साल-सम्हाल न हो। यद्यपि मौसम अनुकूल नहीं था, फिर भी सारे प्रदेश में फसल से खेती लहलहाती हुई दिखाई देती थी। वर्तमान रीजेण्ट के बारे में हमें जो वर्णन मिला है उससे हम किसी प्रकार भी इस नतीजे पर नहीं पहुँच सकते कि उनके किसी व्यक्तिगत उद्योग से, देश इस समृद्धावस्था को पहुँचा है। अत हम इस समृद्धि व असली स्रोत को जानने को उत्सुक हैं। और यह मालूम कर लेना चाहते हैं कि आया इस उन्नति का कारण किसानों को जिन शर्तों पर जमीन दी गई थी वह हैं या जमीन सम्बन्धी व्यवस्था में ही कुछ ऐसी विशेष बातें थीं जिनकी ओर ध्यान देने से हमारे अंगीकृत कार्य्य में हमें सहायता मिल सकती थी। नवाब फैजुल्लाखा के प्रबन्ध की सर्वत्र प्रशंसा थी। यह प्रबन्ध एक ऐसे सुसंस्कृत और उदार मालिक का प्रबन्ध था जो प्रजा की समृद्धि बढ़ाने में अपना तन, मन, धन, लगा देता था। जब बड़े-बड़े महत्वपूर्ण काम करने होते, जिन्हें कोई व्यक्ति अकेला न कर सकता, तो उस कार्य्य को सम्पादन करने के साधन उसकी

---

* ह्वाइट लिखित ब्रिटिश भारत की दशा १८२२।

उदारता और दया द्वारा प्राप्त हो जाते। उसने नहरें बनवाई थीं। नालों को कभी-कभी रोक कर उनके पानी से निकटवर्ती प्रदेश की भूमि को उपजाऊ बनाया जाता था और प्रजा की रक्षा के लिये एक पितृवत् नरेश की भाँति वह सदा तत्पर रहता था। वह लोगों को उनके काम में उत्साहित करता था, उनको लाभ दायक काम करने की सलाह देता था और उस काम को पूरा करने में हर प्रकार की सहायता भी देता था।

"उस प्रदेश का कुछ हिस्सा तो रुहेलों के अधीन था और कुछ हमारे अधीन। अतः हमारे अधीन प्रदेश और रुहेलों के अधीन प्रदेश की दशा का मुकाबला किया जाय और इस बात को एक तराजू में रख कर तौला जाय कि किसके राज्य में प्रजा को अधिक लाभ पहुँचा है, तो इस बात के विचार मात्र से ही स्पष्ट होता है कि भलाई का पलड़ा रुहेलों के पक्ष में ही झुकेगा। उस प्रदेश में, हमारे सात वर्ष के शासनकाल में शासन प्रबन्ध की रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि, कर में सिर्फ दो लाख की वृद्धि हुई है। परन्तु पार्लियामेंट में पेश की गई रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि पिछले बीस वर्ष में रुहेलखण्ड और अवध के नवाब से प्राप्त हुये जिलों की सम्मिलित आमदनी में दो लाख पौण्ड सालाना की कमी हुई है।

"हमारे अधीन प्रदेश के पड़ोसी प्रदेशों में, अधिक पूँजी और अधिक उद्योग धन्धों से पैदा हुई उन्नतावस्था में और हमारे अधीन प्रदेश की दशा में जो अन्तर था यह भी हमसे न छिप सका। पड़ोसी प्रदेश को देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि इस भूमि को किसी भारी आपत्ति ने वियाबान सा

सुना दिया है। लेकिन उधर राजा दयाराम और भगवन्तसिंह के अधीन प्रदेशों की दशा बड़ी अच्छी थी। यद्यपि उस साल मौसम प्रतिकूल था परन्तु वहाँ पर खेती करने के उत्तम ढग और अधिक परिश्रम के कारण खेत हरे भरे दिखाई पड़ते थे। यहाँ पर हमें यह बात स्पष्ट कर देना चाहिए कि ऊपर जिस आस-पड़ोस की भूमि का जिक्र किया है, वह अंगरेज़ी प्रदेश का वह भाग है जिसे हमारे अधिकार में आये पूरे पाँच वर्ष हो गये थे।*

अवध के नवाब और उसके राज्य की की गई इतनी बुराइयों के बाद भी हमें अनेक विश्वसनीय प्रमाणों से पता चलता है। कि न तो नवाब का चरित्र ही इतना काला था और न उसके प्रदेश की दशा ही उतनी बुरी थी जितनी कि हमारे सरकारी अफसरों ने बताई है।

हेबर लिखते हैं कि अवध को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और साथ ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना भी न रहा। क्योंकि अवध की दुरावस्था और वहाँ की प्रजा के कष्टों के विषय में मैंने जो कुछ सुना था उससे तो यही अनुमान होता था कि वहाँ की आबादी बहुत कम हो गई होगी और खेती भी बहुत कम होती होगी। परन्तु यहाँ पर मैंने देखा कि खेत पूर्णतया जुते-बुये थे और आबादी इतनी काफी थी कि अगर यहाँ की प्रजा मेरे सुने गये अत्याचारों के समान ही पीड़ित होती तो यहाँ पर इतनी आबादी, इतनी अच्छी खेती और इतना उद्योग धन्धा देखने में कदापि न आता। लेकिन कल की घटनाओं ने यह

---

* १८०२ की राजनैतिक विवरण का परिशिष्ट पृ० ३६ २०।

मानने के लिए कारण दे दिया कि यहाँ पर काफ़ी कुशासन और अराजकता है।

वहाँ पर हमने सर्वत्र सभ्य और भले स्वभाव के आदमी पाये। वे हमारे लिए अपनी गाड़ी और हाथी आदि सड़क से एक ओर करके हमारे जाने के लिए रास्ता खाली कर देते थे। और हमारा आतिथ्य सत्कार तो उन्होंने इतना अच्छा किया, इतना अधिक स्थान हमें मिलता था जितना लण्डन में दस विदेशियों को भी मुश्किल से मिला होगा। यहाँ के वर्तमान शासक साहित्य और तत्वज्ञान के प्रेमी हैं।

"सादतअली स्वयं एक बड़े बुद्धिमान् और गुणी आदमी थे। व्यापार की ओर उनकी विशेष रुचि थी और उसके संपादन के लिए काफ़ी योग्यता प्राप्त कर चुके थे। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में दुर्भाग्यवश उन्हें शराब पीने की आदत पड़ गई थी। परन्तु फिर भी उनके अधीन प्रदेश की भूमि खूब उपजाऊ थी, आबादी ६० साठ लाख थी, खज़ाने में बीस लाख से अधिक रुपया नक़द था अर्थ विभाग सुव्यवस्थित था, किसान लोग सन्तुष्ट और सुखी थे। दिखाने के लिए कुछ सिपाहियों और पुलिस के अतिरिक्त कोई फौज वगैरह भी न थी। प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि पात करने से प्रतीत होता था कि यहाँ पर सुशासन के कारण प्रजा सुखी और समृद्ध है।

"बादशाह का यह कथन बिलकुल सत्य था कि उसके प्रदेश में खेती अत्यन्त उन्नतावस्था में है। मैं भी उनके इस कथन की सत्यता का साक्षी हूँ। मुझे उनके प्रदेश में खेती को इतनी उन्नतावस्था में देखने की आशा तो कदापि न थी। लखनऊ से

लेकर मान्दी तक, (?) जहाँ पर बैठा हुआ मैं यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, खूब खेती होती है और जन-संख्या उतनी ही अधिक है जितनी कि कम्पनी के अधीन अनेक प्रदेशों में। इन सब बातों को देखते हुए मुझे यह संदेह करना ही पड़ता है कि अवध की प्रजा के कष्टों और अराजकता को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है।*

"स्वाध्याय की ओर उनकी विशेष रुचि थी, और जहाँ तक पूर्वीय साहित्य और तत्वज्ञान का सम्बन्ध है, वे एक बड़े विद्वान् समझे जाते हैं। यंत्र विद्या (Mechanics) तथा रसायन शास्त्र की ओर भी उनका अधिक झुकाव है।

"हमारे जेम्स प्रथम की भाँति इन्हें न्याय-प्रिय और रहम-दिल बताया जाता है। जिन लोगों की उनके पास तक पहुँच है उन सब को वे बड़े प्रिय हैं। उन्होंने रक्त-पात या अत्याचार पूर्ण कोई काम कभी भी नहीं किया। इतना ही नहीं, लोगों का मत है कि, उनके जानते हुए भी किसी दूसरे ने भी कोई ऐसा काम नहीं किया। खर्च करने में वे मितव्ययी नहीं थे, प्रजा तक उनकी पहुँच नहीं थी, अपने कृपा पात्रों में उनका अन्ध-विश्वास था, मिलने जुलने के भिन्न-भिन्न प्रकार के ढंग और विशेषाधिकारों की एक बुरी लत उनमें पड़ गई थी, परन्तु यह बात कोई अस्वभाविक नहीं थी, यही उनकी बुराइयाँ और भूलें हैं।"

लार्ड हेस्टिंगस् ने उन्हें एक ईमानदार, दयाशील और साधारण तथा उन्नत विचार वाला नरेश बताया है। इसी विश्वसनीय पुरुष ने देशी नरेश के अधीन काल में, भरतपुर की सम्पन्नावस्था के विषय में लिखा है —

* P 89

"इस प्रदेश में यद्यपि जङ्गलात का अभाव है परन्तु फिर भी इधर-उधर इतने वृक्ष दिखाई पड़ते हैं कि जितने हमने पिछले बहुत दिनों से नहीं देखे। यद्यपि यहाँ की भूमि रेतीली है और सिंचाई सिर्फ कुओं से ही होती है लेकिन यहाँ के खेत उतने ही अच्छे जुते हुए और सिंचे हुए हैं जितने कि मैंने हिन्दुस्तान में दूसरी जगहों पर देखे हैं। इस समय जो फसल खेतों में खड़ी हुई है वह निहायत अच्छी है। कपास की फसल यद्यपि समाप्त हो चुकी है परन्तु देखने से पता चलता है कि मेह बहुत अच्छी हुई होगी। सम्पत्ति के निश्चित चिह्न भी यहाँ मुझे देखने को मिले। मैंने खाँड के कई कारखाने देखे, बड़े-बड़े खेतों को देखा जिनमें से उसी समय गन्ने कट चुके थे। हिन्दुस्तान में यह रिवाज है कि किसान लोग आम रास्तों से जितना बन सके, उतना ही अधिक दूर रहते हैं। जिसके कारण वे मुसाफिरों और चोरों द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रकार के कष्टों से बच जाते हैं। परन्तु यहाँ पर मैंने इसके बिलकुल ही विपरीत पाया। गेहूँ और सरसों की हरी-हरी फसल के बीच में होकर पतली-पतली पगडंडियाँ मैंने देखीं। इन पगडंडियों को चीर कर जाते हुए पानी के बराह दिखाई दिये जिनमें होकर खेत की क्यारियों में पानी जाता था।"

"आबादी तो अधिक दिखाई नहीं दी, परन्तु जिन गाँवों को हमने देखा वे बाहर से देखने पर अच्छी दशा में दिखाई पड़ते थे, और मकानों की मरम्मत की ... अन्य उद्योग धन्धे से परिपूर्ण तथा ऐसा ... की मुझे राजपूताने में तो बिलकुल ...

के दक्षिणी भाग से प्रस्थान करने के पश्चात् कम्पनी के प्रदेशों में देहातों की जिस दशा का मैंने अवलोकन किया था, उससे यहाँ की अवस्था कहीं अधिक उन्नत थी, जिससे मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि या तो यहाँ का राजा एक आदर्श और पितृवत् शासक है, और या फिर अंगरेजी प्रदेशों में शासन-पद्धति किसी न किसी रूप में ऐसी है, जिससे कि देशी नरेशों के मुक़ाबिले में, अंगरेजी शासन, हिन्दुस्तान की उन्नति और सुख के लिए कुछ कम अनुकूल है।*

सतारा के प्रथम नरेश श्री प्रतापसिंह के एक उच्च चरित्र के शासक होने तथा उनके प्रदेश की सम्पन्नावस्था के विषय में स्वयं अंग्रेजी सरकार का यह प्रमाण हमारे पास है।

सतारा का राज्य

"हमारी सरकार द्वारा, समय समय पर हमें जो समाचार मिलते रहे हैं उन्हें पाकर हमें बड़ा सन्तोष हुआ है कि परमात्मा ने आपको जिस उच्चासन बिठाकर, आपको प्रजा की भलाई और रक्षा का जो कर्त्तव्य भार सौंपा है, उसे आप एक आदर्श नरेश की भांति पूरा कर रहे हैं।

"श्रीमान् जिस उच्चासन पर विराजमान हैं उसी के अनुरूप श्रीमान का व्यवहार भी रहा है, और उससे श्रीमान् के प्रदेश की समृद्धि और प्रजा के सुख, आनन्द की बराबर वृद्धि ही हो रही है। आपके इस बुद्धिमत्तापूर्ण और अनवरत उद्योग से, आपके प्रदेश और प्रजा की जो भलाई हुई है, उससे आप के

* Bishop Heber "Journal" Vol II P 361

चरित्र की उच्चता का पता चलता है और साथ ही इससे हमारे हृदय में एक अभूतपूर्व आनन्द और संतोष की भावना का संचार हुआ है। आपने अपने खर्च से, सार्वजनिक हित के अनेक कार्य्य करके जिस उदारता का परिचय दिया है, उससे हिन्दुस्तान के नरेशों और प्रजा में आप की और भी प्रशंसा हुई है। जिसके कारण आप हमारी सराहना, आदर, और प्रशंसा के भाजन बन गये हैं।

"इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने, सर्व सम्मति से आपको एक तलवार भेजने का निश्चय किया है। यह तलवार आपको बम्बई की सरकार द्वारा भेंट की जायगी। हमें आशा है कि आप हमारी इस भेंट को आपके प्रति हमारे महान आदर और श्रद्धा का चिन्ह समझ कर प्रसन्नता के साथ स्वीकार करेंगे।"

इस प्रकार जब कि एक ओर तो इस नरेश को उसके प्रदेश की समृद्धि तथा उसकी प्रजा के सुख के लिए बधाई दी जा रही थी, तो दूसरी तीन करोड़ भारतवासियों की दशा, जो लगभग एक एक सौ वर्ष तक अंग्रेजी शासनान्तर्गत रह चुके थे, एक विश्वस्त साक्षी ने इस प्रकार लिखी है।—

"इस सत्य का प्रतिवाद या खण्डन करने का साहस कभी किसी ने नहीं किया कि बङ्गाल की इतनी दुःखद और प्रतिताप्यथा है जितनी कि किसी की हो सकती है। उनके रहने की

---

*Letter of the court of Directors Par pa. A D. 1843 Ko 469 p 1368

झोंपड़ियाँ इतनी निकृष्ट हैं कि वे किसी कुत्ते के रहने के योग्य भी नहीं समझी जा सकतीं। उनके बदन चिथड़ों से ढके हुए हैं और अधिकतर लोग अविराम परिश्रम करने पर भी एक वक्त का ही भोजन पैदा कर पाते हैं। बङ्गाल की प्रजा जीवन के साधारण सुखों से भी वंचित है। हमारे इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि कोई उन किसानों को जो अपने खेतों में तीस चालीस लाख की फसल हरसाल पैदा करते हैं, वास्तविक स्थिति से परिचित होगा, तो उसे जान कर उसकी आत्मा काँप उठेगी।*

अब दो में से एक बात अवश्य है। या तो ब्रिटिश सरकार को बंगाल निवासी इस भयावनी हालत में मिले। और या फिर अंग्रेजी राज्य ने ही उन्हें इस दशा को पहुँचा दिया। अगर उनकी यह दशा पहले ही से थी तो अंग्रेजी सरकार एक शताब्दी तक क्या करती रही जिससे कि वह उन्हें इस दुरवस्था से न निकाल सकी? और अंग्रेजी राज्य में ही वे इस हीनावस्था को प्राप्त हुए तो सरकार इस परिणाम की भीषणता से अपने आप को कैसे निर्दोष साबित कर सकती है? हमने गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस को यह स्वीकार करते हुए देखा है कि उनके समय में, जिसे साठ वर्ष हो गये "बंगाल की प्रजा बड़ी शीघ्रता से घोरतम गरीबी और दुःखदावस्था को प्राप्त होती जा रही है।" हमारे पास जो कागजात हैं उनसे हमें यह पता चलता है कि गवर्नमेंट को "दुनिया में सब से अधिक धनवान सब" होना चाहिए था जैसा कि लार्ड क्लाइव ने वादा किया था। परन्तु बङ्गाल प्रदेश हमारे

---

* Marshman Friend of India, Apr1 1st 1851

हाथ में आते ही सरकारी खजाने में एक पाई भी नहीं रही।❈ अकबर से लेकर मीरजाफर के जमाने तक (सन १८३७ तक) प्रजा से प्राप्त कर की रकम तथा प्रजा पर कर लगाने की पद्धति में बहुत थोड़ा अन्तर रहा है। परन्तु उसके (मीरजाफर के) सिंहासनासीन होने के बाद ही जमीन पर लगान खूब बढ़ा दिया गया और लोगों से खसोट लेने की पद्धति पहले से कई गुना अधिक कर दी गई। कारण कि एक तो नवाब मीरजाफर को देहली के सम्राट को हरसाल एक निश्चित रक़म देनी पड़ती थी और उसे हमें भी वह रक़म देनी पड़ रही थी जिसके देने का उसने वायदा किया था। सन १७६५ से १७९० तक हमने इसके अतिरिक्त कर को वसूल करने की नीति को बराबर जारी रक्खा। इस लिए हमारे कर वसूल करने की पद्धति में बराबर प्रयोग और परिवर्तन ही होते रहे। और हम इन परिवर्तनों से अनुभव ही प्राप्त करते रहे। लोग बहुत सी रक़म अदा ही नहीं कर पाते थे। कारण कि सारा देश निर्धन और खोखला हो गया था।

अंग्रेजी राज्य की नया देन

गवर्नर लार्ड हेस्टिंगस् ने कहा था कि "हमारे शासन-काल में एक नई सन्तति पैदा हो गई है। हमारे शासना वर्गत पैदा हुई सन्तति में मुकदमेबाजी इतनी बढ़ गई है कि हमारे न्यायालय उतने मुक़दमों का न्याय करन में असमर्थ हैं। लोगों का नैतिक चरित्र भी बहुत गिर गया है। अगर हमारी शासन पद्धति

❈ Vansittart s Nar[illegible] Bengal

में यह पाया जाय कि हमने यहाँ के लोगों के नैतिक या धार्मिक बन्धनों को ढीला कर दिया है, या हमारे कुछ व्यक्तियों ने यहाँ की पुरानी संस्थाओं के प्रभाव को नष्ट कर दिया है लेकिन उनके स्थान पर जनता को पतन से रोकनेवाला कोई प्रतिबन्धक नहीं लगाया, और मानव स्वभाव के उग्रतम विकारों को खूब ढील दे दी है, तथा खानगी लोकमत या निन्दा के सम्पर्क द्वारा होनेवाले लाभ से भी लोगों को हमने वंचित कर दिया है, तो हम यह स्वीकार करने को बाध्य हैं कि हमारे क़ानूनों ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जो हम से पुकार पुकार कर कह रही है कि हमें शीघ्र ही इस भयंकर बुराई का तत्कालिक इलाज कर देना चाहिए।"❀

हमारी न्याय-व्यवस्था ने यहां के लोगों के चरित्र पर जो प्रभाव डाला उसके सम्बन्ध में यह एक गवर्नर जनरल का फैसला है। लोगों के जानमाल की रक्षा के विषय में भी इस समय वही हालत है जो अबसे पचास वर्ष पहले थी। "आजकल भी इतना अन्धेर और अव्यवस्था है कि कलकत्ते के साठ-सत्तर मील इर्द-गिर्द कोई भी सम्पत्तिवान मनुष्य रात को सोने के लिए चारपाई पर जाते समय यह विश्वास नहीं करता कि सुबह होने से पूर्व ही उसका माल-टाल उससे लूट न लिया जायगा।"

यह बात हम एक अत्यन्त विश्वसनीय प्रमाण के आधार पर कहते हैं।❀ हमारे पास इन सब प्रमाणों के होते हुए भी

❀ Lord Hastings Minu e in Parliamen a y papers 1827 p. 157

हाथ में आते ही सरकारी खजाने में एक पाई भी नहीं रही।@ अकबर से लेकर मीरजाफ़र के जमाने तक (सन १८३७ तक) प्रजा से प्राप्त कर की रकम तथा प्रजा पर कर लगाने की पद्धति में बहुत थोड़ा अन्तर रहा है। परन्तु उसके (मीरजाफ़र के) सिंहासनासीन होने के बाद ही जमीन पर लगान खूब बढ़ा दिया गया और लोगों से खसोट लेने की पद्धति पहले से कई गुना अधिक कर दी गई। कारण कि एक तो नवाब मीरजाफ़र को देहली के सम्राट को हरसाल एक निश्चित रक़म देनी पड़ती थी और उसे हम भी वह रक़म देनी पड़ रही थी जिसके देने का उसने वायदा किया था। सन १७६५ से १७९० तक हमने इसके अतिरिक्त कर को वसूल करने की नीति को बराबर जारी रक्खा। इस लिए हमारे कर वसूल करने की पद्धति में बराबर प्रयोग और परिवर्तन ही होते रहे। और हम इन परिवर्तनों से अनुभव ही प्राप्त करते रहे। लोग बहुत सी रक़म अदा ही नहीं कर पाते थे। कारण कि सारा देश निर्धन और खोखला हो गया था।

अंगरेजी राज्य की नयी देन

गवर्नर लार्ड हेस्टिंगस् ने कहा था कि "हमारे शासन-काल में एक नई सन्तति पैदा हो गई है। हमारे शासनान्तर्गत पैदा हुई सन्तति में मुकदमेबाजी इतनी बढ़ गई है कि हमारे न्यायालय उतने मुक़दमों का न्याय करने में असमर्थ हैं। लोगों का नैतिक चरित्र भी बहुत गिर गया है। अगर हमारी शासन-पद्धति

@ Vansittart's Narrative of Events in Bengal

में यह पाया जाय कि हमने यहाँ के लोगों के नैतिक या धार्मिक बन्धनों को ढीला कर दिया है, या हमारे कुछ व्यक्तियों ने यहाँ की पुरानी संस्थाओं के प्रभाव को नष्ट कर दिया है लेकिन उनके स्थान पर जनता को पतन से रोकनेवाला कोई प्रतिबन्धक नहीं लगाया, और मानव स्वभाव के अधमतम विकारों को खूब ढील दे दी है, तथा खानगी लोकमत या निन्दा के सम्पर्क द्वारा होनेवाले लाभ से भी लोगों को हमने वंचित कर दिया है, तो हम यह स्वीकार करने को बाध्य हैं कि हमारे क़ानूनों ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जो हम से पुकार पुकार कर कह रही है कि हमें शीघ्र ही इस भयंकर बुराई का तत्कालिक इलाज कर देना चाहिए।"❀

हमारी न्याय-व्यवस्था ने यहा के लोगों के चरित्र पर जो प्रभाव डाला उसके सम्बन्ध में यह एक गवर्नर जनरल का फैसला है। लोगों के जानमाल की रक्षा के विषय में भी इस समय वही हालत है जो अबसे पचास वर्ष पहले थी। आजकल भी इतना अन्धेर और अव्यवस्था है कि कलकत्ते के साठ-सत्तर मील इर्द गिर्द कोई भी सम्पत्तिवान मनुष्य रात को सोने के लिए चारपाई पर जाते समय यह विश्वास नहीं करता कि सुबह होने से पूर्व ही उसका माल-टाल उससे लूट न लिया जायगा।"

यह बात हम एक अत्यन्त विश्वसनीय प्रमाण के आधार पर कहते हैं।❀ हमारे पास इन सब प्रमाणों के होते हुए भी

❀ Lord Hastings Minu e in Parliamen ary papers 1827 p. 157

कि हमारी नियत और उद्देश पवित्र थे, गवर्नर-जनरल लार्ड बल्ड् वेन्टिक शब्दों में, हमारा शासन, कर, न्याय और पुलिस आदि सब विभागों में असफल रहा है।" और हम उन्नति की शेखी मारते हैं—भारतवर्ष को उन्नति बनाने की।

इन पृष्ठों का उद्देश यह है कि हम उन लोगों की तरफ से जो स्वयं बोल नहीं सकते, यह बता दें कि वे लोग इतने काले नहीं हैं, जितना कि हमने उन्हें चित्रित किया है, और न हम ही उतने सफेद हैं जैसा कि हम अपने को बताते हैं। उनकी गवर्नमेंट और सस्थायें भी उतनी दूषित नहीं हैं, और न हमारी ही उतनी पूर्ण हैं जैसा कि हमारा दावा है। हमने बड़े-बड़े पोथों में "भारत की उन्नति का इतिहास" जो लिखा है उसके मानी सिर्फ यही हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दुस्तान की ईसाई सरकार पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी की मुसलमान या हिन्दू सरकारों से अच्छी है। यह हमारी कोरी बहानेबाजी है। अपनी इस कोरी डींग का समर्थन अंगरेजों से पहले भारत का शासन करने वालों के चरित्र और कार्य्यों की निन्दा तथा अपने कार्य्यों की खूब बढ़ा-चढ़ा प्रशंसा करके ही हम करते हैं। परन्तु इतना करने पर भी यह संदेह तो पूर्णतया बना ही रहता है कि आया भलाई का पलड़ा वास्तव में हमारी ही ओर झुकता है या नहीं।

---

* Friend s of India 28 th August 1851

देशी नरेशों तथा अंग्रेजी शासन के विषय में कुछ सम्मतियां इस प्रकार हैं :—

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स—अपने ८ फरवरी सन् १७६४ ई० के एक पत्र में, जो बङ्गाल के लिए लिखा गया था लिखता है:—

"यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सारे झगड़े की एक बहुत बड़ी जड़ कंपनी के नौकरों तथा उनके गुमाश्ताओं का अनुचित रूप से, स्वच्छन्दता पूर्वक निजी व्यापार करना है।

"हिन्दुस्तान के आन्तरिक व्यापार के सम्बन्ध में आप के विचारों को जान कर हमारे सम्मुख अत्यन्त निर्दयतापूर्ण अत्याचार का दृश्य उपस्थित हो गया है।"

"जिस अव्यवस्था और अशान्ति को हम देख रहे हैं वह क्योंकर पैदा हुई? हमारी लूट खसोट और विलासिता से।"

लार्ड क्लाइव—के थोमास रो को लिखित पत्र से, जो उन्होंने मद्रास ता० १७ अप्रैल सन् १७६५ ई० को लिखा था।

"बङ्गाल में अंग्रेज लोग, सन्धियां भंग करने, प्रजा पर घोर अत्याचार करने और अपने को मालामाल करने के लिए एक गुट बना लेने के अपराध के अपराधी हैं।"

२६ अप्रैल सन् १७६५ को बंगाल के लिए लिखे गये कोर्ट आफ डाइरेक्टरस् के पत्र से।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लोगों को कम्पनी जैसे शासन [illegible] पर आने और प्रजा को और भारतीय [illegible] के कर्मचारियों द्वारा शासन करने, और जब भारतीय निरन्तर [illegible] न थे तो भारत के कर्मचारी भी [illegible]। उनके कर्मचारियों को इस प्रकार अत्याचारों को देखकर उनके [illegible] [illegible]? यह बुराई इतनी भयानक थी कि [illegible] महकमों में फैलने लगी। यहाँ तक कि पुलिस, अदालतें और [illegible] व्यापारी तक उसके कुप्रभाव से न बच सके। अभी तक [illegible] नहीं है, रिश्वतखोरी, जालसाज़ी, ज़ुल्म और घूस-खसोट के रूप में [illegible] अब भी मौजूद है।

१० दिसम्बर सन् १८५४ ई० का कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को लिखे गए लार्ड डलहौज़ी के पत्र से।

हमें यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कुछ लोगों के दुराचार के कारण अंग्रेज़ों का नाम बहुत बड़ा ही घृणित समझा जाने लगा है। हमारी यह दृढ़ इच्छा थी कि हम अपने शासन के स्वरूप को, जो [illegible] के लिए इतना बदनाम है और [illegible] का सारा महकमा बुरी तरह से [illegible] बना हुआ है सिंहावलोकन न करें।

२१ जनवरी सन् १८५५ के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के [illegible] से भेजे हुए पत्र से।

बनारस प्रान्त की बस्ती में जो भारतीय शासन के स्वरूप [illegible] से, हमारे नौकरों में जो अत्याचार और अ[illegible] तो हमें बहुत ही अफ़सोस हुआ। मेरे [illegible] विशेष अत्याचार नहीं हुआ होगा जिसके [illegible] शिकायतें यहां तक पहुंच कर इन्द[illegible]

—कोर्ट आफ डाइ[illegible]

"पिछले कारनामों का यदि सिंहावलोकन किया जाय तो ऐसे ऐसे रहस्य प्रकट होंगे जिनको सुनकर लोगों के दिल दहल जायँगे, अंग्रेज जाति के नाम पर कलङ्क का टीका लगेगा और अनेक बड़े बड़े और प्रसिद्ध परिवारों की इज़्ज़त धूल में मिल जायगी"। लार्ड क्लाइव

८ सितम्बर सन् १७६६ के जार्ज उल्वे को लिखे गये पत्र से।

यदि हमारी शासन पद्धति का परिणाम यह हो कि एक समस्त राष्ट्र इससे पतित हो रहा है, तो उससे अधिक अच्छा तो यही हो कि हमें हिन्दुस्तान से बिल्कुल निकाल दिया जाय। *

अगर इस आन्तरिक अशान्ति और गड़बड़ों से हम किसी प्रकार अपने को सुरक्षित भी बनाएँ और हिन्दुस्तान को निर्विघ्नता पूर्वक अपने अधीन बनाये रखने में हम समर्थ हो सकें, फिर भी मुझे तो बड़ा सन्देह है कि, देशी नरेशों के शासन-काल में यहाँ के लोगों की जैसी दशा थी हमारे शासनान्तर्गत उनकी अवस्था उससे अच्छी हो सकेगी, या नहीं ?

अत! अंग्रेजों द्वारा भारतवर्ष की विजय के परिणाम स्वरूप इस देश की उन्नति के बजाय सारे देश का पतन होगा। संसार में ऐसी किसी विजय का दूसरा उदाहरण आपको न मिलेगा जहाँ विजेताओं ने देश के निवासियों को शासन-यन्त्र से एक दम इतना दूर रक्खा हो। देशी राज्यों में चाहे कितनी ही अव्यवस्था और अशान्ति हो ? पर वहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने को ऊँचा उठा लेने के लिए मैदान खुला हुआ है। इसीसे वहाँ के लोगों में एक दूसरे से बढ़ जाने की प्रतिस्पर्धा अथक परिश्रम, साहस-वृत्ति और स्वतन्त्रता की भावना दिखाई पड़ रही है। हमारे अधीन जिस पतितावस्था और गुलामी में भारतीयों को रहना

---

* India Reform Tracts Tract V1 p 112

पड़ता है उससे देशी राज्यों के निवासी भारतीयों की हालत कहीं अच्छी है।"

सर थामस मुनरो

"भारतीय प्रजा पर मुनासिब कर लगाना तथा न्याय की उचित व्यवस्था कर देना कुछ भी नहीं है, यदि हम उसके चरित्र को उन्नत बनाने का उद्योग नहीं करते। कारण कि एक विदेशी सत्ता में तो स्वयं ही कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिनके कारण लोगों की प्रवृत्ति पतन की ही ओर झुकती जाती है और जिसके कारण उन्हें डूबने से बचाना ज़रा टेढ़ी खीर है। यह एक पुरानी कहावत है कि जो अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठता है, वह अपने आधे गुणों से भी हाथ धो बैठता है। यह बात जिस प्रकार व्यक्तियों के लिए सत्य है, उसी प्रकार जातियों के लिए भी। किसी आदमी के पास यदि कुछ भी सम्पत्ति न हो, तो उससे उसका उतना पतन नहीं होता, जितना कि एक उस विदेशी सरकार के हाथों में, जिसमें कि प्रजा का कुछ भी हाथ नहीं है, एक राष्ट्र की सम्पत्ति सौंप देने से सारी जाति का पतन होता है। जिस प्रकार एक गुलाम स्वतन्त्र मनुष्य के सम्मान वकत और विशेषाधिकार खो बैठता है, उसी प्रकार एक दास जाति भी अपने उस मान और उन विशेषाधिकारों को खो बैठती है, जो प्रत्येक जाति को उसके अधिकार के रूप में प्राप्त हैं। उसको अपने ऊपर कर लगाने का अधिकार नहीं रहता, अपने लिए वह क़ानून भी नहीं बना सकती, और देश की शासनव्यवस्था में उसका कोई हाथ नहीं रहता।"

अपनी जाति के नरेश की निरंकुश सत्ता से नहीं, बल्कि विदेशियों की गुलामी से एक जाति की राष्ट्रीय भावना और जातीय चरित्र नष्ट होते हैं। जब किसी जाति के अन्दर अपना राष्ट्रीय चरित्र बनाये रखने की क्षमता नहीं रहती, तो उसके पास से सार्वजनिक और घरेलू जीवन के उच्चतम गुणों की कुंजी भी चली जाती है। जिसके कारण घरेलू

चरित्र के साथ साथ सार्वजनिक चरित्र भी नष्ट होजाता है।' सर थामस मनरो (Indian Spectator Fabruary 9th 1899)

"देश के साधनों को समूल नष्ट कर देने के लिए यह एक ऐसी लूट-खसोट है, जिसकी पूर्ति के लिए कुछ भी नहीं किया गया। जातीय उद्योग धन्दे का नसों से यह उसका जीवन-रक्त चूस लेना है। और उसके स्थान पर कोई और दूसरा ऐसा काम नहा किया गया जिससे कि जीवन तो बना रहता।" यह मिल द्वारा लिखित "भारतवर्ष का इतिहास" नामक पुस्तक के आधार पर अ० विल्सन ने अंग्रेजी शासन से भारत की अवस्था पर जो प्रभाव पड़ा उसके विषय में लिखा है।

"हिन्दुस्थान के सुख और शान्ति के दिन तो बीत गये। किसी समय में उसके पास जो विपुल सम्पत्ति थी उसका अधिकांश भाग खींच लिया गया। लाखों भारतवासियों के हितों को मुट्ठी भर अंग्रेजों के लाभ के लिए बलिदान कर दिया गया और हमारे कुशासन ने भारत वर्ष की सारी शक्तियों को कुचल डाला। इस देश और यहा के निवासियों को हमारी शासन-पद्धति ने धीरे धीरे बिल्कुल ही कंगाल बना दिया है।"

"अंग्रेजी सरकार ने इस देश के लोगों की पोस जाने वाली लूट-खसोट की है, जिसके कारण देश और यहां के निवासी इतने दरिद्र होगये हैं कि जिसके समान संसार में कोई भी देश और जाति दरिद्र नहीं मिल सकती।"

"अंग्रेजों का मुख्य सिद्धान्त सारे भारतवासियों को हर प्रकार से अपने लाभ के लिए अपने हाथ की एक कठ-पुतली बना लेना रहा है। अगर यहा के लोगों की भलाई करना हमारा उद्देश्य होता, तो हमारा कार्य्य क्रम बिलकुल ही भिन्न होता और उसका परिणाम भी मौजूदा परिणाम के बिल्कुल ही विपरीत निकलता। मैं इस बात को बार बार दुहराता हू कि लोग हमें घृणा की दृष्टि से इस लिए नहीं देखते कि

हम विदेशी और भिन्न धर्मावलम्बी हैं। अपने प्रति उनकी ऐसी भावनायें बना देने के लिए हमें अपने ही को धन्यवाद देना चाहिए।
—१८३० में बङ्गाल सिविल सरविस के मि० फ्रेडरिक जान शोर

"जो लोग भारतवर्ष से भलीभांति परिचित हैं उन सबकी एकमत से यह राय है कि अनेक सुशासित छोटे-छोटे देशी राज्य हिन्दुस्तान की प्रजा की राजनैतिक तथा नैतिक उन्नति के लिए कहीं अधिक उपयोगी हैं। माननीय महानुभाव (मि० लग) सरकारी पक्ष का समर्थन करते हुए ऐसा समझते हैं कि अंग्रेजी प्रदेश में सब बातें अच्छी हैं और देशी नरेशों के प्रदेश में सब बातें बुरी हैं। अपने पक्ष के समर्थन में वे अवध का उदाहरण पेश कर सकते हैं, परन्तु मुझे तो सन्देह है कि अवध की स्थिति सारे भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था का एक साधारण दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित कर सकती है। अगर देशी सरकार के कुशासन के प्रमाण स्वरूप अवध का उदाहरण पेश किया जा सकता है तो उड़ीसा का अकाल, जिसकी रिपोर्ट कुछ ही दिन में प्रकाशित हो जायगी, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पेश किया जा सकता है, जो अवध की अवस्था से कहीं अधिक भयानक है। देशी सरकारों की भांति अपनी सरकार हिंसा और अनियमितता के लिए कभी भी दोषी नहीं बनी। परन्तु उसके अपने कुछ अपराध हैं, जो उद्देश की दृष्टि से तो कहीं अधिक निर्दोष हैं, परन्तु उनका परिणाम अत्यन्त भयानक है।

बड़े परिश्रम के साथ बनाई हुई हमारी अङ्करेज़ी शासन-पद्धति और देशी भद्दी सरकारों के कार्यों और उनके परिणामों की तुलना की जाय तो पता चलेगा कि लोगों के लिए देशी पद्धति कहीं अधिक लाभदायक है।"

लार्ड सैलिसबरी के पार्लियामेंट में दिये गये भाषण से।

"भारतवर्ष की कष्ट गाथा और भी बढ़ जाती है। जहाँ से इतना कर, बिना किसी सीधे मुआवजे के ढोलिया जाता है। क्योंकि हिन्दुस्तान का तो रक्त हमें चूसना ही है।"

लार्ड सैलिस्बरी

सन् १८३३ के कानून के पास होते ही गवर्नमेण्ट उसके अनुसार काम करने से बचने लगी। उन्हें रोकने और धोखा देने इन दो बातों में से हमें एक पसन्द करनी थी, अतः हमने उस मार्ग का अवलम्बन किया जो कम से कम सीधा था।—क्या हमारी जान बूझ कर और स्पष्ट रूप से की गई इतनी धोखे बाजियां उस कानून को रद्दी की टोकरी का रद्दी कागज नहीं बनातीं?——— लार्ड लिटन वाइसराय १८७८

राष्ट्र को चूसना

(स्व० दादा भाई नारोजी के इंग्लैंड में दिये गये एक भाषण से)

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्र को चूसना किसे कहते हैं। यह बिल्कुल ठीक है कि जब राज्य चलाया जायगा तो लोगों को कर देना ही पड़ेगा। परन्तु एक मनुष्य पर कर लगाने और उसका खून चूसने में बड़ा अन्तर है। आप, इंग्लैंड निवासी लोग, अब प्रति वर्ष १५ शिलिंग या कुछ अधिक कर प्रति मनुष्य देते हैं। हम, हिन्दुस्थान में तीन या चार ही शिलिंग प्रति मनुष्य प्रति वर्ष देते हैं। इससे सम्भव है कि आप हम दुनियां में सब से कम कर देने वाले मनुष्य समझें। लेकिन, बात यह नहीं है, हमारा भार आप से दूना अधिक है। आप लोग जो कर देते हैं वह कर राज्य के हाथ में जाता है, जिसे राज्य कई तरीकों से देश को वापिस कर देता है जैसे व्यापार में उन्नति करके स्वयं लोगों को लौटा कर। आपके धन में घटी नहीं होती है, वह केवल स्थान परिवर्तन करता रहता है। जो कुछ आप देते हैं। वह आप किसी न किसी रूप में फिर वापिस भी पाते हैं। पर घाट का अर्थ है

हम विदेशी और भिन्न धर्मावलम्बी हैं। अपने प्रति उनकी ऐसी भाव नायें बना देने के लिए हमें अपने ही को धन्यवाद देना चाहिए।
—१८३० में मद्रास सिविल सरविस के मि० फ्रेडरिक जान शोर

"जो लोग भारतवर्ष से भलीभांति परिचित हैं उन सबकी एकमत से यह राय है कि अनेक सुशासित छोटे-छोटे देशी राज्य हिन्दुस्तान की प्रजा की राजनैतिक तथा नैतिक उन्नति के लिए कहीं अधिक उपयोगी हैं। माननीय महानुभाव (मि० लग) सरकारी पक्ष का समर्थन करते हुए ऐसा समझते हैं कि अंग्रेजी प्रदेश में सब बातें अच्छी हैं और देशी नरेशों के प्रदेश में सब बातें बुरी हैं। अपने पक्ष के समर्थन में वे अवध का उदाहरण पेश कर सकते हैं, परन्तु मुझे तो सन्देह है कि अवध की स्थिति सारे भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था का एक साधारण दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित कर सकती है। अगर देशी सरकार के कुशासन के प्रमाण स्वरूप अवध का उदाहरण पेश किया जा सकता है तो उड़ीसा का अकाल, जिसकी रिपोर्ट कुछ ही दिन में प्रकाशित हो जायगी, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पेश किया जा सकता है, जो अवध की अवस्था से कहीं अधिक भयानक है। देशी सरकारों की भांति अंग्रेजी सरकार हिंसा और अनियमितता के लिए कभी भी दोषी नहीं बनी। परन्तु उसके अपने कुछ अपराध हैं, जो उद्देश की दृष्टि से तो कहीं अधिक निर्दोष हैं, परन्तु उनका परिणाम अत्यन्त भयानक है।

बड़े परिश्रम के साथ बनाई हुई हमारी भड़कीली शासन-पद्धति और देशी भद्दी सरकारों के कार्यों और उनके परिणामों की तुलना की जाय तो पता चलेगा कि लोगों के लिए देशी पद्धति कहीं अधिक लाभ दायक है।"

लार्ड सैलिसबरी के पार्लियामेंट में दिये गये भाषण से।

"भारतवर्ष की कष्ट गाथा और भी बढ़ जाती है। जहाँ से इतना कर, बिना किसी सीधे मुआवजे के लेलिया जाता है। क्योंकि हिन्दुस्तान का तो रक्त हमें चूसना ही है।"

लार्ड सैलिस्बरी

सन् १८३३ के कानून के पास होते ही गवर्नमेण्ट उसके अनुसार काम करने से बचने लगी। उन्हें रोकने और धोखा देने इन दो बातों में से हमें एक पसन्द करनी थी, अत हमने उस मार्ग का अवलम्बन किया जो कम से कम सीधा था।—क्या हमारी जान बूझ कर और स्पष्ट रूप से की गई इतनी धोखे बाजियां उस कानून को रद्दी की टोकरी का रद्दी कागज नहीं बनातीं ?—— लार्ड लिटन वाइसराय १७७८

राष्ट्र को चूसना

(स्व० दादा भाई नौरोजी के इंग्लैंड में दिये गये एक भाषण से)

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्र को चूसना किसे कहते हैं। यह बिलकुल ठीक है कि जब राज्य चलाया जायगा तो लोगों को कर देना ही पड़ेगा। परन्तु एक मनुष्य पर कर लगाने और उसका खून चूसने में बड़ा अन्तर है। आप, इंग्लैंड निवासी लोग, अब प्रति वर्ष १५ शिलिंग या कुछ अधिक कर प्रति मनुष्य देते हैं। हम, हिन्दुस्थान में तीन या चार ही शिलिंग प्रति मनुष्य प्रति वर्ष देते हैं। इससे सम्भव है कि आप हमें दुनियां में सब से कम कर देने वाले मनुष्य समझें। लेकिन, बात यह नहीं है, हमारा भार आप से दूना अधिक है। आप लोग जो कर देते हैं वह कर राज्य के हाथ में जाता है, जिसे राज्य कई तरीकों से देश को वापिस कर देता है जैसे व्यापार में उन्नति करके स्वयं लोगों को लौटा कर। आपके धन में घटी नहीं होती है, वह केवल स्थान परिवर्तन करता रहता है। जो कुछ आप देते हैं। वह आप किसी न किसी रूप में फिर वापिस भी पाते हैं। पर घाट का अर्थ है

उतनी शक्ति का नाश । फर्ज कीजिए कि आप प्रति वर्ष सौ करोड़ मुद्रा कर देते हैं और राज्य उसे इस प्रकार इस्तेमाल करता है कि कुछ भाग ही देश को लौटता है, और शेष देश के बाहर चला जाता है। ऐसी दशा में आप चूसे गये और आपके जीवन का कुछ भाग बाहर गया। ख्याल कीजिए कि १०० करोड़ कर में से केवल ८० करोड़ ही आपको वेतन, व्यापार और शिल्प द्वारा वापिस मिलते हैं। ऐसी दशा में आप २० करोड़ प्रति वर्ष खो देते हैं। दूसरे वर्ष आप उतने ही निर्बल हो जायँगे, और इसी प्रकार प्रति वर्ष आप निर्बल होते जावेंगे। मनुष्यों पर कर लगाने और उन्हें चूसने में यही अन्तर है। मान लीजिए कि आप पर फ्रांस के कुछ लोग राज्य करते हैं, और वे उन सौ करोड़ में से दस या बीस करोड़ प्रति वर्ष ले लेते हैं, तो यही कहा जायगा कि वे आपको चूसते हैं। राष्ट्र अपने जीवन का कुछ भाग प्रति वर्ष नष्ट करता रहेगा। भारत किस प्रकार चूसा गया ? आपके लिए मैंने फ्रांस निवासियों शासकों का अनुमान किया था। वैसे हम हिन्दुस्तानियों पर आप राज्य करते हैं। आप लोग हमारे व्यय और करों का इस प्रकार प्रबन्ध करते हैं कि हम जो सौ करोड़ मुद्राएं कर के रूप में देते हैं वे सौ की सौ हमें कभी वापिस नहीं मिलतीं। केवल ८० करोड़ के लगभग ही वापिस मिलती है। देश की आय से प्रति वर्ष २० करोड़ मुद्राएं लुटी जा रही हैं। × × क्या यहां पर कोई ऐसा आदमी निकल सकता है, जो भारी कर देते हुए इस बात में सन्तुष्ट रह कि देश के शासन में उसका कोई हाथ न रह पर हमारा यही हाल है। देश के शासन में हमारा कोई हाथ नहीं। भारत की गवर्नमेंट का सब प्रकार की आमदनी के ज़रियों पर अधिकार है और वह मनमाना व्यवहार करती है। उनकी प्रत्येक बात मान लेने और चुप्पे रहने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं है। इन १५० वर्षों से ब्रिटिश गवर्नमेंट इसी उसूल से राज्य कर रही है। परिणाम क्या हुआ ? मैं लार्ड सेलिसबरी के ही शब्द फिर उद्धृत करता हूँ, "क्योंकि

हिन्दुस्तान का रक्त चूस लिया गया है, इसलिए नश्तर उन स्थानों पर लगाना चाहिए जहाँ बहुत, पर्याप्त रक्त मौजूद हो, न कि ऐसे स्थानों में जो कि उसकी कमी के कारण जर्जर हैं।" लार्ड सेलिसबरी ने बतलाया है कि भारत की सब से बड़ी आबादी—कृषक समुदाय, रक्त की कमी के कारण निर्बल हैं। यह २५ वर्ष पूर्व का कथन है और उसके बाद इन २५ वर्षों में उनका रक्त और भी चूस लिया गया। परिणाम यह हुआ कि वे इतने चूस लिये गये हैं कि मृत्यु के मुख में पहुँच चुके। क्यों? इसलिए कि हमारे धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा यहाँ से साफ उड़ा लिया जाता है जो किसी रूप में वापिस नहीं किया जाता। यही रक्त चूसने का तरीका है। लार्ड सेलिसबरी खुद कहते हैं। हिन्दुस्तान की इतनी सारी आय बाहर भेज दी जाती है और उसके बदले में उसे कुछ नहीं दिया जाता। मैं आप से पूछता हूँ कि इन अकाल और प्लेग आदि में क्या कोई बड़ा रहस्य है? इस अनुचित राज्य शासन से भारत जितना खोखला हो गया है उतना कोई दूसरा देश कभी नहीं हुआ।

× × × ×

राज्य कर्मचारी बतलाते हैं कि हिन्दुस्तान पर उसकी ही भलाई के लिए शासन किया जाता है। वे कहते हैं कि वे करों से कोई काम नहीं उठाते। लेकिन यह बात गलत है। सच तो यह है, कि अभी तक हिन्दुस्तान पर यहाँ के निवासियों में कंगाली बढ़ाने के लिए शासन किया जा रहा है। क्या यह सदा जारी रह सकता है?

× × ×

इससे कुछ समय तक आप भले ही फलफूल सकते हैं। लेकिन एक समय वह आयेगा जब आपको इस अनुचित शासन का प्रतिफल उठाना पड़ेगा। लार्ड सेलिसबरी के कथन के जो अंश मैंने उद्धृत किये उनसे भारत की वास्तविक अवस्था का पता चलता है। यह बात नहीं है कि अंग्रेज राजनीतिज्ञों में लार्ड सेलिसबरी ने ही प्रथम बार इस बात की घोषणा

उतनी शक्ति का नाश। फर्ज कीजिए कि आप प्रति वर्ष सौ करोड़ मुद्रा कर देते हैं और राज्य उसे इस प्रकार इस्तेमाल करता है कि कुछ भाग ही देश को लौटता है, और शेष देश के बाहर चला जाता है। ऐसी दशा में आप चूस गये और आपके जीवन का कुछ भाग बाहर गया। ख्याल कीजिए कि १०० करोड़ कर में से केवल ८० करोड़ ही आपको वेतन, व्यापार और शिल्प द्वारा वापिस मिलते हैं। ऐसी दशा में आप २० करोड़ प्रति वर्ष खो देते हैं। दूसरे वर्ष आप उतने ही निर्धन हो जायेंगे, और इसी प्रकार प्रति वर्ष आप निर्धन होते जायेंगे। मनुष्यों पर कर लगाने और उन्हें चूसने में यही अन्तर है। मान लीजिए कि आप पर फ्रांस के कुछ लोग राज्य करते हैं, और वे उन सौ करोड़ में से दस या बीस करोड़ प्रति वर्ष ले लेते हैं, तो यही कहा जायगा कि वे आपको चूसते हैं। राष्ट्र अपने जीवन का कुछ भाग प्रति वर्ष नष्ट करता रहेगा। भारत किस प्रकार चूसा गया ? आपके लिए मैंने फ्रांस निवासियों शासकों का अनुमान किया था। वैसे हम हिन्दुस्तानियों पर आप राज्य करते हैं। आप लोग हमारे व्यय और करों का इस प्रकार प्रबन्ध करते हैं कि हम जो सौ करोड़ मुद्राएं कर के रूप में देते हैं वे सौ की सौ हमें कभी वापिस नहीं मिलतीं। केवल ८० करोड़ के लगभग ही वापिस मिलती हैं। देश की आय से प्रति वर्ष २० करोड़ मुद्राएं लूटी जा रही हैं। × × क्या यहां पर कोई ऐसा आदमी निकल सकता है, जो भारा कर देते हुए इस बात में सन्तुष्ट रहे कि देश के शासन में उसका कोई हाथ न रहे पर हमारा यही हाल है। देश के शासन में हमारा कोई हाथ नहीं। भारत की गवर्नमेंट का सब प्रकार की आमदनी के जरियों पर अधिकार है और वह मनमाना व्यवहार करती है। उसकी प्रत्येक बात मान लेने और उससे रहने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं है। इन १५० वर्ष से ब्रिटिश गवर्नमेंट इसी उसूल से राज्य कर रही है। परिणाम क्या हुआ ? मैं लार्ड सलिसबरी के ही शब्द फिर उद्धृत करता हूँ, "क्योंकि

हिन्दुस्तान का रक्त चूस लिया गया है, इसलिए नश्तर उन स्थानों पर लगाना चाहिए जहां बहुत, पर्याप्त रक्त तो हो, न कि ऐसे स्थानों में जो कि उसकी कमी के कारण जर्जर हैं।'' लार्ड सेलिसबरी ने बतलाया है कि भारत की सब से बड़ी आबादी—कृषक समुदाय, रक्त की कमी के कारण निर्बल हैं। यह २५ वर्ष पूर्व का कथन है और उसके बाद इन २५ वर्षों में उनका रक्त और भी चूस लिया गया। परिणाम यह हुआ कि वे इतने चूस लिये गये हैं कि मृत्यु के मुख में पहुँच चुके। क्यों? इसलिए कि हमारे धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा यहाँ से साफ उठा-लिया जाता है जो किसी रूप में वापिस नहीं किया जाता। यही रक्त चूसने का तरीका है। लार्ड सेलिसबरी खुद कहते हैं। हिन्दुस्तान की इतनी सारी आय बाहर भेज दी जाती है और उसके बदले में उसे कुछ नहीं दिया जाता। मैं आप से पूछता हूँ कि इन अकाल और प्लेग आदि में क्या कोई बड़ा रहस्य है? इस अनुचित राज्य शासन से भारत जितना खोखला हो गया है उतना कोई दूसरा देश कभी नहीं हुआ।

× × × ×

राज्य कर्मचारी बतलाते हैं कि हिन्दुस्तान पर उसकी ही भलाई के लिए शासन किया जाता है। वे कहते हैं कि वे करों से कोई लाभ नहीं उठाते। लेकिन यह बात गलत है। सच तो यह है, कि अभी तक हिन्दुस्तान पर यहां के निवासियों में कंगाली बढ़ाने के लिए शासन किया जा रहा है। क्या यह सदा जारी रह सकता है?

× × ×

इससे कुछ समय तक आप भले ही फलफूल सकते हैं। लेकिन एक समय वह आयेगा जब आपको इस अनुचित शासन का प्रतिफल उठाना पड़ेगा। लार्ड सेलिसबरी के कथन के जो अंश मैंने उद्धृत किये उनसे भारत की वास्तविक अवस्था का पता चलता है। यह बात नहीं है कि अंग्रेज राजनीतिज्ञों में लार्ड सेलिसबरी ने ही प्रथम बार इस बात की घोषणा

की है, बल्कि, सौ वर्ष से सभी विचारवान और बुद्धिमान अंग्रेज और राजनीतिज्ञ समय समय पर यही कहते रहे हैं कि भारतवर्ष बिलकुल खोखला और [illegible] हो गया है और अन्त में उसकी मृत्यु निश्चित है। ये अकाल इसी घुन लगने के कारण में आये हैं।

जब अंगरेज़ नहीं आये थे !

रही है, बल्कि, सौ वर्ष से सभी विचारवान और बुद्धिमान नीतिज्ञ समय समय पर यही कहते रहे हैं कि भारतवर्ष और ... हो गया है और अन्त में उसकी मृत्यु ... इन्हीं भूले आने के कारण में आये हैं ।

अँधेरे में उजाला

(नाटक)

टाल्स्टाय

राष्ट्र जागृति-माला
वर्ष ३, पुस्तक ५

अंधेरे में उजाला

महात्मा टाल्स्टाय के (Light Shines in Darkness)
नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य-मण्डल
अजमेर

प्रस्तावना सहित कुल पृष्ठ संख्या १६०

प्रथमावृत्ति]   १९२८   [मूल्य ।≈)

।>॥

प्रकाशक,
जीतमल लूणिया, मन्त्री
सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

हिन्दी-प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मण्डल की पुस्तकों का विषय उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिए। कितनी उत्तम और साथही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थाई ग्राहक होने के नियम, पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एक बार आप अवश्य पढ़ लीजिए।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मण्डल के ग्राहक हैं तो अपना नंबर यहाँ लिख रखिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नम्बर जरूर लिखा करें।

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर

'भैया-दूज' के उपलक्ष्य में

प्रेमल कृतज्ञता की भेंट-स्वरूप यह पुस्तिका त्याग की उस छोटी सी प्रतिमा बहिन सुशीला देवी के दुबले हाथों में समर्पित है।

शारीरिक यातनायें, सुनते हैं, भगवान् की प्रच्छन्न दूतियें हैं। वह आती हैं आत्मा को ऊँचा उठाने और उसे भगवान् के अधिक सामीप्य में लाने के लिए।

भाई की आत्मा को जागृत करके स्वस्थ और उन्नत बनाने के लिए ही तो, बहिन ने, कहीं, यह इतने बड़े अस्वास्थ्य का भार अपने ऊपर नहीं लिया है ?

तब, हे विभो, उस भोली अबोध आत्मा का यह कष्ट हम सबकी आत्माओं को स्वस्थ और उन्नत करे ! और हे स्वास्थ्यमय देव, हे दयानिधि, उस बच्ची और उसकी माँ के दुःखों को दूर कर के उन्हें स्वस्थ और सुखी करो !

दीप मालिका
सम्वत् १९८५

एक अकिञ्चन भाई
क्षेमानन्द राहत

खर्चा जो लगा है

कागज	१८०)
छपाई	१६५)
बाइंडिंग	२५)
सिलाई	१००)
	४७०)
व्यवस्था, विज्ञापन, आदि खर्च	३६०)
	८३०)

कुल प्रतियाँ २१००

लागत मूल्य प्रति कापी ।=)

<u>खर्चा जो पुस्तक पर लगाया गया</u>

प्रेस का बिल व सिलाई	४७०)
व्यवस्था विज्ञापन आदि खर्च	१८०)
	६५०)

एक प्रति का मूल्य ।-)

इस प्रकार इस पुस्तक में की प्रति -) और कुल १८०) का घटा उठाई गई है।

प्रस्तावना

ग्रन्थकार का परिचय

म० टाल्स्टाय उन्नीसवीं शताब्दि के एक जबरदस्त विचारक और लेखक हुए हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभाशालिनी लेखनी से न केवल अपने महान देश रूस में ही प्रत्युत समस्त योरुपीय भूखण्ड में एक स्वास्थ्यमय क्रान्ति की लहर फैला दी। धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों से घिरे हुए समस्त ईसाई जगत में उन्होंने एक नवीन विचार धारा बहा दी। उनके जीवनकाल में ही उनका नाम समस्त सभ्य संसार में विख्यात हो गया था और संसार भर के समान धर्मा लोग उन्हें अपना आचार्य तथा पद-प्रदर्शक मानने लगे थे।

टाल्स्टाय ने अनेकों उपन्यास, कहानियें, निबन्ध और गम्भीर विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। धर्म, समाज, विज्ञान, कला और स्त्री पुरुष-सम्बन्धपर उनके विचार अत्यन्त मार्मिक, मौलिक और प्रौढ़ हैं और संसार के विचारकों पर उनका गहरा असर पड़ा है। टाल्स्टाय की लेखनी में जबरदस्त शक्ति थी। वह जिस बात का वर्णन करते हैं उसका चित्रसा खींच देते हैं, जिस बात को समझाते हैं उसके लिए प्राय समस्त सम्भव तर्कनाओं का उपयोग करके उसे सिद्ध करते है। टाल्स्टाय के ग्रन्थों का अवलोकन करने से पता चलता है कि वह एक बहु विज्ञ विद्वान थे। जिस विषय पर वह लेखनी उठाते हैं उसमें उनकी पर्याप्त

गति है, वह केवल अपने ही विचार लिखकर सन्तुष्ट नहीं हो जाते परन्तु अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन योरोपीय विद्वानों ने सम्बन्धित विषय पर जो विचार प्रकट किये हैं उनका उल्लेख और उचित आलोचना करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसी लिए उनके तर्क-प्रधान ग्रन्थों में विस्तार का बाहुल्य है।

टाल्स्टाय ईसा के सच्चे भक्त थे, किन्तु आजकल ईसाइयत के नाम पर जो बातें प्रचलित हैं उनसे उनका गहरा विरोध था। वह चर्च के अस्तित्व को अनावश्यक और उसकी सत्ता को हानिकारी मानते थे। उनका ख्याल था कि चर्च ने ईसा का बहिष्कार किया है और ईसा के उपदेशों के मनमाने अर्थ लगा कर बिलकुल उनके विरुद्ध और विपरीत भावनाओं का लोगों में प्रचार कर रक्खा है। ईसा के पर्वत पर के उपदेश पर वह सम्पूर्ण हृदय से मुग्ध थे और मानते थे कि आध्यात्मिक कल्याण तथा सांसारिक सुख और शान्ति के लिए उन नियमों पर चलना और व्यवहार करना परमावश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अवश्य ही, महात्मा ईसा का यह उपदेश, मनुष्य मात्र के अध्ययन करने की चीज़ है। समस्त विश्व के साहित्य में उससे बढ़ कर सरल सुन्दर और ऊँची चीज़ मिलना कठिन है।

किन्तु टाल्स्टाय केवल विचारक, लेखक और प्रचारक ही नहीं थे, वास्तव में वह सन्त थे। वह विपरीत परिस्थिति से बुरी तरह जकड़े हुए होने पर भी अपने विचारों के अनुकूल आचरण करने के लिए छटपटाते थे और जिन बातों को उन्होंने आवश्यक समझा उन पर उन्होंने अमल भी किया। रूस के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित और समृद्धि-शाली सामन्त-कुल में जन्म लेने

पर भी उन्होंने अपने जीवन को बहुत ही सादा बना लिया था। उनकी प्रबल इच्छा थी कि वह अपनी विशाल सम्पत्ति किसानों को दे डालें, क्योंकि वह मानते थे कि उस जमीन पर उनका कोई अधिकार नहीं, वह तो किसानों ही की चीज है, किन्तु घर वालों ने उन्हें ऐसा करने नहीं दिया। वह मानते थे कि मनुष्य कितना ही बड़ा और विद्वान क्यों न हो उसे शारीरिक श्रम द्वारा आजीविका उपार्जन करना चाहिए और इसलिए उन्होंने स्वयं श्रम करना प्रारम्भ किया। ज्ञान न बेचने के भाव से स्वरचित पुस्तकों की आय लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया।

क्रान्तिकारी विचार रखने के कारण रूस की सरकार की क्रूर दृष्टि तो उनपर थी ही पर सामाजिक और सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों पर अमल करने की कोशिश करने के कारण वह अपने मित्रों और सगे सम्बन्धियों के भी बुरे बन गये थे। उनकी स्त्री और बच्चे उनकी बातों से सहमत न थे और उनकी 'सनकों' के कारण बहुत ही दुखी और परेशान थे। कहीं से किसी प्रकार की सहायता न मिलने और घनिष्ट आत्मियों के सतत विरोध के कारण वह अपने जीवन के महत्वपूर्ण परिवर्तनों में सफल न हो सके यह उनके अन्तिम-जीवन की बड़ी ही व्यथामय और करुण घटना है।

टाल्स्टाय का प्रारम्भिक जीवन ठीक वैसा ही न था जैसा कि अपना प्रौढ़ और अन्तिम जीवन उन्होंने बना लिया था।

यौवन धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता।
एकैक मप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम्॥

इस श्लोक में एक नित्य सत्य है। इसी यौवन, धन, सम्पत्ति और सत्ता के विष ने न जाने कितने ही होनहार नवयुवकों और युवतियों के अधखिले जीवन को विपाक्त बना कर सदा के लिए नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। युवक टाल्स्टाय भी इसकी लपेट में आ गया और कुसङ्ग में पड़ कर अपने शरीर और आत्मा पर तथा दूसरों पर उसने तरह तरह के अनाचार किये। किन्तु वह सत्कारी प्राणी था इसलिए अपने घोर पतन के समय भी उसने विवेक को बिलकुल ही न छोड़ दिया और उसी विवेक के बल पर अपने को पतन के खड्ढे से निकाल कर और पाप-पाश को छिन्न-भिन्न करके फिर संसार के सामने एक शुद्ध और मुमुक्षु जीव के रूप में अपने व्यक्तित्व को लाकर खड़ा करने में समर्थ हुआ। टाल्स्टाय का उदाहरण स्वभावजन्य दुर्बलताओं से भरे हुए मनुष्य-समाज के लिए बहुत ही स्फूर्तिदायी है। टाल्स्टाय देवता न था, फरिश्ता न था; वह मानवी दुर्बलताओं से परिपूर्ण केवल एक मनुष्य था। अमीरी और अमीरी के चारों ओर जो पाप-जाल फैला रहता है, उसका वह बेतरह शिकार हुआ, किन्तु वह उठा और उठ कर वहां पहुँचा जहाँ संसार की बड़ी से बड़ी सत्ता और विद्वत्ता भी महान प्रेम और आदर के साथ उसे सर नवाती थी। निस्सन्देह अपने जमाने का वह सब से बड़ा महापुरुष था। उसका चरित्रबल और संसार भर में फैला हुआ उसका यश इतना प्रबल था कि अत्यन्त अप्रशंसनीय समझते हुए भी रूस की बादशाही को उस पर हाथ डालने की जुर्रत न हुई।

टाल्स्टाय की आत्मा भारतीयता के बहुत अनुकूल थी। वह आत्मा की अमरता में विश्वास रखते थे। एक अमेरि

मुलाकाती भक्त ने जब उनसे आत्मा की अमरता और मृत्यु के बाद के जीवन की चर्चा करते हुए कहा "ऐसा विश्वास रखने पर मौत का सारा भय दूर हो जाता है," तो इन्होंने उत्तर दिया था— 'यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। इसके बिना तो जीवन का कोई अर्थ नहीं। किन्तु भविष्य जीवन की वास्तविकता का सच्चा सबूत आध्यात्मिक घटनाओं में नहीं बल्कि उस साक्ष्य, उस विश्वास में है जो जीवन में सदाचार के नियमों का अनुसरण करने से स्वत मनुष्य के हृदय में पैदा होता है।' उनका अंतिम वाक्य इस बात को घोषित करता है कि उनका ज्ञान और आत्मिक विश्वास हमारी भांति पुस्तकों के अध्ययन पर नहीं किन्तु स्वकीय चारित्र्य-गत अनुभूति पर अवलम्बित था।

महात्मा टाल्स्टाय ने पूर्ण परिपक्व अवस्था में विवाह किया था और उनके कई बच्चे भी थे, किन्तु स्त्री-पुरुष का कैसा सम्बन्ध रहना चाहिए इस विषय में उनके विचार कठोर और उच्च हैं और महात्मा गान्धी के विचारों से मिलते जुलते हैं। ब्रह्मचर्य और सयम—यही उनका आदर्श है। स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य धारण करके मानव समाज की सेवा करें और जब ब्रह्मचर्य-निर्वाह में अपने को असमर्थ पावें तभी विवाह का विचार करें और विवाहित जीवन को भी कठोर सयम के साथ व्यतीत करें। जो सन्तान उत्पन्न हो उसका आदर्श व्यक्तिगत सांसारिक उत्कर्ष अथवा अर्थ सचय न हो प्रत्युत मानव-समाज की सेवा करना ही वह अपना लक्ष्य बनाये। तलाक प्रथा के वह विरुद्ध हैं। किन्तु सामाजिक क्रान्ति के मतवाले कुछ लोग, आज, ईसा की ईसाईयत से दूर और पतित योरोप की देखादेखी हिन्दू-

समाज में भी इस अश्रेयस्कर प्रथा को जारी करने के इच्छुक हो रहे हैं।

टाल्स्टाय जीवन-पर्यन्त अपने आदर्शों को व्यवहार में लाने के लिए परिस्थिति से लड़ते रहे और अन्त समय में घर को छोड़ कर चल दिये। मुझे याद आता है, बहुत दिनों पहिले प्रोफ़ेसर रामदेव ने एक व्याख्यान में कहा था कि टाल्स्टाय ने एक विशिष्ट भारतीय पुस्तक में वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करने की बात देख कर घर छोड़ कर सन्यासाश्रम स्वीकार कर लिया। यह बात भारतीय आदर्श की प्रेरणा से टाल्स्टाय ने की थी अथवा घर में रह कर अपने प्राणप्रिय सिद्धान्तों में सफलता प्राप्त करना असम्भव जान कर वह संन्यस्त हो गये, यह कहना कठिन है। पर, इसमें सन्देह नहीं कि अन्तिम अवस्था में नाओं के पाले उस माई के लाल ने घर बार छोड़ कर भगवान के बनाये हुए इस विशाल प्राङ्गण में, कुहरे और पाले से भरे हुए उस रूसी प्रदेश में, प्रवेश किया और इस प्रकार अपनी आदर्शप्रियता का एक अन्तिम और जाज्वल्यमान उदाहरण संसार के झिझकने वाले पथिकों को प्रोत्साहन देने के लिए इस अनन्त रङ्गमञ्च पर ला रक्खा।

पुस्तक तथा कुछ पात्रों का परिचय

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं ऋषितुल्य टाल्स्टाय के एक नाटक का अनुवाद है। टाल्स्टाय उन लोगों में नहीं हैं जो 'कला केवल कला के लिए है' इस सिद्धान्त को मानते हैं। वह मानते हैं कि कला जीवन को मधुर और सुन्दर बनाने के लिए होनी चाहिये। उनके नाटक उपन्यास और कहानियें इसी लक्ष्य को लेकर लिखे गये हैं और यह नाटक भी उन्हीं में से एक है।

'अन्धेरे में उजाला' टाल्स्टाय की श्रेष्ठतम कृति कही जाती है। इसमें टाल्स्टाय ने अपने मनोभावों को व्यक्त किया है। यह नाटक कल्पना के आधार पर नहा लिखा है, इसमें व्यक्ति-गत जीवन की स्पष्ट छाया है और यह जीवन और किसी का नहीं स्वयं नाट्यकार का और प्रमुखत उसके परिवार का जीवन है, जो इस नाटक के कथानक में प्रस्फुटित हुआ है। इस नाटक का प्रमुख पात्र निकोलस टाल्स्टाय का प्रतिबिम्ब है और मेरी सरयान्तसब टाल्स्टाय की धर्म पत्नी का पार्ट खेल रही है।

जान कोलमैन केनवर्दी ने 'टाल्स्टाय-उनकी जीवनी और कृतियें' नामी पुस्तक में टाल्स्टाय-मिलन का जिक्र करते हुए उनकी स्त्री आदि के सम्बन्ध में लिखा है—The countess is tall carries her years most lightly is brisk vigorous and dominant. She the middleaged eldest son the two eldest daughters a younger boy and girl and the two or three visitors show plainly that the head of the house has swept far beyond the other's sphere and that they variously follow him in degree only as varying despositions lead them

अर्थात काउन्टेस का कद लम्बा है, काफी उम्र की होते हुए भी वह सजीव और फुर्तीली हैं तथा शक्तिशाली और रोबोदाब वाली हैं। वह (अर्थात काउन्टेस) अधेड़ उम्र का ज्येष्ठ पुत्र, दो बड़ी कन्यायें, एक छोटा लड़का और एक लड़की और दो या तीन अभ्यागत—यह सब स्पष्टत सिद्ध करते हैं कि घर का मालिक आगे-अन्य सब लोगों की पहुँच से बहुत आगे बढ़ गया

है और यह अपना अपनी भिन्न रुचि के अनुसार जैसा और जितना जिसके जी में आता है उतना ही उसका अनुसरण करते हैं।

प्रत्यक्षदर्शी लेखक ने इन पंक्तियों में टाल्स्टाय के गार्हस्थ्य जीवन की वास्तविक स्थिति का खाका खींच दिया है और इस नाटक के अन्दर भी हम निकोलस के परिवार का कुछ ऐसा ही चित्र देखते हैं। टाल्स्टाय ने दया करके मेरी को उतना जबरदस्त न बनाकर प्रेमल और कोमल प्रकृति का बनाया है और अपने बच्चों के ध्यान से तथा अपनी तेज मिज़ाज बहिन अलेक्ज़न्ड्रा के द्वारा बराबर बहकाये जाने से ही वह निकोलस की इच्छाओं के प्रति विरोध प्रदर्शित करने में समर्थ होती है। 'मेरी' एक ऐसी सरल प्रकृति की स्त्री है जो सब प्रकार की महत्वाकांक्षाओं से रहित है और जिसका जीवन पति पुत्र और परिवार तक ही परिमित है। वह अभिमान करने की नहीं केवल प्यार और पूजा करने की [illegible] है। मेरी अपने पति निकोलस की जब-तब उठने वाली नित नयी तरङ्गों से परेशान है। निकोलस जब सारी जाय दाद किसानों को देने के लिए ज़ोर देता है तब वह इस आशा का आश्रय लेती है 'कि उनकी पहिली तरङ्गों की भांति यह भी चली जायेगी।' किन्तु उसका यह सहारा बालू की भीति की भाँति ढह जाता है। कौन समझेगा उसकी इस असहायावस्था को कि जब निकोलस अपनी ज़िद से बाज़ नहीं आता और मेरी की साधारण विवेक बुद्धि, उसके परम्परा-गत संस्कार और उसके चारों ओर का संसार अपनी पैतृक सम्पत्ति को इस प्रकार लुटा कर अपने प्यारे बाल-बच्चों को बिलकुल भिखारी बना डालने के विचार का घोर विरोध करता है और जब निकोलस के प्रबल

युक्ति-सङ्गत तर्कों का कोई जवाब न पाकर मन ही मन उनसे प्रभावित होकर वह अपनी सखी 'शाहजादी चेरमशनन्स' से कहती है—यह तो और भी भयानक है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वह जो कुछ कहते हैं वह सब सच है।

दुःखित मेरी को ढारस देने के लिए शाहजादी कहती है—यह इस लिए कि आप उन्हें प्यार करती हैं।

थाह न आये हुए मनुष्य की भाँति मेरी उत्तर देती है—मालूम नहीं। मगर है यह बड़ी गड़बड़—और यही ईसाई धर्म है।

मेरी की आत्मा का अलबेला स्वरूप हम उस समय देखते हैं कि जब निकोलस के घर छोड़ कर जाने के समय खबर मिलते ही वह दौड़ता हुई आ घेरती है। उस सदा की तर्क विहीन निरख सीधी सादी गृहिणी में यकायक यह इतनी तर्कनाशक्ति कहाँ से फूट पड़ी? घर छोड़ कर जाने के लिए निकोलस जब द्वार पर आता है तो वहाँ मेरी को खड़ा देखकर आश्चर्य करता है—अरे तुम यहाँ कहाँ क्यों आ गई?

स्त्री-सुलभ अभिमान और अधिकार के साथ मेरी कहती है—क्यों आ गई? तुम्हें इस वक्त निठुराई से रोकने के लिए। तुम यह क्या कर रहे थे? घर क्यों छोड़े जाते हो?

खासी बहस छिड़ जाती है। आज मेरी के पैंतरे देखो। सिपाही अपने मालिक की जान बचाने के लिए जूझ रहा है। माता जलते हुए घर में से सोते हुए बच्चे को निकालने के लिए दौड़ी है।

मेरी एक जगह शराबी और दीन अलेक्जेण्डर पेट्रोविच की ओर संकेत करके कहती है—भला तुम्हारा और इसका क्या मेल है, यह तुम्हारी स्त्री से भी बढ़ कर तुम्हें प्यारा क्यों है ?

दूसरी जगह बोलती है—देखो, तुम ईसाई हो, तुम दूसरों के साथ नेकी करना चाहते हो, और तुम कहते हो कि तुम सब आदमियों को प्यार करते हो, लेकिन उस बेचारी औरत को क्यों सताते हो, जिसने सारा जन्म तुम्हारी सेवा में बिताया है ?

निकोलस इस लाञ्छन का पूरा निराकरण करने भी न पाया था कि मेरी ने दूसरा वार किया। निकोलस के घर छोड़ कर जाने से उसकी कितनी बदनामी और बेइज्जती होगी इस बात का जिक्र करते हुए मेरी कुहक उठती है—और सिर्फ बेइज्जती ही नहीं सबसे बुरी बात तो यह है कि अब तुम मुझे प्यार नहीं करते। तुम औरों को प्यार करते हो, सारी दुनिया को चाहते हो, और उस शराबी अलेक्जेण्डर पेट्रोविच तक को प्यार करते हो, बस दुनिया भर में एक मैं ही ऐसी बुरी, बद क़िस्मत और गई-गुजरी हूँ जिसे तुम प्यार करना नहीं चाहते। तुम मुझे प्यार करो या न करो मगर मैं तुम्हें अब भी चाहती हूँ और तुम्हारे बगैर जी नहीं सकती। अरे निर्मोही, तुम यह क्यों करते हो ? क्यों मुझे छोड़ते हो ?

यह वक्तृता न थी, संसार के कोमलतम काव्यों का अत्यन्त मर्मस्पर्शी सार था और तिसपर उन आँखों से आँसुओं का यह उठना कि जिन्हें जीवन भर प्यार किया हो। ग़ज़ब हो गया। इस महान तूफ़ानी बाढ़ के आगे तर्क का क्षुद्र बाँध भला कबतक ठहरेगा भाई।

बेचारा निकोलस सिटपिटा जाता है किन्तु हथियार डाले बिना ही कहता है—मगर तुम मेरे जीवन—मेरे आध्यात्मिक जीवन को समझना भी तो नहीं चाहतीं।

उत्तर बना बनाया था—मैं समझना चाहती हूँ मगर नहीं समझ पाती। मैं तो देखती हूँ कि तुम्हारे ईसाई धर्म ने तुम्हें मुझ से और बच्चों से घृणा करना सिखला दिया है।

कोई बताओ तो सही मेरी यह बात कहा से सीखी कि जब बचाव का कोई अच्छा साधन न हो तो बस बराबर आक्रमण करते रहो ?

पुरुष निकोलस ने अपनी समझ में एक बड़ी जबरदस्त और मार्के की बात कही—लोग उसकी हँसी उड़ायेंगे। कहेंगे कि बातें तो बहुत बघारता है मगर कुछ करता नहीं।

मेरी एक चतुर तर्क शास्त्री की भांति कह उठती है—तो तुम्हे डर इस बात का है कि लोग क्या कहेंगे ? सचमुच तुम इस लोकापवाद की अवहेलना करके क्या इससे ऊपर नहीं उठ सकते ?

निकोलस पूछता है—फिर भला, मैं क्या करूँ ?

मेरी समझाती है—वही करो जिसे तुम अक्सर मनुष्य का कर्तव्य बताते थे, धैर्य धारण करो और प्रेम-पूर्वक व्यवहार करो।

मेरी बोल रही थी कि इतने में नाच-पार्टी में आये हुए मेहमानों का सन्देश लाकर बानिया कहता है—माँ, ये लोग तुम्हें बुला रहे हैं।

यह तो पेन मार्के की चाल के समय शतरज के खिलाड़ी

को भोजन का बुलावा आ पहुँचा। मन ही मन झुँझला कर मेरी ने कहा—कह दो, मैं अभी नहीं आ सकती, जाओ जाओ।

और आखिर मेरी वहाँ से उठी अपनी बात मनवा कर। निकोलस जब विदा लेकर जाने ही लगा तो मेरी ने सर्व-विजयी दृढ़ता के साथ कहा—अगर तुम जाओगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी और यदि साथ न जाऊँगी तो जिस ट्रेन से तुम जाओगे उसी के नीचे कट मरूँगी। जाने दो इन सबको जहन्नुम में—मिसी और कातिया को भी। हाय, भगवन्, यह तुमने कैसी मुसीबत डाली। यह कहते कहते वह सिसक सिसक कर रो उठी।

निकोलस ने द्वार पर जाकर कहा—पेट्रोविच, तुम जाओ। मैं नहीं जाऊँगा। यह कह कर उन्होंने अपना ओवरकोट उतार डाला।

आँसुओं की विजय हुई। इतनी बुद्धि, इतनी तर्कना, इतनी आध्यात्मिकता न जाने कहाँ विलीन हो गई।

अरे इन आँसुओं ने संसार के न जाने कितने होनहार निरनायों को अपने कोमल पैरों के नीचे कुचल कर मलियामेट कर दिया। न जाने कितनी सुरभित कलिकाओं को विकसित होने से पहिले ही वृक्ष से तोड़ कर फेंक दिया।

स्त्री यदि अनुकूल हो तो स्वयं देवी बनकर मनुष्य को देवता बना सकती है, किन्तु न पूछो उसके दुर्भाग्य की बात कि जिसकी स्त्री उसका साथ नहीं देती। बड़े बड़े मनुष्य को भी ऐसी हालत में अपने को सम्भालना महादुस्तर हो उठता है।

टाल्स्टाय घर छोड़ कर चले जाते हैं किन्तु निकालस शाहज़ादे चेरमशनोव्स के हाथों गोली का शिकार होता है। यही इन दोनों के जीवन में अन्तर है।

निकोलस को इस बात का दुःख है कि उसने जहाँ जिस काम में हाथ लगाया वहीं उसे असफलता हुई किन्तु मरते समय उसे इस बात का सन्तोष है कि उसने जीवन के अर्थ को समझ लिया।

शायद उस अर्थ को चरितार्थ वह दूसरे जीवन में करेगा।

वासिली नाम का एक युवक पुरोहित है जो निकोलस के संसर्ग में आने से, धीरे धीरे उसके मत का हो जाता है। वासिली का जीवन उन असहयोगी भाइयों की याद दिलाता है जो असहयोग के तूफ़ानी ज़माने में भावुकतावश कालेज या कचहरी छोड़ कर स्वतन्त्रता के सैनिकों में आ मिले थे किन्तु जोश ठंडा होते ही अपनी क्षति पर पछताते हुए फिर अपनी अपनी जगह पर लौट गये। वासिली को पीछे हटता देखकर निकोलस को बड़ा दुःख होता है। उसे इस बात का अभिमान था कि घर के लोगों ने न सही कम से कम वासिली ने तो उसके समान सत्य को समझा है और साहसपूर्वक उसका अनुसरण किया है किन्तु उसका यह मधुर सुख स्वयं बड़े बेमौक़े टूटता है।

इस नाटक का एक और पात्र है जिसके चरित्र का उल्लेख करने की आवश्यकता है। यह है युवक बोरिस। बोरिस शाहज़ादी तोरगाशकोवस का एकमात्र पुत्र है जिसे उसने बड़ी मुसीबतें सह कर पाला है। वह निकोलस के सिद्धान्तों को पसन्द करने लगता है, और उनका अमल करने को कटिबद्ध होता है। निकोलस की

लड़की ल्यूबा का उससे प्रेम सम्बन्ध है और दोनों का विवाह होना भी एक प्रकार निश्चित हो चुका है। निकोलस टाल्स्टाय की ही तरह फौजी सेवा को घोर क्रूर हिंस्र कर्म मानता है। बोरिस भी इस बात को समझता है और इस काम से घृणा करने लगता है। लेकिन यहीं बोरिस कसौटी पर कसा जाता है और उस नवयुवक का अन्त कितना ही दुःखद क्यों न हो किन्तु प्रत्येक आत्मा के लिए यह परम सन्तोष की बात होगी कि बहादुर बोरिस उस भयङ्कर कसौटी पर पूरा उतरा।

ऐसा नियम था कि नवयुवक सामन्तों को कुछ समय के लिए सेना में भरती होकर सैनिक सेवा करना अनिवार्य था। बोरिस इसमे इन्कार करता है। वह गिरफ्तार किया जाता है। अफसर उसे डराते हैं, धमकाते हैं, समझाते हैं, पर वह दृढ़ रहता है। उसकी मा, ल्यूबा और स्वयं उनका गुरु निकोलस उससे पुनर्विचार का अनुरोध करते हैं किन्तु वह विचलित नहीं होता। बोरिस को पागल बता कर पागलखाने में भेजा जाता है। वहाँ उसे कैसी कैसी यातनायें भुगतनी पड़ती हैं। मगर हद से भयंकर बात यह होती है कि उसकी प्रेमिका यानी ल्यूबा उसे प्यार करना छोड़ देती है और दूसरे के साथ विवाह करने को तैयार हो जाती है। पता नहीं उस अभागे युवक ने इस हत्यारी घटना को किस प्रकार सहन किया। क्योंकि टाल्स्टाय ने अन्तिम अङ्क बिना पूरा किये ही इस नाटक को छोड़ दिया। इसमें सन्देह नहीं बोरिस अन्त तक दृढ़ रहता है और सम्भवतः बेचारा जेल में ही पड़ा पड़ा मर जाता है। बोरिस ही यह पवित्र और उज्ज्वल बलिदान है जो निकोलस के सिद्धान्तों की वेदी पर चढ़ाया गया।

बोरिस के जीवन पर कोई आँसू बहाये या उसे कोसे पर इसमें सन्देह नहीं कि उच्च सिद्धान्त कालिका माई की तरह खून के प्यासे होते हैं और जब तक उनको पूरा पूरा भोग नहीं मिलता तब तक वह पनपते नहीं। ईश्वर करे, बोरिस का आत्मबलिदान हमें भयभीत न करके हमारे अन्दर वह शक्ति पैदा करे कि हम भी हँसते हँसते सत्य और स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें।

Light shines in darkness का यह अनुवाद उस वक्त तैयार हुआ था जब 'भारत तिलक' के सम्पादक और प्रकाशक की हैसियत से धारा १४४ अ० के अनुसार मैं कहलूर जेल में सरकार का मेहमान था। उसी समय 'कलवार की करतूत' और 'जिन्दा लाश' नामक नाटक भी अनूदित हुए थे। यह नाटक बहुत दिनों तक मेरे पास और फिर प्रकाशकों के पास रक्खा रहा। भूमिका लिखने के लिए जब छपे हुए फार्मों को मैंने देखा तो मुझे ख्याल आया कि इस नाटक को छपने से पहिले एकबार मुझे देख जाना चाहिये था। टाल्स्टाय ने पाँचवाँ अङ्क नहीं लिखा केवल घटना-क्रम को बतलाने वाले नोट लिखकर छोड़ दिये थे। प्रकाशकों ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं उस अङ्क को लिख डालूँ किन्तु कुछ समय तथा साहस की कमी के कारण मैंने इस काम में हाथ नहीं डाला। जैसा टाल्स्टाय छोड़ गये थे वैसे ही रूप में यह नाटक हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है।

आशा है पाठकों को यह मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद प्रतीत होगा। इसमें एक आत्मा के ऊँचे उठने के उद्योग की कहानी है।

इसका पढ़ने से हीन भावों की जागृति नहीं होती और इसी लिए यह मुख्य नाटक होते हुए भी बालकों और कुमारियों के हाथ में निरसङ्कोच दिया जा सकता है।

गांधी आश्रम
हटूंडी, अजमेर

क्षेमानन्द राहत

नाटक के पात्र

निकोलस आइवनोविच सरयान्तसव

मेरी सरयान्तसव—उसकी पत्नी।

ल्यूबा—
मिसी— } उसकी कन्यायें।

कातिया—उसकी छोटी बच्ची।

स्त्यूपा—उनका पुत्र।

वानिया—छोटा पुत्र।

अलेग्जेण्डर माइकालोविच—ल्यूबा का भावी पति।

मिट्रोफ़न—वानिया का शिक्षक।

अलेक्जेण्डरा या अलीना—मेरी की बड़ी बहिन।

पीटर सेमोनोविच—उसका पति।

लिसा—उनकी लड़की।

शाहज़ादी चेरमशनोव्स—

बोरिस—उसका पुत्र।

टानिया—उसकी पुत्री।

वासिली—निकोलस के पुरोहित का नाम।

आइवन—एक किसान।

आइवन की स्त्री—

मालाशका—किसान की लड़की जो अपने छोटे भाई को गोद में खिलाती है।

पाटर—किसान।

गाँव का एक पुलिस मैन।

याया जिरैसियम—पादरी।

एक बढ़ई।

एक जनरल।

एक कर्नल।

एक मतरी।

हेड डाक्टर।

असिस्टेण्ट डाक्टर।

अस्पताल में बीमार लोग।

अलेक्ज़ेण्डर पिट्रोविच—एक गरीब शराबी आदमी।

किसान मर्द और औरतें, विद्यार्थी, महिलाएँ, नाचनेवाले युवक युवतियें, सैनिक, क्लर्क, और सरकारी अफसर।

अंधेरे में उजाला

पहला अंक

पहला दृश्य

(मेरी एक चालीस वर्ष की खूबसूरत स्त्री, उसकी बहिन अलेक्जेण्डरा, एक पैंतालीस वर्ष की बेवकूफ जिद्दी औरत और उसका पति पीटर, एक मोटासा आदमी, यह सब बैठे शराब पीते हैं ।)

अलेक्जेण्डरा—अगर तुम मेरी बहिन न होतीं, बल्कि मुझ से अपरिचित अजनबी होतीं और निकोलस तुम्हारा पति न होकर महज एक मुलाक़ाती होता तो मैं इन बातों को मौलिक और मजेदार समझती और शायद मैं उसे कुछ उत्साहित भी करती, लेकिन जब मैं देखती हूँ कि तुम्हारा पति बेवकूफों—हाँ, बिलकुल बेवकूफों का सा काम कर रहा तब मुझसे चुप नहीं रहा जाता । इसीलिए इस सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं वह प्रकट कर देता हूँ और तुम्हारे पति निकोलस से भी साफ़ साफ़ कह दूँगी । मैं किसी से डरती नहीं ।

मेरी—सच है, यहिन, तुम्हारा कहना सच है, मैं भी सब कुछ देखती हूँ लेकिन कुछ बोलती नहीं—मैं इन बातों पर अधिक ध्यान नहीं देती।

अलेक्सेंड्रा—तुम अभी तो ध्यान नहीं देती हो, लेकिन मैं कहे देती हूँ कि अगर यही हाल रहा तो तुम लोग भिखारी बन जाओगे।

पीटर—देखो तो सही! भिखारी बन जायेंगे! इतनी आमदनी होते हुए?

अलेक्सेंड्रा—हाँ, भिखारी! लेकिन मेहरबानी करके तुम हमारी बातों में दखल न दो। मर्द चाहे कुछ भी करें तुम लोगों को तो यह ठीक ही मालूम देता है।

पीटर—ओफ! मैं यह नहीं जानता। मैं तो कह रहा था

अलेक्सेंड्रा—मगर तुमको इसका जरा भी ख़याल नहीं रहता कि तुम क्या कह रहे हो, क्योंकि तुम मर्द लोग जब कोई बेवकूफी करने लगते हो तो फिर ठहरना तो आता ही नहीं। मैं तो बस इतना ही कहती हूँ कि अगर मैं तुम्हारी जगह होती तो ये बातें कभी न होने देती। इन्हें एकदम रोक देती। आख़िर इनके मानी क्या हैं? इनके औरत है, बाल-बच्चे हैं, घर-बार है लेकिन इधर तो कोई ध्यान ही नहीं। न कोई काम है और न किसी चीज़ की देख भाल है। सभी चीजें लुटाये देता है। जिसे जो मैं आया सब उठा कर दे दिया। मैं जानती हूँ और खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इसका क्या नतीजा होगा।

पीटर—(मेरी से) मगर मेरी, मुझे ज़रा बताओ तो सही यह

नई हलचल क्या है ? मैं आजाद ख्याली आम तालीम और कौंसिल बहिष्कार आदि बातों को तो समझ सकता हूँ और समाज-वाद, हड़ताल और श्रमजीवियों के प्रश्न को भी जानता हूँ लेकिन यह सब क्या है ? जरा बताओ तो सही।

मेरी—मगर कल उन्होंने आपको समझाया तो था।

पीटर—मैं मानता हूँ कि मैं नहीं समझा। बाइबिल, पर्वत पर का उपदेश, आदि की बातें कह रहे थे और कहते थे कि गिरजों की कोई आवश्यकता नहीं है। मगर फिर कोई पूजा-पाठ किस तरह करेगा ?

मेरी—हाँ, यही तो खराबी है। वह सब बातों को तो नष्ट कर देना चाहते हैं मगर उनके स्थान पर कोई नई चीज हम लोगों को नहीं देते।

पीटर—इसका आरम्भ किस तरह हुआ ?

मेरी—पारसाल से उनकी बहिन की मृत्यु के बाद ही यह सब आरंभ हुआ। वह अपनी बहिन को बहुत प्यार करते थे। उसकी मौत से उनको बड़ा धक्का लगा। वह बहुत ही गमगीन हो गये और हमेशा मौत का ही जिक्र किया करते थे। और फिर, जैसा कि आप जानते हैं, बीमार पड़ गये। जब अच्छे हुए तब तो वह बिलकुल ही बदल गये।

अलेक्जेंड्रा—मगर फिर भी फागुन के महीने में जब वह मुझ से मिलने मास्को आये थे तब तो वह अच्छे भले थे और खूब हँसी-खेल किया करते थे।

मेरी—यह तो ठीक, लेकिन फिर भी उनमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था।

पीटर—किस तरह का ?

मेरी—वह पर गिरिजों की बातों से बिलकुल लापरवाह थे और एक तरह की धुन उन्हें लगी रहती थी। वह कई दिनों तक लगातार बाइबिल पढ़ते रहते थे और रात को भी सोते न थे। वह रात को उठ कर पढ़ा करते, कुछ उद्धरण लिखते, नोट्स करते रहते और फिर उसके बाद से वह पादरियों तथा उपदेशों से मिलने जाने लगे और उनसे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप करने लगे।

अलेक्जेण्ड्रा—और क्या वे व्रत, उपवास रखते और पूजादि करते थे ?

मेरी—हमारे विवाह के समय से—यानी बीस वर्ष पहले से लेकर—उस समय तक उन्होंने न कभी व्रत उपवास आदि रक्खा और न कभी पूजापाठ किया, मगर उस समय एक बार, उन्होंने गुरु द्वारे में मंत्र लिया और उसके बाद ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि न तो किसी को मंत्र ही लेना चाहिए और न गिरजाघर ही जाना चाहिए।

अलेक्जेण्ड्रा—यही तो मैं कहती हूँ कि वह एक बात पर दृढ़ नहीं रहते।

मेरी—हाँ, एक महीना पहले वह कभी गिरजा जाने से नहीं चूकते थे और हरेक व्रत रखते थे लेकिन उसके बाद ही अचानक उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि ये सब अनावश्यक है। भला, ऐसे आदमी के साथ कोई क्या करे ?

अलेक्जेण्ड्रा—मैंने उससे बात की थी और फिर उससे बात करूँगी।

पीटर—ठीक है, मगर यह मामला इतना जरूरी नहीं है।

अलेक्जेण्डरा—जरूरी नहीं ? तुम्हारे लिए नहीं होगा, क्योंकि तुम मर्दों को तो धर्म-कर्म का कोई ख्याल ही नहीं है।

पीटर—मेरी बात तो सुनो। मैं कहता हूँ, यह कोई बात नहीं। बात यह है कि यदि वह गिरजा को अस्वीकार करते हैं तो फिर बाइबिल को किसलिए चाहते हैं।

मेरी—इस लिए कि हम लोग बाइबिल और पर्वत पर के उपदेश के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें और जो हमारे पास है वह सब दूसरों को दे डालें।

पीटर—अगर सब कुछ दे डालें तो फिर जिन्दगी किस तरह बसर करें ?

अलेक्जेण्डरा—और पर्वत पर के उपदेशों में उसे यह कहाँ मिला कि हम लोगों को नौकरों और साइसों से भी हाथ मिलाना चाहिए ? उसमें है "नम्र लोग धन्य हैं" मगर उनमें हाथ मिलाने का तो कोई जिक्र ही नहीं है।

पीटर—आज वह शहर किस लिए गये हैं ?

मेरी—इन्होंने मुझसे कहा तो नहीं लेकिन मैं जानती हूँ कि वह उन दरख्तों के मामले में गये हैं जो कुछ लोगों ने काट गिराये हैं। किसान लोग हमारे बाग से पेड़ों को काटकर ले जाते हैं।

पीटर—उस शीशम वाले बाग से।

मेरी—हा, वे लोग शायद जेल खाने भेज दिये जायँगे और उन्हें दरख्तों की कीमत देनी होगी। उनके मुक़दमे की आज पेशी है। यह बात उन्होंने मुझसे कही थी। इसीसे मुझे विश्वास है कि इसीलिए वह शहर गये हैं।

अलेक्ज़ेण्ड्रा—वह उन्हें जाकर माफ कर देगा और कल को वे आकर पार्क में से पेड़ों को काट ले जावेंगे।

मेरी—और क्या! इसका यही नतीजा होगा। अब भी तो वे हमारे आमों को तोड़ लेजाते हैं और हरे भरे अनाज के खेतों को रौंद डालते हैं। और यह हैं कि इन सब बातों को माफ कर देते हैं।

पीटर—बड़ी अजीब बात है।

अलेक्ज़ेण्ड्रा—यही तो मैं भी कहती हूँ कि ऐसा नहीं होने देना चाहिए और अगर यही सिलसिला जारी रहा तो सब बरबाद हो जायगा। मेरा तो ख्याल है कि एक मां की हैसियत से तुम्हें इन बातों को रोकने की कोशिश करनी चाहिए।

मेरी—भला बताओ तो सही, मैं कर ही क्या सकती हूँ?

अलेक्ज़ेण्ड्रा—करने को क्या है? बस उसे रोक दो। उसे कह दो कि ऐसा नहीं हो सकता। तुम बाल बच्चे वाले आदमी हो। उनके लिए यह कैसी मिसाल है?

मेरी—इसमें सन्देह नहीं कि यह कष्ट प्रद है लेकिन मैं उसे सह रही हूँ। और यह आशा लगाए बैठी हूँ कि बाकी पहले वाली तरंगों की तरह यह भी चली जायगी।

अलेक्ज़ेण्ड्रा—यह तो ठीक है लेकिन तुम जानती हो कि ईश्वर उसकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं। तुमको चाहिए कि तुम उसे यह महसूस करादो कि घर में अकेला वही नहीं है, और यह कि इस तरह गुजारा नहीं हो सकता।

मेरी—खराबी तो यही है कि अब उन्हें बच्चों का कुछ ख्याल ही नहीं रहता है। और मुझे ही सब कुछ करना पड़ता है। और बड़े बच्चों के अलावा मेरी गोद में भी एक बच्चा है। इन बच्चों—लड़के लड़कियों—की देख भाल भी करनी पड़ती है, पढ़ाने लिखाने की भी व्यवस्था करनी पड़ती है, और यह सब मुझे अकेले ही करने पड़ते हैं। पहले तो वह बच्चों से बहुत प्रेम रखते थे। और उनकी बड़ी खबरगिरी लेते थे, मगर अब तो मालूम होता है उन्हें कुछ परवाह ही नहीं है. कल मैंने उनसे कहा कि वानिया ठीक तरह से नहीं पढ़ता है और इम्तिहान में पास नहीं होगा तो वह बोले उसके लिए अच्छा तो यही है कि वह एकदम स्कूल जाना छोड़दे।

पीटर—फिर कहा जाय ?

मेरी—कहीं नहीं। यही तो बड़ी भयानक बात है। हम लोग जो करते हैं उसीको वह बुरा और गलत बताते हैं। लेकिन यह नहीं कहते कि ठीक और सही बात कौनसी है ?

पीटर—यही तो बुरी बात है।

अलेक्जेण्डरा—इसमें बुराई क्या है ? यह तो तुम लोगों का मामूल है कि सब चीजों को बुरा बताना और खुद कोई काम न करना।

मेरी—स्ट्यूपा ने विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करदी है और उसे अब किसी काम में डालना चाहिए। लेकिन उसके पिता इस बारे में कुछ बोलते ही नहीं। वह सिविल सर्विस में दाखिल होना चाहता था, लेकिन उसके पिता कहते हैं कि यह ठीक नहीं है। तब उसने फौजी विभाग में जाना चाहा, लेकिन

उन्होंने यह भी नापसन्द किया। तब लड़के ने पिता से पूछा "तब फिर मैं क्या करूँ? कहीं न जाकर हल जोतूँ?" आपने कहा—"हल क्यों नहीं जोतना चाहिए? सरकारी नौकरी से तो यह हजार दर्जे बेहतर है।" भला वह क्या करे? मेरे पास आया और सलाह पूछने लगा, और मुझे ही यह सब कुछ तय करना पड़ता है। लेकिन फिर भी सब अधिकार तो उन्हीं के हाथ में हैं।

अलेक्जेण्ड्रा—तुम्हें साफ़ साफ़ उनसे यह सब बातें कह देना चाहिए।

मेरी—मुझे यही करना होगा। उनसे यह सब कह ही देना पड़ेगा।

अलेक्जेण्ड्रा—उनसे स्पष्ट कह दो कि इस तरह गुजारा नहीं हो सकता। मैं अपना काम करती हूँ और तुम्हें अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। और इस पर अगर वह राजी न हों तो उन्हें चाहिए कि वह सब अधिकार तुम्हें सौंप दें।

मेरी—लेकिन यह तो बहुत ही अरुचिकर बात है।

अलेक्जेण्ड्रा—अगर तुम कहो तो मैं उनसे सब बातें कह दूँ।

(एक घबड़ाये हुए युवक पुरोहित का प्रवेश। उसके हाथ में एक किताब है। सब से हाथ मिलाता है।)

पुरोहित—मैं निकोलस साहब से मिलने आया हूँ। वास्तव में मैं एक किताब लौटाने आया हूँ।

मेरी—वह बाहर गये हैं, मगर अब आते ही होंगे।

अलेक्जेण्ड्रा—आप कौनसी किताब लौटाना चाहते हैं।

पुरोहित—मि० रेनान का लिखा हुआ क्राइस्ट का जीवन चरित है।

पीटर—ओ गजब ! आप लोग कैसी किताबें पढ़ते हैं ?

पुरोहित—(कुछ विचलित होता है और सिगरेट जलाता है) निकोलस साहब ने मुझे पढने के लिए यह किताब दी थी।

अलेक्जेण्डरा—(हिकारत के साथ) निकोलस ने दी ! तो क्या तुम निकोलस और मि० रेजन से सहमत हो ?

पुरोहित—जी नहीं, अगर सचमुच सहमत होता तो वास्तव में गिरजा का सेवक न रहता।

अलेक्जेण्डरा—लेकिन वास्तव में यदि आप गिरजा के वफादार सेवक हैं तो निकोलस को रास्ते पर क्यों नहीं लाते ?

पुरोहित—सची बात तो यह है कि इस विषय में हरेक आदमी अपनी जुदा राय रखता है और निकोलस साहब के विचारों में वस्तुत बहुत कुछ सचाई है। सिर्फ वह एक खास—गिरजे के—विषय में भ्रम में पड़े हुए हैं।

अलेक्जेण्डरा—(हिकारत से) निकोलस के ऐसे कौन कौन से विचार हैं जिनमें बहुत कुछ सचाई है। क्या 'पर्वत पर का उपदेश, यह आज्ञा देता है कि हम अपनी सारी जायदाद दूसरे लोगों को दे डालें और अपने कुटुम्ब के लोगों को भिखारी बना दें।

पुरोहित—वास्तव में गिरजा पारिवारिक जीवन को विहित बतलाता है और गिरजा के पूज्यपाद महतों ने परिवार के लिए आशीर्वाद भी दिया है, लेकिन उन्नतम समुन्नति का, आदर्श-मर्यादा पुरुषोत्तम का जीवन इस बात को चाहता है कि सासारिक लाभ और पार्थिव ऐश्वर्य का त्याग किया जाय।

अलेक्जेण्डरा—निस्सन्देह साधु-संतों ने तो ऐसा ही किया, किन्तु मैं

समझती हूँ कि साधारण आदमियों को साधारण रूप से ही काम करना चाहिए, जैसा कि सब नेक ईसाइयों को शोभा देता है।

पुरोहित—कोई यह नहीं कह सकता कि उसे क्या नहीं करना होगा।

अलेक्ज़ेण्डरा—आपकी शादी हो गई है ?

पुरोहित—जी हाँ।

अलेक्ज़ेण्डरा—आपके कोई बच्चे भी हैं ?

पुरोहित—दो।

अलेक्ज़ेण्डरा—तब आप सांसारिक लाभ और पार्थिव ऐश्वर्य को त्याग क्यों नहीं देते और क्यों सिगरेट पीते फिरते हैं ?

पुरोहित—यह मेरी कमज़ोरी है। सच पूछिए तो मेरी नालायकी है।

अलेक्ज़ेण्डरा—हाँ, मैं समझी। आप उसको राह पर लाने के बजाय खुद उसके विचारों का समर्थन करते हैं। लेकिन मैं कहे देती हूँ यह बात ठीक नहीं है। (दाइ का प्रवेश)

दाई—बच्चा रो रहा है। मिहरबानी करके उसे दूध पिला दीजिए।

मेरी—चलो यह चली। (उठकर जाता है)

अलेक्ज़ेण्डरा—मुझे अपनी बहिन को देखकर बड़ा दुःख होता होता है। बेचारी को कितनी परेशानी हैं। सात बालक हैं। उनमें एक अभी दूध पीता है। तिसपर यह नये नये चोंचले। मुझे तो साफ़ मालूम होता है कि उसके दिमाग़ में कुछ खलल है। (पुरोहित से) हाँ, ज़रा यह तो बतलाइए कि आप लोगों ने यह कौनसा नया मत निकाला है ?

पुरोहित—वास्तव में मुझे मालूम नहीं

अलेक्ज़ेण्डरा—अजी बातें न बनाइए। आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं क्या पूछ रही हूँ।

पुरोहित—मगर सुनिए तो

अलेक्जेण्डरा—मैं पूछती हूँ कि यह कौनसा मत जो हरेक किसान के साथ हाथ मिलाने की आज्ञा देता है और कहता है कि उनको दरख्त काट लेजाने दो, उनको शराब के लिए पैसे भी दो और अपने परिवार को त्याग दो ?

पुरोहित—यह मैं नहीं जानता

अलेक्जेण्डरा—वह कहता है कि यही ईसाई धर्म है। आप युनानी गिरजे के पुरोहित हैं और इसी लिए आपको मालूम होना चाहिए और बताना चाहिए की क्या वास्तव में ईसाई धर्म डकैती को उत्साहित करता है ?

पुरोहित—लेकिन मैं

अलेक्जेण्डरा—और नहीं तो आप पुरोहित क्यों कहलाते हैं। लम्बे बाल क्यों रखते हैं और चोगा क्यों पहिनते हैं ?

पुरोहित—लेकिन यह नहीं कहा है कि

अलेक्जेण्डरा—नहीं कहा है, बेशक। पर मैं पूछती हूँ, क्यों ? मुझसे उसने कहा था कि बाइबिल में लिखा है "जो तुमसे मांगे उसे देदो"। लेकिन इसका मतलब क्या है ?

पुरोहित—मैं तो समझता हू कि इसका मतलब बिलकुल साफ ही है।

अलेक्जेण्डरा—लेकिन मैं समझती हू कि इसका मतलब स्पष्ट नहीं है। हमें हमेशा यह सिखाया गया है कि प्रत्येक मनुष्य का स्थान ईश्वर ने नियत किया है।

पुरोहित—बेशक, लेकिन फिर भी

अलेक्जेण्डरा—ठीक है यह तो बिलकुल वैसा ही मामला है जैसा

कि मैंने सुना था। आप उसका पक्ष लेते हैं। और यह बिलकुल अनुचित है। यह मैं साफ़ आपके मुँह पर कहती हूँ। अगर कोई नौजवान स्कूल का मास्टर या कोई छोटा छोकरा उसकी हां में हां मिलाता तो यही बुरा था लेकिन आपको एक पुरोहित की हैसियत से यह ध्यान रखना चाहिए आपके ऊपर कितनी बड़ी जिम्मेवारी है।

पुरोहित—मैं कोशिश करता हू

अलेक्जेण्डरा—जब वह गिरजा नहीं जाता और जन्त्रमंत्र में विश्वास नहीं रखता तो फिर धर्म रहा कहा ? और उसको होश में लाने के बजाय उसके साथ आप भी टेनन की पुस्तकें पढ़ते हैं और बाईबिल का मनमाना अर्थ लगाते हैं।

पुरोहित—(उत्तेजित होकर) मैं उत्तर नहीं दे सकता। सच बात तो यह है कि मैं गड़बड़ा गया हूँ और अब मैं कुछ न कहूँगा।

अलेक्जेण्डरा—अगर मैं बिशप होती तो तुम लोगों को टेनन पढ़ने का और सिगरेट पीने का मजा चखाती।

पीटर—मगर, ईश्वर के लिए ठहरो। भला तुम्हें क्या हक़ है ?

अलेक्जेण्डरा—मेहरबानी करके आप मुझे आप सिखाइए मत। मुझे विश्वास है कि आप—हमारे पूज्य पुरोहित—मुझसे नाराज नहीं हैं। क्या हुआ अगर मैंने साफ़ साफ़ बातें कीं। यह तो और भी बुरा होता अगर मैं गुस्से को दिल ही में रहने देती। ठीक है न ?

पुरोहित—क्षमा कीजिएगा, यदि मैं समुचित रूप से अपने विचारों को प्रकट न कर सका होऊँ। (जामार्श, ल्यूबा और लिसा का

प्रवेश—ल्यूब मेरी की एक २० वर्ष की खूबसूरत और फुर्तीली लड़की, लिसा अलेक्जेण्डरा की लड़की। उम्र में वह ल्यूबा से कुछ बड़ी है। उनके हाथ म रुमाल है और फूल लेने के लिए छोटी छोटी डलियाँ भी लिये हुए हैं। दोनों अलेक्जेण्डरा पीटर और पुरोहित को प्रणाम करती हैं।)

ल्यूबा—माँ कहाँ हैं ?

अलेक्जेण्डरा—अभी बच्चे के पास गई है।

पीटर—देखो बहुत से अच्छे अच्छे और सुन्दर फूल लाना। आज सवेरे एक मालिन की लड़की अच्छे अच्छे सफेद फूल चुन कर लाई थी। मैं खुद भी तुम्हारे साथ चलता, मगर गर्मी बहुत है।

लिसा—चलिए चलिए पिताजी, आप भी चलिए।

अलेक्जेण्डरा—हाँ, आओ, तुम बहुत मोटे हो रहे हो।

पीटर—अच्छा, चलता हूँ, मगर पहले सिगरेट लेता आऊँ।

(जाता है)

अलेक्जेण्डरा—सब बच्चे कहाँ हैं ?

ल्यूबा—स्ट्यूपा तो साईकल पर स्टेशन गया है क्योंकि उसके मास्टर पिताजी के साथ शहर गये हैं, छोटे बच्चे गेंद खेल रहे हैं और वानिया बाहर बराम्दे में कुत्तों के साथ खेलता है।

अलेक्जेण्डरा—हाँ, तो स्ट्यूपा ने कुछ फैसला किया है ?

ल्यूबा—हाँ, वह "अश्व-रक्षकों" में भरती होने के लिए खुद ही अर्जी देने गया था। कल वह पिताजी से बहुत बिगड़ पड़ा था।

अलेक्जेण्डरा—इसमें शक नहीं कि बेचारा बड़ी मुश्किल में है। मानवी सहनशीलता की भी आखिर एक हद है। अब

वह सयाना हुआ है। रोजी का सिलसिला देखना है और उससे कहा जाता है कि हल जोतो।

ल्यूबा—पिताजी ने यह तो नहीं कहा था, उन्होंने तो कहा था

अलेक्ज़ेन्डरा—कोई हर्ज नहीं। फिर भी स्त्यूपा को अब जीवन में श्रीगणेश करना ही होगा और जिस बात को वह चाहता है उसी में आपत्ति उठाई जाती है। लेकिन वह तो यहीं आ रहा है। (पुरोहित एक तरफ हट कर, किताब खोलकर पढ़ने लगता है। स्त्यूपा का बरामदे की तरफ साइकल पर प्रवेश)

अलेक्ज़ेन्डरा—तुम्हारी उमर बहुत बड़ी है। हम लोग अभी तुम्हारी ही बातें कर रहे थे कि इतने में तुम आ गये। ल्यूबा कहती है कि कल तुम अपने पिताजी से बिगड़ पड़े थे।

स्त्यूपा—बिलकुल नहीं, कोई ऐसी बात नहीं हुई। उन्होंने अपने विचार प्रकट किये और मैंने अपने। अगर हमारे विचारों में अंतर और फेर है तो इसमें मेरा दोष नहीं है, ल्यूबा को तो आप जानती ही हैं, वह समझती तो खाक नहीं, लेकिन दखल हर बात में देती है।

अलेक्ज़ेन्डरा—अच्छा तो तुमने क्या फैसला किया है।

स्त्यूपा—पता नहीं, पिता जी ने क्या निश्चय किया। मुझे भय है कि उन्होंने अभी तक इसका निश्चय नहीं किया है लेकिन मैंने "अश्व-रक्षकों" में सम्मिलित होने का फैसला कर लिया है। हमारे घर में तो हरेक बात पर कोई न कोई खाम एतराज किया जाता है। लेकिन यह तो बिलकुल सीधीसी बात है। मेरा पढ़ना समाप्त हो गया है, इसलिए अब कुछ न कुछ काम तो करना ही होगा। फौज में भरती होना और

निम्नश्रेणी के शराबी अफसरों के साथ रहना अरुचिकर होगा। इसीलिए मैं "अश्व रक्षकों" में भरती हो रहा हूँ जहाँ मेरे कुछ दोस्त भी हैं।

अलेक्जेण्डरा—ठीक है, लेकिन तुम्हारे बाप इस बात पर राजी क्यों नहीं होते ?

स्ट्यूपा—मौसी ! उनका जिक्र करने से क्या फायदा ? उनको तो एक तरह की धुन लगी है। उनको अपनी बातों के अलावा कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। वह कहते हैं कि फौजी मुलाजमत सबसे नीच वृत्ति है। इसलिए उसमें किसी को न जाना चाहिए, और इसीलिए वे मुझे रुपया नहीं देते।

लिसा—नहीं, स्ट्यूपा ! उन्होंने यह नहीं कहा। तुम्हें याद है मैं उस वक्त वहाँ मौजूद थी। वे कहते थे कि जब जरूरत पड़े और तुम बुलाये जाओ तब लाचारी की हालत में फौजी खिदमत अन्जाम दे सकते हो। लेकिन इस तरह खुद बखुद अपनी इच्छा से भरती होना तो ठीक नहीं है।

स्ट्यूपा—लेकिन नौकरी करने मैं जाता हूँ, कुछ वह तो जाते नहीं ? वह खुद भी तो फौज में रहे थे।

लिसा—मगर उन्होंने यह तो नहीं कहा कि वह रुपया नहीं देंगे, बल्कि उन्होंने कहा था कि वह एक ऐसे काम में भाग नहीं ले सकते जो कि उनके विचारों के विरुद्ध है।

स्ट्यूपा—इसमें विचार और विश्वास का कोई काम नहीं है। कोई सेवा करना चाहता है—बस यही काफी है।

लिसा—मैंने जो कुछ सुना वह कह दिया।

स्ट्यूपा—मुझे मालूम है कि तुम हमेशा पिताजी से सहमत रहती हो।

आप जानती हैं मौसी, लिसा हर बात में पिताजी की तरफ-दारी करती है।

लिसा—जो बात सची है

अलेक्जेंड्रा—मैं जानती हूँ कि लिसा हर तरह की बेवकूफी में भाग लेने को तैयार हो जाती है। बेवकूफी तो उसे बू आती है और वह उस दूर से ही सूँघ कर पहचान लेती है।

(लाल कमीज पहने हुए एक हाथ में तार लिये वानिया का दौड़ते हुए प्रवेश। उसके पीछे कुत्ते भी आते हैं।)

वानिया—(ल्यूबा से बताओ देखें, कौन आया है ?

ल्यूबा—बताने से क्या फायदा ? लाओ तार मुझे दो।

(तार लेने को वानिया की तरफ हाथ फैलाती है; वह तार नहीं देता है।)

वानिया—मैं तुम्हें यह तार नहीं दूंगा और न यही बतलाऊँगा किसने भेजा है। हाँ, यह एक ऐसे आदमी के पास से आया है, जिससे तुम शरमाती हो।

ल्यूबा—वाहियात! किसने भेजा है ? मौसी, तार कहाँ से आया है ?

अलेक्जेंड्रा—चेरमशानोव के पास से।

ल्यूबा—ओह !

वानिया—देखो देखा, तुम शरमाती क्यों हो ?

ल्यूबा—मौसी, जरा तार पढ़ूँ ? (पढ़ता है) "हम तीनों जने डाकगाड़ी से आ रहे हैं—चेरमशानोव।" इसके मानी है शाहज़ादी माइया बोरिस और तानिया, ठीक है, बड़ी खुशी की बात है।

वानिया—अहा तुम्हें खुशी हो रही है, स्ट्यूपा, देखो तो वह कितनी शरमा रही है।

स्ट्यूपा—इतना बस है—बार-बार दिक करना ठीक नहीं।

वानिया—तुम टानिया को चाहते हो न? तुम लोगों को लाटरी डालना होगी, क्योंकि दो आदमी एक दूसरे की बहिन को नहीं ब्याह सकते।

स्ट्यूपा—चुप रहो, बको मत, कितनी बार तुम्हें मना किया है?

लिसा—यदि वे डाकगाड़ी से ही आते हैं तब तो वे थोड़ी देर में आने वाले हैं।

ल्यूबा—यह ठीक है, तब हम फूल चुनने को नहीं जा सकते।

(पीटर सिगरेट लिये हुए आता है)

ल्यूबा—मौसाजी, अब हम लोग नहीं जायगे।

पीटर—क्यों?

ल्यूबा—चेरमशनोव्स आ रहे हैं। अच्छा है, आओ हम लोग तबतक टेनिस खेलें। क्यों स्ट्यूपा तुम भी खेलोगे न?

स्ट्यूपा—हाँ, तैयार हूँ।

ल्यूबा—वानिया और मैं एक तरफ और तुम और लिसा दूसरी तरफ़—क्यों राजी हो न? अच्छा तो मैं गेंद ले आऊँ और छोकरों को भी बुला लाऊ। (जाती है)

पीटर—तो आखिर मुझे यहीं ठहरना पड़ा।

पुरोहित—(जाना चाहता है) मेरा आदाब-अर्ज है।

अलेक्जेण्डरा—नहीं पुरोहितजी, ज़रा ठहरिए, मैं अभी आप से बात करना चाहती हूँ और दूसरे निकोलस भी अब आता होगा।

पुरोहित—(बैठता है और सिगरेट जलाता है) शायद उन्हें आने में देर लगे।

अलेक्जेण्डरा—वह देखिए, कोई आ रहा है। मैं समझती हूँ निकोलस ही है।

पीटर—चेरमशनोव खानदान के लोग हैं। वहीं गालिटज़न की लड़की तो नहीं है?

अलेक्जेण्डरा—हाँ, हाँ, यह तो वही चेरमशनोव ही है जो अपना फूफी के साथ रोम में रहता था।

पीटर—ओहो! मुझे उनसे मिलकर बड़ा प्रसन्नता होगी। मैं उनसे उस समय के बाद नहीं मिला हूँ जब हम रोम में साथ साथ गज़लें गाया करते थे। वह बहुत अच्छा गाती थीं। उनके दो बच्चे भी हैं न?

अलेक्जेण्डरा—हाँ, वे दोनों बच्चे भी आ रहे हैं।

पीटर—मुझे नहीं मालूम था कि सरियन्सव खानदान के साथ उन लोगों की इतनी घनिष्ठता है।

अलेक्जेण्डरा—घनिष्ठता तो नहीं लेकिन पारसाल वे लोग बाहर परदेश में कहीं एक साथ ठहरे थे। शाहज़ादी ने ल्यूबा को अपने बेटे के लिए पसन्द किया है, वह होशियार है, जानती है, कि इतना दहेज और पद्य मिलेगा।?

पीटर—लेकिन चेरमशनोव खानदान खुद भी तो अमीर था।

अलेक्जेण्डरा—अमीर था, किसी ज़माने में। शाहज़ादा अब भी ज़िन्दा है मगर उसने सब कुछ बरबाद कर दिया है। वह शराबी है, और बिलकुल तबाह होगया है। शाहज़ादी ने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजी, अपने पति को छोड़ दिया और

इस तरह से वह थोड़ा बहुत बचा सकी है। लेकिन उसने अपने बच्चों को शिक्षा अच्छी दी है, यह तो मानना पड़ेगा। लड़की गाने में निपुण है। लड़का सुन्दर तथा होनहार है और उसने विश्वविद्यालय की शिक्षा भी समाप्त कर ली है। मगर मैं समझती हूँ कि मेरी बहुत खुश नहीं है। इस वक्त मिहमान का आना जरा कष्ट-प्रद है। यह लो निकोलस भी आगया। (निकोल्स का प्रवेश)

निकोलस—चित्त तो प्रसन्न है, अलीना (अलेक्जेण्डरा का छोटा नाम) और पीटर साहब आपका मिजाज तो मुबारक ! (पुरोहित को देखकर) ओहो ! वासिली साहब हैं।

(सब से हाथ मिलाता है।)

अलेक्जेण्डरा—इसमें अभी कुछ काफी और बची है, क्या एक प्याले में दूँ ? जरा ठंढी होगई है मगर अभी गरम हुई जाती है। (घंटी बजाती है)

निकोलस—नहीं, कोई जरूरत नहीं, मैं कुछ खा पी चुका हूँ मेरी कहाँ है ?

अलेक्जेण्डरा—बच्चे को दूध पिलाने गई है।

निकोलस—वह अच्छी तरह तो है ?

अलेक्जेण्डरा—हाँ अच्छी तरह है। तुम अपना काम कर आये ?

निकोलस—कर आया। देखो, अगर कुछ चाय या काफी बची हो तो मुझे दीजिए। (पुरोहित से) अच्छा आप पुस्तक वापस लाये हैं ? आपने उसे पढ़ लिया ? घर आते वक्त रास्ते में मैं आपके ही विषय में सोच रहा था। (एक नौकर प्रवेश करता है और सबको सलाम करता है। निकोलस उससे

हाथ मिटाता है। अलेक्ज़ेण्डरा अपनी आंख से पति को इशारा करती है।)

अलेक्ज़ेण्डरा—ज़रा इस सामवार को (केटली की तरह का तांबे का बर्तन जो चाय बनाने के काम में आता है) गरम करलो।

निकोलस—इसकी ज़रूरत नहीं। वास्तव में तो वह मुझे नहीं चाहिए, मैं जैसी है वैसी ही पिलूँगा।

(मिसी अपने पिता को देखकर गेंद खेलना छोड़ दौड़ती हुई आती है और उससे लिपट जाती है।)

मिसी—पिताजी हमारे साथ चलो।

निकोलस—(पीठ पर हाथ फेरते हुए) अभी चलता हूँ। ज़रा मैं कुछ खालूँ। तुम चलो, देखो, मैं जल्दी आऊंगा।

(मिसी का प्रस्थान) (निकोलस मेज़ के पास बैठ जाता है और चाय के साथ खाना पीता है।)

अलेक्ज़ेण्डरा—हाँ तो क्या, उन्हें सज़ा होगई?

निकोलस—हाँ, सज़ा होगई। उन्होंने खुद जुर्म इक़बाल कर लिया (पुरोहित से) मैंने समझा था कि आपको रेनन के विचारों पर पूरा यक़ीन नहीं आयगा।

अलेक्ज़ेण्डरा—और तुमने फैसले को पसंद नहीं किया?

निकोलस—(झल्लाकर) बेशक, मैं उसे पसंद नहीं करता। आपके सामने मुख्य प्रश्न ईसा के देवत्व या क्रिश्चियानिटी के इतिहास का नहीं बल्कि गिरजे का है

अलेक्ज़ेण्डरा—तो क्या हुआ, उन्होंने तो अपने जुर्म का इक़बाल किया और तुमने कहा कि नहीं यह ठीक नहीं है, तो उन्होंने सज़ा सुनाई नहीं बल्कि उसे ले लिया?

निकोलस—(पुरोहित से बोलते बोलते दृढ़ता के साथ अलेक्ज़ेण्डरा की ओर घूमकर) प्यारी आलीना, तुम इस तरह की चुटकियाँ लेकर मेरे दिलमें सूइयाँ क्यों चुभाती हो ?

अलेक्ज़ेण्डरा—बिल्कुल नहीं

निकोलस—अगर आप वास्तव में जानना चाहती हैं कि मैं किसानों को, सिर्फ उस लकड़ी के लिए जिसकी उन्हें जरूरत थी और वे काट लाये थे, फसाकर क्यों तकलीफ नहीं दे सकता

अलेक्ज़ेण्डरा—मैं समझती हूँ कि शायद उन्हें इस सामवार की भी जरूरत होगी।

निकोलस—अगर आप जानना चाहती हैं कि मैं क्यों किसानों को महज इसी बात के लिए कि उन्होंने उस जगल से दस दरख्त काट डाले जिसे लोग मेरा कहते हैं, कैद में डालने के लिए और उनकी जिंदगी बरबाद करने के लिए राजी नहीं होता

अलेक्ज़ेण्डरा—सब आदमी ऐसा कहते हैं।

पीटर—यह लो, फिर वही बहस करने लगीं।

निकोलस—यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लूँ, जैसा कि मैं नहीं कर सकता, कि वह जगल मेरा है, तो हम लोगों के पास ३००० एकड़ जमीन है जिसमें की एकड़ १५० दरख्त होंगे। सब मिलाकर ४५०००० दरख्त हुए—ठीक है न ? अब देखो कि उन्होंने उसमें से १० पेड़ काट डाले—यानी ४५ हजारवां हिस्सा। जरा सोचिए तो सही कि क्या यह

हाथ मिलाता है। अलेक्जेण्डरा अपनी आंख से पति को, इशारा करती है।)

अलेक्जेण्डरा—ज़रा इस सामवार को (केटली की तरह का तांबे का बर्तन जो चाय बनाने के काम में आता है) गरम करलो।

निकोलस—इसकी ज़रूरत नहीं। वास्तव में तो वह मुझे नहीं चाहिए, मैं जैसी है वैसी ही पिलूँगा।

(मिसी अपने पिता को देखकर गेंद खेलना छोड़ दौड़ती हुई आती है और उससे लिपट जाती है।)

मिसी—पिताजी हमारे साथ चलो।

निकोलस—(पीठ पर हाथ फरते हुए) अभी चलता हूँ। ज़रा मैं कुछ खालूँ। तुम चलो, खेलो, मैं जल्दी आऊंगा। (मिसी का प्रस्थान) (निकोलस मेज के पास बैठ जाता है और चाय के साथ खाता पीता है।)

अलेक्जेण्डरा—हाँ तो क्या, उन्हें सजा होगई?

निकोलस—हाँ, सजा होगई। उन्होंने खुद जुर्म इक़बाल कर लिया (पुरोहित से) मैंने समझा था कि आपको रेनन के विचारों पर पूरा यकीन नहीं आयगा।

अलेक्जेण्डरा—और तुमने फैसले को पसद नहीं किया?

निकोलस—(झुंझलाकर) बेशक, मैं उसे पसद नहीं करता। आपके सामने मुख्य प्रश्न ईसा के देवत्व या क्रिश्चियानिटी के इतिहास का नहीं बल्कि गिरजे का है

अलेक्जेण्डरा—तो क्या हुआ, उन्होंने तो अपने जुर्म का इक़बाल किया और तुमने कहा कि नहीं यह ठीक नहीं है, तो उन्होंने लकड़ी चुराई नहीं बल्कि उसे ले लिया?

निकोलस—(पुरोहित से बोलते बोलते दृढ़ता के साथ अलेक्जेण्डरा की ओर घूमकर) प्यारी आलीना, तुम इस तरह की चुटकियाँ लेकर मेरे दिलमें सूइयाँ क्यों चुभाती हो ?

अलेक्जेण्डरा—बिल्कुल नहीं

निकोलस—अगर आप वास्तव में जानना चाहती हैं कि मैं किसानों को, सिर्फ उस लकडी के लिए जिसकी उन्हें जरूरत थी और वे काट लाये थे, फसाकर क्यों तकलीफ नहीं दे सकता

अलेक्जेण्डरा—मैं समझती हूँ कि शायद उन्हें इस सामवार की भी जरूरत होगी।

निकोलस—अगर आप जानना चाहती हैं कि मैं क्यों किसानों को महज इसी बात के लिए कि उन्होंने उस जगल से दस दरख्त काट डाले जिसे लोग मेरा कहते हैं, कैद में डालने के लिए और उनकी जिंदगी बरबाद करने के लिए राजी नहीं होता

अलेक्जेण्डरा—सब आदमी ऐसा कहते हैं।

पीटर—यह लो, फिर वही बहस करने लगी।

निकोलस—यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लूँ, जैसा कि मैं नहीं कर सकता, कि वह जगल मेरा है, तो हम लोगों के पास ३००० एकड़ जमीन है जिसमें फी एकड १५० दरख्त होंगे। सब मिलाकर ४५०००० दरख्त हुए—ठीक है न ? अब देखो कि उन्होंने उसमें से १० पेड़ काट डाले—यानी ४५ हजारवा हिस्सा। जरा सोचिए तो सही कि क्या यह

मुनासिब है और क्या वास्तव में कोई मनुष्य इस बात को पसंद करेगा कि इस छोटी सी बात के लिए एक बेचारे ग़रीब आदमी को उसके परिवार से बेरहमी के साथ जुदा करके जेल में डाल दिया जाय ?

स्ट्यूपा—लेकिन अगर आप इस ४५ हज़ारवें हिस्से को सुरक्षित नहीं रक्खेंगे तो बाकी ४४९९० दरख्त भी शीघ्र ही काट डाले जायगे ।

निकोलस—लेकिन यह तो मैंने मौसी को जवाब देने के लिए कहा था । वास्तव में तो मेरा इस जंगल पर कोई हक़ नहीं है । ज़मीन हरेक आदमी की है या यों कहिये कि वह किसी की मिलकियत नहीं है । हमने इस जंगल के लिए कभी कोई मिहनत नहीं की ।

स्ट्यूपा—नहीं, लेकिन आपने रुपया बचाया और इस जंगल की रखवाली की जो ?

निकोलस—मैंने रुपया कहा से बचाया, और वह बचत कैसे हुई ? इसके अलावा मैंने जंगल की रखवाली नहीं की । लेकिन यह एक ऐसी बात है कि जो बहस के ज़रिये से साबित नहीं की जा सकती । उस शख्स को कि जो अपनी हरक़त से खुद शरमिंदा नहीं होता है, जब कि वह किसी दूसरे आदमी को मारता है

स्ट्यूपा—लेकिन यहां तो कोई किसी को मारता नहीं ।

निकोलस—लेकिन जिस तरह एक आ[illegible] कोई काम न करके दूसरों से [illegible] महसूस नहीं करता और कोई [illegible] साबित

नहीं कर सकता कि उसे अपनी हरकत पर लज्जित होना चाहिए, ठीक इसी तरह दूसरा आदमी इस बारे में हमारी भूल साबित करके हमें लज्जित नहीं कर सकता। और तुमने कॉलेज में जो अर्थ-शास्त्र पढ़ा है उसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि वह यह बात साबित कर दिखावे कि हम लोग जिस स्थिति में अपना जीवन व्यतीत करते हैं वह ठीक है।

स्ट्यूपा—लेकिन, इसके विपरीत, साइन्स हर तरह के वहमों को दूर करता है।

निकोलस—ख़ैर, ये सब बातें जरूरी नहीं हैं। जरूरी यह है कि अगर मैं यक़ीम (किसान का नाम) की जगह होता तो मैं भी वैसा ही करता जैसा कि उसने किया है। और अगर मुझे क़ैद हो जाती तो मैं न जाने क्या कर बैठता? और चूँकि मैं दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहता हूँ जैसा कि मैं चाहता हूँ कि वे मेरे साथ करें—इसलिए मैं उसे सजा नहीं दे सकता बल्कि जहा तक होगा बचाने की ही कोशिश करूँगा।

पीटर—मगर इस तरह से तो कोई आदमी किसी भी चीज़ को अपने पास नहीं रख सकता।

(अलेक्जेण्डरा और स्ट्यूपा दोनों एक साथ बोलते हैं)

अलेक्जेण्डरा—तब तो काम करने के बनिस्बत चोरी करना कहीं अधिक फायदेमन्द है।

मुनासिब है और क्या वास्तव में कोई मनुष्य इस बात को पसंद करेगा कि इस छोटी सी बात के लिए एक बेचारे ग़रीब आदमी को उसके परिवार से बेरहमी के साथ जुदा करके जेल में डाल दिया जाय ?

स्ट्यूपा—लेकिन अगर आप इस ४५ हजारवें हिस्से को सुरक्षित नहीं रक्खेंगे तो बाकी ४४९९० दरख्त भी शीघ्र ही काट डाले जायगे।

निकोलस—लेकिन यह तो मैंने मौसी को जवाब देने के लिए कहा था। वास्तव में तो मेरा इस जगल पर कोई हक़ नहीं है। जमीन हरेक आदमी की है या यों कहिये कि वह किसी की मिलकियत नहीं है। हमने इस जगल के लिए कभी कोई मिहनत नहीं की।

स्ट्यूपा—नहीं, लेकिन आपने रुपया बचाया और इस जंगल की रखवाली की जो ?

निकोलस—मैंने रुपया कहां से बचाया, और वह बचत कैसे हुई ? इसके अलावा मैंने जगल की रखवाली नहीं की। लेकिन यह एक ऐसी बात है कि जो बहस के जरिये से साबित नहीं की जा सकती। उस शख्स को कि जो अपनी हरकत से खुद शरमिंदा नहीं होता है, जब कि वह किसी दूसरे आदमी को मारता है

स्ट्यूपा—लेकिन यहा तो कोई किसी को मारता नहीं।

निकोलस—लेकिन जिस तरह एक आदमी खुद कोई काम न करके दूसरों से अपनी गुलामी कराने में शर्म महसूस नहीं करता और कोई शख्स इस बात को उसके सामने साबित

निकोलस—हाँ, हाँ, बच्चों का भी! और सिर्फ खाना ही नहीं बल्कि खुद अपने आपको भी। यही तो ईसा की शिक्षा है। हमें अपने पूरे बल के साथ दूसरों के लिए अपने को कुर्बान करने की—संपूर्ण आत्मत्याग करने की चेष्टा करनी चाहिए।

स्ट्यूपा—इसके मानी होते हैं मरने के लिए।

निकोलस—हाँ, यदि तुम अपने मित्रों के लिए जान तक निसार कर दो तो यह भी तुम्हारे और तुम्हारे दोस्तों के लिए अच्छा होगा। लेकिन असली बात तो यह है कि मनुष्य केवल आत्मा ही नहीं है बल्कि शरीर-स्थित आत्मा है। माँस-मज्जा का बना हुआ यह शरीर जहाँ उसे केवल अपने ही लिए जीने का अनुरोध करता है वहाँ आत्मा उससे ईश्वर के लिए तथा परोपकार-मय जीवन व्यतीत करने के लिए जीने का अनुरोध करती है। हमारा जीवन केवल पाशविक ही नहीं है बल्कि पाशविक और आत्मिक दोनों के बीच में है। सो वह जितना ही ईश्वर के निकट होगा उतना ही अधिक अच्छा है। हमारी पशु-प्रवृत्ति तो शरीर की रखवाली करने से चूकने की नहीं।

स्ट्यूपा—तब बीच ही का रास्ता क्यों पसंद करें—अधर में क्यों रहें—अगर ऐसा ही करना उचित है तो सभी चीजें देकर मर क्यों न जाना चाहिए?

निकोलस—यह तो बहुत ही अच्छा और शानदार होगा। जरा करके देखो। और फिर तो यह तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए—सभी के लिए—श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

स्त्यूपा—आप किसी की दलीलों का उत्तर तो देते ही नहीं। मैं कहता हूँ, जो आदमी रुपया बचाता है उसे अपनी बचत से लाभ उठाने का अधिकार है।

निकोलस—(हँसकर) समझ म नहीं आता कि किसकी बातका मैं जवाब दूँ। (पीटर से) हाँ, यह सच है कि किसी को कोई भी चीज अपने पास नहीं रखनी चाहिए।

अलेक्जेण्डरा—लेकिन कोई चीज अपने पास न रक्खी जाय इसका अर्थ तो यही होता है कि कोई भी आदमी कपडा लत्ता यहा तक कि रोटी का टुकड़ा भी अपने पास नहीं रख सकता—सब दूसरों को दे डालना चाहिए और तब तो मनुष्यों का जीवन भी असभव हो जायगा।

निकोलस—लेकिन जीवन-निर्वाह असभव तो यह होना चाहिए जैसी कि हम अपनी जिंदगी बसर करते हैं।

स्त्यूपा—दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ कि हम लोगों को मर जाना चाहिए और इसलिए यह शिक्षा जीवन के काम की नहीं

निकोलस—नहीं, लेकिन शिक्षा इस लिए दी जाती है कि मनुष्य जीवित रहना सीख सकें। हाँ, यह भी ठीक है कि हम को सब कुछ दे डालना चाहिए न केवल जगल ही, जिसका हम कोई उपयोग नहीं करते और शायद ही कभी जिसकी देखभाल करते हों, बल्कि अपने कपड़े और खाना तक दे डालना चाहिए।

अलेक्जेण्डरा—और बच्चों का खाना भी?

निकोलस—हाँ, हाँ, बच्चों का भी। और सिर्फ खाना ही नहीं बल्कि खुद अपने आपको भी। यही तो ईसा की शिक्षा है। हमें अपने पूरे बल के साथ दूसरों के लिए अपने को कुर्बान करने की—सपूर्ण आत्मत्याग करने की चेष्टा करनी चाहिए।

स्ट्यूपा—इसके मानी होते हैं मरने के लिए।

निकोलस—हाँ, यदि तुम अपने मित्रों के लिए जान तक निसार कर दो तो यह भी तुम्हारे और तुम्हारे दोस्तों के लिए अच्छा होगा। लेकिन असली बात तो यह है कि मनुष्य केवल आत्मा ही नहीं है बल्कि शरीर-स्थित आत्मा है। माँस-मज्जा का बना हुआ यह शरीर जहाँ उसे केवल अपने ही लिए जीने का अनुरोध करता है वहाँ आत्मा उससे ईश्वर के लिए तथा परोपकार-मय जीवन व्यतीत करने के लिए जीने का अनुरोध करती है। हमारा जीवन केवल पाशविक ही नहीं है बल्कि पाशविक और आत्मिक दोनों के बीच में है। सो वह जितना ही ईश्वर के निकट होगा उतना ही अधिक अच्छा है। हमारी पशु-प्रवृत्ति तो शरीर की रखवाली करने से चूकने की नहीं।

स्ट्यूपा—तब बीच ही का रास्ता क्यों पसद करें—अधर में क्यों रहें—अगर ऐसा ही करना उचित है तो सभी चीजें देकर मर क्यों न जाना चाहिए ?

निकोलस—यह तो बहुत ही अच्छा और शानदार होगा। जरा करके देखो। और फिर तो यह तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए—सभी के लिए—श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

अलेक्जेण्डरा—नहीं, यह ठीक नहीं। इसमें न तो स्पष्टता है, न सरलता। इसमें तो हद से ज्यादा बारीकी है।

निकोलस—इसके लिए तो अब और मैं कुछ नहीं कर सकता। और यह बात दलील देकर साबित नहीं की जा सकती। मगर जो कुछ हो अभी तो इतना ही काफी है।

स्यूपा—हाँ, बिलकुल ठीक है। मेरी भी समझ में यह बात नहीं आती है।

(जाता है)

निकोलस—(पुरोहित की तरफ घूम कर) कहिए, किताब का आप के ऊपर कैसा असर पड़ा ?

पुरोहित—(उत्तेजित होकर) किस तरह बताऊँ ? सुनिए, पुस्तक का ऐतिहासिक भाग लिखा तो ठीक ठीक गया है, पर न तो उससे पूरा यकीन ही होता और न, कहना चाहिए वह पूरी तरह विश्वसनीय ही है। क्योंकि वास्तव में उसके लिए पर्याप्त सामग्री ही नहीं मिलती। रहा ईसा के देवत्व और अदेवत्व का प्रश्न, सो यह इतिहास से कभी हल नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो एक ही अकाट्य प्रमाण है।

(इसी बातचीत के बीच में पहले तो स्त्रियां और फिर पीटर बाहर चले आते हैं।)

निकोलस—आपका मतलब गिरजा से है ?

पुरोहित—हाँ, बेशक गिरजा तो है ही, पर साथ ही विश्वसनीय लोगों के, जैसे कि साधु-सन्तों के प्रमाण भी हैं।

निकोलस—इसमें सदेह नहीं, कि अगर विश्वास करने के लिए कुछ भ्रम-रहित लोगों के समूह का अस्तित्व होता तो बहुत ही अच्छा होता—बहुत वाञ्छनीय होता। लेकिन उनकी वांछ-

नीयता से यह सिद्ध नहीं होता कि ऐसे लोग मौजूद हैं।

पुरोहित—मगर मैं समझता हूँ कि उनके अस्तित्व की वाञ्छनीयता और उपयोगिता ही उनके अस्तित्व का प्रमाण है। प्रभु ईसा मसीह ने अपने कानून को इसलिए ससार में प्रकट नहीं किया होगा कि यह नष्ट-भ्रष्ट होजाय बल्कि वास्तव में अपने सत्य की रक्षा के लिए और उसे नष्ट भ्रष्ट होने से बचाने के लिए अवश्य ही कोई न कोई सरक्षक छोड गये होंगे।

निकोलस—अच्छा, समझा, पर अब तक तो हमने सत्य को सिद्ध करने की चेष्टा की और अब सत्य के सरक्षक के अस्तित्व की सभावना को सिद्ध करने का उद्योग करते हैं, और शायद भविष्य में हमें उसकी प्रामाणिकता साबित करनी होगी।

पुरोहित—इसके लिए सच पूछिए तो श्रद्धा की जरूरत है।

निकोलस—श्रद्धा की ? हाँ, बेशक—श्रद्धा की जरूरत है। श्रद्धा के बिना काम नहीं चल सकता। मगर हमें श्रद्धा दूसरों के कहने पर नहीं, बल्कि हम खुद जो कुछ देखकर सोचे विचार कर बुद्धि के द्वारा निश्चय करें, उसमें रखनी चाहिए। हमें श्रद्धा रखनी चाहिए ईश्वर में, सत्य और अविनाशी जीवन में।

पुरोहित—बुद्धि धोखा दे सकती है, क्योंकि हरेक का दिमाग जुदा जुदा होता है।

निकोलस—(तेजी से) यही तो बड़ा भारी कुफ्र है। ईश्वर ने सत्य को जानने के लिए हमें यही तो एक पवित्र साधन दिया है, और यही एक साधन है सब को एकता के सूत्र में बाधने का और हम उसीका विश्वास नहीं करते हैं।

पुरोहित—जब कि उसके निश्चयों में ही पारस्परिक विरोध है तब हम उस पर किस तरह विश्वास करें ?

निकोलस—विरोध है कहाँ ? क्या इसमें विरोध है कि दो और दो मिलकर चार होते हैं या इसमें भी विरोध है कि हमें दूसरों के साथ वह काम नहीं करना चाहिए जिसे हम चाहते हैं कि दूसरे लोग हमारे साथ न करें ? और क्या इसमें भी किसी को विरोध है कि प्रत्येक कार्य के साथ कारण होता है ? इस प्रकार की सचाइयों को हम सब लोग मान लेते हैं क्योंकि यह हमारी बुद्धि के अनुकूल है। लेकिन यह कि खुदा कोहेनूर पर हजरते मूसा से मिला, बुद्धदेव एक सूर्य रश्मि पर चढ़कर आसमान में उड़ गये और मुहम्मद साहब आस्मान को चले गये और ईसा-मसीह भी उड़कर वहीं गये—इस किस्म की बातों पर हम लोगों में मतभेद है।

पुरोहित—नहीं, हम लोगों में मतभेद नहीं है। जो लोग सत्य धर्म में विश्वास रखते हैं वे सब सम्मिलित होकर ईसा और ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति रखते हैं।

निकोलस—नहीं, इस विषय में भी आप सब लोगों में एकता नहीं है। सब जुदा जुदा [illegible] रहे हैं [illegible] में एक बुद्ध लामा के वचनों [illegible] न करें [illegible] बातों पर क्यों विश्वास क[illegible] हो [illegible] जन्म आपके मजहब में [illegible]

"बाउट[illegible]

वानिया—मैंने देखा

(इसी बातचीत के दरम्यान नौकर लोग मेज पर चाय और काफी ला रखते हैं।)

निकोलस—आप कहते हैं कि गिरजा लोगों को परस्पर मिलाता है मगर इसके बरखिलाफ गिरजे के बदौलत तो भारी भारी झगड़े पैदा होते रहे हैं।

"कितनी बार मैंने तुम्हें एकत्र करना चाहा, जिस तरह कि एक मुर्गी अपने बच्चों को इकट्ठा करती है "।

पुरोहित—यह तो ईसा के पहले की बात है, उसने तो फिर सब को इकट्ठा किया।

निकोलस—हाँ, मैं मानता हूँ कि ईसा ने उन्हें मिलाया-एकत्र किया, मगर हम लोगों ने फूटका बीज बोया, क्योंकि हमने उनकी शिक्षा का उल्टा मतलब समझा है। ईसाने तो गिरजा-घरों का नाश किया है।

पुरोहित—क्यों, उन्होंने एक जगह यह नहीं कहा है—

"जाओ गिरजा से कहो।"

निकोलस—यहा शब्दों का प्रश्न नहीं है। इसके अलावा इन शब्दों का तात्पर्य उससे नहीं है जिसे हम लोग आज कल "गिरजा" कहते हैं। हमें तो उपदेशों का जो भाव होता है उसी की आवश्यकता है। ईसा मसीह की शिक्षा विश्व-व्यापी है, उसमें सब धर्मों का समावेश है। वह किसी एकांत अद्भुत और असगत बात को नहीं मानती है, न वह पुनरुत्थान को मानती है और न ईसा के देवत्व ही में विश्वास

पुरोहित—जब कि उसके निश्चयों में ही पारस्परिक विरोध है तब हम उस पर किस तरह विश्वास करें ?

निकोलस—विरोध है कहाँ ? क्या इसमें विरोध है कि दो और दो मिलकर चार होते हैं या इसमें भी विरोध है कि हमें दूसरों के साथ वह काम नहीं करना चाहिए जिसे हम चाहते हैं कि दूसर लोग हमारे साथ न करें ? और क्या इसमें भी किसी को विरोध है कि प्रत्येक कार्य के साथ कारण होता है ? इस प्रकार की सचाइयों को हम सब लोग मान लेते हैं क्योंकि यह हमारी बुद्धि के अनुकूल है। लेकिन यह कि खुदा कोहेनूर पर हजरते मूसा से मिला, बुद्धदेव एक सूर्य रश्मि पर चढ़कर आसमान में उड़ गये और मुहम्मद साहब आस्मान को चले गये और ईसा-मसीह भी उड़कर वहीं गये—इस किस्म की बातों पर हम लोगों में मतभेद है।

पुरोहित—नहीं, हम लोगों में मतभेद नहीं है। जो लोग सत्य धर्म में विश्वास रखते हैं वे सब सम्मिलित होकर ईसा और ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति रखते हैं।

निकोलस—नहीं, इस विषय में भी आप सब लोगों में एकता नहीं है। सब जुदा जुदा रास्ते पर जा रहे हैं। तब फिर मैं एक बुद्ध लामा के वचनों पर विश्वास न करके आपकी ही बातों पर क्यों विश्वास करूँ ? क्या सिर्फ इसीलिए मेरा जन्म आपके मजहब में हुआ है ?

(टेनिस खेलने वाले झगड़ते हैं)

"आउट !" "नाट आउट"।

वानिया—मैंने देखा

(इसी बातचीत के दरम्यान नौकर लोग मेज पर चाय और काफी ला रखते हैं ।)

निकोलस—आप कहते हैं कि गिरजा लोगों को परस्पर मिलाता है मगर इसके बरखिलाफ गिरजे के बदौलत तो भारी भारी झगड़े पैदा होते रहे हैं ।

"कितनी बार मैंने तुम्हें एकत्र करना चाहा, जिस तरह कि एक मुर्गी अपने बच्चों को इकट्ठा करती है. " ।

पुरोहित—यह तो ईसा के पहले की बात है, उसने तो फिर सब को इकट्ठा किया ।

निकोलस—हाँ, मैं मानता हूँ कि ईसा ने उन्हें मिलाया-एकत्र किया, मगर हम लोगों ने फूटका बीज बोया, क्योंकि हमने उनकी शिक्षा का उल्टा मतलब समझा है। ईसाने तो गिरजा-घरों का नाश किया है ।

पुरोहित—क्यों, उन्होंने एक जगह यह नहीं कहा है—

"जाओ गिरजा से कहो ।"

निकोलस—यहां शब्दों का प्रश्न नहीं है । इसके अलावा इन शब्दों का तात्पर्य उससे नहीं है जिसे हम लोग आज कल "गिरजा" कहते हैं । हमें तो उपदेशों का जो भाव होता है उसी की आवश्यकता है । ईसा मसीह की शिक्षा विश्व-व्यापी है, उसमें सब धर्मों का समावेश है । वह किसी एकांत अद्भुत और असगत बात को नहीं मानती है, न वह पुनरुत्थान को मानती है और न ईसा के देवत्व ही में विश्वास

रखती है। वह मत्र जनादि ऐसी बातों का प्रचार नहीं करती जो आपस में फूट डालती हों।

पुरोहित—गुस्ताखी माफ़ करें, मैं समझता हूँ कि यह तो आपने ईसा की शिक्षा का यह अर्थ अपनी तरफ़ से ही मतलब निकाला है। प्रभु मसीह की शिक्षा की बुनियाद तो वास्तव में उनके देवत्व और पुनरुत्थान पर ही है।

निकोलस—गिरजाघरों के विषय में यही तो बड़ी भयानक बात है। वे लोग इस भाव की घोषणा करते हैं कि सपूर्ण अकाट्य और अचूक सत्य उनके अधिकार में है और लोगों में अन्तर डालते हैं। देखिए अगर मैं यह कहूँ कि ईश्वर एक है और वह इस समस्त विश्व का एक मूल कारण है तो प्रत्येक पुरुष मुझ से सहमत हो सकता है और ईश्वर की यह परिभाषा हमें एकत्र करने में कारण भूत हो सकती है, लेकिन अगर मैं यह कहूँ कि ईश्वर एक है परन्तु वह ब्रह्म है या जिहोवा है या त्रिमूर्ति है तो इस प्रकार के भाव से लोगों में भेद उत्पन्न होता है। मनुष्य मेल चाहते हैं एकता चाहते हैं और इसके लिए तरह-तरह की युक्तियां भी खोज निकालते हैं किन्तु मेल और एकता का मात्र असन्दिग्ध साधन—सत्य और प्रेम कि खोज—को भूल जाते हैं। यह तो ऐसा ही है जैसे की सूरज की रोशनी को छोड़कर कोई घर की अंधेरी कोठरी में चिराग जलाकर एक दूसरे को पहचानने की चेष्टा करे।

पुरोहित—लेकिन जब तक कोई निश्चित सत्य न हो तब तक लोगों की रहनुमाई क्यों कर हो सकती है?

निकोलस—यही तो आफत है। हम में से प्रत्येक को अपनी अपनी आत्मा की रक्षा करनी है और स्वय अपने आप ईश्वर का काम करना है। लेकिन इसके बजाय हम अपना समय लगाते हैं दूसरों को बचाने और उनको सिखाने में। और हम उन्हें इस उन्नीसवीं सदी के अन्त में सिखाते क्या हैं ? हम उन्हें सिखाते हैं कि ईश्वर ने छ दिन में दुनिया पैदा की, फिर एक तूफान आया और उसने सब जीवों को एक नाव में बिठाकर उन्हें बचाया आदि और ऐसी "ओल्ड-टेस्टामेन्ट" की तरह-तरह की भयकर और वाहियात बातें सिखाई जाती हैं। इसके आगे फिर बताते हैं कि ईसा ने सब को पानी से बपतिस्मा दिया और इसके बाद पापा के निराकरण के भ्रम पूर्ण सिद्धान्तों पर यह कहकर विश्वास दिलाया जाता है कि वे मुक्ति के लिए आवश्यक हैं। और पश्चात् यह बताया जाता है कि वह उड़कर स्वर्ग में चला गया कि जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं है, और वहा जाकर वह अपने स्वर्गीय पिता के दाहिनी तरफ बैठ गया। हम लोग इसके आदी होगये हैं वरना सच पूछिए तो यह बड़ी ही भयकर बात है। एक बच्चा, जिसका दिमाग साफ और ताजा है और अच्छी शिक्षा को पाने के लिए तैयार है, पूछता है कि यह दुनिया कैसी है, इसके नियम क्या हैं ? और हम लोग सत्य और प्रेम की शिक्षा का प्रकाश डालने के स्थान पर चालाकी के साथ उसके दिमाग में तरह-तरह की वाहियात बातें भर देते हैं। क्या यह भयानक नहीं है ? यह तो एक इतना बड़ा पाप और अप-

राध है कि जितना संसार में हो सकता है। और हम और आपका गिरजा यही करते हैं। बस माफ कीजिए।

पुरोहित—यदि ईसा की शिक्षा को बुद्धि की दृष्टि से देखा जाय तब तो वह ऐसी ही है।

निकोलस—चाहे जिस दृष्टि से देखिए यह बात ऐसी ही है।

(खामोश होजाता है)

(अलेक्जेण्डरा का प्रवेश, पुरोहित जाने के लिए उठता है और नमस्कार करता है)

अलेक्जेण्डरा—नमस्कार! आप निकोलस की बातें न सुनिए वह आपको बहका देगा।

पुरोहित—धर्म पुस्तकों का मंथन कर हमें इस बात का निर्णय करना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि यह मामला निहायत जरूरी है और योंही छोड़ देने लायक नहीं है।

(जाता है)

अलेक्जेण्डरा—सचमुच निकोलस तुम्हें उस पर जरा भी रहम नहीं आता। यद्यपि वह है पुरोहित लेकिन फिर भी अभी लड़का ही है? क्या तुम उसे कोई निश्चित विचार नहीं दे सकते?

निकोलस—क्या उसे माया जाल में फंसकर सर्वथा विनिष्ट हो जाने दूं? नहीं, मैं ऐसा नहीं करूंगा। इसके अलावा वह एक नेक और इमान्दार आदमी है।

अलेक्जेण्डरा—लेकिन यदि वह तुम्हारी बातें मानले तो उसका क्या परिणाम होगा?

निकोलस—उसे मेरी बात मानने की जरूरत नहीं। लेकिन यदि वह सत्य को खोज लेगा तो यह उसके तथा और अन्य लोगों के लिए भी अच्छा होगा।

अलेक्जेण्डरा—यदि वास्तव में यह बात ठीक होती तो प्रत्येक आदमी तुम्हारी बात मानने के लिए तैयार हो जाता, लेकिन इस वक्त तो कोई भी नहीं मानता, यहां तक कि खुद तुम्हारी पत्नी ही उसपर विश्वास नहीं करती।

निकोलस—यह आपसे किसने कहा?

अलेक्जेण्डरा—अच्छा, उसे समझा कर देखो तो? वह कभी इस बात को न समझ सकेगी। और दुनिया का कोई आदमी इस बात पर यक़ीन नहीं कर सकता कि दूसरे लोगों की तो खबरगीरी रखनी चाहिए और अपने बाल-बच्चों को छोड़ देना चाहिए। जरा जाकर मेरी को यह बात समझाओ तो सही।

निकोलस—हां, हां, मेरी अवश्य इस बात को समझेगी। मगर माफ़ करना अलीना, सची बात तो यह है कि अगर दूसरे लोग अपना प्रभाव डाल कर उसे न भड़काते तो वह अवश्य इस बात को समझती, इस पर विश्वास करती और मेरे कहने के अनुसार काम भी करती।

अलेक्जेण्डरा—यक़ीम और उसके जैसे नशेबाज़ लोगों की खातिर तुम्हारे बचों को भिखारी बनाने के लिए? कभी नहीं। अगर तुम इससे नाराज हो गये हो तो मुझे माफ़ करना। मुझ से बोले बग़ैर रहा नहीं जाता।

निकोलस—नहीं, मुझे गुस्सा नहीं आया। उल्टा मुझे खुशी है कि आपने ये सब बातें कह कर मौक़ा दिया कि मैं मेरी को जीवन-सम्बन्धी अपने विचार खुलासा बतलाकर सब बातें समझा दूँ। घर आते वक्त मैं रास्ते भर यही सोचता रहा था। और अभी मैं उससे इस विषय पर बातचीत करूँगा। और आप देखेंगी कि वह मेरी बात पर राजी हो जायगी, क्योंकि वह नेक और बुद्धिमती है।

अलेक्ज़ेण्डरा—परन्तु इस विषय म मुझे तो पूरा सन्देह है।

निकोलस—लेकिन मुझे तो बिलकुल सन्देह नहीं है। आप इतना तो जानती ही हैं कि यह बात मैंने अपनी तरफ से तो निकाली ही नहीं है। यह तो वही बात है कि जिसे हम सब जानते हैं और जिसको ईसा-मसीह ने हम लोगों के वास्ते प्रकट किया है।

अलेक्ज़ेण्डरा—अच्छा, तुम समझते हो कि ईसा-मसीह ने इसी बात को प्रकट किया है, लेकिन मैं समझती हूँ कि उन्होंने कोई दूसरी ही बात प्रकट की है।

निकोलस—दूसरी बात तो हो ही नहीं सकती।

(टेनिस के मैदान से आवाजें आती हैं।)

ल्यूबा—'आउट'।

वानिया—नहीं, हमने देखा।

लिसा—मैंने देखा कि गेंद यहाँ गिरी थी।

ल्यूबा—'आउट'! 'आउट'!! 'आउट'!!!

वानिया—यह बात ठीक नहीं है।

ल्यूबा—हमेशा याद रक्खो कि किसी से यह कहना कि "यह बात ठीक नहीं है" एक उजड्डपन है।

वानिया—और जो बात ठीक नहीं है उसे ठीक बतलाना भी उजड्डपन है।

निकोलस—ज़रा ठहरिए! मेरी बात सुनिए। क्या यह सच नहीं है कि हम किसी भी क्षण मौत के मुंह में चले जा सकते हैं और तब हम उस परम पिता के सामने पेश किये जायँगे जो यह आशा रखता है कि हम उसके आज्ञानुसार वर्तेंगे।

अलेक्ज़ेण्डरा—अच्छा?

निकोलस—तो भला, इस जीवन में इसके सिवा और मैं क्या कर सकता हूँ कि मैं वही काम करूँ जो मेरी आत्मा के अंतस्तल में सर्वोत्कृष्ट विचार के रूप में रमा हुआ ईश्वर मुझ से करने को कहता है। मेरा शुभ विवेक—मेरा ईश्वर चाहता है कि मैं हरेक आदमी को एक-समान समझूँ—सब से प्रेम करूँ और सब की सेवा करूँ।

अलेक्ज़ेण्डरा—अपने बच्चों के साथ भी वैसा ही वर्ताव करना?

निकोलस—बेशक, अपने बच्चों के साथ भी, मगर अन्तरात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हुए। और इन सब के अतिरिक्त मुझे यह ध्यान रखना चाहिए कि मुझे अपने जीवन पर कोई अधिकार नहीं है—न आपको अपने जीवन पर, उस पर केवल ईश्वर ही का अधिकार है, जिसने हमें इस दुनिया में भेजा और जो चाहता है कि हम उसकी आज्ञा का पालन करें। और उसकी आज्ञा है कि

अलेक्ज़ेण्डरा—क्या तुम समझते हो कि तुम मेरी को इस बात पर राज़ी कर लोगे?

निकोलस—बेशक !

अलेक्जेण्डरा—और क्या तुम्हारा यह भी खयाल है कि वह अपने बच्चों को शिक्षा देना बन्द कर देगी और उन्हें छोड़ देगी ? कभी नहीं !

निकोलस—न केवल वही इस बात को समझ लेगी, बल्कि तुम खुद समझने लग जाओगी कि यही एक चीज है जो करनी चाहिए ।

अलेक्जेण्डरा—नहीं, कभी नहीं ।

(मेरी का प्रवेश)

निकोलस—क्यों मेरी, मेरे उठने से तुम जग तो नहीं पड़ीं ?

मेरी—नहीं मैं तो उस समय जगती थी । क्यों तुम्हारा काम हो गया ?

निकोलस—हाँ, हो गया ।

मेरी—यह क्या, तुम्हारी कॉफी तो इतनी ठण्डी हो गई है ? इसी क्यों पीते हो ? हाँ, हमें मेहमानों के स्वागत के लिए तैयार हो जाना चाहिए । तुम्हें मालूम है न कि चेरेमशेनव लोग आ रहे हैं ?

निकोलस—अगर तुम उनके आने से सन्तुष्ट हो तो मैं बड़ा प्रसन्न हूँ ।

मेरी—मैं शाहजादी और उसके बच्चों को चाहती हूँ, मगर वे लोग पारा पेयरू आ रहे हैं ।

अलेक्जेण्डरा—(उठ कर) अच्छा तुम लोग बातें कर लो तब तक मैं जाकर टेनिस देख आऊँ ।

(खामोशी, कुछ देर बाद दोनों बातचीत करते हैं)

मेरी—उनका आना बे वक्त है, क्योंकि हमें कुछ बातचीत करना है।

निकोलस—मैं अभी अलीना से कह रहा था

मेरी—क्या ?

निकोलस—नहीं, पहले तुम ही कहो।

मेरी—मैं तुम से स्ट्यूपा के सम्बन्ध में बात करना चाहती थी ? आखिर कुछ-न-कुछ तय तो करना ही पड़ेगा। वह बेचारा दुःखी और निरुत्साही होता जाता है। उसे यह मालूम ही नहीं पड़ता कि भविष्य में क्या होगा ? वह मेरे पास आया, मगर मैं क्या बताऊँ ?

निकोलस—बताने की जरूरत क्या है ? वह खुद इस बात को तय कर सकता है।

मेरी—वह अश्व-रक्षकों में बतौर एक स्वय-सेवक के भरती होना चाहता है और इसके लिए उसे तुम्हारे हस्ताक्षर की जरूरत है। इसके अलावा उसे अपने निर्वाह के लिए खर्चे की भी जरूरत होगी। मगर तुम उसे कुछ देते ही नहीं।

(कुछ उत्तेजित हो जाती है)

निकोलस—मेरी, भगवान के लिए जरा उत्तेजित मत हो। मैं न तो कुछ देता हूँ और न रोकता हूँ। अपनी इच्छा से फ़ौज में नौकरी करना, मेरी राय में, एक विवेक और विचारहीन कार्य है जो वहशी आदमी के लायक़ है, क्योंकि वह उसकी बुराई को समझ नहीं सकता और अगर कोई मनुष्य उसे किसी लोभ की दृष्टि से करना चाहता है तो फिर तो वह एक महा-घृणित व्यवहार है।

मेरी—मगर आजकल तो तुम्हें हरेक बात वहशियाना और विवेकहीन दिखाई देती है। आखिरकार उसे भी दुनिया में रहना है न ? और तुम भी तो इसी तरह रहे हो।

निकोलस—(जरा तेज होकर) हाँ, मैं इसी तरह रहा था, जब कि मैं कुछ भी समझता नहीं था और जब मुझे किसी ने नेक सलाह नहीं दी थी। मगर यह सब तय करना उसी के हाथ में है, मेरे हाथ में नहीं।

मेरी—तुम्हारे हाथ में कैसे नहीं ? तुम्हीं तो उसको खर्च नहीं देते हो।

निकोलस—जो चीज मेरी नहीं है उसे मैं नहीं दे सकता।

मेरी—तुम्हारी नहीं है ? तुम यह क्या कहते हो ?

निकोलस—दूसरों की मिहनत-मजूरी पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मुझे उसे रुपया देने के लिए पहले दूसरों से लेना पड़ेगा। मुझे ऐसा करने का कोई हक़ नहीं है और मैं यह कर नहीं सकता। जब तक जायदाद का इन्तिज़ाम मेरे हाथों में है तब तक मुझे अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार ही उसका प्रबन्ध करना चाहिए। दूसरे मैं थके-मांदे किसानों का फल फौजी रक्षकों की वाहियात मूढ़ता-पूर्ण नालायकियों पर खर्च होने के लिए नहीं दे सकता। जायदाद मेरे हाथों में से ले लो, फिर मैं उसका जिम्मेदार न रहूंगा।

मेरी—यह तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं उसे लेना नहीं चाहती और न ले ही सकती हूँ। मुझे बच्चों को खिला पिलाकर परवरिश करने के अलावा उन्हें लिखाना-पढ़ाना भी तो है। यह तो बड़ी निठुरता है।

निकोलस—प्यारी मेरी, यह बात नहीं है। जब तुम इस तरह बोलने लगीं तो मैं भी साफ़-साफ़ बातें कहने लगा। हमें इस तरह नहीं रहना चाहिए। हम लोग एक-साथ और एक-जगह रहते हैं, लेकिन फिर भी एक-दूसरे को समझ नहीं पाये। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता है मानों हम लोग जान-बूझकर-एक दूसरे को समझना नहीं चाहते।

मेरी—मैं समझना चाहती हूँ, लेकिन समझ नहीं पाती। सचमुच मैंने तुम्हें बिलकुल ही नहीं पहचाना है। आज-कल तुम्हें न जाने क्या हो गया है ?

निकोलस—अच्छा तो जरूर कोशिश करके समझो। लेकिन इसके लिए यह वक्त ठीक नहीं है। ईश्वर जाने, हम लोगों को कब ठीक मौक़ा मिलेगा। तुम्हें मुझको समझने की जरूरत नहीं। तुम खुद अपने को ही समझ लो। और सोचो कि तुम्हारे जीवन का अर्थ क्या है ? ईश्वर ने तुमें पैदा क्यों किया है ? बिना इस बात के जाने कि हम लोग जी किस लिए रहे हैं, इस तरह हम अपना जीवन नहीं बिता सकते ?

मेरी—हम लोग इसी तरह जीवन व्यतीत कर रहे थे और बड़े आराम से थे, (झिझलाहट का भाव देखकर) अच्छी बात है, अच्छी बात है, कहिए मैं सुनती हू।

निकोलस—बेशक, मैं भी इसी तरह जीवन व्यतीत कर रहा था, बिना इसका ख्याल किये कि मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? मगर एक वक्त ऐसा आया जब कि मैं अपने जीवन और अपनी परिस्थिति को देखकर दङ्ग रह गया। ज़रा सोचो

तो सही, हम लोग दूसरों की मिहनत पर अपना निर्वाह करते हैं। दूसरों से अपने लिए काम करवाते हैं, दुनिया में रहकर बच्चे पैदा करते हैं और उनको भी इसी तरह का जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। बुढ़ापा आयगा और मौत का सामना होगा, तब मन में विचार आयेंगे—मैंने संसार में रहकर क्या किया ? यही न कि अपने जैसे और अनेक मुफ्त के टुकड़े-ख़ोर पैदा किये। इसके अलावा, इतना होते हुए भी, हम अपने जीवन का आनन्द नहीं पाते हैं। यह जीवन, तुम जानती हो, हमें तभी तक सहज प्रतीत होता है जब तक हमारे अन्दर बालिया की तरह जीवन में स्फूर्ति रहती है।

मेरी—मगर सब कोई इसी तरह का जीवन व्यतीत करते हैं।

निकोलस—और ये सब दुःखी हैं।

मेरी—बिलकुल नहीं।

निकोलस—ख़ैर, मैंने देख लिया कि मैं बहुत दुःखी हूँ, और मैंने तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को भी दुःखी बना रक्खा है। तब मेरे दिल में विचार उठा कि क्या यह सच है कि ईश्वर ने हमें इसी लिए पैदा किया है। और जिस वक्त मेरे दिल में विचार उठा उसी दम मुझे मालूम हुआ कि नहीं ऐसा नहीं है। तब मैंने पूछा "फिर ईश्वर ने हमें किस लिए पैदा किया है ?" (एक नौकर का प्रवेश)

मेरी—(निकोलस की बात को अनसुनी करके नौकर से) शुद्ध गरम मलाई ले आओ।

निकोलस—और बाइबिल में मुझे इस बात का जवाब मिला कि हमें अपने ही लिए नहीं जीना चाहिए—अपना सारा जीवन स्वार्थ में ही नहीं व्यतीत करना चाहिए। जब बगीचे में मजदूरों के इस सिद्धान्त पर विचार कर रहा था तब मुझे यह बात स्पष्ट मालूम हो गई। तुम समझीं ?

मेरी—हाँ, मजदूरों के सम्बन्ध की न ?

निकोलस—मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस दृष्टान्त ने मेरी और बातों की अपेक्षा मेरी भूलों को अधिक स्पष्ट दिखलाया। उन मजदूरों के समान मैं भी यह मानने लगा था कि वह बगीचा खुद मेरा है और यह जीवन भी मेरा अपना ही है। इससे सब चीजें मुझे बड़ी भयकर मालूम होतीं। मगर ज्यों ही मैंने यह समझ लिया कि यह जीवन मेरा नहीं है, बल्कि इस दुनिया में मैं उस ईश्वर के इच्छानुसार कार्य करने के लिए भेजा गया हूँ ।

मेरी—लेकिन इससे क्या ? यह तो हम सब जानते हैं।

निकोलस—हाँ, यदि हम इतना जानते तो हम जिस प्रकार रहते हैं, न रहते होते, क्योंकि हमारा वर्तमान जीवन तो उसके बिलकुल विरुद्ध है। और हम क्षण-क्षण पर उसकी आज्ञा का उल्लघन करते हैं।

मेरी—मगर जब हम किसी दूसरे को हानि ही नहीं पहुँचाते तो अपराध कैसा ?

निकोलस—मगर क्या सचमुच हम किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते ? तुम्हारी यह दलील बिलकुल लचर है—अन-पढ़ लोगों के जैसी है। हम दूसरों की मजदूरी से अपना

फ़ायदा नहीं करते ? तो फिर यह भंडारा क्या है ? यह ठाट-बाट साज-सामान आदि कहाँ से आये ? नंगे बदन रहकर ठंढ में ठिठुरने वाले उन गरीब लोगों के शरीर का कपड़ा छीनकर हम अपने लिए बेशकीमती पोशाकें बनाते हैं, उनकी झोंपड़ियों को उजाड़कर हम अपने आलीशान महल बनवाते हैं और निरीह भूखों मरते लोगों के मुंह का कौर छीनकर हम लोग तरह तरह के लजीज पक्वान्नों की दावतें उड़ाते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी चीज का अधिक उपभोग करता है तो निस्सन्देह यह समझ लेना चाहिए कि अवश्य ही कहीं सैकड़ों मनुष्य भूखों मरते होंगे।

मेरी—हाँ, दृष्टान्त तो मेरी समझ में आगया। ईश्वर ने सभी को बराबर दिया है।

निकोलस—(थोड़ी देर ठहरकर) नहीं यह ऐसा नहीं है। मगर मेरी, जरा इस बात को सोचो कि मनुष्य दुनिया में केवल एक ही बार आता है। तो फिर क्या यह उचित है कि हम उस जीवन को नष्ट कर दें ? नहीं, हमें उसका अच्छा से अच्छा उपयोग करना चाहिए।

मेरी—ना जी मैं तुम से बहस नहीं कर सकती। समझ में नहीं आता क्या करूँ ? रात को बच्चों के मारे पूरी तरह सो भी नहीं पाती। मुझे घर का सब काम-काज देखना पड़ता है उस पर तुम सहायता देने के बजाय मुझे ऐसी नई-नई बातें कहते हो जो मैं समझ ही नहीं सकती।

निकोलस—मेरी !

मेरी—और यह लो मिहमान लोग भी आ रहे हैं।

निकोलस—नहीं, पहले हम लोगो को आपस में एक समझौते पर आ जाना चाहिए। (प्यार से) क्यों ठीक है न ?

मेरी—हाँ, बस तुम पहले जैसे हो जाओ।

निकोलस—नहीं, यह तो नहीं हो सकता। मगर सुनो तो।

(घण्टियों और गाड़ियों के आने की आवाज)

मेरी—नहीं, अब नहीं—वे लोग आ गये हैं। मुझे उनसे मिलने के लिए जाना चाहिए।

(घर के पीछे के दरवाजे से जाती है। स्त्यूपा और ल्यूबा उसके पीछे-पीछे जाते हे। वानिया भी।)

वानिया—हम लोग इसे यों ही नहीं छोड़ेंगे। हम लोग बाद में खेल कर फैसला कर लेंगे। क्यों, ल्यूबा, क्या है ? अब तो तुम बड़ी खुश होगी ?

ल्यूबा—(गम्भीरता से) चुप रहो, बकवाद न करो।

(अलेक्जेण्डरा अपने पति और लिसा के साथ बराम्दे से बाहर आती है। निकोलस विचार-मग्न होकर इधर-उधर घूमता है)

अलेक्जेण्डरा—क्यों, तुमने उसे समझा कर राजी कर लिया ?

निकोलस—अलीना, हम लोगों में परस्पर जो कुछ चल रहा है वह बड़ा गंभीर मामला है। इस वक्त मजाक बेमौके है। कुछ मैं उसे थोड़े ही समझा रहा हूँ, बल्कि जीवन, सत्य और स्वयं ईश्वर उसे सन्मार्ग दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए वह इसके बिना समझे और बिना यक़ीन किये रह ही नहीं सकती। अगर आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों—एक न एक दिन वह सचाई को अवश्य समझेगी।

मगर खेद है, ऐसे मौक़े पर उसे समय नहीं मिलता। अभी कौन आये हैं ?

पीटर—चरेमशेनव लोग आये हैं। कैटिचि चेरमशेनव भी हैं। मुझे उनसे मिले १८ साल हो गये। पिछली बार जब हम लोग मिले थे तब हम लोगों ने यह गजल गाई थी।—

"दर्द मिन्नत कशे दवा न हुआ।"

अलेक्जेण्डरा—मेहरबानी करके हमारी बातों में दखल न दो। और यह मत समझ बैठो कि मैं निकोलस से झगड़ पड़ूँगी। मैं तो सच सच बात कहती हूँ। (निकोलस से) मैं तुम से हँसी बिलकुल नहीं करती हूँ। लेकिन मुझे यह बात बड़ी अजीब मालूम हुई कि तुम मेरी को उस वक्त यह बात समझा कर राजी करना चाहते थे जब कि वह तुम से जी खोलकर बातें करने को तैयार हुई थी।

निकोलस—अच्छा, लो वे लोग आ गये हैं। कृपा करके मेरी से कह दीजिएगा कि मैं अपने कमरे में हूँ।

(प्रस्थान)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(उसी घर में एक सप्ताह बाद। एक बड़े भोजनालय में मेज के पास मेरी, शाहजादी और पीटर बैठे हैं, दीवाल के पास एक पियानो भी रक्खा हुआ है।)

पीटर—शाहजादी, अब की दफ़े बहुत दिनों बाद हम लोगों की मुलाक़ात हुई। उस बार तो आपने खूब गाया था। कहिए, अब भी क्या आपको कुछ गाने का शौक़ है।

शाहजादी—मुझे तो अब उतना शौक नहीं रहा, मगर हमारे बच्चे गा सकते हैं।

पीटर—बेशक, आपकी लड़की बहुत अच्छा गाती है और पियानो भी अच्छा बजाती है। सब बच्चे कहां गये हैं? क्या अभी तक सोते हैं?

मेरी—हाँ, कल रात को चांदनी में वे लोग बाहर सैर करने निकल गये थे और रात को बड़ी देर से वापस आये, मैं उस समय बच्चे को दूध पिलाती थी। इससे मैंने उनकी आवाज़ सुनी थी।

पीटर—लेकिन हमारी अर्धांगिनी जी कब पधारेंगी? क्या आपने उनके लिए गाड़ी भेज दी है?

मेरी—हां, गाड़ी बड़े सवेरे ही चली गई थी, मैं समझती हूँ वह अब आती ही होगी।

शाहज़ादी—क्या सचमुच, अलीना बीबी बाबा जिरैसियम को बुलाने गई हैं ?

मेरी—जी हाँ, यह बात कल उनके ध्यान में आई और उसी वक्त वे रवाना हो गईं ।

शाहज़ादी—ओहो ! कितनी फुर्ती है। इसके लिए मैं उनकी तारीफ़ करती हूँ।

पीटर—ऐसे मामलों में हम लोग पीछे नहीं रहते। (सिगार निकालता है) अच्छा तो अब इजाज़त दीजिए, मैं ज़रा जाकर सिगार पीऊँगा और कुत्तों के साथ पार्क की सैर करूँगा।

(जाता है)

शाहज़ादी—पता नहीं, कहाँ तक सच है, मगर मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आप फ़िज़ूल में उस बात का इतना ख्याल करती हैं। मैं उनकी दशा को समझती हूँ। उनके दिमाग़ की हालत इस वक्त बहुत ही बढ़ी-चढ़ी और ऊँची है। ख़ैर, मान भी लो कि वह ग़रीबों को कुछ दे देते हैं तो इससे क्या होता है ? क्या हम को सदा ही ज़रूरत से ज़्यादा अपनी फ़िक्र नहीं लगी रहती है ?

मेरी—मगर इतना ही हो तब न ? अभी आपको मालूम नहीं कि वह क्या करना चाहते हैं ? सिर्फ़ ग़रीबों की मदद देने का ही सवाल नहीं है, बल्कि यह तो एक तरह की क्रांति है—सब चीज़ों का सर्वनाश है।

शाहज़ादी—मैं आपके पारिवारिक जीवन में व्यर्थ हस्तक्षेप करना नहीं चाहती, मगर आप

मेरी—आप और व्यर्थ हस्तक्षेप ? बिलकुल नहीं। मैं तो आप को अपना ही समझती हूँ, आप कोई गैर थोड़े ही हैं और खास कर अब—इस वक्त।

शाहज़ादी—मैं तो कहूँगी कि आप जो खोल कर उनसे साफ़-साफ़ इस विषय में बातें करें और आपस में तय करके एक हद बाँध लें।

मेरी—(आवेश में) हद कहा ? यहां तो कोई हद नहीं है। वह तो सब-कुछ दे डालना चाहते हैं। वह तो चाहते हैं कि मैं अब इस उम्र में रसोइये और धोबिन का काम करूँ।

शाहज़ादी—नहीं जी, भला यह भी कहीं मुमकिन है ? यह तो बिलकुल अजीब बात है।

मेरी—(जेब से खत निकालते हुए) हम लोग यहाँ अकेले ही हैं, इसलिए मैं आप से सब बातें कह देती हूँ। उन्होंने कल मुझे यह खत दिया था, मैं पढ़ कर सुनाती हूँ।

शाहज़ादी—क्या ? वह आपके साथ एक ही घर में रहते हुए खत भेजते हैं ? कैसे ताज्जुब की बात है ?

मेरी—नहीं, इसका कारण मुझे मालूम है। वह बोलते-बोलते बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। मुझे तो उनके स्वास्थ्य की बड़ी चिंता हो गई है।

शाहज़ादी—उन्होंने क्या लिखा है ?

मेरी—पढ़ती हूँ, सुनिए—(पढ़ती है।) "तुम मुझे अपना पूर्व-जीवन उलट-पुलट कर डालने और उसके बजाय कोई नई चीज न देने के लिए बार-बार झिड़कती हो और कहती हो कि मैं यह नहीं बताता कि हम लोग अपना पारस्परिक जीवन

किस तरह संगठित करें जब हम इस विषय पर बहस करते हैं तो दोनों ही उत्तेजित हो उठते हैं, इसीलिए मैं यह चिट्ठी लिख रहा हूँ। मैंने तुम्हें अक्सर बतलाया है कि मैं किस लिए उस तरह का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता, जैसा कि हम अब तक करते आये हैं और कर रहे हैं। लेकिन इस चिट्ठी में लिख कर तो मैं यह नहीं समझा सकता कि ऐसा क्यों है। और न मैं यही बतला सकता हूँ कि किस लिए हमें ईसा-मसीह की शिक्षों के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए। तुम दो में से एक बात कर सकती हो, या तो सत्य में विश्वास रख कर स्वेच्छा से मेरे साथ साथ चलो या मुझ में विश्वास रख कर, मेरे ऊपर पूरा भरोसा करके मेरा अनुसरण करो।" (पढ़ना बंद करके) मैं न तो यहीं पर समझती हूँ और न वहीं। वह जिस तरह रहने को कहते हैं, वह मैं जरूरी नहीं समझती। मुझे बच्चों का ख्याल रखना है और उन पर भरोसा नहीं कर सकती। (फिर पढ़ती है) "मेरा विचार तो यह है कि हम लोग जमीन किसानों को दे डालें और बाग फुलवारी और नदी के चारागाह वाली जमीन के अलावा १२५ एकड़ जमीन अपने पास रक्खें। हम लोग खुद मिहनत करने की कोशिश करें। मगर बच्चों को या एक-दूसरे को काम करने के लिए मजबूर न करें। हमारे पास जो-कुछ जमीन बचेगी उससे भी तो ५० पौंड सालाना आमदनी होगी।

शाहजादी—५० पौंड सालाना पर जिन्दगी बसर करना—सात बच्चों को लेकर? बिलकुल असंभव।

मेरी—देखिए तो, उनकी सारी तजवीज तो यह है कि हम अपना सारा घर भी दे डालें और उसे एक मदरसे के रूप में परिवर्तित कर दें और हम लोग एक मामूली दो कमरेवाली झोंपड़ी में रहें।

शाहजादी—हाँ, अब मुझे मालूम हुआ कि इसमें कुछ विलक्षणता है। अच्छा, आपने क्या उत्तर दिया ?

मेरी—मैंने तो कह दिया कि यह नहीं हो सकता। यदि मैं अकेली होती तो निधड़क उनके पीछे चली जाती। मगर मेरे पास बच्चे हैं। जरा सोचो तो सही। छोटा बच्चा तो अभी दूध ही पीता है। मैंने तो उन्हें कहा कि हम सब चीजों को इस प्रकार दूर नहीं कर सकते। और क्या इसी बात पर ब्याह के वक्त मैं उनके साथ राजी हुई थी ? दूसरे, अब न मैं जवान ही हूँ और न मेरे शरीर में ताक़त है। भला मैं किस तरह इस बात को मान लूँ ?

शाहजादी—यह तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बात इतनी बढ़ गई है।

मेरी—बस, यही हाल है। मालूम नहीं क्या होनेवाला है ! कल उन्होंने एक गाँव के किसानों का लगान माफ़ कर दिया। और वह जमीन भी उन्हीं को दे डालना चाहते हैं।

शाहजादी—मैं समझती हूँ कि ऐसा तो नहीं होने देना चाहिए। अपने बच्चों की रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। अगर वह जायदाद का इन्तिज़ाम नहीं कर सकते तो उन्हें चाहिए कि उसे वे आपके हवाले कर दें।

मेरी—मगर यह तो मैं नहीं चाहती।

शाहजादी—बच्चों की खातिर आपको लेना चाहिए। बेहतर है कि वह जायदाद आपके नाम कर दें।

मेरी—बहन अलीना ने उससे ऐसा कहा था, लेकिन वे कहते थे कि उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि जमीन उन लोगों की है जो उसे जोतते हैं, बोते हैं, और उन्होंने यह भी कहा था कि यह उनका कर्तव्य है कि वह उसे किसानों को दे दें।

शाहजादी—हाँ, अब मुझे मालूम होता है कि मामला बेढब और सजीदा है।

मेरी—और पुरोहित! वह भी उन्हीं का पक्ष लेता है।

शाहजादी—हाँ, कल मैंने देखा था।

मेरी—इसीलिए अलीना बहिन मास्को गई हैं। वह इस मामले में वकील से सलाह लेना चाहती थीं। मगर खास तौर से तो वह बाबा जिरेसियन को बुलाने गई है कि जिससे वह अपना प्रभाव डाल कर उन्हें रास्ते पर ले आवें।

शाहजादी—हाँ, मैं नहीं समझती कि हजरत ईसा का सिद्धान्त हमें पारिवारिक जीवन नष्ट करने की आज्ञा देता है।

मेरी—मगर वह बाबा जिरेसियन की बात भी नहीं मानेंगे। वह अपनी धुन के पक्के हैं। और जब वह मुझ से बहस करते हैं, तब आप जानती हैं, मैं कुछ जवाब नहीं दे सकती। यह तो और भी भयानक है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वह जो कुछ कहते हैं वह सब सच है।

शाहजादी—यह इसलिए कि आप उन्हें प्यार करती हैं।

मेरी—मालूम नहीं। मगर है यह बड़ी गड़बड़—और यही इसाई-धर्म है।

(दाई का प्रवेश)

दाई—छोटा निकोलस जग पड़ा है। वह आप के लिए रोता है।

मेरी—अभी आती हूँ। (शाहजादी से) जब मैं उत्तेजित होकर अधिक बहस करती हूँ तो उनकी तबियत बिगड जाती है।

(दूसरे द्वार से हाथ में कागज लिए निकोल्स. का प्रवेश)

निकोलस—नहीं, यह तो असम्भव है।

मेरी—क्यों, क्या हुआ ?

निकोलस—हुआ क्या ! कुछ शीशम के दरख्तों की वजह से पीटर को कैद हो जायगी।

मेरी—सो कैसे ?

निकोलस—बिलकुल सीधी-सी बात है। उसने कुछ पेड़ काट डाले, इसकी शिकायत मजिस्ट्रेट के पास की गई और मजिस्ट्रेट ने उसे तीन मास की सजा दी है। उसकी औरत उसके लिए आई है।

मेरी—क्या वह किसी तरकीब से बच नहीं सकता ?

निकोलस—नहीं, अब नहीं बच सकता। बस, यही एक रास्ता है कि हम जगल ही न रक्खें और मैं ऐसा ही करूँगा। भला इसके सिवा और क्या हो सकता है ? मगर जाकर देखता हूँ कि किसी तरह उस बेचारे का छुटकारा हो सकता है।

ल्यूबा—प्रणाम पिताजी, (हाथ चूमती है) अब कहाँ जाते हैं ?

आइवन—ओह, क्या ही अच्छा हो यदि मैं मर जाऊँ। क्या खाना तैयार है?

मालाशका—हाँ, तैयार है। यह देखो, जमींदार साहब आ रहे हैं।

(निकोलस प्रवेश करता है)

निकोलस—क्यों, यहाँ बाहर क्यों लेटे हो?

आइवन—अन्दर बहुत मक्खियाँ भिनभिनाती हैं और बड़ी गर्मी है।

निकोलस—यहाँ तुम्हें ठंड तो नहीं लगती?

आइवन—नहीं, मेरा जिस्म गरमी के मारे झुलस रहा है।

निकोलस—और पीटर कहाँ है? क्या घर में है?

आइवन—घर में! और इस वक्त? वह तो खेत में अनाज ढोने के लिए गया है।

निकोलस—मैंने सुना है कि वे लोग उसे जेल डालने वाले हैं।

आइवन—हाँ, यही बात है, पुलिस का आदमी उसे पकड़ने खेत पर गया है।

(एक गर्भवती स्त्री का प्रवेश, सर पर अनाज का गट्ठा है और हाथ में हंसिया है, मालाशका को देखते ही सिर पर एक चपत लगाती है)।

स्त्री—क्यों री, बच्चे को अकेला क्यों छोड़ दिया? सुनती नहीं, वह चिल्ला रहा है। बस इधर-उधर फिरना ही जानती है?

मालाशका—(चिल्लाती हुई) मैं अभी तो बाहर आई हूँ। पिता जी ने पानी माँगा था।

स्त्री—ठहर बताती हूँ अभी तुझे। (निकोलस को देख कर) वन्दे ठाकुर साहब। बच्चों की यही आदत है। मैं तो बड़ी

हैरान हो रही हूँ। सारा बोझ मेरे ही सिर पर है। हमारे घर में एक ही कमाई करने वाला आदमी है। उसे भी वे लोग जेलखाने लिये जाते हैं और यह काम-चोर इधर निठल्ला पड़ा हुआ है।

निकोलस—क्या बोलती हो? देखो तो यह बेचारा कितना बीमार है।

स्त्री—यह बीमार है और मैं कैसी हूँ? क्या मैं बीमार नहीं हूँ? जब काम का वक्त होता है तब वह बीमार पड जाता है, मगर हँसने-बोलने और मेरे सिर के बाल नोंचने के लिए बीमार नहीं होता। मरे, कुत्ते की मौत मरे! मुझे क्या?

निकोलस—ऐसी खराब बातें तुम्हारे मुँह से कैसे निकलती हैं?

स्त्री—मैं जानती हूँ, यह पाप है। मगर मेरी जुबान काबू में नहीं रहती। मेरे एक और बच्चा होने वाला है। और अभी दो को सभालना पड़ता है। और सब लोगों की फसल तो कट कर घर में आ गई है, मगर हमारी चौथाई कटाई भी अभी नहीं हो पाई है। मुझे जौ के गट्ठे बाधने थे, मगर नहीं बाँध सकी। बच्चों को देखने के लिए मुझे काम छोड़ कर आना पड़ा।

निकोलस—जौ कट जायँगे। मैं मजदूरों को लगा दूँगा। वे काट कर गट्ठे बाँध डालेंगे।

स्त्री—गट्ठे बाँधने में कुछ नहीं है, यह तो मैं खुद कर सकती हूँ, बस किसी तरह कटाई हो जाती। क्यों निकोलस साहब, आप क्या समझते हैं—क्या यह मर जायगा? यह बहुत बीमार है।

आह्वन—ओह, क्या ही अच्छा हो यदि मैं मर जाऊँ। क्या खाना तैयार है ?

मालाशका—हाँ, तैयार है। यह देखो, जमींदार साहब आ रहे हैं।

(निकोलस प्रवेश करता है)

निकोलस—क्यों, यहाँ बाहर क्यों लेटे हो ?

आह्वन—अन्दर बहुत मक्खियाँ भिनभिनाती हैं और बड़ी गर्मी है।

निकोलस—यहाँ तुम्हें ठंड तो नहीं लगती ?

आह्वन—नहीं, मेरा जिस्म गरमी के मारे झुलस रहा है।

निकोलस—और पीटर कहाँ है ? क्या घर में है ?

आह्वन—घर में ! और इस वक्त ? वह तो खेत में अनाज ढोने के लिए गया है।

निकोलस—मैंने सुना है कि वे लोग उसे जेल डालने वाले हैं।

आह्वन—हाँ, यही बात है, पुलिस का आदमी उसे पकड़ने खेत पर गया है।

(एक गर्भवती स्त्री का प्रवेश, सर पर अनाज का गट्ठा है और हाथ में हँसिया है, मालाशका को देखते ही सिर पर एक चपत लगाती है)।

स्त्री—क्योंरी, बच्चे को अकेला क्यों छोड़ दिया ? सुनती नहीं, वह चिल्ला रहा है। बस इधर-उधर फिरना ही जानती है ?

मालाशका—(चिल्लाती हुई) मैं अभी तो बाहर आई हूँ। पिता जी ने पानी माँगा था।

स्त्री—देख बताती हूँ अभी तुझे। (निकोलस को देख कर) वन्दे ठाकुर साहब। बच्चों की बड़ी आफत है। मैं तो बड़ी

हैरान हो रही हूँ। सारा बोझ मेरे ही सिर पर है। हमारे घर में एक ही कमाई करने वाला आदमी है। उसे भी वे लोग जेलखाने लिये जाते हैं और यह काम-चोर इधर निठल्ला पड़ा हुआ है।

निकोलस—क्या बोलती हो? देखो तो यह बेचारा कितना बीमार है।

स्त्री—यह बीमार है और मैं कैसी हूँ? क्या मैं बीमार नहीं हूँ? जब काम का वक्त होता है तब वह बीमार पड़ जाता है, मगर हँसने-बोलने और मेरे सिर के बाल नोंचने के लिए बीमार नहीं होता। मरे, कुत्ते की मौत मरे। मुझे क्या?

निकोलस—ऐसी खराब बातें तुम्हारे मुँह से कैसे निकलती हैं?

स्त्री—मैं जानती हूँ, यह पाप है। मगर मेरी जुबान काबू में नहीं रहती। मेरे एक और बच्चा होने वाला है। और अभी दो को सभालना पड़ता है। और सब लोगों की फसल तो कट कर घर में आ गई है, मगर हमारी चौथाई कटाई भी अभी नहीं हो पाई है। मुझे जौ के गट्ठे बाधने थे, मगर नहीं बाँध सकी। बच्चों को देखने के लिए मुझे काम छोड़ कर आना पड़ा।

निकोलस—जौ कट जायँगे। मैं मजदूरों को लगा दूँगा। वे काट कर गट्ठे बाँध डालेंगे।

स्त्री—गट्ठे बाँधने में कुछ नहीं है, यह तो मैं खुद कर सकती हूँ, बस किसी तरह कटाई हो जाती। क्यों निकोलस साहब, आप क्या समझते हैं—क्या यह मर जायगा? यह बहुत बीमार है।

निकोलस—मालूम नहीं, मगर बीमार तो सचमुच बहुत है। उसे अस्पताल भेजना चाहिए।

स्त्री—हरे राम! (रोती है) ईश्वर के लिए उसे कहीं मत ले जाओ, यहीं मर जाने दो। (अपने पति से, जो कुछ कहता है) क्या कहते हो?

आइवन—मैं अस्पताल जाना चाहता हूँ, यहाँ तो मैं कुत्ते से भी बदतर हूँ।

स्त्री—खैर जो कुछ हो। मेरा तो इस वक्त जी ठिकाने नहीं है। मालाशका! खाना परोस।

निकोलस—तुम्हारे खाने में क्या-क्या चीजें हैं?

स्त्री—क्या-क्या चीजें हैं? रोटी और आलू, और वह भी काफ़ी नहीं है। (झोंपड़े के अन्दर जाती है, एक सूअर का बच्चा चिल्लाता है, अन्दर बच्चे रोते हैं)

आइवन—हे ईश्वर, अब तो बस मौत दो। (कराहता है)

(बोरिस का प्रवेश)

बोरिस—क्या मैं कुछ सहायता कर सकता हूँ?

निकोलस—यहाँ कोई किसीकी सहायता नहीं कर सकता। खराबी की जड़ गहरी पहुँच चुकी है। यहाँ बस हम अपनी सहायता कर सकते हैं—यह देख कर कि हम किन चीजों से अपने जीवन के सुख का निर्माण करते हैं। यह देखो, एक परिवार है, पांच बच्चे हैं, स्त्री गर्भवती है, पति बीमार है, आलुओं के सिवा घर में खाने के लिए कुछ नहीं है। और इस वक्त इस बात का निर्णय किया जा रहा है कि अगले साल भी उन्हें खाने के लिए काफ़ी अनाज मिलेगा या नहीं?

माना कि मैं एक मजदूर कर दूँ, मगर वह मजदूर होगा कौन ? बस ऐसा ही एक दूसरा आदमी होगा कि जिसने शराब पीने या पैसा न होने की वजह से अपनी खेतीबारी का काम छोड़ दिया है।

बोरिस—माफ कीजिएगा। मगर ऐसी बात है तो फिर आप यहा क्या कर रहे हैं ?

निकोलस—मैं अपनी स्थिति को समझने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं यह देख रहा हूँ कि वह कौन है जो हमारे बागों में काम करता है, हमारे मकान बनाता है, हमारे कपड़े बनाता है और हमें खिलाता पिलाता है। (किसान हसिये लिये हुए और स्त्रियाँ रस्सी लिये हुए जाते हैं और सलाम करते हैं। निकोलस एक किसान को रोक कर) एरमिल, क्या तुम इन लोगों के जौ काटकर नहीं ला सकते ?

एरमिल—(सिर हिलाकर) मैं बड़ी खुशी से करता लेकिन, इस वक्त मैं यह काम नहीं कर सकता। मैंने खुद अभी तक अपना खेत नहीं काट पाया है। हम लोग अब खेत काटने जाते हैं। मगर आइवन का क्या हाल है।

दूसरा किसान—यह देखो सियेश्चियन है, शायद यह राजी हो जाय। शिवा काका, यह लोग जौ काट कर लाने के लिए एक आदमी चाहते हैं।

शिवा—तुम्हीं इस काम को ले लो, इस वक्त तो एक दिन की मिहनत से साल भर का खाना मिलता है।

(किसान जाते हैं)

निकोलस—यह सब नंगे-भूखे हैं। इन्हें आधा पेट खाने को

मिलता है। इसी लिए सब रोगी से हो रहे हैं। और कई बुड्ढे हैं। देखो, वह बुड्ढा आदमी बीमारी से अधमरा हो रहा है। लेकिन फिर भी वह सुबह चार बजे से लेकर रात के दस बजे तक काम करता है। और हम लोग? यह सब देख कर क्या यह सम्भव है कि हम लोग शान्ति-पूर्वक दिन बितावें और फिर भी अपने को धार्मिक मनुष्य समझें? धार्मिक मनुष्य न सही, केवल पशु न समझें?

बोरिस—लेकिन इसके लिए क्या करना चाहिए?

निकोलस—इस बुराई में भाग नहीं लेना चाहिए। न जमीन को अपने कब्जे में रखना और न दूसरों की मिहनत से फ़ायदा उठाना चाहिए। इन सब बातों का क्या प्रबन्ध होना चाहिए यह तो मैं अभी नहीं बता सकता। दर-असल बात यह है कि हम लोग यह कभी सोचते नहीं कि हमारा जीवन किस तरह गुजर रहा है। मैंने यह कभी नहीं समझा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूँ, और हम सब ईश्वर के पुत्र हैं, भाई भाई हैं। लेकिन जिस वक्त मैंने यह अनुभव किया था, जिस वक्त यह जान लिया कि हम सब एक—बराबर हैं, सब को इस दुनिया में जिंदा रहने का हक है, उसी वक्त मेरे दिल में हल-चल मच गई। लेकिन यह सब बातें मैं इस वक्त नहीं बता सकता। इस वक्त तो मैं यही कहूँगा कि मैं बिल कुल चक्षु-हीन था, जैसा कि इस वक्त मेरे घर के लोगों का हाल है। मगर अब मेरी आँखें खुल गई हैं और अब मैं इन बातों को देखे बिना नहीं रह सकता। लोगों की इस हीनावस्था को देखकर और उसका कारण जानकर अब

मैं उसी तरह अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। ख़ैर यह तो फिर देखा जायगा। इस वक्त किसी तरह इनको मदद देनी चाहिए।

(पुलिस का आदमी, पीटर उसकी स्त्री और बच्चे का प्रवेश)

पीटर—(निकोलस के पैर पकड़कर) माफ़ करो, ईश्वर के लिए, मुझे माफ कर दो। नहीं तो मैं बिलकुल बरबाद हो जाऊंगा। अकेली औरत किस तरह अनाज काटकर घर में ला सकेगी कम-से-कम ज़मानत पर ही मैं छूट जाता।

निकोलस—मैं अर्ज़ी लिखता हूँ। (पुलिस मैन से) क्या तुम इसे अभी नहीं छोड़ सकते ?

पुलिसमैन—मुझे पुलिस स्टेशन ले जाने का हुक्म मिला है।

निकोलस—अच्छा तो जाओ, मुझसे जो हो सकेगा मैं करूंगा। यह सब मेरी करतूत है। भला, इस तरह कोई कैसे रह सकता है ?

(जाता है।)

तीसरा दृश्य

(उसी घर में। वर्षा हो रही है, एक कमरे में पियानो रखा हुआ है। टानिया पियानो के पास बैठी है, उसने अभी एक गीत समाप्त किया है, स्ट्यूपा पियानो के पास खड़ा है। बोरिस बैठा है। ल्यूबा लिसा, मित्राफेन, और वासिली, पुरोहित सब गीत से प्रभावित और प्रसन्न हैं)

ल्यूबा—अहा ! यह गीत कितना प्यारा है ?

स्टयूपा—सचमुच बड़ी खूबसूरती से गाया।

लिसा—बहुत ही अच्छा है।

स्ट्यूपा—मगर मुझे मालूम नहीं था कि तुम गान-विद्या में इतनी निपुण हो। कोई उस्ताद भी इस तरह से शायद ही बजा पायगा। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में स्वर्गीय भावों की अक्षय्य निधि है। उसमें से एक-एक करके वह चुने हुए सुन्दर दिव्य-भाव कुछ ललित किशोर स्वरों की सवारी पर बैठकर आकाश की तरफ उड़ते हैं और अपनी ज्योतिर्मयी प्रभा की स्फूर्ति से समस्त संसार को आच्छादित और आल्हादित करते हुए अन्त में दूर, बहुत दूर, आसमान में झिलमिलाते हुए सितारों की रोशनी में लीन हो जाते हैं, और देखते-ही-देखते वह सितारे और भी अधिक उज्वल, और भी अधिक सजीव और और भी अधिक चञ्चल हो उठते हैं।

ल्यूबा—बस स्ट्यूपा ने मेरे मन की बात कही है। सचमुच टानिया तुम अप्सरा हो।

टानिया—मगर मैं तो समझती थी कि मैं पूरी तरह से अपने भावों को व्यक्त नहीं कर सकी। बहुत-कुछ अभी अव्यक्त ही रह गया है।

लिसा—भला, इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? गाना आश्चर्य-जनक था।

ल्यूबा—तानसेन और बैजूबावरे की याद आती है। सुनते हैं, बैजू बावरे के गाने का दिलपर अधिक असर पड़ता है।

स्ट्यूपा—हां, उसमें भक्ति के भाव अधिक भरे होते हैं।

टानिया—हम लोग उन दोनों का एक-दूसरे से मुकाबिला नहीं कर सकते।

ल्यूबा—भक्ति के गानों मे तो मीराबाई भी अद्वितीय हैं। क्या तुम्हें कोई गीत याद है?

टानिया—कौनसा गीत चाहती हो? "मेरे मन राम नाम दूसरा न कोई" (बजाना शुरू करती है)

ल्यूबा—नहीं, यह नहीं, यह भी बहुत अच्छा है, मगर उसे सब कोई गाता फिरता है। देखिए यह गीत—

(जितना मालूम है उतना बजाती है, फिर छोड़ देती है)

टानिया—ओह, यह। यह तो बहुत ही अच्छा है गाते गाते मन खुशी से नाच उठता है।

स्ट्यूपा—हां, हां, जरा गाइए तो सही। मगर नहीं तुम थक गई होगी। यों भी आज की सुबह हम लोगों ने बड़ी खुशी से बिताई, इसके लिए आपको धन्यवाद है।

टानिया—(उठकर खिड़की में से देखती है) बाहर कुछ किसान बैठे इंतिजार कर रहे हैं।

ल्यूबा—इसी लिए तो गान विद्या की इतनी क़दर है, और कोई चीज इस तरह मनुष्य के सुख-दुःख को नहीं भुला सकती जिस तरह कि गान-विद्या करती है। (खिड़की के पास जाकर किसानों से) तुम किसे चाहते हो?

किसान—निकोलस साहब से मिलने हम लोग आये हैं।

ल्यूबा—वह घर पर नहीं है। तुम लोग जरा ठहरो।

टानिया—और फिर भी तुम बोरिस से ब्याह करना चाहती हो कि जिसे गान-विद्या का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

ल्यूबा—जी नहीं, हरगिज़ नहीं।

बोरिस—गाना? नहीं, नहीं, मैं उसे पसंद करता हूँ, या यों कहिए कि मैं उसे नापसंद नहीं करता। गाने की बनिस्बत मैं गीतों को अधिक पसंद करता हूँ। क्योंकि उनमें सादगी है, उनमें इतनी कृत्रिमता-जनक उलझन नहीं होती।

टानिया—मगर क्या यह राग अच्छा नहीं है?

बोरिस—ख़ास बात यह है कि यह चीज़ इतनी जरूरी नहीं है और मुझे यह देखकर दुःख होता है कि लोग गान-विद्या को इतना जरूरी समझते हैं जब कि हजारों आदमी बड़ी मुसीबत से अपने दिन काटते हैं।

(सब लोग मिठाई खाते हैं, मिठाई मेज़ पर सजी हुई है)

लिसा—यह कितने मजे की बात है कि प्रेमी मौजूद हो और मिठाइयां तय्यार हों।

बोरिस—यह मेरा काम नहीं है, माजी का है।

टानिया—और बिलकुल ठीक और मुनासिब है।

ल्यूबा—गाने की खूबी इसीमें है कि वह हमारे दिल पर जादू का सा असर कर रहा है, हमें अपने वश में करके दुनिया के सुख दुःख से दूर, बहुत दूर, ले जाता है, जहां थोड़ी देर के लिए हम संसार की स्थूल वास्तविकता को भूल जाते हैं। अभी थोड़ी देर पहले हर-एक चीज़ सुस्त और बेमज़ा मालूम होती थी, मगर तुम्हारे गाने ने मानों सब में जीव डाल दिया है।

लिसा—तुम्हें कोई कबीर के गीत भी मालूम हैं ?

टानिया—यह (बजाती है)

(निकोल्स का प्रवेश। बोरिस, टानिया, स्ट्यूपा, लिसा, मित्रा फेन और पुरोहित से हाथ मिलाता है।)

निकोलस—तुम्हारी मा कहा है ?

स्यूवा—मैं समझती हूँ, वह पालनेवाले घर में होंगी।

(स्ट्यूपा नौकर को बुलाता है—अफनासी !)

स्यूवा—पिताजी, टानिया कितना अच्छा गाती-बजाती है। और तुम कहा थे ?

निकोलस—गाव में। (अफनासी का प्रवेश)

स्ट्यूपा—दूसरा सामवार लाओ।

निकोलस—(नौकर को सलाम करके उससे हाथ मिलाता है) नमस्कार।

(नौकर गड़बड़ा जाता है। प्रस्थान। निकोलस भी जाता है।)

स्ट्यूपा—ग़रीब अफ़नासी ! वह कितना गड़बड़ा गया था, पिताजी की बातें मेरी समझ में नहीं आतीं, इससे तो ऐसा मालूम होता है मानों हमने कोई जुर्म किया है।

(निकोलस का प्रवेश)

निकोलस—मैं अपने दिल की बात कहे बिना ही अपने कमरे को वापस जा रहा था। (टानिया से) तुम हमारे मेहमान हो, अगर मेरा कहना तुम्हें नागवार गुज़रे तो मुझे माफ़ करना। लिसा, तुम कहती हो कि टानिया बहुत अच्छा गाती-बजाती है। तुम सात-आठ नौजवान—तन्दुरुस्त औरत और मर्द दस बजे तक पड़े सोते रहे और उसके बाद उठकर खाया पिया और अब भी खा रहे हो। तुम सब मिल कर यहा

गाने-बजाते और आपस में गाने के सम्बन्ध में बातचीत करते हो, और वहां, जहां से कि मैं आ रहा हूँ, गाँव के सब लोग सवेरे तीन बजे से उठ बैठे और जो लोग कोल्हू चलाते हैं वह बिलकुल सोये ही नहीं। बूढ़े और जवान, रोगी और दुर्बल, बच्चे और दूध पिलानेवाली मातायें और गर्भवती स्त्रियां अपनी-अपनी शक्ति-भर मेहनत करती हैं और वह सिर्फ इसलिए कि हम लोग उनकी मेहनत से लाभ उठा कर मौज उड़ाया करें। इतना ही नहीं, अभी इसी वक्त उनमें से एक आदमी जो अपने कुटुम्ब में अकेला ही कमानेवाला है, जेल में डाल दिया गया है, क्योंकि उसने एक शीशम का पेड़ हमारे जंगल से काट लिया है, और हम लोग सजधज कर, यहां आराम से बैठे हुए हैं और बहस कर रहे हैं कि कबीर के गीत अधिक प्रभावशाली हैं या मीरा बाई के। यही मेरे दिल में विचार थे सो मैंने प्रकट कर दिये। तुम लोग जरा सोचो तो सही, कि क्या इस तरह जिंदगी बिताना ठीक और मुनासिब है ?

लिसा—सच, बिलकुल सच है।

ल्यूबा—मगर इन बातों का ख्याल किया जाय तब तो फिर जीना ही दूभर हो जाय।

स्ट्यूपा—मगर मेरी समझ में नहीं आता कि कुछ लोग गरीब हैं इसीलिए हम लोग गान क्यों न गायें ? दोनों में पारस्परिक विरोध तो नहीं है। मगर

निकोलस—(क्रोध में) अगर कोई निर्दयी है, अगर कोई पत्थर का बना है।

स्ट्यूपा—अच्छी बात है, मैं नहीं बोलूँगा।

टानिया—यह बहुत ही कठिन प्रश्न है, यह हमारे जमाने की समस्या है और हमें उससे डरना नहीं चाहिए, बल्कि उसे हल करने की कोशिश करनी चाहिए।

निकोलस—हम लोग चुपचाप बैठ कर इस बात का इन्तिजार नहीं कर सकते कि एक ऐसा वक्त आयगा कि जब खुद-बखुद यह मुश्किल हल हो जायगी। हर एक आदमी को मरना है, आज नहीं तो कल। एक न एक दिन सभी को ईश्वर के समक्ष अपने कर्मों का जवाब देना है। ऐसी हालत में, मैं किस तरह इन सब बातों को देखते हुए अपनी आत्मा की आवाज को दबाकर चुपचाप मौज और मजे से यहाँ अपना जीवन बिताता रहूँ?

बोरिस—सच है, इस मुश्किल को हल करने का एक ही रास्ता है, और वह यह कि हम इन बातों में बिलकुल ही भाग न लें।

निकोलस—अगर तुम्हें बुरा लगा हो तो मुझे माफ करना, मुझ से कहे बिना रहा नहीं गया। (प्रस्थान)

स्ट्यूपा—इसमें भाग न लें? मगर हमारा समस्त जीवन इन्हीं बातों मे बँधा हुआ है।

बोरिस—इसीलिए तो वह कहते हैं कि सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि हम लोग कोई जायदाद ही न रक्खें, और अपने जीवन की गति को इस तरह बदल डालें कि हम दूसरों से अपनी सेवा न करायें, बल्कि खुद दूसरों की सेवा किया करें।

टानिया—अच्छा, तुम भी निकोलस की सी बातें करने लगे हो!

बोरिस—हाँ, गाँव में जाकर अपनी आँखों से देखने के बाद, मैं सब-कुछ समझ गया। बेचारे गरीब किसानों और दीन दरिद्र मजदूरों की मुसीबतों और हम लोगों की आराम-तलबी और ऐशो-अशरत में क्या सम्बन्ध है, इस बात को जानना हो तो बस इतना काफी है कि हम अपनी आखों से रंगीन चश्मा उतार कर एक बार सहृदयता के साथ आंखें खोलकर उनकी हीन, निस्सहाय और निर्जीव दशा को देखें और फिर अपनी निर्लज्ज निर्दय ऐयाशियों पर भी एक बार दृष्टिपात करें।

मित्रोफन—मगर उनकी मुसीबतों का इलाज यह नहीं है कि हम अपनी जिंदगी यों बरबाद कर दें।

स्ट्यूपा—ताज्जुब है कि मित्रोफन और मेरा मत इस सम्बन्ध में एक ही है, यद्यपि हम दोनों के विचारों में जमीन और आस्मान का फ़र्क़ है।

बोरिस—यह बिलकुल ही स्वाभाविक है। तुम दोनों आराम के साथ अपनी जिन्दगी गुजारना चाहते हो। (स्ट्यूपा से) इसलिए तुम वर्तमान स्थिति को बनाये रखना चाहते हो और मित्रोफन एक नई प्रथा चलाना चाहते हैं।

(स्यूपा और टानिया आपस में काना-फूसी करते हैं, टानिया पियानो के पास जाकर कबीर का एक गीत गाती है और खामोश है।)

स्ट्यूपा—बहुत अच्छा है, बस यही सब बातों को हल कर देता है।

बोरिस—इससे हल कुछ भी नहीं होता, बल्कि यह उसको और भी अस्पष्ट बनाकर अनिश्चित-रूप में छोड़ देता है।

(टानिया गाती है, मेरी और शाहजादी चुपचाप आकर बैठ जाती हैं और गाना सुनती हैं। गीत खतम होने से पहले गाड़ी की घंटिया सुनाई पड़ती हैं)

ल्यूबा—मौसीजी आगई। (उससे मिलने जाती है)

(गाना जारी है, अलेक्जेण्डरा का प्रवेश, उसके साथ बाबा निरैसियन (एक पुरोहित जिसकी गर्दन में क्रास लटक रहा है) और एक मुहर्रिर वकील है। सब उठ खड़े होते हैं।)

फ़ादर जिरैसियन—आप गाइए, यह तो बहुत ही अच्छा है।

(शाहजादी और युवक पुरोहित आशीर्वाद लेने के लिए उसके पास जाते हैं)

अलेक्जेण्डरा—मैंने जैसा कहा था वैसा ही किया, मैं फ़ादर जिरैसियन से जाकर मिली और उनसे प्रार्थना करके उन्हें यहा ले आई हूँ—बस मैंने अपना काम पूरा कर दिया। यह देखो, मुहर्रिर भी मौजूद है। उसने दस्तावेज़ तय्यार कर लिया है, सिर्फ दस्तखत करने की जरूरत है।

मेरी—आप कुछ नाश्ता तो कीजिए।

(मुहर्रिर कागजों को मेज पर रखकर बाहर जाता है)

मेरी—मैं फ़ादर जिरैसियन की बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

फ़ादर जिरैसियन—भला मैं क्या कर सकता था—यद्यपि मुझे दूसरी जगह जाना था, फिर भी ईसाई होने की हैसियत से मैंने यह अपना कर्तव्य समझा कि मैं उनसे मिलूँ।

(अलेक्जेण्डरा उन नौजवानों से कानाफूसी करती है, वे एक
दूसरे की राय लेते हैं और बोरिस के सिवा बाक़ी
सब बराम्द में चले जाते हैं। नवयुवक पुरो
हित भी जाना चाहता है।)

फ़ादर जि०—नहीं, आपको पुरोहित और धार्मिक गुरु होने की हैसियत से यहाँ ठहरना चाहिए। आप ख़ुद उससे लाभ उठा कर दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं। अगर मेरी को कुछ आपत्ति न हो तो आप ज़रा ठहरिए।

मेरी—नहीं, मैं फादर वासिली को अपने घर का सा समझता हूँ। मैंने उनसे इस बारे में सलाह भी ली थी। मगर कम उम्र होने की वजह से उनकी बात प्रमाण नहीं हो सकती।

फ़ादर जि०—बेशक, बेशक।

अलेक्जेण्डरा—(पास आकर) फ़ादर जिरेसियन! आप ही मेरी नज़र में एक ऐसे आदमी हैं, जो निकोलस को समझा बुझा कर सीधे रास्ते पर ला सकते हैं। वह बहुत ही पढ़ा लिखा और होशियार आदमी है, लेकिन आप जानते हैं कि इस तरह की विद्वत्ता से सिर्फ़ हानि ही पहुँचती है। वह एक तरह से भ्रम में पड़ा हुआ है। उसका विचार है कि ईसाई-धर्म इस बात को मान्य करता है कि कोई आदमी निजी जायदाद न रक्खे—लेकिन यह भला किस तरह मुमकिन हो सकता है?

फ़ादर जि०—यह सब कुछ नहीं, बड़ा कहलाने का लोभ, आत्मश्लाघा और अहम्मन्यता है। गिरजा के महन्तों ने इस बात

का संतोषजनक निर्णय कर दिया है। पर यह सब उसके मन में समाया कैसे ?

मेरी—अरे साहब न पूछिए। अब हमारी शादी हुई तब धर्म-कर्म की तरफ उनका कोई खयाल न था और हम शुरू के बीस बरसों तक बड़े सुख चैन से रहे। बाद को उनके मन में कुछ विचार आने लगे। या तो उनकी बहन के विचारों का प्रभाव उन पर पड़ा हो या शायद पुस्तकों का। जैसे भी हो, उनके मन में बहुत उथल-पुथल होने लगा और उन्होंने बाइबिल पढ़ना शुरू किया और एकाएक उनके अन्दर धर्म का अंकुर जाग उठा—वे अपने जीवन को अत्यन्त धार्मिक बनाने लगे। गिरजा जाने लगे और साधु सन्तों से धर्म-चर्चा करने लगे। फिर एकाएक उन्होंने यह सब बन्द कर दिया और अपने जीवन-क्रम को बिलकुल ही बदल डाला। अपना काम हाथ से करने लगे—नौकरों को अपना काम करने से मना कर दिया और नौबत यहाँ तक आई कि अब तो वे अपनी जायदाद भी छोड़ रहे हैं। कल उन्होंने एक जंगल दे डाला—पेड़ और जमीन दोनों। यह सब देख कर मेरी तो रूह काँप उठती है, क्योंकि मुझे छः सात बच्चे हैं। मेहरबानी करके उन्हें कुछ जरूर समझाइए। मैं जाकर पूछती हूँ कि वे आपसे मिलेंगे या नहीं।

(प्रस्थान)

फादर जि०—आजकल बहुत लोग इसी तरह अण्ट-शण्ट कर रहे हैं। और यह तो बताओ, जायदाद किसकी है, उसकी या उसकी बीबी की ?

शाहज़ादी—उसकी है। यही तो मुसीबत है।

फ़ादर जि०—और उसका ओहदा क्या है?

शाहज़ादी—कोई बहुत ऊँचा पद नहीं है। मेरा ख़याल है, घुड़सेना का कप्तान है। फौज में भी रह चुका है।

फ़ादर जि०—आज-कल बहुत से लोग इसी तरह बहक रहे हैं। मास्को में एक महिला थी, उस पर आध्यात्मिकता की धुन सवार हो गई और वह बड़ा नुक्सान पहुँचाने लगी। आख़िर बड़ी मुश्किल से हम उसे रास्ते पर लाये।

शाहज़ादी—ख़ास बात आपके समझ लेने की यह है कि मेरा लड़का उसकी लड़की से ब्याह करने वाला है। मैंने अपनी सम्मति दे दी है। लड़की को मौज-शौक से रहने की आदत पड़ी हुई है और मैं नहीं चाहती कि मेरे लड़के को ही उसकी सारी ज़रूरतें पूरा रखने का बोझ अपने सिर लेना पड़े। मैं यह मानती हूँ कि वह मेहनती है और नवयुवकों में अपने ढंग का एक ही है।

(मेरी और निकोलस का प्रवेश)

निकोलस—कहिए शाहज़ादी साहबा, आपका मिज़ाज कैसा है? और आपका मिज़ाज शरीफ़? (फादर गिरेसियन से) माफ़ कीजिए मुझे आपका नाम मालूम नहीं है।*

---

* वह जानता है कि पुरोहित फादर जिरेसियन है। परन्तु वह उन्हें पुरोहित समझ कर बात नहीं करना चाहता, बल्कि उनका असली नाम लेकर करना चाहता है—जैसा कि आदमी दूसरे से आम तौर पर बात करता है।

फ़ादर जि०—क्या तुम मेरा आशीर्वाद लेना नहीं चाहते ?

निकोलस—जी, नहीं।

फ़ादर जि०—मेरा नाम है जिरैसियन सिडोरों लिच, आपसे मिल कर मुझे बड़ी खुशी हुई।

(नौकर लोग नाश्ते का सामान लाते हैं।)

फादर जि०—यह मौसिम बहुत ही सुहावना और फ़सल के लिए अच्छा है।

निकोलस—मैं समझता हूँ कि आप मेरी भूल बतला कर मुझे सन्मार्ग पर लाने के लिए ही अलेक्जेण्डरा के बुलाने से यहाँ आये हैं। अगर यह सच है, तो आप इधर-उधर की बातें छोड़कर अपना काम शुरू कीजिए। मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि मैं गिरजा की शिक्षा को नहीं मानता। किसी ज़माने में, गिरजा की शिक्षा को मानता था। मगर उसके बाद से ऐसा करना छोड़ दिया। लेकिन मैं तहेदिल से सचाई को पाने की कोशिश करता हूँ और अगर आप सचाई मुझे दिखला देंगे तो मैं फ़ौरन् बड़ी खुशी के साथ उसे कबूल कर लूँगा।

फादर जि०—यह भला तुम कैसे कहते हो कि तुम गिरजा की शिक्षा पर विश्वास नहीं रखते ? अगर गिरजा नहीं तो फिर दूसरी कौन सी चीज़ विश्वास करने के लिए है।

निकोलस—ईश्वर और बाइबिल में लिखा हुआ उसका क़ानून।

फ़ादर जि०—गिरजा उसी क़ानून की तो तालीम देता है।

निकोलस—अगर ऐसा होता तो मैं गिरजा में विश्वास रखता, लेकिन दुर्भाग्य से वह इसके विरुद्ध शिक्षा देता है।

फ़ादर जि०—गिरजा विरुद्ध शिक्षा नहीं दे सकता है। क्योंकि स्वयं ईसा-मसीह ने उसकी स्थापना की है।

निकोलस—अगर यह भी मान लें कि ईसा-मसीह ने गिरजा को स्थापित किया तब यह कैसे मालूम हो कि वह 'आप ही' का गिरजा है।

फ़ादर जि०—भला गिरजा से कोई इन्कार कर ही कैसे सकता है? यही तो एक-मात्र मुक्ति का द्वार है।

निकोलस—यह तो मैं आप से कह ही चुका हूँ कि मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता, मैं उसे इसलिए स्वीकार नहीं करता, क्योंकि मुझे मालूम हो गया है कि गिरजा कसम खाना, हत्या करना, और फाँसी देना जायज़ समझता है।

फ़ादर जि०—ईश्वर ने जो अधिकार दिये हैं गिरजा उनको पाक और जायज़ करार देता है।

(बातचीत के वक्त, ल्यूबा, ल्यूबा, लिसा और तानिया एक एक करके आते हैं और बैठ कर या खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगते हैं।)

निकोलस—मैं जानता हूँ कि बाइबिल सिर्फ़ यही नहीं कहती है कि "मारो मत" बल्कि उसका उपदेश है कि 'क्रोध मत करो' फिर भी गिरजा फ़ौज को जायज़ मानता है। बाइबिल कहती है "कभी कसम मत खाओ" मगर फिर भी गिरजा क़सम खिलाता है, बाइबिल कहती है

फ़ादर जि०—माफ़ कीजिएगा, एक बार खुद ईसा-मसीह ने पाइलेट की क़सम को स्वीकार किया था।

निकोलस—अरे गजब ! आप क्या कह रहे हैं ! यह तो बिल-कुल ही असगत और असभव है।

फ़ादर जि०—इसीलिए तो गिरजा हर किसी को गास्पल की व्याख्या करने की आज्ञा नहीं देता है कि लोग कहीं बहक न जाँय, बल्कि खुद बच्चे की खबरगिरी करनेवाली माँ की तरह बच्चों की शक्ति के अनुसार गास्पल की व्याख्या करता है। नहीं, ठहरिए, मुझे कह लेने दीजिए। गिरजा अपने बच्चों पर इतना भारी बोझ नहीं रखता है कि जिसे वह सभाल न सके और सिर्फ यही चाहता है कि वह लोग इन आज्ञाओं का पालन करें—प्रेम करो, हत्या न करो, चोरी मत करो, व्यभिचारी मत बनो।

निकोलस—हाँ! मुझे मत मारो, मैंने जो चीज दूसरों से चुरा कर जमा की है उसे मेरे पास से मत चुराओ। हमने दूसरा को लूटा है, उनकी जमीन जबरदस्ती चुरा ली है और उसके बाद यह क़ानून बना दिया है कि फिर कोई न चुराये, और गिरजा इन सब बातों को मजूर करता है।

फ़ादर जि०—कुफ्र और आध्यात्मिक अभिमान तुम्हारी वाणी द्वारा बोल रहे हैं। तुम्हें अपने इस पाण्डित्याभिमान को वश में रखना चाहिए।

निकोलस—यह गर्व या अभिमान नहा है। मैं सिर्फ आपसे यह पूछता हूँ कि जब मुझे इस बात का ज्ञान हो गया है कि मैं लोगों को लूटने और जमीन के द्वारा उन्हें गुलामी में फँसाने का पाप कर रहा हूँ तब, ऐसी दशा में, मुझे क्या क्या करना चाहिए ? क्या मैं जमीन को अपने अधिकार में

रख कर भूखों मरने वाले लोगों के परिश्रम से लाभ उठाता रहूँ या मैं यह जमीन उन लोगों को वापस दे दूँ कि जिनसे मेरे बुजुर्गों ने उसे किसी तरह से चुराया या छीन लिया था।

फ़ादर जि०—तुमको वही करना चाहिए जो गिरजा के भक्त के उपयुक्त है। तुम्हारे कुटुम्ब परिवार है, बाल-बच्चे हैं, तुम्हें उनकी हैसियत के मुताबिक उनका भरण-पोषण और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।

निकोलस—क्यों ?

फ़ादर जि०—क्योंकि ईश्वर ने तुम्हें उस स्थिति में रक्खा है। अगर तुम दानी और उदार बनना चाहते हो तो तुम अपनी जायदाद का कुछ हिस्सा दान देकर और ग़रीब लोगों की सहायता करके अपनी उदारता को विकसित कर सकते हो।

निकोलस—लेकिन फिर हजरत ईसा ने उस नौजवान अमीर-जादे से यह क्योंकर कहा था कि अमीर लोग स्वर्ग नहीं जा सकते। "अमीर आदमी के स्वर्ग में जाने की बनिस्बत कहीं ज्यादा आसान है कि ऊँट सुई के नकुए में से होकर निकल जाय"।

फ़ादरजि०—यह कहा है "अगर तू पूर्णता प्राप्त करना चाहता है।"

निकोलस—मगर मैं तो पूर्णता प्राप्त करना चाहता हूँ। बाइबिल कहती है, "अपने स्वर्गस्थ पिता की भांति पूर्ण बनो।"

फ़ादरजि०—मगर हमें यह भी तो देखना चाहिए कि किस सम्बन्ध में यह बात कही गई है।

निकोलस—मैं यह समझने की कोशिश करता हूँ और "पर्वत पर के उपदेश" में जो कुछ कहा गया है वह बिलकुल स्पष्ट-बुद्धि-गम्य है।

फ़ादरजिरे०—यह आध्यात्मिक अभिमान है।

निकोलस—अभिमान कैसा? जब कि यह कहा है कि जो बात बुद्धिमानों से गुप्त है वह बच्चों के लिए प्रकट की है।

फ़ादरजिरे०—नम्र लोगों पर प्रकट और व्यक्त है न कि घमंडियों के लिए।

निकोलस—लेकिन घमंड किसे है? मैं अपने को मानव-जाति का एक साधारण मनुष्य समझता और इस लिए विश्वास करता हूँ कि मुझे भी दूसरे भाइयों की तरह महनत करके गरीबी और सादगी से जीवन-निर्वाह करना चाहिए। कहिए, मैं घमंडी हूँ या वे जो अपने को विशेष रूप से पवित्र समझते हैं, अपने को सर्वथा भ्रम-रहित और सारी सचाई का ठेकेदार समझते हैं, और जो ईसा-मसीह के शब्दों का मन-माना अर्थ लगाते हैं।

फ़ादरजिरे०—(क्षुब्ध होकर) माफ कीजिएगा, निकोलस साहब, मैं आपसे इस बात की बहस करने नहीं आया था कि हम में कौन ठीक है, और न आपमे भर्त्सना-पूर्ण शिक्षा लेने आया था। मैं तो अलेक्जेंडरा के बुलाने से आपके साथ बात-चीत करने चला आया। लेकिन चूंकि तुम हर एक बात मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हो इस लिए यही अच्छा है कि हम बात-चीत बन्द कर दें। बस, एक बार और मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर के लिए तुम होश

सम्हालो। तुम बे-तरह बहक गये हो और अपने को बरबाद कर रहे हो। (उठता है)

मेरी—क्या आप कुछ नाश्ता नहीं करेंगे ?

फ़ादिरजिरे०—नहीं मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।—

(अलेक्जेण्ड्रा के साथ प्रस्थान)

मेरी—(नवयुवक पुरोहित से) कहिए, आप क्या कहते हैं ?

पुरोहित—मेरी राय में निकोलस सा० का कहना सत्य था, और फ़ादर जिरैसियन ने अपने पक्ष में कोई प्रमाण नहीं दिया।

शाहजादी—उन्हें बोलने ही नहीं दिया और उन्होंने सबके सामने इस प्रकार बहस करना पसन्द नहीं किया। उन्होंने शिष्टता के विचार से बहस बन्द कर दी।

बोरिस—यह किसी प्रकार शिष्टता या नम्रता नहीं थी। यह स्पष्ट है कि उनके पास कुछ कहने को था ही नहीं।

शाहजादी—हां, तुम अपनी स्वाभाविक अस्थिरता के कारण हर बात में निकोलस से सहमत होने लगे हो। यदि तुम्हें ऐसी बातों पर विश्वास है तो तुम्हें शादी नहीं करनी चाहिए।

बोरिस—मैं तो केवल यही कहता हूँ कि सच्चाई सदा सच्चाई है और मैं उसे कहे बिना नहीं रह सकता।

शाहजादी—कोई कुछ कहे, मगर तुमको तो ऐसा बात नहीं करनी चाहिए।

बोरिस—सो क्यों ?

शाहजादी—क्यों कि तुम ग़रीब हो और तुम्हारे पास दे डालने को कुछ भी नहीं है। लेकिन, हमें इन बातों से क्या मतलब ?

(जाती है। पीछे पीछे मेरी और निकोलस के सिवा सब बाहर जाते हैं)

निकोलस—(बैठा हुआ विचार करता है, फिर अपने हा आप मुसकराता है।) मेरी! यह सब तुम क्या करती हो ? तुमने उस बदबख्त गुमराह आदमी को क्यों बुला भेजा ? यह शोर मचाने वाली औरत और यह पुरोहित हमारे अत्यन्त आन्तरिक जीवन में क्यों दखल देते हैं ? क्या हम लोग खुद अपने मामलों को तय नहीं कर सकते ?

मेरी—मगर तुम बच्चों को भिखारी बना देना चाहते हो तो मैं क्या करू ? इसको तो में चुपचाप सहन नहीं कर सकती। तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी बातें मेरी समझ मे नहीं आतीं और तुम यह भी जानते हो कि मैं अपने लिए कुछ भी नहीं चाहती।

निकोलस—जानता हूँ। मैं यह जानता और विश्वास करता हूँ। मगर दुर्भाग्य तो यह है कि तुम सत्य पर विश्वास नहीं करती। मुझे विश्वास है कि तुम सत्य को देखती हो, मगर अपने मन को उस पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं कर पाती। तुम न तो सत्य पर विश्वास करती हो, न मुझ पर। तुम विश्वास करती हो भीड पर, शाहजादी का और उसीके जैसे दूसर लोगों का।

मेरी—मैं तुम में विश्वास रखती हूँ, सदा मे रखती हूँ, मगर जब तुम बच्चों को भिखारी बनाना चाहते हो।

निकोलस—इसके मानी हैं कि तुम मुझ पर विश्वास नहीं करतीं। क्या तुम समझती हो कि मेरे भी दिल में इस तरह द्वन्द्व-युद्ध और शकाओं का तूफान नहीं उठा था ? मेरे दिल मे भी इसी तरह की आशङ्कायें पैदा हुई, मगर याद, को मुझे

पूर्ण निश्चय हो गया कि यह मार्ग सम्भव ही नहीं, वरन् नितान्त आवश्यक है और इस मार्ग का अनुसरण स्वय बच्चों के लिए भी आवश्यक और उपयोगी है। तुम हमेशा कहा करती हो कि अगर बच्चों का खयाल न होता तो तुम खुशी से मेरे कहने के मुताबिक काम करतीं, मगर मैं कहता हूँ कि अगर हमारे पास सम्पत्ति न होती तो हम लोग इसी ला-परवाही से जिन्दगी बिता देते, जैसे अब तक हम अपनी जिन्दगी बसर करते थे, क्या कि उस हालत में तो हम सिर्फ अपने ही आपको नुकसान पहुँचाते, मगर अब तो हम बच्चों को भी हानि पहुँचा रहे हैं।

मेरी—मगर मैं क्या करू, जब कि तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

निकोलस—मैं ही क्या करू ? क्या मैं यह नहीं जानता कि वह बदबख्त मनुष्य क्यों बुलाया गया था।? और अलेक्जेण्डरा उस मुहर्रिर को बुलाकर क्यों लाई ? तुम चाहती हो कि मैं जायदाद तुम्हें दे दू, लेकिन मैं नहीं दे सकता। तुम जानती हो कि मैं तुम्हें बीस साल से, जब से हम साथ रहते आये हैं, प्यार करता हूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और तुम्हारा भला चाहता हूँ इसी लिए जायदाद तुम्हारे नाम नहीं कर सकता। यदि मैं दू ही, तो उन किसानों को ही जिनसे मैंने ली है। अच्छा है, मुहर्रिर आही गया है, सब काम अभी हो जायगा।

मेरी—नहीं यह भयानक है। यह निष्ठुरता किस लिए ? यद्यपि तुम इसे पाप समझते हो, फिर भी अपनी जायदाद मेरे हवाले कर दो। (रोती है)

निकोलस—तुम नहीं जानतीं कि तुम क्या कह रही हो ? यदि अपनी जायदाद तुम्हें दे दूं तो मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। मुझे चला जाना पड़ेगा। किसानों का खून, मेरे नहीं तो तुम्हारे नाम पर चूसा जायगा और वे जेल भेजे जावेंगे। मैं यह देख नहीं सकता। तुम क्या पसन्द करती हो ?

मेरी—तुम कितने निठुर हो ! क्या यही ईसाई धर्म है ? यह कठोरता है। जिस तरह तुम मुझे रखना चाहते हो मैं उस तरह नहीं रह सकती। मैं अपने बच्चों से छीनकर सारी जायदाद दूसरों को नहीं लुटा सकती, इसीलिए तुम मुझे छोड़ देना चाहते हो। अच्छा वही करो। मैं देखती हूँ कि तुमने मुझे प्यार करना छोड़ दिया, और यह भी जानती हूँ कि क्यों ?

निकोलस—अच्छी बात है-मैं हस्ताक्षर किये देता हूँ, मगर तुम मुझसे असम्भव बात करा रही हो (मेज के पास जाकर सही कर देता है।) तुमने जो चाहा, मैंने कर दिया, मगर मैं इस तरह अपनी जिन्दगी नहीं बिता सकता।

पूर्ण निश्चय हो गया कि यह मार्ग सम्भव ही नहीं, वरन नितान्त आवश्यक है और इस मार्ग का अनुसरण स्वय बच्चों के लिए भी आवश्यक और उपयोगी है। तुम हमेशा कहा करती हो कि अगर बच्चों का खयाल न होता तो तुम खुशी से मेरे कहने के मुताबिक काम करतीं, मगर मैं कहता हूँ कि अगर हमारे पास सम्पत्ति न होती तो हम लोग इसी ला-परवाही मे जिन्दगी बिता देते, जैसे अब तक हम अपनी जिन्दगी बसर करते थे, क्या कि उस हालत में तो हम सिर्फ अपने ही आपको नुकसान पहुँचाते, मगर अब तो हम बच्चों को भी हानि पहुँचा रहे हैं।

मेरी—मगर मैं क्या करू, जब कि तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

निकोलस—मैं ही क्या करू ? क्या मैं यह नहीं जानता कि वह बदमस्त मनुष्य क्यों बुलाया गया था।? और अलेक्जेण्डरा उस मुहर्रिर को बुलाकर क्यों लाई ? तुम चाहती हो कि मैं जायदाद तुम्हें दे दू, लेकिन मैं नहीं दे सकता। तुम जानती हो कि मैं तुम्हें बीस साल से, जब से हम साथ रहते आये हैं, प्यार करता हूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और तुम्हारा भला चाहता हूँ इसी लिए जायदाद तुम्हारे नाम नहीं कर सकता। यदि मैं दू ही, तो उन किसानों को ही जिनसे मैंने ली है। अच्छा है, मुहर्रिर आही गया है, सब काम अभी हो जायगा।

मेरी—नहीं यह भयानक है। यह निष्ठुरता किस लिए ? यद्यपि तुम इसे पाप समझते हो, फिर भी अपनी जायदाद मेरे हवाले कर दो। (रोती है)

निकोलस—तुम नहीं जानती कि तुम क्या कह रही हो ? यदि अपनी जायदाद तुम्हें दे दूं तो मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। मुझे चला जाना पड़ेगा। किसानों का खून, मेरे नहीं तो तुम्हारे नाम पर चूसा जायगा और वे जेल भेजे जावेंगे। मैं यह देख नहीं सकता। तुम क्या पसन्द करती हो ?

मेरी—तुम कितने निठुर हो ? क्या यही ईसाई-धर्म है ? यह कठोरता है। जिस तरह तुम मुझे रखना चाहते हो मैं उस तरह नहीं रह सकती। मैं अपने बच्चों से छीनकर सारी जायदाद दूसरों को नहीं लुटा सकती, इसीलिए तुम मुझे छोड़ देना चाहते हो। अच्छा वही करो। मैं देखती हूँ कि तुमने मुझे प्यार करना छोड़ दिया, और यह भी जानती हूँ कि क्यों ?

निकोलस—अच्छी बात है—मैं हस्ताक्षर किये देता हूँ, मगर तुम मुझसे असम्भव बात करा रही हो (मेज के पास जाकर सही कर देता है।) तुमने जो चाहा, मैंने कर दिया, मगर मैं इस तरह अपनी जिन्दगी नहीं बिता सकता।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(एक बड़े कमरे में बढ़ईगीरी का सामान रक्खा हुआ है, एक मेज पर कुछ कागज़ात हैं, किताबों की एक अलमारी है, दीवाल से तख्ते टिके हुए हैं, एक बढ़ई और निकोलस बढ़ईगीरी का काम कर रहे हैं।)

निकोलस—(एक तख्ते को रन्दते हुए) यह ठीक है न ?

बढ़ई—(रन्दा हाथ में लेकर) नहीं इसमें खुरदरापन है, रन्दे को इस तरह मजबूती से पकड़िए।

निकोलस—मजबूती से पकड़ो, यह कह देना तो आसान है। मगर मुझ से फिर यह चलता नहीं।

बढ़ई—लेकिन हुजूर, बढ़ई का काम सीखने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? आज-कल योंही इतने बढ़ई बढ़ गये हैं कि हमें पेट भरना मुश्किल हो गया है।

निकोलस—(फिर काम करता है।) मुझे निकम्मा जीवन बिताते लज्जा आती है।

बढ़ई—आपकी हैसियत ही ऐसी है। ईश्वर ने आपको जायदाद दी है।

निकोलस—यही तो भूल है। मैं इस बात को नहीं मानता कि यह जायदाद ईश्वर की दी हुई है। मेरा ख्याल है कि हमने उसे ले लिया है और अपने ही भाइयों से लिया है।

बढ़ई—(आश्चर्य से) यह बात है। लेकिन फिर भी आपको यह काम करने की जरूरत नहीं है।

निकोलस—मैं समझता हूँ कि तुम्हें ताज्जुब मालूम होता है कि एक ऐसे घर में रह कर, जो ग़ैर-जरूरी चीजों से भरा हुआ है, मेहनत-मजदूरी करके कुछ कमाना चाहता हूँ।

बढ़ई—(हँस कर) नहीं; सब कोई जानता है कि भले घराने के लोग हरफ़न-मौला बनना चाहते हैं। हाँ, अब जरा रन्दे को तेजी से चलाइए।

निकोलस—तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करते और हँसते हो, मगर फिर भी मैं कहता हूँ कि पहले इस तरह की जिन्दगी से मुझे शर्म नहीं लगती थी, अब, चूँकि, मैं ईसा की शिक्षा पर विश्वास रखता हूँ, मुझे अपने निकम्मे जीवन पर लज्जा आती है। क्योंकि उनका उपदेश है कि हम सब मनुष्य आपस में भाई भाई हैं।

बढ़ई—अगर आपको उससे शर्म लगती है तो अपनी जायदाद दूसरों को दे डालिए।

निकोलस—मैं करना तो यही चाहता था, मगर कर न सका। मैं वह जायदाद अपनी स्त्री को दे बैठा।

बढ़ई—मगर बहर-हाल आपको ऐसा करना मुमकिन नहीं, क्योंकि आप आराम के आदी हैं।

(दरवाजे के बाहर से आवाज) पिताजी, क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

निकोलस—आओ बेटी, तुम जब चाहो आ सकती हो।

(ल्यूबा का प्रवेश)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(एक बड़े कमरे में बढ़ईगीरी का सामान रक्खा हुआ है, एक मेज पर कुछ कागजात हैं, किताबों की एक अल्मारी है, दीवाल से तख्ते टिके हुए हैं, एक बढ़ई और निकोलस बढ़ईगीरी का काम कर रहे हैं।)

निकोलस—(एक तख्ते को रन्दते हुए) यह ठीक है न ?

बढ़ई—(रन्दा हाथ में लेकर) नहीं इसमें खुरदरापन है, रन्दे को इस तरह मजबूती से पकड़िए।

निकोलस—मजबूती से पकड़ो, यह कह देना तो आसान है। मगर मुझ से फिर यह चलता नहीं।

बढ़ई—लेकिन हुजूर, बढ़ई का काम सीखने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? आज-कल योंही इतने बढ़ई बढ़ गये हैं कि हमें पेट भरना मुश्किल हो गया है।

निकोलस—(फिर काम करता है।) मुझे निकम्मा जीवन बिताते लज्जा आती है।

बढ़ई—आपकी हैसियत ही ऐसी है। ईश्वर ने आपको जायदाद दी है।

निकोलस - यही तो भूल है। मैं इस बात को नहीं मानता कि वह जायदाद ईश्वर की दी हुई है। मेरा ख्याल है कि हमने उसे ले लिया है और अपने ही भाइयों से लिया है।

बढ़ई—(आश्चर्य से) यह बात है। लेकिन फिर भी आपको यह काम करने की जरूरत नहीं है।

निकोलस—मैं समझता हूँ कि तुम्हें ताज्जुब मालूम होता है कि एक ऐसे घर में रह कर, जो गैर-जरूरी चीजों से भरा हुआ है, मेहनत-मजदूरी करके कुछ कमाना चाहता हूँ।

बढ़ई—(हँस कर) नहीं; सब कोई जानता है कि भले घराने के लोग हरफन-मौला बनना चाहते हैं। हाँ, अब जरा रन्दे को तेजी से चलाइए।

निकोलस—तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करते और हँसते हो, मगर फिर भी मैं कहता हूँ कि पहले इस तरह की जिन्दगी से मुझे शर्म नहीं लगती थी, अब, चूंकि, मैं ईसा की शिक्षा पर विश्वास रखता हूँ, मुझे अपने निकम्मे जीवन पर लज्जा आती है। क्योंकि उनका उपदेश है कि हम सब मनुष्य आपस में भाई भाई हैं।

बढ़ई—अगर आपको उससे शर्म लगती है तो अपनी जायदाद दूसरों को दे डालिए।

निकोलस—मैं करना तो यही चाहता था, मगर कर न सका। मैं वह जायदाद अपनी स्त्री को दे बैठा।

बढ़ई—मगर बहर-हाल आपको ऐसा करना मुमकिन नहीं, क्योंकि आप आराम के आदी हैं।

(दरवाजे के बाहर से आवाज) पिताजी, क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?

निकोलस—आओ बेटी, तुम जब चाहो आ सकती हो।

(ल्यूबा का प्रवेश)

ल्यूबा—बन्दगी, जैकब।

बढ़ई—बन्दगी अर्ज है, साहबजादी!

ल्यूबा—बोरिस अपनी पलटन को गये हैं। मालूम नहीं, वह वहाँ क्या कह या कर बैठें? मुझे तो बड़ा भय लगता है। आप क्या कहते हैं?

निकोलस—मैं भला क्या बताऊँ! वह जो मुनासिब समझता है वही करेगा।

ल्यूबा—यह बड़े दुःख की बात है। उन्हें थोड़े ही दिन नौकरी करनी होगी। मगर डर है कि वहाँ जाकर वह अपने समस्त जीवन को बरबाद न करवा लें।

निकोलस—उसने यह अच्छा ही किया कि वह मुझसे मिलने नहीं आया। वह जानता है कि मैं उस सची बात के सिवाय और कुछ नहीं कह सकता कि जिसे वह खुद जानता है। उसने मुझसे कहा था कि उसके इस्तीफ़े देने का केवल यही कारण नहीं है, कि उसकी दृष्टि में इससे बढ़कर नीति-भ्रष्ट नियम-रहित, क्रूर और हिंसक वृत्ति कोई और नहीं है, क्योंकि उसका उद्देश्य ही हत्या करना है, वरन् इस बात को भी भ्रष्टता और नीचता की पराकाष्ठा समझता है कि एक आदमी अपने अफ़सर की आज्ञा को चुपचाप, बिना चूँ चपड़ किये मानने को बाधित किया जाता है—फिर वह आज्ञा कितनी ही कठोर, कितनी ही निर्दय अथवा आत्मा, बुद्धि और विवेक विरुद्ध ही क्यों न हो। बोरिस इन सब बातों को जानता है।

ल्यूबा—मुझे यही तो डर है। वह इन बातों को जानते हैं। कहीं कुछ कर न बैठें।

निकोलस—उसकी आत्मा और आत्मा में रहने वाला परमात्मा उसका फैसला करेगा। अगर बोरिस मेरे पास आता तो मैं उसे सिर्फ एक सलाह देता। मैं बस यही कहता कि कोई ऐसा काम मत करो जिसमें केवल बुद्धि की ही प्रेरणा हो-इससे बढ़कर बुरी बात कोई नहीं है—बस उसी वक्त किसी महत्व के काम में हाथ डालो कि जब तुम्हारा मन, तुम्हारी आत्मा प्राण-पण से उस काम में लग जाने के लिए प्रेरित करे। मिसाल के तौर पर, मुझे ही लो। मैं ईसा मसीह के उपदेश का स्मरण करने के लिए माता पिता स्त्री और बच्चों को छोड़ देना चाहता था। मैंने घर छोड़ भी दिया, किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? मैं वापिस आकर शहर में तुम लोगों के साथ ऐशो आराम से रहने लगा। मेरी इस निरर्थक और लज्जा जनक स्थिति का कारण यही है कि मैं अपनी शक्ति से बाहर का काम करना चाहता था। मैं सादगी के साथ रहकर और अपने हाथ से मेहनत करके खाना चाहता हूँ, किन्तु इस परिस्थिति में कि जहां नौकर और दरवान हैं, किसी तरह की मेहनत-मजदूरी करना एक तरह की बनावट और दिखावा मालूम होता है। देखो न, अभी तक जैकब मुझ पर हँस रहा है।

बढ़ई—मैं क्या हँसूँगा? आप मुझे वेतन देते हैं और पीने के लिए चाय देते हैं, मैं आपका कृतज्ञ हूं।

ल्यूबा—मैं समझती हूँ, शायद यह अच्छा होगा कि मे उनके पास हो आऊँ।

निकोलस—मेरी बेटी, मेरी प्यारी बच्ची, मुझे मालूम है कि तुम्हें यह देखकर बड़ा कष्ट और भय होता है, हाला कि ऐसा होना नहीं चाहिए। तुम डरो मत। ईश्वर सब भला करेगा। जो बात जाहिरा बुरी मालूम होती है, हकीकत मे वही ज्यादा खुशी देती है। तुम्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो मनुष्य इस मार्ग पर चलता है उसे दो बातों में से एक बात पसन्द करनी होती है, और कभी-कभी ऐसा होता है कि ईश्वर और शैतान का पक्ष बिलकुल एक समान होता है, दोनों पलड़े एक-बराबर तुले रहते हैं, और ऐसे ही समय पर मनुष्य को महत्व-पूर्ण निश्चय करना पड़ता है। उस वक्त, किसी तरह का बाहरी हस्त-क्षेप अत्यत भयावह और कष्ट-प्रद होता है। इस वक्त उसकी हालत ऐसी ही है जैसे कोई आदमी किसी तग पगडडी पर एक भारी बोझ ले जाने की कोशिश कर रहा हो और उसकी हालत ऐसी नाज़ुक हो कि अगर कोई ज़रा भी छू दे तो वह मुँह के बल गिरकर हाथ-पैर तोड़ ले।

ल्यूबा—उसे इतना दुःख उठाने की क्या जरूरत है ?

निकोलस—यह बात ऐसी है, जैसे कोई कहे, मा प्रसव-पीड़ा क्यों सहती है ? प्रसव-पीड़ा के बिना सन्तानोत्पत्ति हो ही नहीं सकती और यही हाल आध्यात्मिक जीवन का है। मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। बोरिस सच्चा ईसाई है, और इसी लिए वह स्वतत्र है। अगर तुम खुद अभी उसकी तरह नहीं बन

सकतीं, या उसकी तरह ईश्वर में विश्वास नहीं कर सकतीं तो उसके द्वारा ईश्वर में विश्वास करना सीखो।

मेरी—(दरवाज के पीछे) क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

निकोलस—हाँ, तुम जब चाहो आ सकती हो, आज तो यहां मेरा खूब स्वागत हो रहा है।

मेरी—हमारे पुरोहित, वासिली महोदय, आये हैं। वह बिशप के पास जा रहे हैं और उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया है।

निकोलस—असम्भव है।

मेरी—वह यहीं हैं। ल्यूबा, जाओ, उन्हें बुला तो लाओ। वह तुमसे मिलना चाहते हैं। (ल्यूबा का प्रस्थान) मेरे आने का एक और कारण है। मैं तुमसे वानिया के विषय में बात चीत करना चाहती थी। उसके लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई पड़ते। वह अपना सबक भी याद नहीं करता। मुझे आशा नहीं कि वह इस साल पास हो। और जब मैं उससे कुछ कहती हूँ तो वह मेरे सिर चढ़ता है।

निकोलस—मेरी, तुम जानती हो कि मैं उस प्रकार के जीवन को पसन्द नहीं करता जिस प्रकार तुम लोग अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो। और न उस शिक्षा ही से मुझे सहानुभूति है कि जो तुम बच्चों को दे रही हो। यह मेरे सामने एक भयंकर समस्या है कि क्या मैं बच्चों को इस तरह बरबाद होते हुए देखता रहूँ।

मेरी—तो तुम इसके सिवाय कोई दूसरी बात निश्चित रूप से बताओ। तुम क्या चाहते हो ?

निकोलस—सो, मैं कुछ नहीं कह सकता। मगर मैं इतना जरूर

कहूँगा कि सबसे पहले हमें इस निकृष्ट बनाने वाले सुख-सभोग से छुटकारा पाना चाहिए।

मेरी—ताकि वह लोग किसान बन जाय। यह तो मैं नहीं मान सकती।

निकोलस—तब फिर मुझसे कुछ मत पूछो। जो बातें तुम्हें बुरी मालूम होती हैं, जिनसे तुम्हें दु ख होता है वह बिलकुल स्वाभाविक और अपरिहार्य हैं।

(पुरोहित और ल्यूबा का प्रवेश पुरोहित और निकालस मिलते हैं)

निकोलस—क्या यह सच है कि आपने इन सब बातों से हाथ धो लिया।

पुरोहित—हा, मुझसे अधिक नहीं सहा गया।

निकोलस—मुझे आशा नहीं थी कि यह बात इतनी जल्दी हो जावेगी।

पुरोहित—मगर वास्तव मे मेरे लिए यह बिलकुल असम्भव हो गया था। इस पेशे के अन्दर उदासीन होकर नहीं रह सकते। हमें लोगों की पाप-स्वीकृतिया (Confessions) सुननी पड़तीं, और मत्र देने पड़ते हैं और जब एक बार इस बात का विश्वास होगया कि यह सब असत्य है

निकोलस—हा, तो अब आप क्या करेंगे ?

पुरोहित—मैं अब बिशप के पास जाता हूँ, उसने जवाब-तलब किया है। मालूम होता है वह मुझे जिलावतन करके सालेवेट्स मठ म भेज देगा। पहले तो मैंने सोचा कि मैं आपसे कहीं बाहर भाग जाने के लिए मदद माँगूँ, मगर फिर मैंने

सोचा कि इसमें कायरता प्रकट होगी। बस, मुझे अपनी पत्नी का ख्याल है।

निकोलस—वह कहा है ?

पुरोहित—वह अपने बाप के घर गई है। मेरी सास आई थी, वह मेरे बच्चे को अपने साथ ले गई। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं चाहता हूँ।

(ठहरता है, आँसू रोकने की कोशिश करता है।)

निकोलस—ईश्वर आपकी सहायता करे। क्या आप आज हमारे यहा ठहरेंगे ?

शाहजादी—(कमरे में दौड़ती आती है) आखिर, वही हुआ। उसने नौकरी करने से इन्कार कर दिया और वह गिरफ्तार कर लिया गया। मैं वहा गई थी, मगर मुझे अन्दर नहीं जाने दिया। निकोलस, तुम्हे चलना पड़ेगा।

ल्यूबा—क्या उन्होंने इनकार किया है ? आपको कैसे मालूम हुआ ?

शाहजादी—मै खुद वहा मौजूद थी। आन्द्रीविच ने, जो कौंसिल का मेम्बर है, मुझसे सारा हाल बयान किया। बोरिस ज्यों ही अन्दर गया उसने कह दिया कि न वह नौकरी करेगा और न हलफ़ उठायेगा, गर्जेकि उसने वह सारी बातें कहा कि जो निकोलस ने सिखाई थीं।

निकोलस—शाहजादी ! क्या यह बातें किसी को सिखाई जा सकती हैं ?

शाहजादी—मुझे नहा मालूम, मगर यह ईसाई-धर्म नहीं हो सकता। क्यों बाबा, आपकी क्या राय है ?

पुरोहित—अब मैं पादरी नहीं रहा।

शाहज़ादी—लेकिन बात एक ही है । हा, तुम उनसे सह मत हो। सो यह तुम्हारे लिए तो ठीक है। पर मैं सब बातें इस दशा में नहीं छोड़ सकती। यह कैसा बदबख्त ईसाई-धर्म है, जो लोगों को दुःख देकर तबाह और बरबाद करता है। मैं तुम्हारे इस ईसाई धर्म से घृणा करती हूँ। यह चोचले तुम्हे भले ही अच्छे हों क्यों कि तुम्हारा उनसे कुछ नहीं बिगड़ता। मगर मेरे तो एक ही लड़का है, और तुमने उसको बरबाद कर दिया।

निकोलस—शान्त होओ, शाहज़ादी।

शाहज़ादी—हा, हा, तुम्हीने उसके जीवन को नष्ट किया है। तुमने उसे आफत में फँसाया, इस लिए तुम्हीं को उसकी रक्षा करनी होगी। जाओ और समझाओ कि वह इन सब वाहियात बातों को छोड़ दे। अमीरों के लिए यह सब ठीक हो सकता है, मगर हम लोगों के लिए नहीं।

ल्यूबा—(रोती हुई) पिताजी अब क्या होगा ?

निकोलस—मैं जाता हूँ, शायद मैं कुछ कर सकूं।

(चादर उतारता है)

शाहज़ादी—(कोट पहनते हुए) वह मुझे अन्दर नहीं जाने देंगे, मगर अब हम दोना साथ-साथ जायँगे। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

(एक सरकारी दफ्तर । एक क्लर्क मेज के पास बैठा है और एक सिपाही इधर से उधर घूम रहा है । एक जनरल का अपने सेक्रेटरी के साथ प्रवेश । क्लर्क उठ खड़ा होता है, सिपाही फौजी सलाम करता है)

जनरल—कर्नल कहा है ?

क्लर्क—हुजूर, वह उस नये सिपाही को देखने गये हैं, जो अभी भर्ती हुआ है ।

जनरल—हा, ठीक है, जाओ, उन्हे यहा बुला लाओ ।

क्लर्क—बहुत अच्छा हुजूर ।

जनरल—और तुम क्या नकल कर रहे हो ? नये सिपाही का बयान है न ?

क्लर्क—जी हा, जनाब ।

जनरल—लाओ, जरा मुझे दो ।

(क्लर्क कागज जनरल के हाथ में देकर बाहर जाता है, जनरल अपने सेक्रेटरी को देता है)

जनरल—जरा उसे पढ़िए तो सही ।

सेक्रेटरी—"मुझसे तीन प्रश्न पूछे गये हैं कि (१) मैं कसम क्यों नहीं खाता ? (२) मैं सरकार की आज्ञाओं का पालन क्यों नहीं करता ? (३) किस वजह से मैंने ऐसे शब्द लिखे कि जो न केवल फौज का ही बल्कि उच्च पदाधिकारियों का भी विरोध और अपमान करते हैं । पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि मैं ईसा-मसीह के उपदेश को मानता हूँ, जिसमें कसम खाने की साफ २ मनाही की गई है। देखिए

मेथ्यू की गास्पल में परिच्छेद ५, पद ३३–३७ और जम्स के एपिशेल में परिच्छेद ६५, पद १२

जनरल—नुकताचीनी करता है। अपना मन-माना अर्थ निकालता है।

सेक्रेटरी—(पढ़ना जारी है) "गास्पल में लिखा है, कसम कभी मत खाओ, जो बात है उसके लिए बस हां, बोलो और जो नहीं है उसके लिए सिर्फ नहीं कह दो, और इससे अधिक जो कुछ होता है वह बुरा है। सेंट जेम्स के एपिशेल में है "भाइयो, किसी के सामने आसमान या जमीन की कसम मत खाओ और न किसी दूसरी तरह की कसम खाओ, बस हां के लिए हां कहो और नहीं के लिए नहीं, जिससे तुम लोभ में न फँसो। अव्वल तो बाइबिल में ही बिलकुल साफ तौर पर कसम खाने को मनाई है, लेकिन बाइबिल में अगर ऐसी आज्ञा न भी होती, तो भी, मैं मनुष्य की आज्ञा पालन करने की कसम नहीं खा सकता, क्यों कि ईसाई होने की हैसियत से मुझे हमेशा ईश्वर की मर्जी पर चलना चाहिए और उसकी मर्जी हमेशा ही आदमी की मर्जी के अनुकूल हो, ऐसा नहीं होता।

जनरल—बहस करता है। अगर मेरा बस चलता तो ऐसा कोई आदमी रहने नहीं पाता।

सेक्रेटरी—"मैं उन आदमियों के आज्ञा-पालन करने में इनकार करता हूँ कि जो अपने आपको गवर्नमेन्ट के नाम से पुकारते हैं, क्यों कि

जनरल—कितनी भद्दी गुस्ताखी है ?

सेक्रेटरी—"क्यों कि वे आज्ञायें पाप-मय और दुष्टता-पूर्ण हैं, उनकी आज्ञा है कि मैं फ़ौज मे भरती होऊँ और फौजी शिक्षा प्राप्त कर मनुष्यों की हत्या करने के लिए तैयार हो जाऊँ। हालां कि यह बात पुराने और नये दोनों ही टेस्टामेन्टो में मना की गई है और खुद मेरी आज्ञा उसके विरुद्ध है। तीसरे सवाल

(कर्नल का प्रवेश, जनरल उससे हाथ मिलाता है।)

कर्नल—आप उसका बयान सुन रहे हैं।

जनरल—उसकी गुस्ताखी बेहद बढ़ी हुई है। हां, पढो।

सेक्रेटरी—"तीसरा सवाल है कि किस वजह से मैंने अदालत के सामने ऐसे तीव्र और अरुचिकर शब्दों का प्रयोग किया। इसका जवाब है कि मैंने ईश्वर-सेवा के विचार से और उस के नाम पर जो धोखे-बाजी हो रही है उसकी पोल खोलने के उद्देश्य से ही उनका प्रयोग किया था, और मैं अपने इस विचार और उद्देश्य का आजन्म पालन करूंगा, और इसी लिए।

जनरल—बस, इतना काफी है। मैं इन वाहियात बातों को नहीं सुन सकता। जरूरत है कि इस तरह की बातों को जड-मूल से उखाडकर नष्ट कर दिया जाय। और इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि लोगों में यह बात न फैले और वह बहकने न पावे (कर्नल से) क्या आपने उससे बात-चीत की थी?

कर्नल—मैं अब तक उसी से बातें करता था। मैंने उसे शर्मिन्दा करने की कोशिश की और उसे बताया कि यह हरकत

उसके हक़ में निहायत मुज़िर साबित होगी और उससे कोई फ़ायदा उसे न मिलेगा। इसके अलावा मैंने उसके रिश्तेदारों का भी ख्याल उसे दिलाया। वह बहुत ही उत्तेजित हो गया, मगर अपनी बात पर डँटा रहा।

जनरल—अफ़सोस है, आपने उससे इतनी बातचीत की। हम फ़ौजी लोग हैं, हमें बहस नहीं, काम करना चाहिए। उसे बुलाओ तो इधर।

(सेक्रेटरी और क्लर्क का प्रस्थान)

जनरल—(बैठ जाता है) नहीं कर्नल साहब, यह तरीका नहीं है। इस तरह के लोगों के साथ दूसरी तरह का सलूक करना चाहिए। सड़े हुए अङ्ग को काटने के लिए ज़बरदस्त और पुर असर तरीका इख्तियार करना चाहिए। एक रोगी भेड़ सारे गल्ले में संक्रामक रोग फैला देगी। ऐसे मामलों में किसी तरह लिहाज़ नहीं रखना चाहिए। वह शाहज़ादा है, उसके एक माँ है और एक प्रेमिका है—इन बातों से हमें कोई मतलब नहीं। हमारे सामने तो, बस, वह एक सिपाही है, और हमें सरकार का हुक्म बजा लाना है।

कर्नल—मैंने समझा था कि शायद हमारे समझाने से वह रास्ते पर आ जावे।

जनरल—समझाने से! नहीं, कभी नहीं। सख्ती, बस सख्ती से ही ऐसे लोग राह पर आते हैं। मुझे ऐसे लोगों का तजुर्बा हो चुका है। उसे इस बात का अनुभव करा देना चाहिए कि वह बिलकुल नाचीज़ है, अपदार्थ है—रथ के पहिए

के नीचे वह केवल एक रज-कण है और वह इस रथ की गति मे बाधा नहीं डाल सकता।

कर्नल—अच्छा, हम लोग कोशिश करके देखेंगे।

जनरल—(नाराज होकर) कोशिश करके देखने की जरूरत नहीं है। मुझे इस बात के आजमाने की जरूरत नहीं। मैंने चवालीस वर्ष जार की खिदमत में गुजारे हैं। मैंने जान हथेली पर रखकर खिदमत की है और अब भी कर रहा हूँ। अब यह छोकरा आकर मुझे शिक्षा देना चाहता है। और मेरे सामने धार्मिक लेक्चर झाड़ता है। वह किसी पादरी के पास जाकर ऐसी बातें करे। मेरे सामने तो वह सिपाही, और या फिर एक कैदी है।

(बोरिस का प्रवेश। साथ में दो सिपाही हैं, सेक्रेटरी और क्लर्क पीछे पीछे आते हैं।)

जनरल—(उँगली से दिखा कर) लाओ, इसे उधर खड़ा करो।

बोरिस—मुझे कहीं आने की जरूरत नहीं है। जहाँ जी चाहेगा वहाँ मैं खड़ा रहूँगा, या बैठ जाऊँगा, क्योंकि मैं तुम्हारे शासन को नहीं मानता।

जनरल—चुप रहो। तुम शासन को नहीं मानते। देखो मैं अभी मनवाता हूँ।

बोरिस (एक स्टूल पर बैठ जाता है) तुम्हारा इतना चिल्लाना कितना अनुचित है?

जनरल—इसे उठा कर खड़ा कर दो (सिपाही उसे उठाते हैं।)

बोरिस—हाँ, यह तुम कर सकते हो। तुम मुझे मार डाल सकते हो, मगर तुम मुझसे कुछ मनवा नहीं सकते।

जनरल—खामोश, तुमसे एक बार कह दिया। मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ उसे सुनो।

बोरिस—तुम्हें जो कुछ कहना है उसे मैं बिलकुल नहीं सुनना चाहता।

जनरल—यह पागल है। शफ़ाख़ाने में ले जाकर इसकी जाँच करनी चाहिए।

कर्नल—इसे जेण्डरमीन के दफ्तर में भेज कर जाँच कराने का हुक्म हुआ था।

जनरल—अच्छा, तो इसे वहीं भेज दो। मगर इसे वर्दी पहना दो।

कर्नल—वह पहनता ही नहीं है। ज़ोर करता है।

जनरल—इसे बाँधदो। (बोरिस से) मैं जो कुछ कहता हूँ मेहरबानी करके उसे सुनो। मुझे इस बात की पर्वा नहीं कि तुम्हारी क्या गति होगी, मगर मैं तुम्हारी ख़ातिर तुम्हें सलाह देता हूँ, कि ज़रा सोच समझ देखो। तुम किसी किले में सड़ते रहोगे और किसी को कुछ भी फ़ायदा नहीं पहुँचा सकोगे। इन बातों को छोड़ दो। तुमने बिगड़ कर बातें कीं, इसी लिए मैं भी बिगड़ पड़ा। (कन्धे पर हाथ रखकर) जाओ, क़सम खा लो, और इस वाहियातपन को छोड़ दो। (सेक्रेटरी से) क्या पादरी सा० मौजूद हैं? (बोरिस से) क्यों, क्या कहते हो? (बोरिस खामोश है) तुम उत्तर क्यों नहीं देते? बहतर है, तुम मेरे कहने के मुताबिक काम करो। तुम कोड़ा मार कर डण्डे को नहीं तोड़ सकते। तुम इन विचारों को दिल में रखकर किसी तरह मियाद पूरी कर दो। तुम्हारे साथ बल-प्रयोग नहीं करेंगे। क्यों?

बोरिस—मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। अब मुझे कुछ नहीं कहना।

जनरल—देखो, तुमने लिखा है कि बाइबिल में इस बात का वर्णन है। पादरी लोग इन सब बातों को अच्छी तरह से जानते हैं। तुम उनसे बात-चीत करके निर्णय कर सकते हो। बस यही ठीक है। अच्छा, वन्दे। मैं आशा करता हूँ, कि दुबारा मिलने पर, मैं तुम्हें, जार की फौज में भरती होजाने पर बधाई दे सकूँ गा। पादरी साहब का यहां बुला लाओ।

(प्रस्थान, साथ ही कर्नल और सेक्रेटरी जाते हैं।)

बोरिस—(क्लर्क और सिपाहियों से) देखो, वह तुम्हें किस तरह धोखे में डालते हैं। उनकी बात मत मानो। अपनी बन्दूकें रख दो और नौकरी छोड़कर चले जाओ। वह शायद तुम्हें कोठरी में बन्द करके कोड़े लगायेंगे। लगाने दो। यह कोड़े खाना इतना बुरा नहीं जितना कि इन धोखे-बाजों की नौकरी करना।

क्लर्क—मगर भला, फौज के बिना काम किस तरह चलेगा? यह तो असम्भव है।

बोरिस—यह सोचना हमारा काम नहीं है। हमें तो यही देखना है कि ईश्वर की क्या आज्ञा है और वह हमसे किस बात की आशा रखता है?

एक सिपाही—मगर फिर लोग "ईसाई-फौज" का नाम कैसे लेते हैं?

बोरिस—बाइबिल में इसका कहीं जिक्र नहीं है। यह सब इन लोगों की मन-गढन्त और चालबाजी है।

(क्लर्क के साथ एक जन्डरमी अफ़सर का प्रवेश)

अफ़सर—क्या प्रिन्स-चेरमशेनव नाम का नया सैनिक यहीं है ?

क्लर्क—जी हां, यहीं हैं।

अफ़सर—मेहरबानी करके इधर आइए। क्या आपही वह प्रिन्स बोरिस चेरमशेनव हैं कि जो शपथ खाना अस्वीकार करते हैं।

बोरिस—हां, मैं ही हूँ।

अफ़सर—(बैठता है और सामने बैठ जाने का इशारा करता है।) मेहरबानी करके बैठ जाओ।

बोरिस—मैं समझता हूँ, हमारी बात-चीत बिलकुल बेकार होगी।

अफ़सर—मैं तो ऐसा नहीं समझता। कम से कम आपके हक में बेकार साबित नहीं होगी। देखिए, बात यह है, मुझे सूचना मिली है कि आप फौजी नौकरी करना और कसम खाना अस्वीकार करते हैं, इस लिए आप पर क्रान्तिकारी होने का सन्देह है और मैं इसी बात का अनुसन्धान करना चाहता हूँ। अगर यह बात सच है, तो हमें आपको नौकरी से हटाकर बग़ावत में आपने जैसा हिस्सा लिया उसके मुताबिक आपको कैद या जिला-वतन करना पड़ेगा। और अगर यह बात ठीक नहीं है, तो हम आपको फ़ौजी अफ़सरों के हाथ में छोड़ देंगे। देखिए, मैं आपसे बिलकुल साफ़-साफ़ बातें करता हूँ। और, आशा है, आप भी मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे।

बोरिस—अव्वल तो मैं उन लोगों का विश्वास नहीं कर सकता जो इस तरह की वरदी वगैरः पहनते हैं। दूसरे, आपका

पेशा ऐसा है कि जिसकी मैं इज्ज़त नहीं कर सकता और जिससे मुझे सख्त नफ़रत है। मगर मैं आपके सवालों का जवाब देने मे इन्कार नहीं करता। आप क्या पूछना चाहते हैं ?

अफ़सर—अव्वल तो, आप अपना नाम, पेशा और मज़हब बताइए।

बोरिस—आपको यह सब मालूम है, इस लिए मैं जवाब नहीं दूगा। हा सिर्फ एक सवाल जरूरी है। मैं "कट्टर-ईसाई" नहीं हूँ।

अफ़सर—तब आपका क्या मज़हब है ?

बोरिस—मैंने उसका कोई नाम नहीं रक्खा है।

अफ़सर—मगर फिर भी ?

बोरिस—अच्छा तो, ईसाई-धर्म, 'पर्वत पर के उपदेश' के अनुसार।

अफ़सर—लिख लो (क्लर्क लिखता है) आप किसी जाति या राष्ट्र से सम्बन्ध रखते हैं ?

बोरिस—किसी स कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपने को केवल मनुष्य और ईश्वर का सेवक समझता हूँ।

अफ़सर—तुम अपने को रूसी-राष्ट्र का एक सदस्य क्यों नहीं मानते हो ?

बोरिस—क्योंकि मैं किसी राष्ट्र को स्वीकार नहीं करता।

अफ़सर—स्वीकार नहीं करने से आप का क्या मतलब है ? क्या आप उन्हें नष्ट कर देना चाहते हैं।

बोरिस—बेशक, मैं उन्हें नष्ट कर देना चाहता हूँ और इसके लिए कोशिश कर रहा हूँ।

अफ़सर—(क्लर्क से) इसे भी लिख लो (बोरिस से) आप किस तरह की कोशिश करते हैं ?

बोरिस—मैं धोखेबाज़ी और चालबाज़ियों की पोल खोलता हूँ और सत्य का प्रचार करता हूँ। आप जिस वक्त आये मैं इन सिपाहियों को यही समझा रहा था कि इनकी चालबाज़ियों में मत फँसो।

अफ़सर—मगर समझाने और पोल खोलने के सिवा क्या आप दूसरे तरीकों से भी काम लेना पसन्द करते हैं ?

बोरिस—नहीं, मैं सिर्फ नापसन्द ही नहीं करता, बल्कि हर तरह की हिंसा को पाप समझता हूँ। और सिर्फ हिंसा अथवा बल प्रयोग को ही नहीं, बल्कि हर तरह के गुप्त-कार्यों को और चाल-बाज़ियों

अफ़सर—इसको लिख लो। अच्छी बात है। अब मेहरबानी करके आप बताइए कि आप किस-किस को जानते हैं ? क्या आप आइवशेन्को से परिचित हैं ?

बोरिस—नहीं।

अफ़सर—ज्लीनको ?

बोरिस—मैंने उसका नाम सुना है, मगर कभी उससे मिला नहीं।

(पादरी का प्रवेश, पादरी बूढ़ा है, क्रास पहिने हुए है, हाथ में बाइबिल है। क्लर्क उसके पास आकर आशीर्वाद ग्रहण करता है।)

अफ़सर—बस, इतना ही काफ़ी है। मैं समझता हूँ कि आप

खतरनाक आदमी नहीं हैं, और हमारे शासन विभाग के अन्दर नहीं आते हैं। मैं चाहता हूँ, आप जल्द रिहा हो जायँ। अच्छा वन्दे। (हाथ मिलाता है)

बोरिस—मैं एक बात आप से कहना चाहता हूँ। माफ़ कीजिए, मगर मुझ से कहे बिना नहीं रहा जाता। आपने इस दुष्टता-पूर्ण क्रूर-वृत्ति को क्यों पसन्द किया है? मैं आपको सलाह दूंगा कि आप इसे छोड़ दें।

अफ़सर—(मुस्कराता है) आपकी मेहरबानी का मैं शुक्रिया-अदा करता हूँ। इस बारे में मेरी राय आप से नहीं मिलती। मैं आदावअर्ज करता हूँ। (पादरी से) पादरी सा० मैं अपनी जगह आपको सौंपता हूँ।

(क्लर्क के साथ प्रस्थान)

पादरी—तुम अपने ईसाई-धर्म का पालन न करके और जार तथा मातृ भूमि की सेवा से इनकार करके हाकिमों को क्यों इतना नाखुश करते हो?

बोरिस—चूँकि मैं ईसाई धर्म का पालन करना चाहता हूँ, इस लिए मैं सैनिक नहीं बनना चाहता।

पादरी—क्यों नहीं चाहते हो? देखो, यह लिखा है, "दोस्त के लिए जान दे देना' सच्चे ईसाई का धर्म है।

बोरिस—हाँ, "अपनी जान दे देना" न कि दूसरे आदमी की जान लेना। बस, यही तो मैं करना चाहता हूँ—मैं अपनी जान देने को तय्यार हूँ।

पादरी—ऐ नौजवान आदमी, तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। जान ने सिपाहियों से कहा था—

बोरिस—इससे तो सिर्फ यह साबित होता है कि उन दिनों में भी सिपाही लोग लटते थे और जान ने उन्हें ऐसा करने स मना किया।

पादरी—अच्छा, तुम कसम क्या नहीं खाते ?

बोरिस—आप जानत हैं, बाइबिल में कसम खाना मना है।

पादरी—बिलकुल नहीं। तुम जानते हो, एक बार पाइलेट ने ईसा-मसीह को कसम दिला कर पूछा था कि वह सचमुच ईसा-मसीह हैं। ईसा-मसीह ने जवाब में कहा था, "हा, मैं वही हूँ।" इससे सिद्ध होता है कि कसम खाना मना नहीं है।

बोरिस—तुम्हे, बूढ़े होकर, ऐसी बात करते लज्जा नहीं आती ?

पादरी—मेरा कहा मानो, हठ मत करो। हम और तुम दुनिया को बदल नहीं सकते। बस, शपथ ले लो और आराम से रहो। यह बात जानन का काम गिरजा को ही सौंप दो कि पाप किस में है और किसमें नहीं ?

बोरिस—तुम्हें सौंप दें ! क्या तुम्हें अपने सिर पर इतना पाप का बोझा लादते डर नहीं लगता है ?

पादरी—कैसा पाप ? बचपन से ही मैं धर्म म श्रद्धा रखता हूँ और तीस साल स मैं पादरी का कार्य कर रहा हूँ। इस लिए मुझे कोई पाप लग ही नहीं सकता।

बोरिस—तुम इतने सारे लोगों को जो धोखा देत हो इसका पाप फिर किसको लगता है ? इन बेचारों क दिमाग म क्या भरा हुआ है ? (सिपाहियों की ओर)

पादरी—ऐ नौजवान आदमी, हम तुम कभी इस बात का फ़ैसला

नहीं कर सकते। हमारा काम यही है कि हम अपने से बड़ों की आज्ञा मानें।

ोरिस—मुझे अकेला रहने दो। मुझे तुम पर अफ़सोस आता है और मैं कहता हूँ कि तुम्हारी बातें सुन कर मुझे घृणा होती है। अगर तुम इस जनरल की तरह होते तो कुछ परवा नहीं थी, मगर तुम क्रास लटका कर, बाइबिल लेकर ईसा-मसीह के नाम की दुहाई देकर, ईसा-मसीह की शिक्षा के विरुद्ध मुझे चलाना चाहते हो। जाओ, (उत्तेजित होकर) हटो। मेरे पास से चले जाओ। सिपाहियो, मुझे कोठरी में बन्द कर दो। मैं किसी से मिल न सकूं। मैं थक गया हूँ—बेहद थक गया हूँ।

पादरी—यह बात है, तो मैं जाता हूँ, वन्दे।

(सेक्रेटरी का प्रवेश)

सेक्रेटरी—कहिए ?

पादरी—बड़ा ही हठ धर्मी और बडा ही उद्दण्ड है।

सेक्रेटरी—तो वह शपथ लेने और नौकरी करने से इनकार करता है ?

पादरी—वह किसी तरह राजी नहीं होगा।

सेक्रेटरी—तब फिर उसे शफ़ाख़ाने में भेजना होगा।

पादरी—और कह दिया जायगा कि वह बीमार है ? बेशक यह ठीक होगा, नहीं तो उसकी देखा-देखी और लोग भी बहक जायँगे।

सेक्रेटरी—मुझे हुक्म मिला है कि इसे मस्तिष्क-विकार वाले विभाग में निरीक्षण के लिए रक्खा जाय।

पादरी—ठीक है, आदाब अर्ज करता हूँ। (प्रस्थान)

सेक्रेटरी—(बारिस के पास जाकर) आइए, मुझे हुक्म मिला है कि मैं आपको पहुँचा दूँ

बोरिस—कहा ?

सेक्रेटरी—अव्वल तो शफ़ाखाने में जहा आप शान्ति से रहेंगे और अच्छी तरह से सोच विचार सकेंगे।

बोरिस—मैंने बहुत पहले ही सब-कुछ सोच-विचार लिया है। मगर आइए, हम लोग चलें।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

(शफ़ाखाने का कमरा, हेड डाक्टर, असिस्टण्ट डाक्टर और एक अफसर, रोगी चारपाई पर बैठा है, वार्डर वर्दी पहिने खड़ हैं।)

डाक्टर—देखो, तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिए। मैं खुशी से तुम्हें शफ़ाखाना छोड़ कर चले जाने की आज्ञा देता, मगर तुम खुद ही जानते हो, आजादी तुम्हारे लिए खतरे से खाली नहीं है। अगर मुझे विश्वास होता कि बाहर तुम्हारी अच्छी तरह खबरगिरी

रोगी—आप समझते हैं, मैं फिर शराब पीने लगूँगा ? नहीं, मैं काफी शिक्षा पा चुका हूँ। मगर जो दिन मैं अब यहा गुजारता हूँ वह मुझे हानि ही पहुँचाता है। (उत्तेजित होकर) आपका जो कर्तव्य है आप बिलकुल उसके विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। आप बड़े ही निर्दयी हैं। आप जो करें सो थोड़ा है।

डाक्टर—उत्तेजित मत होओ।

(वार्डरों को इशारा करता है, वह लोग पीछे से आते हैं।)

रोगी—आप स्वतन्त्र हैं, इसलिए आप मजे से बहस कर सकते हैं, मगर हम क्या करें, जब कि हमें पागलों के बीच रहने को मजबूर किया जाता है। (वार्डरों से) तुम क्या करना चाहते हो ? चलो, हटो यहाँ से।

डाक्टर—मैं आप से प्रार्थना करता हूँ, आप जरा शान्त रहिए।

रोगी—मगर मैं आपसे प्रार्थना और अनुरोध करता हूँ कि आप मुझे स्वतन्त्र कर दीजिए।

(चिल्लाता है, और डाक्टर पर झपटता है, मगर वार्डर उसे पकड़ लेते हैं, झगड़ा होता है, उसके बाद उसे बाहर ले जाते हैं)

असिस्टेण्ट-डाक्टर—यह देखिए फिर शुरू हो गया। इस वक्त तो वह आप पर झपट ही पड़ा।

हेड-डाक्टर—नशे का असर है, कुछ भी नहीं किया जा सकता। मगर अब हालत कुछ बेहतर है।

(सेक्रेटरी का प्रवेश)

सेक्रेटरी—आदाबअर्ज है, जनाब।

हेड-डाक्टर—आदाबअर्ज।

सेक्रेटरी—मैं प्रिन्स बोरिस चेरमशेनव नाम के एक मजेदार आदमी को आपके पास लाया हूँ, वह हाल में ही फ़ौज में भरती हुआ है, मगर धार्मिक कारणों से सैनिक-सेवा करना अस्वीकार करता है। वह जेण्डरमीम के पास भेजा गया था, मगर वह कहते हैं कि राजनैतिक षड्यन्त्रों में सम्मिलित न होने के कारण वह हमारे शासन-विभाग में नहीं आता है। पादरी ने भी समझाया, मगर सब बेकार हुआ।

हेड-डाक्टर—(हँस कर) और उसके बाद, हस्ब-मामूल आप उसे यहाँ ले आये कि जिसे शायद आप अपील की सबसे ऊँची अदालत समझते हैं। अच्छा, लाइए।

(असिस्टेण्ट डाक्टर का प्रस्थान)

सेक्रेटरी—कहते हैं कि वह एक उच्च शिक्षा प्राप्त मनुष्य है और एक अमीर लड़की के साथ उसका विवाह होने वाला है। यह बिलकुल अजीब बात है। मैं वास्तव में समझता हूँ कि यह स्थान उसके योग्य ही है।

हेड-डाक्टर—उस पर किसी बात की धुन सवार है।

(बोरिस अन्दर लाया जाता है)

हेड-डाक्टर—आइए, आइए। मेहरबानी करके तशरीफ़ रखिए। हम लोग कुछ बात-चीत करेंगे। (सेक्रेटरी से) आप मेहरबानी करके जाइए। (सेक्रेटरी जाता है)

बोरिस—मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ कि यदि आप मुझे कहीं बन्द करना चाहते हैं तो मेहरबानी करके शीघ्र ही बन्द कर दीजिए ताकि मैं कुछ आराम कर सकूँ।

हेड-डाक्टर—माफ़ कीजिए, हमें नियमानुसार काम करना पड़ता है। बस, मैं थोड़े से ही सवाल करूँगा। आपको क्या हुआ? आपको किस बात की शिकायत है?

बोरिस—मुझे कुछ भी नहीं हुआ है, न मुझे कोई शिकायत है। मैं बिलकुल भला-चंगा हूँ।

हेड-डाक्टर—मगर आप दूसरे लोगों का सा व्यवहार तो नहीं करते?

बोरिस—मैं अपनी आत्मा के आज्ञानुसार व्यवहार करता हूँ।

हेड-डाक्टर—देखिए, आपने फौजी नौकरी करने म इन्कार कर दिया। आखिर, आपने किस वजह से ऐसा किया ?

बोरिस—मैं ईसाई हूँ, इसलिए हत्या नहीं कर सकता।

हेड-डाक्टर—मगर दुश्मनो से अपने देश की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है, और सामाजिक शृंखला का विध्वस करनेवाले को रोकना भी जरूरी है।

बोरिस—कोई हमारे देश पर आक्रमण नहीं कर रहा है, और गवर्नर अथवा राज कर्मचारी ही अधिक सख्या में सामाजिक शृखला को विध्वस करनेवाले होते हैं, बनिस्बत उन लोगो के कि जिन्हें वह पकड कर कैद करते हैं और सताते हैं।

हेड-डाक्टर—जी, आपका मतलब क्या है ?

बोरिस—मेरा मतलब यह है। सब बुराइयों की जड़ शराब है, इसे खुद गवर्नमेंट बेचती है, झूठे और जालिम मजहब का प्रचार भी गवर्नमेंट ही करती है और यह फौजी नौकरी, जो वह मुझसे कराना चाहते हैं और जो लोगों को नीति-भ्रष्ट और पतित बनाने का मुख्य साधन है—यह भी इसी गवर्नमेंट के हाथ में है।

हेड-डाक्टर—तब आपकी राय में गवर्नमेंट अर्थात् शासन-सस्था और राष्ट्र अनावश्यक है।

बोरिस—यह तो मैं नहीं जानता, मगर यह बात मैं खूब अच्छी तरह से जानता हूँ कि मुझे किसी बुराई में भाग नहीं लेना चाहिए।

हेड-डॉक्टर—मगर फिर दुनिया का क्या हश्र होगा ? क्या ईश्वर ने हमें बुद्धि इसीलिए नहीं दी है कि हम दूरदर्शिता से काम लें ?

बोरिस—ईश्वर ने बुद्धि इसलिए भी दी है कि हम इस बात को समझें कि सामाजिक शृंखला की रक्षा हिंसा के द्वारा नहीं बल्कि नेकी के द्वारा करनी चाहिए, और इसलिए भी कि एक आदमी का किसी बुराई में भाग लेने से इन्कार कर देना किसी तरह खतरनाक नहीं हो सकता।

हेड-डाक्टर—अच्छा, अब ज़रा मुझे जाँच करने दीजिए। क्या आप मेहरबानी करके लेट सकते हैं ? (उसको छूकर) यहाँ दर्द तो नहीं होता ?

बोरिस—नहीं।

हेड डाक्टर—और न यहां ?

बोरिस—न।

हेड-डाक्टर—ज़रा गहरी सांस तो लीजिए। अब ज़रा दम साध लीजिए। गुस्ताखी माफ हो। (एक फीता लेकर उसकी पेशानी और नाक नापता है।) अब मेहरबानी करके आप ज़रा आंख बन्द करके चलिए।

बोरिस—आपको यह सब करते हुए शर्म नहीं आती ?

हेड डाक्टर—आप कह क्या रहे हैं ?

बोरिस—यह सब वाहियात है। आप जानते हैं कि मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ और मैं यहां इसलिए भेजा गया हूँ कि मैं उनके दुष्कर्मों में सम्मिलित होना नहीं चाहता। और चूंकि मैंने जो कुछ कहा है वह बिलकुल सच है और उसका वह कोई जवाब नहीं दे सकते, इसीलिए वह मुझे पागल समझने

का बहाना करके लोगों को भुलावे में डालना चाहते हैं। और आप उनकी इन वाहियात बातों में मदद देते हैं। यह बहुत ही घृणित और लज्जास्पद है।

हेड-डाक्टर—तो आप टहलना नहीं चाहते ?

बोरिस—नहीं, कभी नहीं ! आप जबरदस्ती से चाहे जो कराइए, मगर मैं अपने-आप कुछ नहीं करूँगा। (तेजी से) मुझे अकेले मे रहने दीजिए।

(डाक्टर घंटी बजाता है, दो वार्डरों का प्रवेश)

हेड-डाक्टर—उत्तेजित मत होओ। मैं जानता हूँ कि आप बहुत थक गये हैं। क्या आप मेहरबानी करके अपने वार्ड को जायँगे ?

(असिस्टेण्ट डाक्टर का प्रवेश)

असिस्टेण्ट—चेरमशेनव से मिलने के लिए कुछ लोग आये हैं।

बोरिस—कौन लोग हैं ?

असिस्टेण्ट—निकोलस और उनकी लड़की।

बोरिस—मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

हेड डाक्टर—न मिलने की कोई वजह भी नहीं है। उन्हें अन्दर बुलालो। आप उनसे यहीं मिल लीजिए।

(प्रस्थान, पीछे-पीछे असिस्टेण्ट और वार्डर जाते हैं निकोलस और ल्यूबा का प्रवेश, शाहजादी दरवाजे से झाँकती है और कहती है—"तुम चलो, मैं पीछे से आऊँगी")

ल्यूबा—(सीधी बोरिस के पास जाती है, उसका हाथ अपने हाथों में लेकर चूमती है) अभागे बोरिस ?

बोरिस—तुम मेरे लिए दुःख न प्रकट करो। मुझे अत्यन्त हर्ष, अत्यन्त आनन्द और अत्यन्त आल्हाद है। आप कैसे हैं ?

(निकोलस का हाथ चूमता है)

निकोलस—मैं तुमसे खासकर एक बात कहने को आया हूँ। सबसे पहली बात यह है कि ऐसे मामलों में हद से ज्यादा बढ़ जाना काफी दूर न जाने से भी अधिक बुरा है। इस मामले में तुम्हें वही करना चाहिए जो बाइबिल में लिखा है, और पहले से ही इस तरह पेश-बन्दी नहीं करना चाहिए, कि मैं यह कहूँगा या ऐसा करूँगा। "जब वे तुम्हें गिरफ्तार कर लें, तो तुम यह मत सोचो, कि तुम क्या बोलोगे और किस तरह बोलोगे, क्योंकि ऐसे मौक़े पर तुम नहीं बोलते हो बल्कि तुम्हारे स्वर्गीय पिता की आत्मा ही तुम्हारे द्वारा बोलती है।" अर्थात् तुम किसी कामको महज इसलिए मत करो कि तुमने खूब सोच विचार कर उस काम को करने का निश्चय कर लिया है, बल्कि उसी वक्त उस काम में हाथ लगाओ कि जब तुम्हारा अन्तःकरण और तुम्हारा आत्मा उस काम के करने की प्रेरणा करे, और तुम्हें ऐसा महसूस हो कि तुम उस काम को किये बिना रह ही नहीं सकते।

बोरिस—मैंने ऐसा ही किया है। मैंने यह सोचा नहीं था कि मैं नौकरी करने से इनकार कर दूँ, मगर जब मैंने यह धोखेबाजियाँ और पुलिस की चालाकियाँ देखीं, जब मुझे न्याय की नृशंसता और अफ़सरों की निरंकुशता मालूम हुई तब मैंने जो कुछ कहा वह मुझसे कहे बिना रहा नहीं गया। पहले, शुरू शुरू में तो, मुझे भय लगा, मगर बाद को तो मेरा दिल हिम्मत और खुशी से भर गया।

(ल्यूबा बैठ जाती है और रोती है)

निकोलस—सब से मुख्य बात यह है कि प्रशंसा के लिए और लोगों की सुसम्मति प्राप्त करने के लिए कोई काम न करना। अपने बारे में तो मैं साफ़ तौर से कहता हूँ कि अगर तुम इसी वक्त शपथ लेकर नौकरी मे भरती हो जाओ, तो मैं तुम्हें पहले से किसी तरह कम नहीं, बल्कि, अधिक ही प्यार करूँगा और पहले से अधिक आदर की दृष्टि से देखूँगा, क्योंकि बाह्य-जगत में जो कुछ होता है वह महत्व-पूर्ण नहीं है, महत्व तो उसी का है कि जो आत्मा के अन्दर विस्फूर्ति-मय विकास होता है।

बोरिस—बेशक, क्योंकि आत्मा के अन्दर जो कुछ होता है, उसका प्रभाव पढ़कर बाह्य-जगत् में परिवर्तन अवश्य होगा।

निकोलस—मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। तुम्हारी माँ आई हैं। वह बहुत परेशान हैं। वह जो कुछ कहती हैं, अगर तुम कर सकते हो तो करो—बस, यही मैं तुमसे कहना चाहता था।

(नेपथ्य म रोने की आवाज, एक पागल अन्दर घुस आता है। वार्डर उसे पकड़ ले जाते हैं।)

ल्यूबा—कितनी भयानक जगह है! और तुम्हे यही रहना होगा! (रोती है)।

बोरिस—मुझे इस बात का डर नहीं है और सच पूछो तो अब मुझे किसी बात का डर नहीं रहा। मेरा दिल ख़ुशी से भरा हुआ है, बस, मुझे तुम्हारा ही ख्याल है। क्या तुम मेरी ख़ुशी बढ़ाने में सहायता दोगी?

ल्यूबा—क्या मैं यह देख कर ख़ुश हो सकती हूँ?

निकोलस—नहीं, खुश नहीं, खुश होना असम्भव है। मैं खुद खुश नहीं हूँ। मैं उसकी वजह से दुखी हूँ और खुशी से उसकी जगह लेने को तैयार हूँ। मगर, यद्यपि मैं दुखी हूँ, फिर भी मैं जानता हूँ कि इसमें भलाई है।

ल्यूबा—हो सकती है। मगर वह इन्हें छोड़ेंगे कब ?

बोरिस—यह कोई नहीं कह सकता। मैं तो भविष्य का ध्यान भी नहीं करता। वर्तमान ही बहुत सुखदायक है और तुम उसे और भी सुखदायक बना सकती हो।

(शाहजादी का प्रवेश)

शाहजादी—मैं अधिक देर नहीं ठहर सकती। (निकोलस से) क्या तुमने इसे समझाया ? वह राजी है न ? बोरिस, मेरे लाल, जरा मेरी तरफ देख, मुझ पर रहम कर। तीस वर्ष से मैं तेरा मुँह देख कर जीती हूँ। मैंने पाल पोस कर इतना स्याना किया, और अब, जब कि सब ठीक-ठाक हो गया, तू निर्मोही होकर हम सब को छोड़ता है। जेलखाना और बेइज्जती ! अरे नहीं, बोरिस !

बोरिस—मा, मेरी बात सुनो।

शाहजादी—(निकोलस से) तुम कहते क्या नहीं ? तुमने ही इसे बरबाद किया है और तुम ही इसे समझाओ। यह सब चोंचले तुम्हारे लिए ठीक है। ल्यूबा, कुछ बोलो। इसे समझाओ तो सही।

ल्यूबा—मैं कुछ नहीं बोल सकती।

बोरिस—सुनो, मा, दुनिया में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो बिलकुल ही असम्भव हैं। मैं फौजी नौकरी नहीं कर सकता।

शाहज़ादी—तुम समझते हो कि तुम नहीं कर सकते। यह सब वाहियात है। सभी ने फौजी नौकरी की है और अब भी कर रहे हैं। तुमने और निकोलस ने मिल कर एक नई तरह का ईसाई-धर्म निकाला है। यह ईसाई-धर्म नहीं, बल्कि शैतानी-सिद्धान्त है जो सब को दु:ख देता है।

बोरिस—जो कुछ बाइबिल में लिखा है, वही हमारा मत है।

शाहज़ादी—बाइबिल में यह कुछ नहीं है और अगर है तो वह मूर्खता-पूर्ण है। मेरे प्यारे बोरिस! मुझ पर रहम करो। (गर्दन से लिपट कर रोती है) मेरा सारा जीवन दु:खमय है। मेरे जीवन में केवल एक ही आशा और सुख की किरण है, तुम उसी को नष्ट किये डालते हो। बोरिस मुझ पर दया करो।

बोरिस—मा, यह मुझे बहुत ही कठिन और असह्य है। मगर, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?

शाहज़ादी—देखो, अब इन्कार मत करो। कह दो, तुम नौकरी करोगे।

निकोलस—कह दो, तुम इस पर विचार करोगे। और तुम ज़रूर इस पर एक बार विचार करना।

बोरिस—अच्छी बात है। मगर मा, तुम्हें भी मुझ पर तरस खाना चाहिए। यह मेरे लिए असह्य है। (नेपथ्य में फिर रोने की आवाज) तुम जानती हो कि मैं पागलखाने में हूँ और डर है कि कहीं सचमुच ही पागल न हो जाऊँ।

(हेड डाक्टर का प्रवेश)

हेड वार्डर—श्रीमती जी इसका खराब असर हो सकता है। आपका लड़का बहुत ही उत्तेजित अवस्था में है। मैं समझता हूँ कि इस मुलाकात को खत्म करना चाहिए। आप बृहस्पतिवार और रविवार को मिलने के लिए आ सकती हैं। मेहरबानी करके बारह बजे से पहले आइए।

शाहज़ादी—अच्छी बात है, अच्छी बात है, मैं जाती हूँ। बोरिया, मुझ पर रहम खाकर इस पर फिर से विचार करो और गुरुवार को खुश-ख़बरी सुनाने के लिए तैयार रहना।

निकोलस—(बोरिस से हाथ मिला कर) ईश्वर का नाम लेकर और यह समझ कर कि जैसे तुम कल ही मरने वाले हो, इस विषय पर फिर से विचार करके देखो। सत्य निर्णय पर पहुँचने का यही मार्ग है। अच्छा, वन्दे।

बोरिस—(ल्यूबा के पास आकर) और तुम मुझसे क्या कहती हो?

ल्यूबा—मैं झूठ नहीं बोल सकती, और मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्यों अपने को और दूसरे सब लोगों को दुःख देते और सताते हो। तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं—और मैं तुम्हें कुछ कह नहीं सकती।

(रोती हुई बाहर जाती है। बोरिस के सिवाय सब का प्रस्थान)

बोरिस—(अकेला) मोह कितना कठिन, कितना असत्य है! ईश्वर मेरी सहायता करो। (प्रार्थना करता है)

(परदा गिरता है)

चौथा अंक

पहला दृश्य

(एक साल बाद निकोलस के मास्को वाले घर में नाच का इंत-
जाम हो रहा है। पियानों के चारों तरफ प्यादे गमले
रखते हैं। मेरी, एक शानदार रेशमी पोशाक पहने
अलेक्जेण्डरा के साथ आती है।)

मेरी—बॉल? नहीं, नहीं, दिल बहलाने के लिए कुछ नाचना गाना होगा। नौजवानों के लिए एक भोज भी होना चाहिए। मेरे बालकों ने जब से मेकफ वाले नाटकों में पार्ट लिया था तब से उन्हें दूर कहाँ नाच-पार्टियों में जाने के लिए निमंत्रण आते हैं। निमंत्रणों के बदले मुझे भी तो एक बार उन्हें निमन्त्रित करना चाहिए।

अलेक्जेण्डरा—मुझे भय है, निकोलस इसे पसन्द नहीं करता।

मेरी—इसके लिए भला मैं क्या करूँ? (प्यादे से) उसे इधर रक्खो। (अलेक्जेण्डरा से) ईश्वर जानता है, मेरी खुशी इसी में है कि मैं उन्हें सुखी देखूँ और किसी तरह का रंज न होने दूँ। मगर मैं देखती हूँ कि अब वह इन बातों पर इतना जोर नहीं देते।

अलेक्जेण्डरा—नहीं, नहीं, सिर्फ अपने दिल की बात अब उस तरह जाहिर नहीं करता है। भोजन के बाद जिस वक्त वह

अपने कमरे में चला गया, मैंने देखा कि वह बहुत ही अप्रसन्न और असन्तुष्ट था।

मेरी—मैं क्या कर सकती हूँ? आखिर, हम आदमी हैं और हमें आदमियों की तरह रहना होगा। हमारे सात बच्चे हैं, अगर घर में उनके हँसने खेलने और जी बहलाने का कोई इन्तज़ाम न होगा तो ईश्वर जाने वह क्या न कर उठायेंगे। खैर, ल्यूबा की तरफ़ से मैं अब बिलकुल निश्चिन्त और सन्तुष्ट हूँ।

अलेक्ज़ेण्डरा—क्या सब तय हो गया? क्या उसने विवाह का प्रस्ताव किया था?

मेरी—हाँ, बस तय ही समझिए। वह उससे बोला था और ल्यूबा ने स्वीकार कर लिया।

अलेज़ेण्डरा—इससे उसके दिल को और भी चोट पहुँचेगी।

मेरी—वह सब जानते हैं, उनसे कुछ छिपा थोड़े ही है।

अलेक्ज़ेण्डरा—वह उसे पसन्द नहीं करता है।

मेरी—(प्यादे से) फल को अलमारी में रख दो। किसे पसन्द नहीं करता? अलेक्ज़ेण्डर मिकालोविच को? जी, वह उसे कभी पसन्द नहीं कर सकते, क्योंकि वह उनके प्रिय सिद्धान्तों के खण्डन की जीती-जागती मूर्ति है। वह बहुत ही हँस-मुख, नेक और दयालु-प्रकृति है और दुनिया के रंग-ढंग को अच्छी तरह जानता है। मगर बोरिस बेचारा शानव! ओह, उसके मारे तो मुझे नींद नहीं आती, स्वप्न देख कर सोते से चौंक उठती हूँ। मालूम नहीं, उस बेचारे की क्या गति हुई?

अलेक्जेण्डरा—लिसा उसे देखने गई थी। वह (बोरिस) अब भी वहीं है। वह कहती है कि बोरिस बहुत ही दुबला हो गया है और डाक्टरों को उसकी जान जाने और दिमाग में खलल पड जाने का डर है।

मेरी—हाँ, उनके विचारों के ही वजह से उसने अपनी जिन्दगी को कुर्बान कर दिया है। भला, उसके जीवन को नष्ट करने से क्या फ़ायदा है। मैं तो इसे कभी पसन्द नहीं करती।

(पियानो बजाने वाले का प्रवेश)

मेरी—क्या आप पियानो बजाने के लिए आये हैं?

पियानोवाला—हाँ, मैं पियानो बजाने वाला हूँ।

मेरी—मेहरबानी करके बैठ जाइए। अभी कुछ देर है। थोड़ी चाय पीजिए न?

पियानोवाला—नहीं, इस वक्त तो माफ़ कीजिए (पियानो के पास जाता है।)

मेरी—मैं इन बातों को पसन्द नहीं करता। मैं बोरिस को चाहती थी, मगर फिर भी वह ल्यूबा के योग्य वर नहीं था—खास तौर से जब वह उनके कहे के मुताबिक काम करने लगा।

अलेक्जेण्डरा—मगर फिर भी उसके विश्वास की दृढता को देख कर आश्चर्य होता है। इस वक्त वह कैसी मुसीबतें सह रहा है? कर्मचारी कहते हैं कि जब तक वह सैनिक सेवा करना अस्वीकार करेगा तब तक वह या तो उसी जगह बन्द रक्खा जायगा, या, फिर किसी किले के तहखाने में डाल दिया जायगा। मगर उसकी जबान से यही जवाब निकलता

है। लिसा कहती है कि इस हालत में भी वह बहुत प्रसन्न और आनन्द से परिपूर्ण है।

मेरी—केवल अन्ध-विश्वास है। यह देखो, अलेक्जेण्डर मिकालोविच आ गये।

(अलेक्जेण्डर मिकालोविच का प्रवेश)

मिकालोविच—मालूम होता है, मैं बहुत जल्दी आ गया हूँ।
(दोनों महिलाओं के हाथ चूमता है।)

मेरी—अच्छा ही हुआ।

मिकालोविच—ल्यूबा कहाँ है? उन्होंने निश्चय किया है कि आज खूब नाच कर गये वक्त की पूर्ति करेंगी और मैंने आज उन्हें सहायता देने का वचन दिया है।

मेरी—वह महफ़िल के इन्तजाम में लगी हुई है।

मिकालोविच—तो मैं जाकर उनकी मदद कर सकता हूँ?

मेरी—जरूर, आप शौक से जाइए।

(मिकालोविच जाना चाहता है। ल्यूबा का प्रवेश, उसके हाथ में कुर्सी की गद्दियाँ और कुछ फीते हैं)

ल्यूबा—ओहो, तुम आ गये, बड़ी अच्छी बात है, तुम मुझे मदद दे सकते हो। बैठकखाने में तीन गद्दियाँ और हैं, उन्हें जाकर ले आओ।

मिकालोविच—मैं अभी दौड़ कर जाता हूँ।

मेरी—देखो ल्यूबा मेहमान लोग आनेवाले हैं, दोस्त लोग इस बारे में सवाल करेंगे। क्या मैं उन लोगों को सूचना दे दूँ?

ल्यूबा—नहीं, माँ, नहीं। लोग सवाल करेंगे तो करने दो। पिता जी इसे पसन्द नहीं करेंगे।

मेरी—मगर वह जानते हैं, क्योंकि अब तक वह सब समझ गये होंगे। और फिर किसी न किसी वक्त उनसे कहना तो होगा ही। मैं समझती हूँ कि आज ही इस विषय की सूचना दे दें तो अच्छा होगा।

ल्यूबा—नहीं, नहीं, माँ, ऐसा न करना। इससे रंग में भंग हो जायगा। नहीं, इस विषय में तुम अभी कुछ न कहना।

मेरी—जैसी तुम्हारी मर्जी।

ल्यूबा—अच्छी बात है तो, मगर नाच खतम होने के बाद, दावत के ठीक शुरू में।

(मिकालोविच का प्रवेश)

ल्यूबा—क्यों, सब ले आये न ?

मेरी—मैं जाकर जरा बच्चों को देखती हूँ।

(अलेक्जेण्ड्रा के साथ प्रस्थान)

मिकालोविच—(तीन गद्दियाँ लिये हुए है, जिन्हें वह ठोडी से सम्हालता है और रास्ते में कुछ चीजें गिराता जाता है) तुम तकलीफ न करो। ल्यूबा, रहने दो मैं उन्हें उठा लूँगा। तुमने गुलदस्ते तो बहुत से बनाये हैं। बस मैं आज ठीक तरह से नृत्य में भाग ले सकूँगा। वानिया इधर आओ।

वानिया—(बहुत से फूल और गुलदस्ते लिये हुए) यह लो, मैं सब उठा लाया हूँ।

ल्यूबा—मैंने और मिकालोविच ने आज शर्त बदी है, देखें कौन जीतता है।

मिकोलोविच—तुम्हारे लिए बड़ी आसानी है, क्योंकि तुम सब लोगों को जानते हो। मगर मुझे तो पहले पहल युवती

महिलाओं को प्रसन्न करना होगा। इसके मानी यह है कि दौड़ने से पहले ही तुम चालीस कदम आगे हो।

वानिया—मगर तुम "भावी वर" हो और मैं बालक हूँ।

मिकालोविच—नहीं भाई, मैं अभी "भावी वर" नहीं हूँ, और मैं बालक से भी गया-गुज़रा हूँ।

ल्यूबा—वानिया! ज़रा मेरे कमरे से गोंद, सुई और कैंची तो ले आओ। मगर मेहरबानी करके कोई चीज़ मत तोड़ डालना।

वानिया—मैं सब चीज़ें तोड़ डालूँगा। (भाग जाता है)

मिकालोविच—(ल्यूबा का हाथ थाम कर) ल्यूबा इसे चूम सकता हूँ? (उसका हाथ चूम कर) मैं बहुत ही सुखी हूँ। प्यारी ल्यूबा, क्या मेरी आशा पूरी होगी? क्या तुम मुझे स्वीकार करके अपना दास बनाने की कृपा करोगी? नाच के वक्त हमें बात करने का मौक़ा मिलेगा? क्या मैं अपने घरवालों को तार दे दूँ कि मेरी प्रार्थना स्वीकृत हो गई और मैं बहुत ही सुखी हूँ।

ल्यूबा—हाँ, आज रात को।

मिकालोविच—बस, एक बात और है। निकोलस साहब को यह कैसा लगेगा? क्या तुमने उनसे कह दिया है?

ल्यूबा—नहीं, मैंने उनसे कहा नहीं है, मगर मैं अब कह दूँगी। वह उसी तरह उदासीन भाव से उसे सुन लेंगे। जिस तरह कि वह अब खानदान के और सब कामों को देख सुन लेते हैं। वह यही कहेंगे, "जैसा तुम्हें अच्छा लगे वैसा करो।" मगर इसमें शक नहीं कि उनके दिल को चोट लगेगी।

मिकालोविच—क्योंकि मैं चेरमशनव नहीं हूँ।

ल्यूबा—हाँ, उनको खातिर अभी तक मैं अपने दिल को दबाये और धोखा देती रही। यह इसलिए नहीं कि उनके प्रति मेरा प्रेम कम हो गया है बल्कि इसलिए कि मैं झूठ नहीं बोल सकती। वह खुद ऐसा कहते हैं। मैं चाहती हूँ कि इसी तरह जीवन बिताऊँ।

मिकालोविच—और जीवन ही एक सत्य है। हाँ, चेरमशेनव का क्या हाल है?

ल्यूबा—(उत्तेजित भाव से) मेरे सामने उनका नाम मत लो। मैं उन्हें दोषी ठहराना चाहती हूँ—उस वक्त दोषी ठहराना चाहती हूँ, जब वह बेचारे मुसीबतें उठा रहे हैं, और जानती हूँ कि यह सब इसलिए है कि मैं उनकी अपराधिनी हूँ। बस, मैं इतना जानती हूँ कि मेरे दिल में उनके प्रति एक तरह का प्रेम है, और मैं समझती हूँ कि वह प्रेम पहले के प्रेम से कहीं अधिक सच्चा और वास्तविक है।

मिकालोविच—ल्यूबा, क्या यह सत्य है?

ल्यूबा—तुम मुझसे यह कहलाना चाहते हो कि मैं तुम्हें उस सच्चे प्रेम के साथ प्यार करती हूँ? मैं यह नहीं कहूँगी। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, मगर यह प्यार दूसरी तरह का है—यह आदर्श प्रेम नहीं है। वास्तव में न तो यही आदर्श प्रेम है और न ही वह। अगर किसी तरह इन दोनों का मिश्रण हो जाता तभी, मैं समझती हूँ सच्चे प्रेम का आनन्द आता।

मिकालोविच—नहीं, नहीं, मुझे जो कुछ मिला है, मैं उसी में सतुष्ट हूँ (ल्यूबा का हाथ चूमता है) ल्यूबा!

ल्यूबा—(उसे हटा कर) नहीं, जल्दी से इन्हें छाँट लेना चाहिए। लोग आने लगे हैं।

(शाहजादी, टानिया, और एक छोटी लड़की का प्रवेश)

ल्यूबा—बैठिए माँ अभी आती हैं।

शाहजादी—क्या हमीं लोग सबसे पहले आये हैं ?

मिकालोविच—कोई न कोई तो सबसे पहले आवेगा ही।

स्ट्यूपा—कल रात मैं समझा था इटेलियन सिनेमा में, तुमसे जरूर मुलाकात होगी।

टानिया—हम लोग चाची के यहाँ गये थे इसलिए नहीं आ सके।

(विद्यार्थी, महिलायें मेरी और एक काउन्टस आती है।)

काउन्टेस—क्या हम लोग निकोलस साहब से नहीं मिल सकते ?

मेरी—नहीं, वह पढ़ना छोड़ कर हमारी महफ़िल में शरीक नहीं होते।

मिकालोविच—अच्छा अब शुरू कीजिए। (सारंगी बजाता है, नाचने वाले अपनी जगह आकर नाचते हैं)।

अलेक्ज़ेण्ड्रा—(मेरी के पास जाकर) वह बहुत ही उत्तेजित हो गया। वह बोरिस से मिलने गया था और लौट कर आया तो देखा कि यहाँ महफ़िल लगी हुई है। वह चला जाना चाहता है। मैं उसके दरवाजे तक गई थी और उसे अलेक्ज़ेण्डर पेट्रोविच से बातें करते हुए देखा।

मिकालोविच—महिलाओ, तैयार हो जाइए, सज्जनो आगे बढ़ो।

अलेक्ज़ेण्ड्रा—उसने निश्चय कर लिया है कि इस घर में रहना उसके लिए असम्भव है, वह घर छोड़ कर जा रहा है।

मेरी—आह, यह आदमी कितना जालिम है ? (प्रस्थान)।

दूसरा दृश्य

(निकोल्स का कमरा, सगीत की आवाज दूर पर सुनाई पडती है। निकोल्स ओवर कोट पहने हुए है। मेज पर एक खत रख देता है। अलेक्जेण्डर पेट्रोविच फट कपडे पहने उसके साथ है।)

अलेक्जेण्डर पेट्रोविच—आप कुछ चिन्ता न करें, हम लोग काकेशिया तो बिना एक पैसा खर्च किये जा सकते हैं, और वहाँ आप कयाम कर सकते हैं।

निकोलस—तूला तक हम रेल पर सफर करेंगे और वहाँ से पैदल चलेंगे। अच्छा, मैं तैयार हूँ। (खत को मेज के बीच में रखकर दरवाज तक जाता है, वहा मेरी को खडा देखता है।) अरे, तुम यहा क्यों आगई ?

मेरी—क्यों आगई ? तुम्हें इस बज्र निठुराई से रोकने के लिए। तुम यह क्या कर रहे थे ? घर क्यों छोडे जाते हो ?

निकोलस—इसीलिए कि मैं इस तरह नहीं रह सकता। मुझसे यह बीभत्स पतित जीवन नहीं सहा जाता।

मेरी—यह तो बहुत ही दु:खप्रद है। मेरा जीवन—जिसे मैंने तुम्हारी और बच्चों की सेवा के लिए ही अर्पण कर दिया, अब एक-बारगी तुम्हें बीभत्स और पतित मालूम पड़ने लगा है। (अलेक्जेण्डर पेट्रोविच को देखकर) कम-से-कम इस आदमी को तो बाहर भेज दो, मैं नहीं चाहती कि कोई हमारी बातें सुने।

अलेक्जेण्डर पेट्रोविच—आप लोग बातें कीजिए, मैं जाता हूँ।

निकोलस—अलेक्जेण्डर पेट्रोविच, जरा बाहर ठहरो, मैं अभी आता हूँ।

(अलेक्जेण्डर पेट्रोविच का प्रस्थान)

मेरी—भला, तुम्हारा और इसका क्या मेल है? वह तुम्हारी स्त्री से भी बढ़कर तुम्हें प्यारा क्यों है? कुछ समझ में नहीं आता। और तुम जा कहा रहे हो?

निकोलस—मैंने तुम्हारे लिए एक खत लिखकर रख दिया है। मैं बोलना नहीं चाहता था, क्यों कि यह मेरे लिए बहुत ही मुश्किल हो जाता है। लेकिन अगर तुम शान्ति से सुनना चाहती हो तो मैं शान्ति के साथ तुम्हें बताने की कोशिश करूगा।

मेरी—नहीं, मैं यह कुछ नहीं समझती। तुम अपनी पत्नी को, जिसने अपना सर्वस्व तुम्हारे लिए निछावर कर दिया हो, क्यों दुख देते हो और सताते हो? क्यों उससे घृणा करते करते हो? मुझे बताओ, क्या मैं कभी बॉल-नाच-पार्टी में जाया करती हूँ, या मैंने और कोई बुरी बात की है। मेरा सारा जीवन परिवार के कामों में ही लग रहा है। मैंने बच्चों को खुद ही दूध पिलाया, उनकी परवरिश की और पिछले साल उनकी पढ़ाई और घर के इन्तजाम का सारा बोझ भी मेरे पर आन पड़ा है।

निकोलस—(बात काट कर) मगर यह सब तुम्हारे सिर पर इसलिए पड़ा कि तुम मेरे कहने के अनुसार नहा रहना चाहतीं।

मेरी—मगर यह तो बिलकुल असम्भव है। चाहे किसमें पूछ देखो। यह असम्भव था कि बच्चों को अशिक्षित रहने दिया

जाय, जैसा कि तुम रखना चाहते थे, और यह मेरे लिए बहुत कठिन था कि मैं धोबी और रसोइये का काम खुद करू।

निकोलस—यह तो मैंने कभी नहीं कहा।

मेरी—खैर, उसका मतलब कुछ इसी तरह का था। देखो, तुम ईसाई हो, तुम दूसरों के साथ नेकी करना चाहते हो और तुम कहते हो कि सब आदमियों को प्यार करते हो, लेकिन उस बिचारी औरत को क्यों सताते हो, जिसने जन्म भर तुम्हारी सेवा मे बिताया है।

निकोलस—मैं तुम्हें सताता किस तरह हूँ ? मैं तुम्हे प्यार करता हूँ, मगर

मेरी—तुम मुझे छोड़कर चले जा रहे हो। यह सताना नहीं तो और क्या है ? यह सुनकर सब लोग क्या कहेंगे ? बस यही कहेंगे कि या तो मैं खराब औरत हूँ और या तुम पागल हो।

निकोलस—अच्छा, यही समझलो कि मे पागल हूँ, मगर मुझसे इस तरह नहीं रहा जा सकता।

मेरी—मगर इसमें ऐसी भयानक बात कौनसी है ? अगर साल में एक बार (और सिर्फ एक बार—क्योंकि मुझ डर था कि तुम उसे पसन्द नहीं करोगे) मैंने एक पार्टी, दी और वह भी बहुत छोटी और सादीसी, जिसमें सिर्फ मानिया और वारवरा वासिलेवना को ही बुलाया तो वह भी तुम्हे पसन्द न आया। उसे तुम इतना बड़ा अपराध समझते हो कि जिसके लिए मेरी बेइज्जती और बदनामी होगी। और सिर्फ बेइज्जती ही नहीं, सबसे बुरी बात तो यह है कि अब तुम मुझे प्यार

नहा करते। तुम औरों का प्यार करते हो, सारी दुनिया को चाहते हो, और उस शराबी अलेक्जेण्डर पिट्रोविच तक को प्यार करते हो, दुनिया भर में एक मैं ही ऐसी बुरी, बद किस्मत और गई-गुजरी हूँ कि जिसे तुम प्यार करना नहीं चाहते ? तुम मुझे प्यार करो या न करो, मगर मैं तुम्हें अब भी चाहती हूँ। और तुम्हारे बगैर जी नहीं सकती। अरे निर्मोही ! तुम यह क्या करते हो ? क्यों मुझे छोड़ते हो ?

(रोती है)

निकोलस—मगर तुम मेरे जीवन—मेरे आध्यात्मिक जीवन को समझना भी तो नहीं चाहतीं।

मेरी—मैं समझना चाहती हूँ, मगर नहीं समझ पाती। मैं तो देखती हूँ कि तुम्हारे ईसाई धर्म ने तुम्हें मुझसे और बच्चों से घृणा करना सिखला दिया है, मगर मेरी समझ में नहीं आता कि किस लिए ?

निकोलस—तुम देखती हो कि दूसरे लोग जरूर समझते हैं।

मेरी—कौन ? अलेक्जेण्डर पिट्रोविच जो तुम से रुपये पाता है।

निकोलस—वह और दूसरे लोग भी। टानिया और वासिली साहब। लेकिन अगर कोई भी नहीं समझता तो इससे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मेरी—वासिली साहब अपने किये पर पछताते हैं और टानिया इस वक्त भी स्ट्यूपा के साथ नाच रही है।

निकोलस—मुझे यह सुन कर दुःख हुआ, मगर इससे स्याही सफेदी में नहीं बदल जाती। मैं अपने जीवन को नहीं बदल सकता। मेरी ! तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है। मुझ जाने दो

मैंने कोशिश की कि तुम्हारे जीवन में भाग लेते हुए मैं उन सिद्धान्तों का भी समावेश करूँ कि जो मेरे लिए बहुत आवश्यक और प्रिय हैं, मगर मैं देखता हूँ कि यह असम्भव है। इसका नतीजा यही है कि मुझे और तुम्हें दोनों को दुःख होता है। इससे मुझे केवल दुःख ही नहीं होता है, बल्कि मैं जिस काम को करना चाहता हूँ वह खराब हो जाता है। हर एक आदमी, यहाँ तक कि यह अलेक्जेण्डर पिट्रोविच तक, यह कह सकता है कि मैं मक्कार हूँ—मैं बातें बघारता हूँ, मगर कुछ करके नहीं दिखाता। मैं सादगी और गरीबी की शिक्षा देता हूँ, मगर ऐशो आराम से रहता हूँ और बहाना यह करता हूँ कि मैंने अपनी जायदाद स्त्री के नाम लिख दी है।

मेरी—तो तुम्हें डर इस बात का है कि लोग क्या कहेंगे? सच-मुच तुम इस इन लोकापवाद की अवहेलना करके ऊँचे नहीं उठ सकते।

निकोलस—मुझे इसका भय नहीं है कि लोग क्या कहेंगे—गो उनकी बातें सुनकर मुझे शर्म जरूर लगती है। मगर मुझे भय इस बात का है कि मैं ईश्वर के काम को खराब कर रहा हूँ।

मेरी—यह तो तुम्हीं अक्सर कहते थे कि ईश्वर अपनी इच्छा को मनुष्यों के विरोध करने पर भी पूरा करके छोड़ता है। मगर इससे कोई मतलब नहीं। बोलो, तुम मुझसे क्या कराना चाहते हो?

निकोलस—यह तो मैं कई बार तुम्हें बता चुका हूँ।

मेरी—मगर, निकोलस, तुम जानते हो कि यह असम्भव है। ज़रा सोचो तो सही, ल्यूबा का ब्याह होने वाला है, वानिया कालेज में भरती होने जा रहा है, मिसी और काटिया स्कूल में हैं। भला, मैं इन सब बातों को किस तरह रोक सकती हूँ?

निकोलस—फिर भला, मैं क्या करूँ?

मेरी—वही करो कि जिसे तुम अकसर मनुष्य का कर्तव्य बताते थे। धैर्य धारण करो और प्रेम-पूर्वक व्यवहार करो। क्या यह तुम्हारे लिए बहुत मुश्किल है। बस, हम लोगों के साथ रह कर जो कुछ हो सके करो, मगर घर छोड़ कर मत जाओ। बोलो, तुम्हें किस बात का दुःख है?

(दौड़ते हुए वानिया का आना)

वानिया—माँ, वे लोग तुम्हें बुला रहे हैं।

मेरी—बोल दो मैं अभी नहीं आ सकती, जाओ, जाओ।

वानिया—जल्दी आना (भाग जाता है)।

निकोलस—तुम मेरे विचारों को पसन्द नहीं करती और न उन्हें समझना चाहती ही हो।

मेरी—यह बात नहीं है कि मैं समझना नहीं चाहती। मगर मैं समझ ही नहीं पाती।

निकोलस—नहीं, तुम समझती नहीं और हम एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। तुम मेरे हार्दिक भावों को पहचानो, अपने को मेरी स्थिति में रख कर देखो, फिर तुम सब समझ सकोगी। एक तो यहां का जीवन नितांत पतित है। तुम्हें यह शब्द बुरा लगता है, मगर जिस जीवन की नींव डकैती

के ऊपर है उसे मैं किसी दूसरे नाम से पुकार ही नहीं सकता। हमारा जीवन "डकैती-मय" है, क्योंकि जिस घर पर हम निर्भर हैं वह उसी जमीन से आता है जिसे हमने किसानों से चुराया या छीन लिया है। इसके अलावा मैं देखता हूँ कि इस प्रकार का जीवन बच्चों को भी अध पतित और चरित्रहीन बना रहा है। कहा है कि जो बच्चों को गुमराह करता है वह बड़ा पापी है। और मै रोज अपनी आखों से देखता हूँ कि धीरे धीरे बच्चे खराब और बरबाद हो रहे हैं। हर एक दावत से मेरे कलेजे में चोट लगती है।

मेरी—मगर यह सब तो पहले भी था। दुनिया में सभी जगह यह होता है।

निकोलस—लेकिन मुझसे यह नहीं हो सकता। जब से मैंने समझ लिया कि हम सब भाई भाई हैं तब से यह फ़िजूल खर्ची, खुदगर्जी और लापरवाही मेरे दिल में काटे की तरह खटकती है।

मेरी—यह सब तुम्हारे मन की बातें हैं। कोई अपने मन से जो चाहे सो बात निकाल सकता है।

निकोलस—(तेजी से) तुम कुछ समझती नहीं, यही तो बड़ी भयानक बात है। आज ही की बात है, सुनो। मैं आज अछूत लोगों के मुहल्ले में गया, वहां मैंने एक छोटे से दुध-मुँहे बच्चे को भूख से मरता हुआ देखा, एक दुबला-पतला बूढा आदमी भयंकर रोग से पीड़ित जमीन पर पड़ा हुआ था, उसके पास एक छोटी, लड़की अकेली पड़ी रो रही थी, उसके पास न खाने को अन्न था न दवा मोल लेने

को पैसा, बाहर सड़क पर उसकी माँ सर्दी से कांपती हुई तट पर का भीगा कपड़ा सुखा रही थी, उसके पास कोई दूसरा कपड़ा न था और वह रह रह कर खांसी के मारे बेदम हो रही थी, शायद उसे क्षय रोग हो गया है। घर आकर मैंने देखा—सब ऐशो अशरत में मशगूल हैं, नौकरों की एक पलटन काम करने के लिए तैयार है, अपने सुख के लिए हमें किसी दूसरे का ख्याल भी नहीं है। मैं बोरिस से मिलने गया कि जिसने सचाई के खातिर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। बोरिस—शुद्ध, उच्च और दृढ प्रतिज्ञ बोरिस तरह तरह की मुसीबतें उठा रहा है गवर्नमेन्ट उससे छुटकारा पाने के लिए जान बूझकर उसके दिमाग को नुकसान पहुँचाकर उसे बरबाद कर देना चाहती है। मैं जानता हूँ और गवर्नमेन्ट को भी मालूम है कि उसका दिल कमजोर है इस लिए वह पागलों के बीच में लेजाकर रखते हैं और उसे हर तरह से सताकर उत्तेजित करते हैं। यह दृश्य भयंकर-महा भयंकर है। और जब मैं घर वापिस आया तो सुना कि हमारे घर भर में, जिसने सचाई को समझा था न केवल सच्चाई को ही छोड़ दिया बल्कि उस आदमी का भी त्याग दिया कि जिसे प्रेम-दान देकर ब्याहने का वादा किया था और अब वह ब्याह करना चाहती है एक झूठे मक्कार।

मेरी—यही तुम्हारी ईमाइयत है।

निकोलस—मैं जानता हूँ कि यह मेरे अयोग्य है और मैं पापी हूँ, मगर तुमसे यही कहता हूँ कि तुम अपने को मेरी स्थिति

रखकर देखो। मेरा मतलब है कि वह सचाई से फिर गई।

मेरी—तुम कहते हो "सच्चाई से फिर गई" मगर और लोग, अधिकाश लोग, कहते हैं "भ्रम से निकल गई"। देखा, वासिली साहब भी एक बार बहक गये थे, मगर फिर गिरजा को जाने लगे।

निकोलस—यह असम्भव है।

मेरी—उन्होंने लिखा को लिखा है। वह तुम्हें खत दिखायगी। इस तरह का विचार-परिवर्तन बहुत ही अस्थायी होता है, टानिया के मामले में भी ऐसा ही हुआ। मैं उस आदमी का जिक्र भी नहीं करना चाहती, क्योंकि वह तुम्हारी बात इस लिए मानता है कि इसे वह लाभदायक समझता है।

निकोलस—(क्रुद्ध होकर) खैर, जाने दो। मैं सिर्फ तुमसे कहता हूँ। मैं अब भी मानता हूँ कि सत्य सत्य ही है। यह सब देखकर मुझे दुःख होता है। यहा घर पर मैं देखता हूँ नाच गाना हो रहा है, दावतों के सामान हैं और सैकड़ों रुपये बेकार पानी की तरह बहाये जा रहे हैं, जब कि बेचारे गरीब लोग भूखों मर रहे हैं। मुझसे यह नहीं देखा जाता। मुझ पर दया करो, मुझे जाने दो। मैं यहा नहीं रह सकता। खुदा हाफिज।

मेरी—मगर तुम जाओगे तो मैं भी तुम्हारे साथ जाऊगी। और अगर साथ नहीं ले जाओगे तो तुम जिस गाड़ी से जाओगे उसके नीचे दबकर मर जाऊगी। भाड़ में पड़ने दो सबको—मिसी और काविया को भी। हरे राम, हरे राम, कितना जुल्म है, कितना अत्याचार है। (रोती है)

निकोलस—(दरवाजे के पास) अलेक्जेण्डर पिट्रोविच, तुम घर जाओ मैं नहीं जाऊंगा। (अपनी पत्नी से) अच्छी बात है, मैं ठहर जाता हूँ। (ओवर कोट उतारता है)

मेरी—(गले लगाकर) हमें बहुत दिन जिन्दा नहीं रहना है। २८ वर्ष तक साथ रहने के बाद हमें अपने बीते हुए जीवन की खुशी को मिट्टी में नहीं मिलाना चाहिए। अब मैं कभी कोई पार्टी न दूंगी, मगर तुम मुझे इस तरह मत दण्ड दो।

(वानिया और कातिया दौड़े आते हैं।)

वानिया और कातिया—माँ, आओ, जल्दी करो।

मेरी—आती हूँ, अभी आती हूँ। अच्छा, अब पुरानी बातें भूलकर एक दूसरे को क्षमा कर देना चाहिए।

(कातिया और वानिया के साथ प्रस्थान)

निकोलस—बालक है, बिलकुल बालक है, या चालाक औरत है? नहीं, एक चालाक बालक है। हां, ठीक है। मालूम होता है, ईश्वर, तू नहीं चाहता कि मैं तेरा सेवक बनकर तेरा यह काम पूरा करूं। तू चाहता है कि लोग मेरी ओर उँगली उठावें और कहें "यह उपदेश देता है मगर काम नहीं करता है" अच्छा यही सही। मैं समझा, तू चाहता है, त्याग, नम्रता, और आत्म-समर्पण। काश मैं इतना ऊँचा उठ सकता।

(लिसा का प्रवेश)

लिसा—क्षमा कीजिएगा। मैं वासिली साहब का खत आपके पास लाई हूँ।। यह मेरे नाम है, मगर उसमें लिखा है कि मैं आपको भी सुना दूं।

निकोलस—क्या यह वास्तव में सच है?

लिसा—हाँ, क्या मैं पढ़कर सुनाऊँ ?

निकोलस—हा, पढ़ो।

लिसा—(पढ़ती है) "मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप यह निकोलस साहब को सुना दें। मुझे अपनी उस गल्ती पर सख्त अफसोस है कि जिसकी वजह से मैं गिरजा से बहक गया था। मगर खुशी की बात है कि मैं फिर गिरजा को मानने लगा हूँ। मुझे आशा है कि आप और निकोलस साहब भी इसी मार्ग का अनुसरण करेंगे। कृपया मुझे क्षमा कीजिएगा।"

निकोलस—उन्होंने बेचारे को सता-सता कर आखिर काबू में कर लिया।

लिसा—मैं आपसे यह भी कहने आई थी कि शाहजादी यहीं है। वह मेरे साथ दूसरी मंजिल तक अत्यन्त उत्तेजित दशा में दौड़ कर आई और आपसे मिल कर जायगी। वह अभी बोरिस से मिल कर आई है। मैं समझती हूँ कि आप इस वक्त उससे न मिलें तो अच्छा है। आप से मिल कर उसे क्या फायदा हो सकता है ?

निकोलस—नहीं, जाकर उन्हें अन्दर भेज दो। मालूम होता है कि आज मुसीबतों का दिन है।

लिसा—अच्छा तो, मैं जाकर भेजती हूँ। (प्रस्थान)

निकोलस—(अकेले में) हाँ,—काश कि मैं यह अच्छी तरह समझ सकता कि जीवन का अर्थ यही है कि मैं तेरी सेवा कर सकूँ, और मुझे आजमाने के लिए जब कोई मुसीबत मुझ पर डालता है तब तू जानता है कि मैं उसे

सहन कर सकूँगा, उसे सह लेने की शक्ति मेरे अन्दर मौजूद है, नहीं तो वह आजमाइश नहीं रहेगी। ईश्वर मेरी मदद कर!

(शाहजादी का प्रवेश)

शाहजादी—तुमने मुझे अन्दर बुला लिया? इतनी बड़ी इज्जत बख्शी? मैं आपको सलाम करती हूँ। मैं तुमसे हाथ नहीं मिलाऊँगी, क्योंकि मैं तुमसे घृणा करती हूँ, तुम्हें तुच्छ समझती हूँ।

निकोलस—बात क्या हुई?

शाहजादी—बस यह, कि वह उसे सजा देने के लिए दण्ड भवन में लिये जा रहे हैं और इस बात के कारण तुम्हीं हो।

निकोलस—शाहजादी, अगर तुम्हें कुछ कहना है तो वह बोलो, लेकिन अगर तुम केवल मुझे कोसने ही को आई हो तो तुम अपने को ही हानि पहुँचाती हो। तुम्हारी बातों से मुझे चोट नहीं पहुँचेगी, क्योंकि मैं हृदय से तुम्हारे साथ सहानुभूति रखता हूँ और तुम पर तरस खाता हूँ।

शाहजादी—आहा, कितनी दया है! कैसी ऊँची ईसाइयत है! नहीं मि० सारयन्तसव, तुम मुझे धोका नहीं दे सकते। अब हम तुम्हें अच्छी तरह समझ गये। तुमने मेरे लड़के को बरबाद कर दिया, और तुम्हें उसकी कुछ पर्वाह नहीं। तुम 'बाल' कराते हो, नाच-पार्टी देते हो, और तुम्हारी लड़की, जिसका विवाह मेरे लड़के के साथ ठहरा था अब किसी दूसरे के साथ विवाह करनेवाली है और तुम इस पर राजी हो। मगर तुम दुनिया को दिखाना चाहते हो कि तुम सादा

जिन्दगी बसर करते हो। इस मक्कारी और बहानेसाज़ी से तुम मुझे कितने घृणित और कितने तुच्छ मालूम होते हो?

निकोलस—शाहज़ादी, इतनी उत्तेजित मत होओ। बोलो, तुम किसलिए आई हो?—महज़ मुझे झिड़कने या गाली सुनाने के लिए तो न आई होगी।

शाहज़ादी—हाँ, इसके लिए भी। मेरे दिल मे जो आग जल रही है, उसे किसी तरह शान्त भी करना है। मगर मैं जो कहना चाहती हूँ, वह यह है कि उसे वह दण्ड-भवन में में लिये जा रहे हैं और यह मुझसे नहीं सहा जाता। तुमने ही यह सब काम कराया है। तुम्हीं ने, हा, तुम्हीं ने।

निकोलस—मैंने नहीं, यह काम ईश्वर ने कराया है। और ईश्वर जानता है कि मुझे तुम्हारे लिए कितना दुःख है। ईश्वर की इच्छा मे बाधा मत डालो। वह तुम्हें आज़माना चाहता है, इस आज़माइश को नम्रता पूर्वक, शान्ति से सहन करो।

शाहज़ादी—मैं इसे शान्ति से सहन नहीं कर सकती। मेरी सारी जान मेरे लड़के में है और तुमने उसे मुझसे छीन कर बरबाद कर दिया। मैं शान्त नहीं रह सकती। मैं तुम्हारे पास आई हूँ और यह मैं अन्तिम बार कहने आई हूँ कि तुमने मेरे लड़के को बरबाद किया है और तुम्हीं को उसकी रक्षा करनी चाहिए। जाओ, और कह सुन कर उसे आज़ाद कराओ। डाक्टर, गवर्नर-जनरल, शाहन्शाह या जिससे जी चाहे मिलो। यह सब तुम्हारा काम है। और अगर तुम यह न करोगे तो मैं नहीं जानती मैं क्या कर बैठूँगी। इसके लिए उत्तरदाता तुम्हीं हो।

निकोलस—बोलो, मैं क्या करूँ ? तुम जो कहोगी वह मैं करने के लिए तैयार हूँ।

शाहज़ादी—मैं फिर दुहराती हूँ—तुम्हें उसकी रक्षा करनी होगी। अगर तुम नहीं करोगे तो सावधान ! ईश्वर मालिक है !

(प्रस्थान)

(निकोलस गद्दी पर लेट जाता है। ख़ामोशी। दरवाज़ा खुलता है और बाजे की आवाज़ ज़रा ज़ोर से सुनाई देने लगी। स्त्यूपा का प्रवेश)

स्त्यूपा—बाबा यहाँ नहीं है, अन्दर आ जाओ।

(लोग जोड़े बना कर नाचते हुए आते हैं)

ल्यूबा—(निकोलस को देख कर) ओहो, तुम यहीं हो बाबा, माफ़ करना।

निकोलस—(उठ कर) कोई परवाह नहीं है। (नाचने वाले जाते हैं)

निकोलस—वासिली ने कदम पीछे हटा लिया, बोरिस को मैंने तबाह कर दिया। ल्यूबा ब्याह करनेवाली है। कहीं मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ ? भूल कर रहा हूँ तुममें विश्वास करने की ? नहीं, पिता मेरी मदद करो।

पांचवां अंक

(पाँचवे अक के लिए टाल्स्टाय यह नोट छोड गये, जिसे यह कभी पूरा नहीं कर सके)।

दण्ड-भवन का एक कमरा। कैदी बैठे और लेटे हैं। बोरिस बाइबिल पढ़ कर मतलब समझाता है। एक आदमी जिसको कोड़े लगाये गये हैं, अन्दर लाया जाता है। "आह इसका बदला चुकाने के लिए अगर पुगचेव जीता होता।" शाहजादी अन्दर घुस आती है मगर बाहर निकाल दी जाती है। एक अफसर से झगड़ा। कैदी प्रार्थना करने के लिए जाते हैं, बोरिस हवालात में डाला जाता है "उसको कोड़े लगेंगे।"

दृश्य बदलता है

जार की सभा। सिगरेट, हँसी-मजाक। शाहजादी मिलना चाहती है। "उससे कहो जरा ठहर।" अर्जी देने वालों की पेशी। खुशामद, उसके बाद शाहजादी। उसकी प्रार्थना अस्वीकृत हुई

(प्रस्थान)

दृश्य बदलता है

मेरी, निकोलस की बीमारी के बारे में डाक्टर से बातचीत करती है। "वह बदल गया है। नम्र और शान्त है। मगर उदासीन रहता है।" निकोलस आकर डाक्टर से बातचीत करता है और कहता है कि इलाज करना बेकार है। मगर पत्नी की खातिर उस पर राजी हो जाता है। टानिया और स्त्यूपा का प्रवेश। ल्यूबा मिकालोविच के साथ। जमीन की बाबत बात-

चीत। निकोलस इस तरह बातें करता है जिससे उन्हें बुरा लगे। सबका प्रस्थान। निकोलस लिसा से कहता है, मुझे सन्देह है कि मैंने जो कुछ किया वह ठीक है कि नहीं। मैं किसी काम में कामयाब न हुआ। बोरिस नष्ट हो गया, वासिली पीछे हट गया, मैंने कमजोरी दिखाई। इससे प्रकट है कि ईश्वर मुझे अपना सेवक नहीं बनाना चाहता। उसके पास बहुत से सेवक हैं—और वह मेरे बगैर उसकी इच्छा-पूर्ण कर सकते हैं। जो आदमी इस बात को समझ लेता है वह शक्ति पाता है। लिसा का प्रस्थान। वह प्रार्थना करता है। शाहजादी दौड़ी आती है और उसे गोली मार कर गिरा देती है। निकोलस कहता है कि इत्तफाक से गोली उसके हाथ से छूटकर लग गई। वह जार के नाम एक चिट्ठी लिखता है। वासिली कुछ साथी ईसाइयों के साथ आता है। वह खुशी मनाते हुए मरता है। गिरजा की धोखे-बाजी जाहिर हो गई और कहता है कि वह अब जीवन का अर्थ समझ गया।

समाप्त

"त्यागभूमि"

प्रत्येक हिन्दी पाठक को क्यों पढ़नी चाहिए ?

इसलिए कि

(१) यह हिन्दी की एक मात्र राष्ट्रीय भारतवर्ष में सबसे बड़ी मासिक पत्रिका है। इसका आदर्श है "आध्यात्मिक राष्ट्रवाद"

(२) इसके लेख सात्विक, प्रौढ़ और जीवनप्रद होते हैं।

(३) इसके चित्र भारतीय कला के उत्तम नमूने होते हैं। सौंदर्य में वह सादगी की शोभा है। वह पाठकों की परमप्रिय मित्र है।

(४) यह गरीबों की विनम्र सेविका और अमीरों की भी हितैषिणी है। वह किसान, मजूर और स्त्रियों के उत्थान के लिए प्राण पण से उद्योग करने वाली है।

(५) यह भारतवर्ष में सब से सस्ती पत्रिका है।

१२० पृष्ठ, २ रंगीन और कई सादे चित्र होते हुए भी वार्षिक मूल्य केवल ४) है।

इसे देखकर आपके नयनों को सुख होगा, पढ़कर हृदय प्रसन्न होगा और इसके विचारों पर मनन करने पर आपकी आत्मा का विकास होगा तब आप "त्यागभूमि" के बिना कैसे रह सकते हैं ?

आप ही ।) भेजकर नमूने की प्रति मंगा लें।

पता—"त्यागभूमि" कार्यालय,

सस्ता-मण्डल, अजमेर

"त्यागभूमि के लेख इतने सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण होते हैं कि उनका पढ़ना ज्ञानप्रद और हृदय को ऊंचा उठानेवाला होता है। सम्पादकीय टिप्पणियाँ इतनी मर्मस्पर्शी, विचार पूर्ण और सत्यानुमोदित होती हैं कि मतभेद रखने वाले व्यक्ति भी इन्हें पढ़कर मुग्ध हो जाते हैं।"

"प्रताप"

अनीति की राह पर

महात्मा गांधी

राष्ट्र निर्माण माला
वर्ष ३, पुस्तक ४

प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मंत्री

"सस्ता मण्डल अजमेर ने हिंदी की उच्च कोटि की पुस्तकें सस्ती निकाल कर हिंदी की बड़ी सेवा की है। सर्व साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए"

मदनमोहन मालवीय

सूचना—मण्डल से प्रकाशित पुस्तकों की सूची अन्त में दी हुई है उसे पाठक अवश्य पढ़ें।

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

अनीति की राह पर

महात्मा गांधी

अनुवादक
बाबू मृत्युंजयप्रसाद

चम्पालाल बांठिया
भीनासर

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य मंडल
अजमेर

मूल्य ॥)

दो शब्द

ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एवते ।
आद्यन्तवन्त कौन्तेय न तेषु रमते बुध ॥

गीता

समय बड़ा विचित्र है । हमारी आँखें खुल रही हैं । उज्ज्वल भविष्य हमें अपनी ओर बुला रहा है । पर दूसरी ओर शैतान भी हमें लुभाने के लिए मीठा-मीठा मुस्कराता हुआ मौके की ताक में हमारी बगल में खड़ा है । वही सावधानी की आवश्यकता है ।

क्या इस तपोभूमि में किसी को संयम और ब्रह्मचर्य के लाभप्रद होने में सन्देह हो सकता था ? परन्तु यद्यपि वह घोर डरावनी रात्रि बीत गई, सूर्योदय होने को है, फिर भी इस सन्ध्याकाल में शैतान को अपना ताडव नृत्य करने का मौक़ा वहाँ मिल ही तो गया ।

वह कहता है—"छोड़ो यह संयम वयम की झंझट । विषयोपभोग तो मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, स्वाभाविक आवश्यकता है । अतएव इस बात से न डरो कि विषयोपभोग के कारण परिवार बढ़ जायगा । इसकी दवा मेरे पास है ।"

राष्ट्र निर्माण-माला
वर्ष ३, पुस्तक ४

प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मंत्री

"सस्ता मण्डल अजमेर ने हिंदी की उच्च कोटि की पुस्तकें सस्ती निकाल कर हिंदी की बड़ी सेवा की है। सर्व साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए"

मदनमोहन मालवीय

सूचना-मण्डल से प्रकाशित पुस्तकों की सूची अन्त में दी हुई है सो पाठक अवश्य पढ़ें।

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

विषय–सूची

पृष्ठ

१ अनीति की राह पर १

१—विषय प्रवेश १

२—अविवाहितों में भ्रष्टाचार ५

३—विवाहितों में भ्रष्टाचार ९

४—सयम ब्रह्मचर्य १८

५—व्यक्ति स्वातन्त्र्य की दलील २६

६—आजीवन ब्रह्मचर्य ३२

७—विवाह का पवित्र सस्कार ३७

८—उपसहार ४१

२ सन्तति-निग्रह ४९

३ सयम या स्वच्छन्दता ५२

४ ब्रह्मचर्य ६२

५ सत्य बनाम ब्रह्मचर्य ६६

६ वीर्यरक्षा ७१

७ एकान्तवार्ता ७५

पश्चिमी संसार शैतान के भुलावे में आकर विनाश की ओर दौड़ता जा रहा है। पर परमात्मा ने मानव-जाति को अभी भुला नहीं दिया है। दूरदर्शी आधुनिक ऋषि इस विनाश-यात्रा को रोकने के लिए अपनी शक्ति-भर कोशिश कर रहे हैं।

इधर कुछ वर्षों से भारत में भी संयम और ब्रह्मचर्य उपहास की दृष्टि से देखा जाने लगा है। सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों की ओर विषयी समाज झुक रहा है। यदि हम अपनी गलती को शीघ्र न समझेंगे तो भारत के लिए यह एक महान् संकट होगा।

हमें अपने देश में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई मानव जीव उत्पत्ति को ही केवल नहीं रोकना है बल्कि अपनी शक्ति, वीर्य और बुद्धि का विकास भी करना है। तभी हर बात में बढ़े-चढ़े अपने प्रतिपक्षियों द्वारा छीनी गई स्वाधीनता को पुनः प्राप्त करके हम उसका रक्षण कर सकेंगे।

पूज्य महात्माजी की पवित्र वाणी हमारे युवक भाइयों के लिए अपने विकारों से युद्ध करने में ऐसे समय बड़ी सहायक होगी, यह समझकर हम उनकी इस विषय पर लिखी एक अमूल्य पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है हिन्दी जनता उससे पूरा लाभ उठावेगी।

प्रकाशक

विषय-सूची

पृष्ठ

१ अनीति की राह पर — १

१—विषय प्रवेश — १

२—अविवाहितों में भ्रष्टाचार — ५

३—विवाहितों में भ्रष्टाचार — ९

४—संयम ब्रह्मचर्य — १८

५—व्यक्ति स्वातन्त्र्य की दलील — २६

६—आजीवन ब्रह्मचर्य — ३२

७—विवाह का पवित्र संस्कार — ३७

८—उपसंहार — ४१

२ सन्तति-निग्रह — ४९

३ संयम या स्वच्छन्दता — ५२

४ ब्रह्मचर्य — ६२

५ सत्य बनाम ब्रह्मचर्य — ६६

६ वीर्यरक्षा — ७१

७ एकान्तवार्ता — ७५

	पृष्ठ
८ गुह्य प्रकरण	८४
९ ब्रह्मचर्य	९५
१० नैष्ठिक ब्रह्मचर्य	१०१
११ मनोवृत्तियों का प्रभाव	१०८
१२ धर्मस्फुट	११५

परिशिष्ट

१३ जनन और प्रजनन	१२१
१—प्राणीशास्त्र में जनन	१२२
२—जीव विद्या में प्रजनन	१२२
३—प्रजनन और अचेतन	१२७
४—जनन और मृत्यु	१२९
५—प्रजोत्पत्ति का बदला मात है	१३१
६—मानस	१३३
७—व्यक्तिगत संभोग नीति	१३६
८—सामाजिक संभोग-नीति	१४१
९—उपसंहार	१४४

अनीति की राह पर

'त्यागभूमि'

जीवन, जागृति, बल और

बलिदान की

मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य ४)

सस्ता-मण्डल, अजमेर से प्रकाशित

अनीति की राह पर

१

विषय-प्रवेश

कृत्रिम उपायों से सन्तानवृद्धि रोकने के सम्बन्ध में जो लेख देशी समाचार पत्रों में निकलते हैं कृपालु मित्र उनकी कतरनें मेरे पास भेजते रहते हैं। नौजवानों से उनके चारित्र्य के सम्बन्ध में पत्रव्यवहार भी मेरा बहुत होता रहता है। परन्तु उन सब समस्याओं को जो इस पत्रव्यवहार से उठती हैं मैं इन पृष्ठों में हल नहीं कर सकता। यहां तो कुछ का ही विवेचन हो सकता है। अमेरिकन मित्र भी मेरे पास इस सम्बन्ध का साहित्य भेजते जाते हैं और कुछ तो मुझसे इस कारण नाराज भी हैं कि मैं कृत्रिम उपायों का विरोध करता हूं। उन्हें रंज है कि ऐसा बड़ा चढ़ा सुधारक होते हुए भी संततिनिरोध के सम्बन्ध में मैं पुराने विचार रखता हूं। और फिर मैं यह भी देखता हूं कि कृत्रिम उपायों के तरफदारों में सब देशों के कुछ बड़े-बड़े विचारवान स्त्री पुरुष भी हैं।

यह सब देख कर मैंने विचारा कि संततिनिरोध के कृत्रिम उपायों के पक्ष में कुछ न कुछ विशेष बात अवश्य ही होगी और इसलिए मुझे इस पर अधिक विचार करना चाहिए। मैं इस समस्या पर विचार कर ही रहा था और इस विषय के साहित्य के पठन

के विचार में ही था कि मुझे एक अंगरेजी पुस्तक पढ़ने को मिली। इस पुस्तक में इसी प्रश्न पर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है

मूल पुस्तक फ्रांसीसी भाषा में है और उसके लेखक हैं पाल ब्यूरा। किताब का जो नाम फ्रेंच भाषा में है उसका शब्दार्थ है 'भ्रष्टाचार'।

पुस्तक पढ़ कर मैंने यह सोचा कि लेखक के विचारों पर अपनी सम्मति देने से पहिले मुझे उचित है कि इन उपायों के पोषक जो मुख्य मुख्य ग्रन्थ हैं उन सब को पढ़ लूं। इसलिए मैंने सरवेंट ऑव इण्डिया सोसाइटी से जो कुछ इस विषय पर ग्रन्थ मिल सके मँगा कर पढ़े। काका कालेलकर ने जो इस विषय का अध्ययन कर रहे हैं मुझे एक पुस्तक दी और एक मित्र ने 'दी प्रक्टीशनर' का एक विशेषाङ्क मेरे पास भेज दिया। इसमें इस विषय पर विख्यात डाक्टरों ने अपनी सम्मतियां प्रकट की हैं।

मेरा इस विषय पर साहित्य इकट्ठा करने का केवल यही प्रयोजन था कि जहांतक कि मेरे जैसे वैद्यक के ज्ञान से रहित व्यक्ति की शक्ति में है ब्यूरा के सिद्धान्तों को मैं जांच कर लूं। अक्सर देखा जाता है कि चाहे जिस विषय के दो आचार्य्य ही किसी प्रश्न पर पर्याप्त विचार कर रहे हों किन्तु सभी प्रश्नों के दो पहलू होते ही हैं और दोनों पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसीलिए मैं पाठकों के सम्मुख ब्यूरो का यह पुस्तक रखने से पहिले कृत्रिम उपायों के पक्षपातियों की सारी युक्तियां सुन लेना चाहता था। बहुत सोच विचार कर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि कम से कम भारतवर्ष के लिए तो कृत्रिम उपायों की

कोई आवश्यकता है ही नहीं। जो लोग भारतवर्ष में इन उपायों का प्रचार करना चाहते हैं उन्हें या तो इस देश की यथार्थ दशा का ज्ञान ही नहीं है या वे जानबूझ कर उसकी परवा नहीं करते। और फिर यदि यह सिद्ध हो जावे कि ये उपाय पाश्चात्य देशों के लिए भी हानिकारक हैं तब तो फिर भारतवर्ष की दशा पर विचार करने की आवश्यकता भी नहीं रहती।

आइए! देखें ब्यूरो क्या कहते हैं। उन्होंने केवल फ्रान्स की दशा पर विचार किया है। परन्तु यह भी हमारे मतलब के लिए बहुत काफी है। फ्रान्स संसार के सब से अगुआ देशों में गिना जाता है और जब ये उपाय वहाँ सफल न हुए तो फिर और कहां होंगे?

असफलता क्या है? इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न रायें हो सकती हैं। इसलिए अच्छा है कि असफल शब्द से मेरा जो अभिप्राय है उसकी मैं व्याख्या कर दूं। यदि यह बात सिद्ध कर दी जावे कि इन उपायों के कारण लोगों के नैतिक आचार भ्रष्ट हो गये व्यभिचार बढ़ गया और कृत्रिम गर्भ-निरोध केवल अपनी स्वास्थ्य-रक्षा अथवा गृहस्थियों की आर्थिक दशा ठीक रखने के लिए ही नहीं किया गया बल्कि अपनी कुचेष्टाओं की पूर्ति के लिए किया गया तो इन उपायों की असफलता मानी जायगी। यह तो हैं मध्यस्थ पक्ष की बात। उत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्त तो कृत्रिम गर्भ-निरोध को कभी स्थान ही नहीं देता। उसके अनुसार तो विषयभोग केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही करना चाहिए जैसे कि भोजन केवल शरीर रक्षा के लिए ही करना चाहिए। एक तीसरी श्रेणी के मनुष्य भी हैं। उनका कहना है कि 'नैतिक

आचार विचार सब फिजूल हैं और यदि नैतिक आचार कोई वस्तु है भी तो वह विषयभोग के संयम में नहीं बल्कि उसकी तृप्ति में ही है। खूब विषयभोग करो, विषयभोग ही जीवन का उद्देश्य है। बस इतना ध्यान रहे कि विषयभोग से स्वास्थ्य न बिगड़ जाय जिससे कि हमारा उद्देश जो विषयभोग है उसी की पूर्ति में अड़चन पड़े।' ऐसे लोगों के लिए मैं समझता हूं ब्यूरो ने यह पुस्तक नहीं लिखी है क्योंकि अपनी पुस्तक के अन्त में उन्होंने टॉमसन के ये शब्द लिखे हैं 'केवल सचरित्र जातियों का ही भविष्य उज्ज्वल है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में मोशिये ब्यूरो ने कुछ ऐसी सच्ची बातें हमारे सामने रक्खी हैं कि जिन्हें पढ़ कर हमारा हृदय कांप उठता है। ऐसी बड़ी [illegible] संस्थाएं फ्रान्स में [illegible] हुई हैं कि जिनका काम ही है लोगों की पशुवृत्ति का तृप्त करना। सब से बड़ा दावा जो कृत्रिम उपायों के हिमायतियों का है वह यह है कि इससे छुप छिप कर गर्भपात का होना रुक जायगा और भ्रूणहत्या बन्द हो जायगी। लेकिन उनका यह दावा भी गलत साबित होता है। ब्यूरो लिखते हैं कि फ्रान्स में यद्यपि पिछले [illegible] वर्षों में गर्भस्थिति न होने के उपाय लगातार किये जाते रहे परन्तु फिर भी गर्भपात के खूनों की संख्या जरा भी कम न हुई। उनका तो कहना है कि गर्भपात उलटे अधिक होने लगा। उनका विचार है कि प्रतिवर्ष करीब पांच [illegible] लाख [illegible] तक गर्भपात होते हैं। आश्चर्य तो यह है कि लोगों को अब ऐसी बातें सुन कर उतना आघात नहीं पहुंचता है जितना पहले लगा करता था।

२

अविवाहितों में भ्रष्टाचार

ब्यूरो कहते हैं कि गर्भपात के कारण बाल-हत्या, कुटुम्ब के अन्दर ही व्यभिचार और ऐसे २ ही बहुत से पाप बढ़ गये हैं कि जिन्हें देख कर छाती फटती है। यद्यपि अविवाहित माताओं के गर्भ न रह जाने देने में और रह जाने पर गिरा देने में अनेक प्रकार से सहायता पहुंचायी जाती है परन्तु फिर भी उससे बालहत्या घटी नहीं बल्कि बहुत बढ़ गयी है। सभ्य कहलानेवाले पुरुषों के कान पर जूं भी नहीं रेंगती और अदालतों से धड़ाधड़ 'बेकसूर बेकसूर' के फैसले हो जाते हैं। बालहत्या करनेवाली माताओं को कुछ भी दण्ड नहीं मिलता।

ब्यूरो एक अध्याय केवल अश्लील साहित्य पर ही लिखते हैं। उनका कहना है कि साहित्य, नाटक और चित्र इत्यादि का जो मनुष्य के मन को आनन्द और आराम देने के लिए हैं बुरी नीयत के आदमी बड़ा दुरुपयोग कर रहे हैं। हर जगह ऐसा साहित्य बिक रहा है। हर कोने में उसी की चर्चा हो रही है।

बड़े २ बुद्धिमान मनुष्य ऐसे साहित्य की ही तिजारत करते हैं और करोड़ों रुपये इस व्यापार में लगे हुए हैं। मनुष्यों के हृदयों पर इस साहित्य का इतना जहरीला असर पड़ा है कि उनके मन में विषयभोग का एक और नया खयाली दुनिया बन खड़ी हुई है।

इस के बाद ब्युरो ने मौंशिये स्टगन का यह दर्द नाक जुमला दिया है —

"इस अश्लील साहित्य से अनगिनत लोगों का बेहिसाब हानि पहुँच रही है। इस की बिक्री से पता चलता है कि लाखों करोड़ों मनुष्य इस का अध्ययन करते हैं। पागलखानों के बाहर भी करोड़ों पागल रहते हैं। जिस प्रकार पागल अपना एक निराली ही दुनिया में रहता है उसी प्रकार पढ़ते समय मनुष्य भी एक नयी दुनिया में रहता है और इस संसार की सारी बातें भूल जाता है। अश्लील साहित्य पढ़नेवाले अपने विचारों की अनन्त दुनिया में भटकते फिरते हैं।

इन सब दुष्परिणामों का कारण क्या है? इन सबकी जड़ में लोगों की यही भूल है कि विषयभोग किये बिना नहीं रह सकता और बिना इसके मनुष्य का पूर्ण विकास भी नहीं हो सकता। ऐसा विचार हृदय में आते ही मनुष्य की दुनिया ही पलट जाती है। जिसको अबतक वह बुराई समझता था उसे अब भलाई समझने लग जाता है और अपनी पाशविक इच्छाओं की तृप्ति के लिए नये २ तरीके ढूँढने लगता है।

आगे चल कर ब्युरो यह साबित करता है कि अश्लील दैनिकपत्र, मासिक पत्रिकाओं पुस्तिकाओं उपन्यासों और तसवीरों इत्यादि से दिन ब दिन लोगों की इस नीच प्रवृत्ति को उत्तेजन दिया जाता है।

अभी तक तो ब्यूरोने केवल अविवाहित लोगों की ही दुर्दशा दिखायी है। अब आगे चल कर वे विवाहित लोगों के भ्रष्टाचार का दिग्दर्शन कराते हैं। वे कहते हैं कि अमीरों, किसानों और औसत दर्जे के लोगों में विवाह अधिकतर या तो झूठी प्रतिष्ठा या धन की लालच के कारण होते है। फलां आदमी से विवाह करने से कोई अच्छी नौकरी लग जायगी या जायदाद मिलने की आशा है अथवा बुढापे म या बीमारी म कोइ देखभाल करनेवाली रहेगी इत्यादि भिन्न २ उद्देश्यों से विवाह किये जाते हैं। कभी २ व्यभिचार से थक कर भी मनुष्य थोड समयतरूप में विषयभोग को ही जिन्दगी बिताने के लिए विवाह कर लेते हैं।

आगे चल कर ब्यूरो सच्चे ? प्रमाण दे कर यह दिखलाते हैं कि ऐसे विवाहों से व्यभिचार कम होने के बदले और बढता ही है। इस पतन में वह कृत्रिम उपाय और साधन और भी सहायता करते हे जो व्यभिचार को रोकते तो नहीं परन्तु उसके परिणाम को रोक लेते हैं। मैं उस दु खद भाग को छोड देता हू जिसमें बतलाया गया है कि गत २० वर्षों के अन्दर परस्त्री-गमन की वृद्धि हुइ है और कचहरियों द्वारा दिये गये तलाकों की संख्या दुगनी हो गया है। 'मनुष्य के समान ही स्त्रियों के भी अधिकार होने चाहिए' इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियों को विषयभोग करने की जो स्वतन्त्रता दे दी गयी है उसके सम्बन्ध में भी मैं केवल एक ही दो शब्द कहूंगा। गर्भस्थिर न होने देने अथवा गर्भपात करा देने की क्रियाओं में जो कमाल हासिल कर लिया गया है उससे पुरुष या स्त्री किसी को भी संयम के बन्धन की आवश्यकता ही नहीं रही है। फिर लोग यदि विवाह के नाम पर हँसें तो इस में अचम्भा ही क्या है? एक लोकप्रिय लेखक के यह वाक्य

ब्यूरो उद्धृत करते हैं, 'मेरे विचार से विवाह एक बड़ा जंगली और क्रूर प्रथा है। जब मनुष्यजाति बुद्धि और न्याय की तरफ कदम बढ़ावेगी तो इस कुप्रथा को अवश्य ठुकराकर चकनाचूर कर डालेगी परन्तु पुरुष इतने बुद्धू और स्त्रियां इतनी कायर हैं कि वे किसी ऊंचे सिद्धान्त के लिए कुछ कर ही नहीं सकतीं।

ब्यूरो अब इन दुराचरणों के फलों पर और उन सिद्धान्तों पर जिनसे इन दुराचरणों का मंडन किया जाता है सूक्ष्म विचार करके कहते हैं कि, "यह भ्रष्टाचार हमें एक नयी दिशा में लिए जा रहा है। यह कौनसी दिशा है? वहां क्या है? हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा या अन्धकारमय? उन्नति होगी अथवा अवनति? हमारी आत्मा को सौन्दर्य्य के दर्शन होंगे या कुरूपता और पशुता की भयानक मूर्ति दिखायी देगी? यहां तो क्रान्ति फैली हुई है। क्या यह ऐसी ही क्रान्ति है जो समय २ पर देश और जातियों के उत्थान से पहिले मचा करती है और जिसमें उन्नति का बीज रहता है? अथवा यह वही क्रान्ति है जो आदम के हृदय में उठी थी और जो हमें अपने जीवन के बहुमूल्य और आवश्यक सिद्धान्तों को तोड़ डालने को उकसाती है? हम क्या अपनी शान्ति और जीवन को ही इससे खतरे में नहीं डाल रहे हैं? फिर ब्यूरो यह दिखलाते हैं और इसके पक्ष में प्रमाण या सबूत पेश करते हैं कि अन्ततः इन सब बातों से समाज को बेहिसाब हानि पहुंची है। ये दुराचार हमारी जिन्दगी की जड़ को ही काट रहे हैं।

२

विवाहितों में भ्रष्टाचार

विवाहित स्त्री पुरुषों का ब्रह्मचर्य द्वारा गर्भ-निरोध करना एक बात है और विषयभोग के साथ २ तथा उसके परिणाम से बचानेवाले साधनों की सहायता से संताननिग्रह करना बिल्कुल दूसरी। पहली सूरत में मनुष्यों का केवल लाभ ही लाभ है और दूसरी सूरत में नुकसान के अलावा और कुछ हो नहीं सकता। ब्यूरो ने आंकड़ों और मानचित्रों की सहायता से यह दिखलाया है कि पाशविक वृत्तियों की लगाम ढीली करने और फिर समाग के स्वाभाविक परिणामों से बचने के अभिप्राय से गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधनों के बढ़ते हुए प्रयोग का फल यही हुआ है कि न केवल पेरिस में, बल्कि समस्त फ्रांस में मृत्यु संख्या की अपेक्षा

जन-संख्या में बहुत कमी हो गया है। ८८ जिलों में से, जिनमें कि प्रांत विभाजित है ६८ में पैदाइश की औसत, मौत की औसत से कम है और वहां अगर १०० जन्म होते हैं तो १६८ आदमी मरते हैं। उसके बाद नानगाँ नामक एक जिले में प्रत्येक १०० जन्मों के पीछे १०६ मृत्यु होती हैं। उन १९ जिलों में जिनमें कि कहीं - औसत से जितने मरते हैं उससे अधिक जन्म लेते हैं वहां भी इन दो संख्याओं का यह अन्तर बहुत ही थोड़ा है। एक केवल दस ही जिले हैं जहाँ कि जन्म और मृत्यु की संख्या में खासा फर्क है। कम से कम मौतें, अर्थात् जहां कि जन-संख्या के साथ मृत्यु संख्या का अनुपात ७ १०० का है मार्गेरान और पामडिअल में पाया जाती है। ब्यूरा यह बतलाते हैं कि आबादी के कम होते जाने की यह क्रम जो उनकी समझमें अपकर्ष्या कहलावेगी, अभी तक रोका नहीं जा सका है।

तदुपरान्त ब्यूरा प्रांत के प्रान्तों की दशा का प्रमाण भी देकर निराशा करते हैं और सन् १९१४ ई० में लिखे गये एक ग्रन्थ से नार्मंडी के बारे में निम्न-लिखित वाक्य उद्धृत करते हैं 'नार्मेंडी की आबादी गत ५० वर्षों में ३ लाख कम हो गयी है—इसका अर्थ यह है कि वहां की उतनी आबादी कम हो गयी है जितनी कि ग्मारन और जिर की है। प्रत्येक बीस वर्ष में प्रांत की जन-संख्या इतनी घट जाती है जितना कि उसके एक सूबे की होती है। और चूंकि उसमें केवल पांच ही सूबे हैं इसलिए सौ वर्षों में ही उसके इतमर आम प्रांत निवासियों से खाली हो जायेंगे। "प्रांतनिवासी" शब्द का यहाँ मैं जानबूझ कर प्रयोग कर रहा हूं, क्योंकि दूसरे लोग तो दे ही उनमें आ कर

बस जायँगे—और यदि ऐसा हुआ तो वह शोचनीय स्थिति होगी। जर्मन लोग केन के आसपास वाली लोहे की खानें चला रहे हैं और हमारे देखते ही ऐखत चीनी (यह उनका पहला ही अवसर है) मजदूर भी उस जगह आ पहुँचे हैं जहां से कि विजेता विलियम इग्लैंड जीतने को रवाना हुआ था। ब्यूरो ने इस वाक्य की आलोचना करते हुए लिखा है कि दूसरे कई प्रान्तों का भी इससे कुछ अच्छी दशा नहीं है। आगे चल कर वे यह दिखलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि आबादी की इस कमी का यह असर पड़ा है कि राष्ट्र की सैनिक शक्ति भी घट गयी है। तदुपरान्त वह ग्रीस के जातीय विनाश उसकी भाषा और सभ्यता के अवसान का भी यही कारण बतलाते हैं।

इसके अनन्तर वे पूछते हैं कि विषयभोग से—संयम के त्याग से, फ्रांसीसी लोग सांसारिक सुख, आर्थिक उत्कर्ष, शारीरिक स्वास्थ्य तथा सभ्यता में पहले से कुछ बढ़ गये हैं क्या? इस के उत्तर में उनका कहना है कि स्वास्थ्य की वृद्धि के विषय में दो चार शब्द ही पर्य्याप्त होंगे। सभी दलीलों का क्रमबद्ध रूप से, उत्तर देने की हमारी इच्छा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, फिर भी इस बात को कि निरंकुश विषय-भोग से कभी शारीरिक स्वास्थ्य का सुधरना सम्भव है—इस लायक भी हम नहीं समझते कि इसका जवाब तक दिया जाय। चारों ओर से नवयुवकों तथा स्याने पुरुषों, सभी किसी की निर्बलता की चर्चा सुनायी पड़ती है। लड़ाई के पहले सैनिक विभाग के अधिकारियों को कई बार रंगरूटों की शारीरिक योग्यता की शर्तें ढीली करनी पड़ी था और सारे देश भर में लोगों की सहन-शक्ति में बहुत कमी हो गयी है। निस्सन्देह यह कहना अन्याय होगा कि असंयम ने ही यह बुरी अवस्था उत्पन्न

की है परन्तु हाँ, वह भी इसका एक बड़ा कारण जरूर है। साथ ही साथ मद्यपान, रहन-सहन की गन्दगी इत्यादि का भी तो स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक सोचेंगे तो यह बात हमारी समझ में आसानी से आ जायगी कि इस भ्रष्टाचार और इसकी पापयुक्त घृणित भावनाओं का इन बातों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों के भयंकर प्रसार ने सर्व साधारण के स्वास्थ्य को बड़ी भारी क्षति पहुंचायी है। कुछ लोगों का ख्याल है (जैसे कि माल्थस) कि उस समाज में जिसमें जन्म मर्यादा का ख्याल रक्खा जाता है, देश की सम्पत्ति उसी हिसाब से बढ़ती जाती है जिस हिसाब से वहाँ जन्मवृद्धि पर अंकुश रक्खा जाता है। लेकिन ब्यूरो इस विचार का समर्थन नहीं करते। इसके विरुद्ध वे अपने विचार का समर्थन जर्मनी और फ्रांस की हालतों को लेकर इस प्रकार करते हैं कि जर्मनी में जहाँ आमतौर से, मृत्यु जन्मों की अपेक्षा कम होती है, राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ती जाती है और फ्रांस में जहाँ कि जन्म की संख्या मौतों की तादाद की बनिस्बत कम है, धन का ही अभाव बढ़ता जा रहा है। उनका कहना है कि जर्मनी के व्यापार के आश्चर्यजनक विस्तार का कारण अन्य देशवालों की अपेक्षा जर्मन मजदूरों का कोई अधिक बलिदान नहीं है। वे रासलिन्स का एक वाक्य उद्धृत करते हैं — 'जर्मनी की आबादी जिस समय करीब ४,१०,००,००० थी लाखों भूखों मर गए। मगर जब से उसकी आबादी ६,८०,००,००० हुई है तब से वह दिन पर दिन धनवान होता जा रहा है।" उनका यह भी कथन है कि ये लोग जो कोई बेकार या दीन नहीं सेविंग्स बैंकों में प्रति वर्ष रुपया जमा करने में समर्थ हुए हैं। और सन १९११ ई० में उनके बारह अरब मार्क (बैंक का हिसाब)

जमा थे लेकिन सन् १८९५ ई० में केवल ८ अरब जमा थे—यानी हर साल उनके हिसाब में साढे आठ करोड और जमा होते गये ।

ब्यूरो ने इस बातको जरूर कबूल किया है कि जर्मनी की यह सब आश्चर्यजनक उन्नति केवल इसी कारण नहीं हुई है कि वहाँ जन्म की संख्या मृत्युसख्या से अधिक है । उनका यह आग्रह है — और वह ठीक है — कि अन्य प्रकार की सुविधाओं के होते हुए यह तो बिल्कुल स्वाभाविक ही है कि जन्म-सख्या के बढने के फलस्वरूप राष्ट्रीय उन्नति भी हो । वास्तव में वे जो बात सिद्ध करना चाहते हैं, वह यह है कि जन्म-संख्या के बढते जाने से आर्थिक तथा नैतिक उन्नति का रुकना कुछ लाजिमी नहीं है । जहाँ तक जन्म-प्रतिशत से सम्बन्ध है वहाँ तक हम हिन्दुस्तानी लोग फ्रांस की स्थिति में हरगिज नहीं हैं । परन्तु यह कहा जा सकता है कि जर्मनी की तरह हिन्दुस्थान में भी जन्म सख्या का बढते जाना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए सहायक न होगा । परन्तु मैं ब्यूरो के अकों उनके सनके विचारों तथा निष्कर्षों को मद्दे नजर रखते हुए हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर फिर कभी विचार करूंगा ।

जर्मन परिस्थितियों पर, जहाँ कि जन्म-प्रतिशत का आधिक्य है, विचार करने के अनन्तर ब्यूरो कहते हैं "क्या हमें यह नहीं मालूम है कि योरप में फ्रांस का स्थान चौथा है और राष्ट्रीय संपत्ति के लिहाज से तृतीय स्थान वाले देशों से बहुत नीचे है ? फ्रांस राष्ट्र की अपनी सालना आमदनी ढाई हजार करोड फ्रैंक की है और जर्मन लोगों की पांच हजार करोड फ्रैंक है । हमारे राष्ट्र ने तीस वर्षों में—यानी १८७९ से १९१४ तक—चार

हजार करोड़ मेम्बर की घटी महा है। देश के समस्त विभागों में दफ्तरों में काम करने वाले आदमियों का कब्जा है और किन्हीं २ जिलों में तो पुराने आदमियों को छोड़ कर कोई भी नये आदमी दिखाया नहीं देते। और आगे चल कर वे लिखते हैं कि भ्रष्टाचार और कृत्रिम बदमाश के अर्थ ये हैं कि समाज की स्वाभाविक शक्तियां क्षीण हो जावे और सामाजिक जीवन में वृद्ध पुरुषों का निरंतर प्राधान्य रहे। फ्रांस के हर १०० आदमियों में बच्चे और युवक मिला कर सिर्फ १८ हैं, जब कि जर्मनी में २२ और इंग्लैंड में २१ हैं। युवकों की बनिस्बत बूढ़ों का अनुपात मुनासिब से अधिक बढ़ा हुआ है और दूसरे लोगों में भी जिन्होंने अपने भ्रष्टाचार से जवानी में ही बुढ़ापा बुला लिया है शारीरिक रूप से इनतज जाति की सभी प्रकार की कापुरुषता विद्यमान है।

लेनर यह भी कहते हैं कि हम लोग जानते हैं कि चीनी लोगों में अधिकांश नागरिक-गण की इस शिथिल नीति के प्रति उदासीन हैं क्योंकि उनको गलत से यह जानने को कि किसका मतलबी जिन्दगी कैसी है, कोई अवसर नहीं है। किसी पादरी साहब का निम्न-लिखित कथन वे बड़े खेद के साथ उद्धृत करते हैं

'अत्याचारियों पर गन्दी गालियों की बौछार करना तथा अत्याचार से पीड़ित लोगों के बचाव करने के लिए युद्ध करना शानदार अवश्य है, लेकिन उन लोगों के बारे में क्या किया जाय जो या तो भय के कारण—या लालच से—अपनी आत्मा की रक्षा नहीं कर सके हैं—या उनके बारे में जिनका सदा पेट ठीक भरा या स्त्री बदलने पर भी भरता है अथवा

उन आदमियो के विषय में, जो शर्म और लिहाज को ताला-ए-ताक कर अपने उस शपथ को तोडते है, जो कि उन्होंने अपनी यौवनावस्था में खुशी और सजोदगी के साथ अपनी पत्नी के साथ किया था और उलटे अपने कृत्यों पर प्रसन्न होते हैं तथा उन आदमियों के बारे में जो अपने निजके निरकुश स्वार्थ का शिकार बन कर अपनी गृहस्थी को दु खमय बनाते है ? ऐसे मनुष्य भला हमारे मुक्तिदाता क्यों कर बन सकते हैं ? '

लेखक और आगे चल कर कहते है

" इस प्रकार से चाहे जिधर दृष्टि डाल कर देखें हमको एक तो यह मालूम होगा कि हमारे नैतिक असयम के कारण व्यक्ति, गृह तथा समाज को भारी चोट पहुँची है और दूसरे यह कि हमने अपने माथ बडी भारी आफत मोल ले रक्खी है। हमारे युवकों के व्यभिचार ने गन्दी पुस्तकों तथा तसवीरों ने धन के अभिप्राय से विवाह करने की रिवाज ने, मिथ्याभिमान, विलासिता तथा तलाक ने कृत्रिम वध्यस्त्र और गर्भपात ने राष्ट्र को अपग कर दिया है तथा उसकी यकृत मार दी है। व्यक्ति अपनी शक्ति को सचित नहीं रख सका है और बच्चों की जन्म-सख्या की कमी के साथ २ क्षीण और दुर्बल सन्तति उत्पन्न होने लगी है। ' यदि पैदाइश कम हों तो बच्चे अच्छे होंगे यह उक्ति उन लोगों को प्रिय लगा करती थी, जिन्होंने कि अपने को वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के स्थूल भाव में परिमित मान कर यह समझ रक्खा था कि मनुष्यों की उत्पत्ति को भी भेड-बकरी के उत्पादन की भाँति माना जा सकता है। ऐसे ही लोगों पर आगस्ट कोम्टे ने तीव्र कटाक्ष मे कहा था कि सामाजिक दोषों के ये नकली चिकित्सक व्यक्तियों तथा समाज के

मानस की गूढ़ जटिलता को तो समझने में सर्वथा असमर्थ हैं, लेकिन अगर वे पशु वैद्य होते तो अच्छा होता।

'सच तो यह है कि उन तमाम मनोवृत्तियों में, जो कि आत्मा ग्रहण करती है, उन सब निर्णयों में जिन पर वह पहुँचती है, उन सब आदतों में जो कि वह बनाती है कोई ऐसी नहीं है जो कि मनुष्य की व्यक्तिगत और समाजगत जिन्दगी पर उतना असर डालती है जितना कि विषयभोग के साथ सम्बन्ध रखने वाली वृत्ति और उस के निर्णय इत्यादि डालते हैं। चाहे मनुष्य उनको रोक थाम कर चाहे वह स्वयं उनके प्रवाह में बहने लग जाय उसके कृत्यों की प्रतिध्वनि सामाजिक जीवन के कोने २ में भी सुनायी पड़ेगी, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि गुप्त से गुप्त काम भी अपना असर डाले बिना नहीं रह सकता। इसी रहस्य के बल पर हम अपने को किसी प्रकार की अनीति करते समय इस भुलावे में डाल देते हैं कि हमारे कुकृत्य का कोई कुपरिणाम न होगा।

"अब रही अपने सम्बन्ध की बात—तो अपने विषय में पहले तो हम निर्द्वन्द्व हो जाते हैं, (क्योंकि हमारे कृत्यों का हेतु हमारी ही इच्छा रही है) परन्तु जब हम समाज के विषय में विचार करते हैं तब उसे अपने से इतना ऊँचा पर समझते हैं कि वह हमारे कुकृत्यों की ओर ध्यान भी नहीं और फिर ऊपर से हम गुप्त रीति से इस बात का भी आश्वासन रखते हैं कि दूसरों में पवित्रता और सदाचार की बुद्धि बनी ही रहेगी। सब से भद्दी बात तो यह है कि इस प्रकार का पोचा विचार कभी कभी केवल असाधारण और अपवाद स्वरूप समयों में प्रायः सब जगह फैल जाता है और फिर सफलता के मद में भूल कर हम

अपना व्यवहार वैसा ही कायम रखते हैं और जब कभी मौका मिलता है, हम उसे न्यायसगत ही ठहराते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि यही हमारी सब से बडा सजा है।

"लेकिन कोइ दिन ऐसा भी आता है जब कि इस व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाला उदाहरण अन्य प्रकार से हमको धर्मच्युत करने का कारण बनता है—हमारे प्रत्येक कुकृत्य का यह परिणाम होता है कि सदाचार से वह प्रेम करना जिसे हम 'दूसरों में विद्यमान समझते आये हैं हमारे लिए अधिक कठिन और साहसयुक्त बन जाता है। फल यह होता है कि हमारा पडोसी धोखा खाते २ ऊब कर हमारी नकल करने के लिये उतावला हो उठता है। बस, उसी दिन से अध पतन प्रारम्भ हो जाता है और प्रत्येक मनुष्य तुरन्त अपने कृत्यो के परिणामो का अनुमान कर पाता है और वह यह भी जान सकता है कि उसका उत्तरदायित्व कहां तक है।

"उस गुप्त काम को हम एक कन्दरा में बन्द समझते थे। उस में से वह निकल पडा है। उसमें एक प्रकार की निराली स्फूर्ति के आ जाने से वह समस्त घरों में फैल चुका है। सबको हर एक की भूल के कारण कष्ट सहन करना पडता है, और इस मछली सब जल गन्दा वाली कहावत चरितार्थ होती है। और जैसे किसी जलाशय में पत्थर फेंकने से सारा जलाशय क्षुब्ध हो उठता है उसी प्रकार प्रत्येक कृत्य का सामाजिक जीवन के दूर के कोने कोने में भी असर पडता है।

जाति के रस-स्रोतों को अनीति तुरन्त ही सुखा देती है। वह पुरुष को शीघ्र क्षीण कर डालती है और उस का नैतिक और शारीरिक सत्व चूस लेती है।

डाक्टरों के मतों का जबरदस्त प्रमाण दिया है कि ब्रह्मचर्य से तन्दुरुस्ती में फर्क पड़ नहीं सकता और इतना ही नहीं बल्कि उससे तन्दुरुस्ती को बेहद नफा पहुँचता है।

मिचिगन विश्वविद्यालय के अस्टलन का कथन है कि 'काम-वासना इतना प्रबल नहीं होती कि जिसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। हां एक युवक युवती को उचित अवस्था पाने के पूर्व तक संयम से रहना सीखना चाहिए। उन्हें जान लेना चाहिए कि हृष्ट पुष्ट शरीर तथा दिन पर दिन बढ़ता हुई स्फूर्ति इसके आत्मत्याग का पुरस्कार होगा।

यह बात जितनी बार कही जाय थोड़ा है कि नैतिक तथा शरीर-सम्बन्धी संयम और पूर्ण ब्रह्मचर्य का एक साथ रहना भले प्रकार सम्भव है और विषयभोग न तो उपयुक्त एक भी पहलू से और न धर्म की ही दृष्टि से न्यायसंगत है।"

लन्दन के रायल कालेज के प्रोफेसर सर लायनल बिली कहते हैं कि 'धर्म और शारीरिक पुरुषों के उदाहरणों ने अनेक बार सिद्ध कर दिया है कि मन से यह विकार भी गया और मजबूत दिल से तथा रहन-सहन के बारे में उचित सावधानी रखने से ठीक भी सकता है। जब कभी संयम का पालन कृत्रिम साधनों से ही नहीं बल्कि उसे स्वेच्छा से आदत में दाखिल कर के किया गया है तब इस उससे कभी नुकसान नहीं पहुँचा। शरीर में अस्वाभाविक महत्ता अति दुष्कर नहीं है लेकिन तभी जब कि वह किसी मनोवृत्ति का स्थूल रूप हो। पवित्रता का अर्थ केवल नियम-निषेध पालना ही नहीं है बल्कि विचारों में भी शुचिता लाना है।

तत्ववेत्ता फोरल कहता है कि "व्यायाम से प्रत्येक प्रकार का शारीरिक बल बढता और मजबूत होता है—उसके विपरीत किसी प्रकार की अकर्मण्यता उसके उत्तेजित करने वाले कारणों के प्रभाव को दबा देती है।

'विषय–सम्बन्धी सभी उत्तेजक बातें इच्छा को अधिक प्रबल कर देती हैं। उन बातों से बचने का फल यह होता है कि उनका प्रभाव मन्द हो जाता है और इस प्रकार इच्छा धीरे धीरे कम हो जाती है। युवक लोग यह समझते हैं कि विषय–निग्रह करना एक असाधारण काम है एवं असम्भव है। किन्तु वे लोग जो स्वयं संयम से रहते हैं, सिद्ध करते हैं कि पवित्रता का जीवन तन्दुरुस्ती बिगाड़ बिना भी बिताया जा सकता है।'

एक दूसरा विद्वान रिबिंग कहता है कि "मैं २५ या ३० वर्ष तथा उससे भी अधिक आयु वाले लोगों को जिन्होंने पूर्ण संयम रक्खा है, और उन लोगों को भी जिन्होंने अपने विवाह के पूर्व उसे कायम रक्खा है, जानता हूँ। ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है हाँ यह जरूर है कि वे अपना ढिंढोरा नहीं पीटते हैं।

"मेरे पास बहुत से विद्यार्थियों के ऐसे अनेक खानगी पत्र आये हैं, जिन्होंने इस बात पर आपत्ति की है कि मैंने इस पर काफी जोर नहीं दिया कि विषयसंयम सुसाध्य है।'

डा० एक्टन का कथन है कि "विवाह के पूर्व युवकों को पूर्ण संयम से रहना चाहिए और यह संभव भी है।'

सर जेम्स पेंगर की धारणा है कि "पवित्रता से जिस प्रकार आत्मा को क्षति नहीं पहुँचती, उसी प्रकार शरीर को भी नहीं—और इन्द्रिय संयम सब से उत्तम आचरण है।

डा० पेरियर कहते हैं कि "पूर्ण संयम के बारे में यह कल्पना करना कि वह खतरनाक है—बिल्कुल गलत ख्याल है और उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि यह बच्चों के ही मन में घर नहीं करता है, बल्कि उनके माता पिताओं के भी। नवयुवकों के लिये ब्रह्मचर्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक-तीनों दृष्टियों से, उनकी रक्षा करने वाली चीज है।"

मि० एड्म्स ग्रार कहते हैं कि "संयम से कोई नुकसान नहीं पहुँचता—और न वह मनुष्य को स्वाभाविक बढ़न को ही रोकता है, वरन् बल को बढ़ाता और बुद्धि को तीव्र करता है। असंयम से आत्म-शासन जाता रहता है, आलस्य बढ़ता और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है, जो कि पुश्त दर पुश्त असर करते चले जाते हैं। यह कहना कि असंयम नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—केवल भूल ही नहीं है, बल्कि कठोरता भी है। यह झूठ भी है और हानिकारक भी।

डा० सरब्लेड ने लिखा है कि "असंयम के दुष्परिणाम तो निर्विवाद और सर्वविदित हैं परन्तु संयम के दुष्परिणाम तो केवल कपोल-कल्पित हैं। ऊपरोक्त दो बातों में पहली बात का अनुमोदन तो बड़े २ विद्वान करते हैं, लेकिन दूसरी बात को सिद्ध करने वाला अभी मिला ही नहीं है।

डाक्टर मॉंटेगजा अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि 'ब्रह्मचर्य से होने वाले रोग मैंने नहीं देखे। आम तौर पर सभी कोई और विशेष रूप से नवयुवक गण ब्रह्मचर्य से तुरत ही होने वाले लाभों का अनुभव कर सकते हैं।'

डाक्टर ड्यूबाय इस बात का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'उन आदमियों की बनिस्बत, जो कि पशु-वृत्ति के चंगुल से

बचना जानते ह, व लोग नामर्दी के अधिक शिकार होते ह, जो कि विषय-शमन क लिए अपनी लगाम बिल्कुल ढीला किये रहते है । " उनके इस वाक्य का समर्थन डाक्टर फारा पूरे तौर पर करते ह और फरमाते ह कि " जो लोग मानसिक सयम कर सकें वे ब्रह्मचर्य-पालन करें और इससे अपन स्वास्थ्य क बारे में किसी प्रकार का भय न करें । विषय-भोग की इच्छा की पूर्ति के ऊपर स्वास्थ्य निर्भर नहीं रहता ।

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोर्नियर लिखते हैं ' कुछ लोगों ने, युवकों के आत्म-सयम के खतरों क बारे म भद्दी और हल्की बातें कही है । परन्तु मैं विश्वास दिलाता हू कि यदि सचमुच में आत्म सयम में कोइ खतरे कहीं हैं, तो मैं उनसे बिल्कुल अजान हू । और अगच कि अपने पेशे म उनके बारे में जानकारी पैदा करन का मुझे पूरा मौका था तौभी एक चिकित्सक की हैसियत मे उन क अस्तित्व का मेरे पास प्रमाण नहीं है ।

" इसके अतिरिक्त, शरीर-शास्त्र क ज्ञाता होन की हैसियत से मैं तो यह कहूगा कि लगभग १ वय का उम्र क पहले सच्ची वीर्य-पुष्टता आती ही नहीं है आर विषय-भोग की आवश्यकता उसके पहले उठती हुइ प्रतीत नहीं होती—और खास तौर पर उस हालत में जब कि समय मे पहले ही कुत्सित उत्तेजनाओं ने उस कुवासना को उत्तेजित न किया हो । विषयेच्छा प्राय बुरे तौर पर किये गये लालन-पालन का फल है ।

" खैर कुछ भी हो, यह बात तो निश्चित सी है कि इस प्रकार का खतरा, स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार चलने का अपेक्षा उसका रोकने में बहुत कम है । मेरा आशय आप समझ ही गये होंगे ।

अन्त में इतने विश्वस्त प्रमाण देने के बाद, लेखक ने, ब्रुशेल्स नगर में, १९०२ ई० में संसार भर के बड़े २ डाक्टरों की सभा में स्वीकृत किया गया यह प्रस्ताव उतारते हैं कि—'नवयुवकों को बतलाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य के पालन से उनके स्वास्थ्य को कभी हानि नहीं पहुँच सकती बल्कि वैद्यक और शरीरशास्त्र की दृष्टि से तो, इसकी (ब्रह्मचर्य्य की) सिफारिश ही करनी पड़ेगी। कुछ साल पहिले किसी ईसाई विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के भी सभी आचार्य्यों ने सर्व-सम्मति से घोषित किया था कि हम सब लोगों के अनुभव में यह आया है कि यह कहना बिल्कुल निराधार है कि ब्रह्मचर्य्य स्वास्थ्य के लिए कभी हानिकारक हो सकता है। हम लोगों के जानते इस प्रकार के जीवन से कभी कोई हानि नहीं होती।

लेखक ने सारे विषय का इस प्रकार उपसंहार किया है। "इस प्रकार अब आप सारा मामला सुन चुके कि समाजशास्त्री और नीतिशास्त्री पुकार पुकार कर कहते हैं कि विषयेच्छा भी नींद और भूख के जैसी, कोई वस्तु नहीं है कि जिसको तृप्त करना ही होगा। यह दूसरी बात है कि कुछ, असाधारण अपवाद छोड़ देने पड़ें, किन्तु सभी स्त्री-पुरुषों के लिए, बिना किसी बड़ी कठिनाई या दुःख के, ब्रह्मचर्य्य-पालन सहज है। सामान्यतः ब्रह्मचर्य्य से कभी कोई रोग नहीं होता है, किन्तु बहुत से भयंकर रोगों की उत्पत्ति असंयम में से ही होती है। यदि कभी वीर्य-रक्षा से रोग होना संभव भी था तो प्रकृति ने ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, जरूरत से अधिक शक्ति के लिए स्वाभाविक स्खलन या मासिक धर्म्म द्वारा निकलजाने का मार्ग तैयार कर दिया है।"

डा० यारी इसलिए ठीक ही कहते हैं कि "यह सवाल, वास्तविक आवश्यकता या प्रकृति का नहीं है। यह बात सभी कोई जानते हैं कि अगर भूख की तृप्ति न हो या श्वास बन्द हो जाय तो कौन कौन से दुष्परिणाम संभव हैं। लेकिन कोई भी लेखक यह नहीं लिखता है कि अस्थायी या स्थायी, किसी भी प्रकार के संयम के फल स्वरूप हल्का—हलका भारी कोई सा भी—रोग हो सकता है। अगर संसार में हम ब्रह्मचारियों की ओर देखें तो वे किसी से न तो चरित्रबल में कम हैं, और न सङ्कल्पबल में, शरीरबल में तो जरा भी कम नहीं हैं। वे यदि विवाह भी करें तो गृहस्थधर्म्म के पालन की योग्यता में भी, वे दूसरों से कुछ भी कम नहीं हैं। जो वृत्ति इस प्रकार सहज में ही रोकी जा सकती है, वह न तो आवश्यक है और न स्वाभाविक ही। स्त्री पुरुष का यह सम्बन्ध हरगिज नहीं है कि चढ़ती हुई उम्र में विषयेच्छा पूरी की जाय—बल्कि ठीक उसके उलटा। शरीर की साधारण बढ़त के लिए पूर्ण संयम का पालन परमावश्यक है। इसलिए वय प्राप्त युवक अपने बल का जितना अधिक संग्रह कर सकें, उतना ही अच्छा है क्योंकि उस उम्र में बचपन की बनिस्बत रोग को रोकने की शक्ति कम होती है। इस विकास काल में—देह और मन की बढ़त के जमाने में, प्रकृति को बहुत मिहनत करनी पड़ती है। इस कठिन समय में किसी भी बात की अधिकता बुरी है, किन्तु खास कर विषयेच्छा की उत्तेजना तो एकान्त हानिकारक है।

——:०:——

५

व्यक्ति-स्वातंत्र्य की दलील

ब्रह्मचर्य से होने वाले शारीरिक लाभों का विचार हो चुका। अब लेखक इसके नैतिक और मानसिक लाभों पर प्रो० मान्टेगजा का अभिप्राय व्यक्त करते हैं —

"ब्रह्मचर्य से तुरत होने वाले लाभों का अनुभव सभी कर सकते हैं—नवयुवक तो विशेष कर के। ब्रह्मचर्य से तुरत ही स्मरण—शक्ति स्थिर और संग्राहक, बुद्धि उर्वरा, और इच्छा शक्ति जबरदस्त हो जाती है। मनुष्य के सारे जीवन में यह

रूपान्तर हो जाता है जिसका अनुभव स्वच्छाचारियों को कभी हो नहीं सकता। ब्रह्मचारी नवयुवकों का प्रफुल्ता, चित्त की शान्ति और चमक और उधर इन्द्रियों के दासों की अशान्ति बेचैनी और घबराहट म आकाश—पाताल का अतर होता है। भला इन्द्रिय-सयम से भी कोइ राग होता हुआ सा कभी सुना गया है? परन्तु इन्द्रिया के असयम से होन वाले रोगा का कौन नहीं जानता? शरीर तो नष्ट ही जाता है। उसमे भी बुरा होता है मन और बुद्धि का बिगड जाना। स्वार्थ का प्रचार इन्द्रियों की उद्दाम प्रवृत्ति, चारित्र्य की अवनति ही तो सर्वत्र सुनने में आती है।

इतना होने पर भा वे लोग जा वीयनाश को आवश्यक मानते हैं कहत ह कि इस पर रोक लगा कर तुम हमारे इस अधिकार पर कि हम अपन शरार का मन माना उपयोग करें रोक लगात हो। इसका भी उत्तर लेखक ने इस प्रकार दिया है कि समाज का उन्नति क लिय यह रोक अवश्यक है।

उनका कहना है—"समाज शास्त्र क सामने कर्मों के परस्पर आघात प्रतिघात का ही नाम जीवन है। इन कर्मों का परस्पर कुछ ऐसा अनिश्चित और अज्ञात सम्बन्ध है कि कोई एक भी ऐसा कम हो नहीं सकता जिसका हम अकेला कह सकें। उसका प्रभाव सर्वत्र पडेगा ही। हमारे छिपे से छिपे कर्मों का, विचारों का, मनाभावा का ऐसा गहरा और दूर तक प्रभाव पड सकता है कि उसका अन्दाजा लगाना भा हमार लिए असम्भव हो जाव। यह कोइ ऊपर से हमारा जोडा हु आ नियम नहीं है। यह मनुष्य का स्वभाव है—प्रकृति है। मनुष्य के सभा कामों के इस अगम्य सम्बन्ध का विचार न कर के कभी २ कोई

समाज कुछ विषयों में व्यक्ति को स्वाधीन बना देना चाहता है। उस स्वाधीनता को स्वीकार करने से ही व्यक्ति अपने को छोटा बना लेता है—अपना महत्व खो देता है।

इसके बाद लेखक ने यह दिखलाया है कि जब हमें सब जगह सड़क पर थूकने तक का अधिकार नहीं है तो भला वीर्य रूपी इस महा शक्ति को मन-माना खर्च करने का अधिकार हमें कहां से मिल सकता है? क्या यह काम ऐसा है जो ऊपर के बतलाये हुए समस्त कामों के पारस्परिक अखड सम्बन्ध से अलग है? बल्कि सच पूछो तो इसकी गुरुता के कारण तो इसका प्रभाव और भी गहरा हो जाता है। देखो अभी इस नवयुवक और लड़की ने यह सम्बन्ध किया है। वे समझते हैं कि उसमें वे स्वतन्त्र हैं—उस काम से और किसीको कुछ मतलब नहीं—वह केवल उन दोनों का ही है। वे अपनी स्वतन्त्रता के भुलावे में पड़ कर यह समझते हैं कि इस काम से समाज को न तो कोई सम्बन्ध है और न समाज का उस पर कुछ नियन्त्रण ही हो सकता है। यह बच्चों का लड़कपन है। वे नहीं जानते कि हमारे गुप्त और व्यक्तिगत कर्मों का अत्यन्त दूर के कामों पर भी भयानक असर पड़ता है। इस प्रकार समाज को तुम नष्ट करना चाहते हो। चाहे तुम चाहो या न चाहो परन्तु जब तुम केवल आनन्द के लिए अस्थायी या अनुत्पादक ही नहीं परन्तु यौन-सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिखलाते हो तो तुम समाज के भीतर भेद और भिन्नता के बीज डालते हो। हमारे स्वार्थ या स्वच्छन्दता से हमारी सामाजिक स्थिति बिगड़ी हुई तो है हीं परन्तु अभी भी सभी समाजों में ऐसा ही समझा जाता है कि उत्पादिका शक्ति के

व्यवहार मुख में जो जिम्मेदारी आ पडती है उसे सब कोई खुशी २ उठावेंगे। इस जिम्मेदारी को भूल जाने से ही आज पूजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक-सेवा, प्रतिनिधित्व के अधिकार इत्यादि पेचील सवालों का जन्म हुआ है। इस भार को अस्वीकार करने से एक वार में ही वह व्यक्ति समाज के सारे सगठन को हिला देता है। और इस प्रकार दूसरे का बोझा भारी कर आप हल्का होना चाहता है, इसलिए वह किसी चोर डाकू या लुटेरे से कम नहीं कहा जा सकता। अपनी इस शारीरिक शक्ति के सुव्यवहार के लिए भी समाज के सामने हम वैसे ही जिम्मेदार हैं जैसे अपनी और शक्तियों के लिए। हमारा समाज इस विषय में निरक्ष है और इसलिए उसे हमारी अपनी समझदारी पर ही उसके उचित उपयोग का भार रखना पडा है, इस कारण इसकी जिम्मेवारी तो और भी कुछ बडी ही होनी चाहिए।

स्वाधीनता बाहर से तो सुख सी मालूम होती है परन्तु सचमुच में वह एक भार सी है। इसका अनुभव तुम्हें पहली बार में ही हो जाता है। तुम समझते हो कि मन और विवेक दोनों में एकता है परन्तु दोनों में तुम्हारी ही शक्ति है और दोनों में बहुत भेद देखने में आया करता है। उस समय किसकी मानोगे? तुम्हारी विवेक बुद्धि से जो उत्पन्न होता है उसकी या उसकी जो तुम्हारी नीचों से नीचा इन्द्रिय-लालसा से? यदि विवेक की इन्द्रिय-लालसा के ऊपर विजय होने में ही समाज की उन्नति है तब तो तुम्हें इन दोनों में से एक बात को चुन लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु तुम यह भी कह सकते हो

कि मैं शरीर और आत्मा दोनों का साथ २ पारस्परिक विकास चाहता हूं। ठीक। परन्तु यह भी याद रखो कि आत्मा के कुछ भी विकास के लिए कुछ न कुछ तो संयम तुम्हें करना ही होगा। पहले इन विलास के भावों का नष्ट कर दो तो फिर तुम जो चाहोगे हो सकोगे।

महाशय गैवरियल सीलेम भी कहते हैं कि हम बार बार कहते फिरते हैं कि हमें स्वतन्त्रता चाहिए—हम स्वतन्त्र हों। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्त्तव्य की कैसी कठोर बेड़ी बन जाती है यह हम नहीं जानते। हमें यह नहीं मालूम कि हमारा इस नकली स्वतन्त्रता का अर्थ है इन्द्रियों की गुलामी जिससे हमें न तो कभी कष्ट का अनुभव होता है और न हम कभी इसलिए उसका विरोध ही करते हैं।

संयम में शान्ति है और असंयम तो अशान्ति रूप महदुःख का घर है। कामेच्छाएं तो सभी समयों में कष्टदायी हो सकती हैं परन्तु युवावस्था में तो यह महाव्याधि हमारी बुद्धि को बिलकुल बिगाड़ दे सकती है। जिस नवयुवक का किसी स्त्री से पहले पहल संबंध होता है वह नहीं जानता कि वह अपने नैतिक मानसिक और शारीरिक जीवन के अस्तित्व के साथ खेल रहा है। उसे यह भी नहीं मालूम कि उसके इस काम की याद उसे बार २ आकर सतायेगा और उसे अपनी इन्द्रियों का बड़ा बुरी गुलामी करना पड़ेगी। कौन नहीं जानता कि एक से एक अच्छे लड़के जिन से आगे बहुत कुछ आशा की जा सकती थी, चौपट हो गये और उनके पतन का आरंभ उनके पहली बार के नैतिक पतन से ही हुआ था।

मनुष्य का जीवन तो उस बरतन के समान है जिस में

तुम यदि पहली बूंद में ही मैला छोड देते हो तो फिर लाख पानी डालते रहो सभी का सभी गदा होता जायगा।

इग्लैण्ड के प्रसिद्ध शरीर शास्त्री महाशय केन्द्रिक ने भी तो कहा है कि "कामेच्छा की सतुष्टि केवल नैतिक दोष भर ही नहीं है। उससे शरीर को भी हानि पहुँचती है। यदि इस इच्छा के सम्मुख तुम झुकने लगो तो वह तुम्हारे ऊपर और भी अत्याचार करने लग जायगी और यदि तुम्हारा मन सदोष है तो तुम उसकी बातें सुनोगे और उसका बल बढाते जाओगे। ध्यान रखो कि हरदफा का नया काम तुम्हारी गुलामी की जजीर की एक नयी कडी बन जावेगी।

फिर तो इसे तोडने की तुम्हें शक्ति ही न रहेगी और इस प्रकार तुम्हारा जीवन एक अज्ञान जनित अभ्यास के कारण नष्ट हो जायगा। इसका सब से अच्छा उपाय है ऊचे विचारों को पैदा करना और सभी कामों में सयम से काम लेना।"

महाशय ब्यूरो ने इसके बाद डाक्टर फ्रैन्क का मत दिया है कि "कामेच्छा के ऊपर मन और इच्छा का पूरा अधिकार है क्योंकि यह कोई आवश्यकता नहीं है, हाजत नहीं है। यह तो केवल एक इच्छा भर है जिस का पालन हम जानबूझ कर अपनी राजी से ही करते हे न कि स्वभाव के वश हो कर।"

६

आजीवन ब्रह्मचर्य

विवाह के पहले और बाद भी ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होते हैं और यह कहाँ तक शक्य है, इस बात को लिख कर, आजीवन ब्रह्मचर्य कहाँ तक संभव है और उसका क्या महत्व है, अब इस विषय पर लेखक लिखते हैं

'कामवासना की गुलामी से मुक्ति पाने वालों में सबसे पहले उन युवक युवतियों का नाम लिया जायगा जिन्होंने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य पालन का निश्चय कर लिया है। उनके इस दृढ़ निश्चय के अलग २ कारण होते हैं। कोई असहाय माता-पिता की सेवा को अपना कर्तव्य मानता है, तो कोई अपने मातृ-पितृ-हीन छोटे भाई-बहिनों के लिए स्वयं माता-पिता का स्थान

ग्रहण करता है, तो कोई ज्ञानार्जन में ही जीवन विताना चाहता है, तो कोई रोगियों वा गरीबों की सेवा में, तो कोई धर्म या जाति अथवा शिक्षा की सेवा में ही जीवन लगा देना चाहता है। इस निश्चय के पालन में किसी को तो अपने मनोविकारों से भयङ्कर युद्ध करना पड़ता है, तो किसी के लिए कभी २ भाग्यवशात् पहले से ही रास्ता बहुत साफ हुआ रहता है। वे अपने मन में अपने या परमात्मा के सम्मुख प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि जो ध्येय उन्होंने चुन लिया वह चुन लिया और अब फिर विवाह की बात करना व्यभिचार होगा। प्रसिद्ध चित्रकार माइकेल ऐन्जेलो से जब किसी ने कहा कि तुम विवाह कर लो तो उसने जवाब दिया कि 'चित्रकारी ही मेरी ऐसी पत्नी है जो सौत का रहना बरदाश्त न करेगी।

अपने यूरोपीय मित्रों के अनुभव से मैं महाशय ब्यूरा के बतलाये हुए प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों का उदाहरण दे कर उनकी इस बात का समर्थन कर सकता हूं कि बहुत मित्रों ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया है। हिन्दुस्तान को छोड़ कर और किसी भी देश में बचपन से ही विवाह की बातें बालकों को सुनाई नहीं जाती हैं। यहाँ तो माता-पिता की एक ही अभिलाषा रहती है लड़के का विवाह कर देना और उसकी आजीविका का उचित प्रबन्ध कर देना। पहली बात से तो असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास हो जाता है और दूसरी बात से आलस्य आ घेरता और कभी २ दूसरे की कमाई पर जीने की लत लग जाती है! ब्रह्मचर्य और स्वेच्छा से लिये हुए दारिद्र्य-व्रत की हम अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। बस, यह काम तो केवल योगियों और महात्माओं से ही सम्भव है और

यह भी कहा करते हैं कि योगी और महात्मा असाधारण पुरुष होते हैं। हम यह भुलादते हैं कि जिस समाज की ऐसी गिरी हालत हो उसमें सच्चे योगी और महात्मा का होना ही असम्भव है। इस सिद्धान्त के अनुसार कि सदाचार की चाल यदि कछुवे की चाल के समान धीमा और अयाथ है, तो दुराचार खरहे की तरह दौड़ता है। हमारे पास पश्चिम के देशों से व्यभिचार का सौदा बिजली की चाल से दौड़ा आता है और अपनी मनामोहिनी चमकदमक से हमारी आखों को चकमका देता है और हम सत्य को भूल जाते हैं। क्षण क्षण में पश्चिम से तार के द्वारा जो वस्तु पहुँचती है और प्रतिदिन परदेशी माल से लदे हुए जो जहाज उतरते हैं, उनमें हो कर जो जगमगाहट आती है, उसे देख कर ब्रह्मचर्य व्रत लेने में हमें शर्म तक आने लगती है और निर्धनता के व्रत को हम पाप कहने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु आज हिन्दुस्तान में हमें पश्चिम का जो दर्शन हो रहा है, पश्चिम हूबहू वैसा नहीं है। जिस प्रकार दक्षिण आफ्रिका के गोरे वहाँ के रहने वाले थोड़े से हिन्दुस्तानियों के आधार पर ही सभी हिन्दुस्तानियों के चरित्र का अनुमान करने में भूल करते हैं, उसी प्रकार हम भी इन थोड़े से नमूनों पर सारे पश्चिम का अन्दाजा लगाने में अन्याय करते हैं। जो लोग इस भ्रम का पर्दा हटा कर भीतर देख सकते हैं, वे देखेंगे कि पश्चिम में भी वीर्य और पवित्रता का एक छोटा सा परन्तु अटूट झरना मौजूद है। यूरोप की इस महा मरुभूमि में भी ऐसे झरने हैं, जहाँ जो कोई चाहे जीवन का पवित्र से पवित्र जल पी कर सन्तुष्ट हो सकता है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छापूर्वक निर्धनता के व्रत, वहाँ कितने लोग लेते हैं और फिर कभी भूल कर भी उसके लिए गर्व नहीं करते—कुछ

गार नहीं मचाते ' यह सब नम्रता के साथ किसी स्वजन अथवा स्वदेश की सेवा के लिए करते हैं । हम लोग धर्म की बातें इस प्रकार करते हैं मानों—धर्म में और व्यवहार में कोई सम्पर्क ही न हो और यह धर्म केवल हिमालय के एकान्तवासी योगियों के लिए ही हो । जिस धर्म का हमारे दैनिक आचार व्यवहार पर कुछ असर न पड़े, वह धर्म एक हवाई ख्याल के सिवाय और कुछ नहीं है । सभी नौजवान पुरुष और स्त्रियां, जिनके लिए यह पत्र प्रति सप्ताह लिखा जाता है, समझ लेवें की अपने पास के वातावरण को शुद्ध बनाना और अपनी कमजोरी को दूर करना तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना उनका कर्त्तव्य है और यह भी जान लें कि यह काम उतना कठिन नहीं है, जितना कि वे सुनते आये हैं ।

अब देखना चाहिए कि लेखक और क्या कहते हैं । उनका कहना है कि यदि हम यह मान भी लें कि विवाह करना आवश्यक ही है, तो भी न तो सब कोई विवाह कर ही सकते हैं और न सब के लिए इसे आवश्यक और उचित ही कहा जायगा । इसके अलावा कुछ लोग ऐसे भी तो होते हैं कि जिन्हें ब्रह्मचर्य के पालन के सिवा दूसरा रास्ता रह ही नहीं जाता है —(१) अपने रोजगार या गरीबी के कारण मजबूरन् जिन्हें विवाह करने से रुकना पड़ता है (२) जिन्हें अपने योग्य वर या कन्या मिलता ही नहीं है (३) अन्त में, वे लोग जिन्हें कोई ऐसा रोग हो, जिसके सन्तान में भी आ जाने का भय हो या वे जिन्हें किसी और कारण से विवाह का बिल्कुल विचार ही छोड़ देना पड़ता हो । किसी उत्तम कार्य या उद्देश्य के लिए अशक्त और सम्पन्न स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य-व्रत से उन लोगों

को भी जो लाचार ब्रह्मचारी बने रहते हैं, अपने व्रत के पालन में सहारा मिलता है। स्वेच्छा पूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत को जिसने धारण किया है, उसे तो उसका यह ब्रह्मचारी का जीवन अपूर्ण नहीं मालूम होता, बल्कि इसे ही वह ऊंचा और परमानन्द से भरा हुआ जीवन मानता है। विवाहित अविवाहित और दोनों प्रकार के ब्रह्मचारियों को उनके व्रत पालन में उससे उत्साह मिलता है। वह उनका पथप्रदर्शक बनता है।

महाशय फोर्स्टर का मत प्रत्यक्ष देते हैं—"ब्रह्मचर्य-व्रत विवाह संस्था का बड़ा भारी सहायक है, क्योंकि यह तो विषयेच्छा और विकारों से मनुष्य की मुक्ति का चिह्न स्वरूप है। विवाहित स्त्री पुरुष इसे देख कर यह समझते हैं कि वे परस्पर एक दूसरे को केवल विषयेच्छा की ही पूर्ति के साधन नहीं हैं, बल्कि विषयवासना के रहते हुए भी वे स्वतंत्र और मुक्त आत्मा हैं। ब्रह्मचर्य का मजाक उड़ानेवाले लोग यह नहीं जानते कि उसका मजाक उड़ा कर के वे व्यभिचार और बहु विवाह का समर्थन कर रहे हैं। यदि यह मान लिया जाय कि विषयेच्छा का तृप्त करना परमावश्यक है, तो फिर विवाहित स्त्री पुरुषों से किस प्रकार पवित्र जीवन की आशा रक्खी जा सकती है? वे यह भूल जाते हैं कि रोगवश या किसी और कारण से कभी दम्पति में से एक की अशक्तता से दूसरे के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य हो जाता है। अगर और कुछ नहीं तो केवल एक इसी कारण से ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा हम स्वीकार करते हैं, उतना ही ऊंचे पर हम एक पत्नी-व्रत के आदर्श को चढ़ाते हैं।"

७

विवाह का पवित्र संस्कार

आजीवन ब्रह्मचर्य के अभ्यास के बाद, कई अध्यायों में लेखक ने विवाहित जीवन के कर्त्तव्य और विवाह की अखण्डता पर विचार किया है। यद्यपि अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही वे सर्वोत्तम मानते हैं, परन्तु जन-साधारण के लिए वह शक्य नहीं है, इसलिए वैसे लोगों के लिए विवाह-बन्धन केवल आवश्यक ही नहीं, वरन् कर्त्तव्य के बराबर है। उन्होंने दिखलाया है कि विवाह के कर्त्तव्यों और उद्देश्यों को ठीक से समझ लेने पर, सन्तति-निरोध के

समर्थन की जरूरत ही नहीं पड़ेगा। इस नैतिक असंयम का कारण हमारी उल्टी नैतिक शिक्षा है। विवाह का मजाक उड़ाने वाले लेखकों के तर्कों का जवाब देते हुए लेखक कहते हैं —

पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम विवाह है। विवाह केवल आपस का एक ठेका भर ही नहीं है, बल्कि यह एक धार्मिक संस्कार है—धर्म-सम्बन्ध है। यह कहना भूल है कि विवाह के नाम से सभी प्रकार के असंयम क्षम्य हैं। असंयम से विवाह के असली उद्देश्य को धक्का पहुँचता है। सन्तानोत्पत्ति के सिवाय, और सभी प्रकार की कामवासना की तृप्ति, सच्चे प्रेम के लिए बाधक है और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक। सन्त फ्रांसिस का कहना है कि कड़ी दवायें खाना हमेशा खतरनाक ही होता है। यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो हानि होना सम्भव है। कामवासना की दवा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी दवा है, परन्तु कड़ी है और इसलिए बहुत सँभाल कर यदि इसका व्यवहार न किया जाय, तो खतरनाक भी है।

इसके बाद लेखक विवाह सम्बन्ध स्थापित करने या तोड़ने में अथवा सीधे सीधे, तज्जनित कर्तव्यों की परवा न कर के स्वतंत्र जीवन बिताने में व्यक्तिगत स्वाधीनता का विरोध करते हैं और एक पत्नीव्रत पर ही जोर देते हैं —

'यह गलत है कि विवाह करने या स्वेच्छामय ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का हमें पूरा अधिकार है। और उससे भी कम अधिकार विवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर के सम्बन्ध में विवाह-बन्धन तोड़ने का है। उनकी स्वतंत्रता एक दूसरे को चुन लेने भर में ही होती है, और वे चुनते हैं यह ठीक से समझ कर कि एक दूसरे के साथ विवाह के कर्तव्यों को वे

ठीक २ पालन कर सकेंगे। फिर एक बार जब यह संस्कार हो गया, तब उसका प्रभाव इन दो मनुष्यों के बाहर समाज पर बहुत दूर तक पड़ने लगता है। भले ही आज उसे हम न समझ सकें परन्तु जो समझते हैं वे हमारे आज के सामाजिक दुखों का जड़ को पहचानते हैं। उन्हें इससे सन्तोष होगा कि जब सभी संस्थाओं का विकास होता है तो इस विवाह संस्था में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। वे तो देखते हैं कि आज जब परस्पर के केवल राजीनामे से ही तलाक तक के अधिकार माँगे जाते हैं तो समय पाकर हमारे होनेवाले कष्टों से ही एक पत्नी-व्रत की महिमा का हम ज्ञान होगा।

'विवाह का अखण्डता का नियम अकारण शोभा के लिए ही नहीं है। व्यष्टि के और समष्टि के सामाजिक जीवन की बड़ी नाजुक बातों से इसका सम्बन्ध है। जो लोग विकासवादी हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि जाति की यह अनिश्चित उन्नति आखिर किस रास्ते होगी? उत्तर-दायित्व के भाव की वृद्धि व्यक्ति का स्वेच्छा से लिया हुआ संयम, सन्तोष और उदारता की वृद्धि, स्वार्थ का नियमन क्षणिक क्षोभों के विरुद्ध भावुकता का जीवन—मनुष्य के आन्तरिक जीवन की इन बातों को हम भुला नहीं सकते। सभी प्रकार की आर्थिक या सामाजिक उन्नति में इनका ख्याल रखना ही होगा नहीं तो उन उन्नतियों का कोई मूल्य नहीं गिना जा सकता। इसलिए सामाजिक और नैतिक दोनों दृष्टियों से यदि हम भिन्न २ प्रकार के काम-सम्बन्ध पर दृष्टि डालते हैं, तो हम इस बात का विचार करना ही पड़ेगा कि हमारे सारे सामाजिक जीवन का शक्ति को बढ़ाने के लिए कौन सी संस्था सब से अच्छी है या दूसरे शब्दों में मनुष्य के

आन्तरिक जीवन के स्वार्थ-त्याग और बलिदान की वृद्धि तथा चंचलता इत्यादि के नाश के लिए, कौन सा जीवन सब से अच्छा होगा? इन प्रश्नों पर विचार करने पर कहना ही पड़ेगा कि एक पत्नी-व्रत के सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी महत्व के कारण उससे अच्छा जीवन दूसरा नहीं है। पारिवारिक जीवन में ही इन सब मनुष्योचित गुणों का विकास होता है और अपनी अखण्डता के कारण दिन पर दिन इस सम्बन्ध की गम्भीरता भी बढ़ती ही जाती है। यों भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक-पत्नी-व्रत ही है।

इसके बाद लेखक औगस्ट कौम्ट के विचार लिखते हैं कि "हमारे ऊपर समाज का नियन्त्रण परमावश्यक है, नहीं तो धीरे २ हमारा जीवन किसी काम का न रह जायगा। काम-वासना की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।"

डाक्टर टूलो लिखते हैं कि "विवाहित जीवन के सुखों में इस भ्रम से बहुत बाधा पड़ती है कि कामप्रवृत्ति की पूर्ति परमावश्यक है। ठीक इसके उलटे मनुष्य की प्रकृति है इन प्रवृत्तियों का दमन करना। लोग यथा अपनी शारीरिक प्रवृत्तियों का दमन करना सीखता है तो वह रागों या मन की प्रवृत्तियों के दमन का अभ्यास करना पड़ता है। हम लोग जिसे प्रायः स्वभाव या प्रकृति के नाम से पुकारते हैं, वह हमारी कमजोरी है। जिस में यह शक्ति है, वह पुरुष उचित अवसर पर उस शक्ति का प्रयोग भी कर सकता है।

८

उपसंहार

अच्छा, इस लेख-माला को अब समाप्त करना चाहिए। ब्यूरो ने माल्थस के सिद्धान्तों की जिस जिस प्रकार समीक्षा की है उसे जानना हमारे लिए आवश्यक नहीं है।

"चूँकि इस समय मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ रही है, इसलिए यदि यह अभीष्ट हो कि समस्त मनुष्य-जाति समूल नष्ट न हो जाय तो सन्तति-निरोध को आवश्यक मानना ही पड़ेगा,' — इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर के माल्थस ने अपने जमाने के

लोगों का चकित कर दिया था। पर माल्थस ने तो इन्द्रिय-संयम ही सिखलाया था पर आजकल का नया माल्थसी सिद्धान्त तो संयम की शिक्षा न दे कर पशुवृत्ति की तृप्ति के दुष्परिणामों से बचने के लिए यंत्रों और औषधियों का व्यवहार सिखलाता है। नैतिक रीति से—अर्थात् इन्द्रिय-संयम के द्वारा—संतति-निरोध का समर्थन मो० ब्यूरो बहुत खुशी से करते हैं, परन्तु जैसा कि हम स्वयं चुके हैं वह दवाओं या यंत्रों की सहायता से संतति-निरोध का निषेध एवं घोर विरोध करते हैं। इसके बाद लेखक ने श्रमजीवियों की दशा तथा उनकी जन्म-संख्या की जाँच की है। और अन्त में, व्यक्तिगत स्वाधीनता के और मनुष्यता के भी नाम पर फैली हुई अनीतियों को रोकने के उपायों पर विचार करते हुए पुस्तक समाप्त की है। लेखक ने अनीति और नियमन करने के लिए संगठित रूप से काम करने की सलाह दी है और इस विषय में कायदे कानून की सहायता का भी वे समर्थन करते हैं। परन्तु उनका अन्तिम भरोसा तो धार्मिक वृत्ति की जागृति पर ही है। अनीति का प्रवाह तो यों ही मामूली उपायों से नहीं रोका जा सकता है, परन्तु तब तो बिल्कुल ही न रोका जा सकेगा जब कि अनीति को ही धर्मनीति का पद दिया जाने लगेगा और नीति की दुर्बलता, अंध-विश्वास या अनीति ही कहा जायगा। उदाहरणार्थ—संतति-निरोध के बहुत से समर्थक ब्रह्मचर्य को अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी बतलाते हैं। ऐसी दशा में निरंकुश पापाचार को रोकने में केवल एक धर्म की ही सहायता कारगर होगी। यहाँ धर्म को संकीर्ण अर्थ में न लेना चाहिए। व्यक्ति हो अथवा समाज—उस पर सच्चे धर्म का जितना गहरा प्रभाव पड़ता है उतना किसी

दूसरी वस्तु का नाम। धार्मिक जागृति का अर्थ क्रान्ति, परिवर्तन अथवा पुनर्जन्म है। ब्यूरो की सम्मति में फ्रांस जिस पथ पर चला जा रहा है उस जाति के प्रलय से उसे कोई ऐसी ही महाशक्ति बचा सकती है—कोई दूसरी चीज नहीं।

अच्छा, अब हम लेखक तथा उनकी पुस्तक को यहीं छोड़ दें। फ्रांस और हिन्दुस्तान की हालत एक सी ही नहीं है। हमारी समस्या कुछ और ही है। गर्भ-निरोधक साधनों का यहाँ घर घर प्रचार नहीं है। शिक्षित लोगों में भी इन वस्तुओं का व्यवहार शायद ही होता हो। मेरी समझ में उनका प्रचार हिन्दुस्तान में करने का एक भी उपयुक्त कारण नहीं है। मध्यम श्रेणीवालों को क्या बहुसन्तान की भी कोई शिकायत है? कुछ व्यक्तियों के उदाहरण दिखला देने से ही यह सिद्ध न होगा कि मध्यम श्रेणी वालों में जन्म-संख्या अधिक है। जहाँ तक मैंने देखा है वहाँ तक विधवाओं और बाल पत्नियों के लिए ही यहाँ इन वस्तुओं के उपयोग का समर्थन किया जाता है। इसलिए एक ओर तो हम नाजायज औलाद की पैदाइश से बचना चाहते हैं—परन्तु गुप्त व्यभिचार से नहीं—दूसरी ओर हम नाजुक बालिका के गर्भवती हो जाने का डर है न कि उसके साथ बलात्कार किये जाने का दुःख!

अब रहे वे रोगी निर्बल और निर्वीर्य नवयुवक जो अपनी या पराई स्त्री के प्रति कामासक्त रहते हैं और इसे पाप मानते हुए भी इसके परिणामों से दूर भागना चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि असंख्य भारतीयों के इस महासागर में हृष्ट पुष्ट और वीर्यवान् स्त्री-पुरुष ऐसे विरले ही मिलेंगे जो

विषयतृप्ति भी चाहें और बच्चों का भार उठाने से घबरावें भी। इसके समर्थकों को एक ऐसी बात के समर्थन का प्रयत्न न करना चाहिए, जिसका प्रचार यदि सार्वजनिक हो जाय तो इस देश के युवकों का सर्वनाश निश्चित है। अत्यन्त कृत्रिम शिक्षापद्धति ने जाति के युवकों का शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपहरण कर लिया है। हम लोगों का जन्म प्रायः बचपन के ब्याहे माता-पिता से ही हुआ है। स्वास्थ्य और सफाई के नियमों की उपेक्षा करने से हमारा शरीर घुन गया है। उत्तेजक मसालों से भरी हुई हमारी गलत और अपूर्ण खुराक ने हमारी पाचन-शक्ति को नष्ट कर डाला है। हमें गर्भ निरोधक साधनों की शिक्षा और पाशविक प्रवृत्ति की तृप्ति के निमित्त सहायता की जरूरत नहीं है। परन्तु हम को कामवासना के संयम—आजीवन ब्रह्मचर्य—की शिक्षा की निरंतर आवश्यकता है। इस बात की शिक्षा हमें उपदेश और उदाहरण दोनों के द्वारा दी जाने की जरूरत है कि यदि हमें शरीर और दिमाग को कमजोर नहीं रखना हो तो हमारे लिए ब्रह्मचर्य का पालन परमावश्यक है और यह सर्वथा शक्य भी है। हमें मैं पुकार पुकार कर यह बात कहा जाने की जरूरत है कि यदि हमारी जाति बौनों की जाति बनना नहीं चाहती है, तो हमें अपनी शक्ति का संचय करना होगा और पानी में बही जाती हुई अपनी बची बचाई थोड़ी सी शक्ति को बढ़ाना होगा। बाल विधवाओं को यह बतलाना होगा कि गुप्त रूप से पाप मत किया करो, किन्तु साहस कर के बाहर आओ और खुल कर अपना वही अधिकार तुम भी मांगो जो नवयुवक विधुरों को पुनर्विवाह करने का प्राप्त है। हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है कि जिसमें बाल

–विवाह असम्भव हो जाय। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, हमारे शान से शुरू किये गये कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव—इत्यादि इन सब के मूल में मुख्यत हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है। मुझे उमेद है कि नवयुवक इस भ्रम में न पड़ेंगे कि जब तक वे सन्तानोत्पत्ति से बचे रहें, तब तक के भोगविलास से उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती—उससे निबलता नहीं आती। सच पूछो तो प्रजनन को रोकने के लिए कृत्रिम उपायों से युक्त सम्भोग उसकी सन्तानोत्पत्ति को समझ कर किये हुए सम्भोग की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति हर सकता है। यदि हमारा मन यह मान ले कि विषय सम्भोग आवश्यक, निर्दोष और पापरहित है तो फिर हम उसको निरंतर तृप्त करते रहना चाहेंगे और हमारे लिए उसका दमन असम्भव हो जायगा। किन्तु यदि हम अपने मन को ऐसा समझा सकें कि उसमें पड़ना हानिकारक है, पापमय एवं अनावश्यक है और उसको काबू में रक्खा जा सकता है, तो हमको मालूम होगा कि आत्मसंयम सर्वथा शक्य है।

नवीन सत्य के और मनुष्यों की स्वाधीनता के भेस में उन्मत्त पश्चिम स्वच्छन्दता की जो मदिरा भेज रहा है, उससे हमें बचना ही होगा। परन्तु इसके विपरीत—यदि हम अपने पूर्वजों के ज्ञान को खो बैठे हों तो हम पश्चिम की उस शान्त और गंभीर ध्वनि को सुन, जो कभी २ वहाँ के बुद्धिमान् पुरुषों के गंभीर अनुभव से हमारे पास छन छन कर आया करती है।

चार्ली एन्ड्रूज ने मेरे पास जनन और प्रजनन पर मि० विलियम लाफ्टस हेयर का एक अच्छा सा लेख भेजा है जो कि मार्च सन १९ ८ के 'ओपनकोर्ट' नामक पत्र में प्रकाशित

हुआ था। यह युक्तियुक्त वैज्ञानिक लेख है। उसमें उन्होंने दिखलाया है कि सभी प्राणियों के शरीरों में दो क्रियायें बराबर चालू रहती हैं। "शरीर को बनाने के लिए आन्तरिक जनन और प्रजा-वृद्धि के लिए बाह्य प्रजनन।" इनका नाम वे क्रमशः जनन और प्रजनन रखते हैं। "जनन (आन्तरिक जनन) व्यक्ति के जीवन का आधार है और इसलिए आवश्यक तथा मुख्य काम है। प्रजनन का काम, शरीर-कोषों के आधिक्य से होता है और इसलिए वह गौण है। इसलिए जीवन का नियम यह है कि पहले जनन के लिए शरीर-कोषों की पूर्ति हो ले, तब प्रजनन हो। यदि शरीर-कोषों की कमी रही तो पहले जनन का काम होगा, प्रजनन का बन्द रहेगा। इस प्रकार हम प्रजनन की बन्दी की जड़ का पता पा जाते हैं तथा ब्रह्मचर्य और तपस्या के मूल तक पहुँच जाते हैं। आन्तरिक जनन की क्रिया के रुकने का परिणाम मृत्यु ही है— अन्य कुछ नहीं। और इस प्रकार हम मृत्यु का भी कारण जान जाते हैं। शरीर के प्रजनन का वर्णन करते हुए वे कहते हैं — 'सभ्य मनुष्यों में प्रजनन की आवश्यकता से कहीं ज्यादा वीर्य नष्ट किया जाता है और इससे आन्तरिक जनन का काम रुकता है—जिसके फल-स्वरूप रोग, मृत्यु और अन्य तरह के दुःख और क्लेश होते हैं।

जिसे हिन्दू-दर्शन का जरा भी ज्ञान होगा उसे मि॰ हेयर के लेख का निम्न लिखित अवतरण समझने में कुछ भी कठिनाई न होगी —प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र के काम की सी नहीं है। प्रारम्भिक काल में कोषों के विभजन में प्रजनन का जैसा सजीव काम होता था, वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात्

वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम बिलकुल निर्जीव कल की भाँति होता है। हाँ, यह सच है कि ये मूलीभूत बातें हमारी वर्तमान जागृति से इतना दूर जा पड़ी हैं कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के अधीन नहीं मालूम होतीं परन्तु एक क्षण के बाद ही हमें मालूम पड़ जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीर वाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओं का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है — और उसका काम ही यही है — उसी प्रकार शरीर के क्रमशः होते हुए संगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनो-वैज्ञानिकों ने उसका नाम असंकल्प रक्खा है। यह हमारे नित्य नैमित्तिक विचारों से दूर होते हुए भी, हमारा ही अंग विशेष है। यह अपने काम में इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चैतन्य कभी २ सुप्तावस्था में पड़ जाता है, परन्तु यह सोता एक क्षण के लिए भी नहीं! हमारे असंकल्प और अविनश्वर अंग की जो प्रायः अप्रिय हानि शरीर-सुख के लिए किये गये विषय-भोग से होती है उस का अन्दाजा कौन लगा सकता है? प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-संभोग पुरुष के लिए प्राणघातक है और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही।

इस लिए लेखक का कथन है कि 'बहुत संयमी या सम्पूर्ण ब्रह्मचारियों के लिए तो पुंस्त्व, सजीवता और रोगहीनता साधारण बातें हैं।

"प्रजनन अथवा साधारण आमोद के लिए ही शरीर कोषों को जनन-पथ से हटाने से, शरीर की कमी के पूरी होने में बाधा पहुँचती है और धीरे २ (परन्तु अन्त में अवश्यमेव) शरीर को

हानि पहुँचता है । इन्हीं कुछ शारीरिक बातों के आधार पर मनुष्य की व्यक्तिगत सम्भोग-नीति निर्भर है, जिससे हमें यदि उसके दमन की नहीं तो संयम की शिक्षा तो मिलती ही है-या किसी प्रकार कुछ न कुछ संयम के मूल कारण का पता तो जरूर ही चलता है ।" इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है कि लेखक, दवा या यन्त्रों की सहायता से गर्भ-निरोध करने के विरोधी हैं । उनका कहना है, "इससे आत्म-संयम का कोई हेतु रह नहीं जाता है और विवाहित स्त्री पुरुषों के लिए जब तक बुढ़ापे की अशक्तता या इच्छा की कमी न आ जाय, तब तक वीर्यनाश करते जाना सम्भव हो जाता है । इसके अतिरिक्त विवाहित जीवन के बाहर भी इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है । इस से उच्छृंखल और अनुत्पादक व्यभिचार का द्वार खुल जाता है। यह बात आधुनिक समाजशास्त्र और राजनीति की दृष्टि से खतरे से भरा हुआ है । परन्तु यहाँ इस पर पूरा विचार करने की जरूरत नहीं है । इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि गर्भ-निरोधक साधनों से विवाह-बन्धन के भीतर अथवा उसके बाहर अनुचित व अत्यधिक सम्भोग के लिए सुविधा हो जाती और शरीर शास्त्र-सम्बन्धी मेरी उपर्युक्त दलील यदि ठीक है, तो इससे व्यक्ति और समष्टि दोनों की हानि निश्चित है ।

ब्यूरो जिस वाक्य से अपनी पुस्तक समाप्त करते हैं, उसे प्रत्येक हिन्दुस्तानी नवयुवक को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए—'भविष्य संयमी लोगों के ही हाथ है" ।

॥ इति ॥

सन्तति-निग्रह

बहुत हिचक और अनिच्छा से मैं इस विषय की चर्चा करने बैठा हूँ। हिन्दुस्तान में मेरे आने के समय से ही पत्र-लेखक मेरे सामने कृत्रिम उपायों से सन्तति-निग्रह का सवाल उठाते रहे हैं। मैंने उन्हें व्यक्तिगत उत्तर दिये हैं मगर अभी तक इस सवाल की प्रकट चर्चा नहीं की है। अब ३५ साल हुए जब इस ओर मेरा ध्यान गया था। उस समय मैं इंगलैण्ड में पढ़ता था। उस समय वहाँ एक पवित्रता-वादी जो कि इसके लिए संयम को छोड़ और कुछ उपाय मानता ही न था और कृत्रिम उपायों के समर्थक एक डाक्टर के बीच बड़ा गर्म बहस चल रही थी। उसी कच्ची उम्र में कृत्रिम उपायों की ओर कुछ दिन झुकने के बाद मैं उनका पक्का विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी पत्रों में ये उपाय इस घृणित खुले तौर पर छापे जा रहे हैं, जिनसे मनुष्य की सभ्यता की भावना को सख्त धक्का लगता है। मैंने यह भी देखा कि एक लेखक, कृत्रिम उपायों के हिमायतियों में मेरा नाम बेधड़क लेता है।

मुझे ऐसा एक भी मौका याद नहीं है जब कि मैंने इन उपायों के पक्ष में कुछ भी लिखा या कहा हो। मैंने दो बड़े आदमियों के नामों का भी इसके पक्ष में इस्तेमाल किये जाते देखा है। उन लोगों से पूछे बिना उनका नाम छापने में संकोच होता है।

सन्तति-निग्रह की आवश्यकता के विषय में दो मत हो ही नहीं सकते मगर युग युग से आया हुआ इसका केवल एक ही तरीका है, और वह है आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य। यह अचूक रामबाण दवा है, जिसकी साधना करनेवालों को लाभ ही लाभ होता है। अगर डाक्टर लोग सन्तति-निग्रह के गैरकुदरती उपाय निकालने के बदले आत्म-संयम के उपाय ढूँढें तो संसार उनका ऋणी होगा। संभोग का उद्देश्य सुख नहीं बल्कि सन्तानोत्पादन है। जब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न हो तब संभोग करना अपराध है, गुनाह है।

कृत्रिम साधनों का समर्थन करना मानों बुराई का हौसला बढ़ाना है। वे स्त्री पुरुष को बेपर्वा बना देते हैं। इन उपायों को जो प्रतिष्ठाप्राप्तता दी जाती है, उससे हमारे ऊपर लोकमत का नियंत्रण जल्द से जल्द जाता रहेगा। कृत्रिम उपायों के व्यवहार से बुद्धिहीनता और मानसिक निबलता होगी ही। मर्ज से बुरा इलाज ही होगा। अपने कामों के फल से बचने का प्रयत्न करना पाप है और अनुचित है। जो आदमी बहुत खाता हो उसके लिए पेट का दर्द होना और उपवास करना अच्छा है। मन माना खा खाना और सब चूर्ण या और दवायें खाकर उसके फल से बचना अच्छा नहीं है। किसीके लिए अपनी पाशविक विकारों का तृप्त करने के बाद उसके नतीजों से बचना और भी

अधिक बुरा है। प्रकृति को दया माया नहीं। वह अपने नियमों के जरा भी तोडने का पूरा बदला लेगी ही। नैतिक फल तो नैतिक संयम से ही मिल सकते हैं। दूसरे सभी संयमों से उनका उद्देश्य ही चौपट हो जाता है। कृत्रिम उपायों के समर्थन की जड में यह दलील छिपी रहती है कि जीवन के लिए भोग आवश्यक है। इससे अधिक गलत और कुछ हो ही नहीं सकता। जो लोग संतान संख्या का नियन्त्रण करना चाहते हैं वे पुराने ऋषियों के निकाले उचित उपायों को ही ढूँढें और सोचें कि उनको कैसे जारी किया जा सकता है। उनके आगे काम का बहुत विशाल क्षेत्र पड़ा है। बाल विवाहों से आबादी में सहज ही बढ़ती हो रही है। वर्तमान जीवन क्रम भी बेरोक संतानोत्पादन का एक मुख्य कारण है। अगर ये कारण ढूँढ निकाले जायँ और उनको दूर किया जाय तो समाज की नैतिक उन्नति होगी। अगर अधीर हिमायती उनकी ओर से आँखें मूँद लेंं और कृत्रिम उपायों का ही बाजार गर्म हो तो सिवाय नैतिक अधःपतन के, नतीजा और कुछ हो ही नहीं सकता।

जो समाज अनेक कारणों से आप ही इतना उत्तेजित हो रहा है, कृत्रिम उपायों से वह और भी अधिक उत्तेजित हो जायगा। इस लिए उन लोगों के लिए जो हलके दिल से कृत्रिम उपायों का समर्थन कर रहे हैं इस विषय का फिर से अध्ययन करने, अपने हानिकारक प्रचार को रोक रखने और विवाहित, अविवाहित सबके लिए ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से बेहतर काम और कुछ हो ही नहीं सकता। सन्तति-निग्रह का एक मात्र यही ऊँचा और सीधा रास्ता है।

संयम या स्वच्छन्दता

'संतति-निरोध' संबंधी मेरे लेख के कारण, जैसी कि उम्मेद की जाती थी, कुछ लोगों ने कृत्रिम साधनों के पक्ष में मुझे बड़ा जोरदार चिट्ठियाँ लिखी हैं। उनमें से सिर्फ तीन पत्र मैंने बतौर नमूने के चुन लिये हैं। एक और पत्र भी है, पर वह बहुतांश में धर्मशास्त्र से संबंध रखता है, इसलिए उसे छोड़ देता हूँ। पहला पत्र यह है

"मैं मानता हूँ कि ब्रह्मचर्य ही संतति-निरोध की रामबाण दवा है और इसके साधक को इससे लाभ भी होता है। लेकिन यह संयम का विषय है, संतति-निरोध का नहीं। इस पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—एक व्यक्ति का और दूसरी समाज की। कामविकार को मारना व्यक्ति का धर्म है, मगर इसमें वह संतति-निरोध का विचार नहीं करता। ब्रह्मचारी मोक्ष प्राप्त करने का कोशिश करता है, न कि संतति-निरोध की। लेकिन यह प्रश्न तो गृहस्थों का है। सवाल यह है कि एक आदमी कितने बच्चों का पालन करता है। आप मनुष्य स्वभाव को तो जानते ही हैं। प्रजोत्पत्ति की आवश्यकता पूरी हो जाने बाद संभोग-सुख को छोड़ने को कितने आदमी तैयार होंगे? स्मृतिकारों की तरह आप भी मर्यादा में रह कर संभोगेच्छा पूरी करने की इजाजत तो देंगे ही। लेकिन इससे संतति-निरोध या जन्म-मर्यादा का प्रचार हुए न होगा क्योंकि योग्य प्रजा, अयोग्य प्रजा से अधिक तेजी से बढ़ती है।

"संतानोत्पत्ति की इच्छा से कितने मनुष्य संभोग करते हैं? आप कहते हैं कि संतानोत्पत्ति की इच्छा के बिना, संभोग करना पाप है। यह तो आप जैसे सन्यासियों के लिए ही ठीक है। आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधनों का प्रयोग बुराई को बढाता है। उनसे स्त्रीपुरुष उच्छृंखल हो जाते हैं। यदि यह सच हो तो आप बड़ा भारी इल्जाम लगाते हैं। क्या कभी लोकमत के जरिये भी लोगों के विषय-भोग मर्यादित किये जा सके हैं? लोग कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा से संतान होती है, जिसने दांत दिये हैं, वह दूध भी देगा ही। और अधिक संतति होनी, मर्दानगी का चिह्न समझी जाती है। क्या निश्चय ही कृत्रिम साधनों के प्रयोग से शरीर और मन दुर्बल हो जाते हैं? लेकिन आप तो किसी प्रकार भी उसका उपयोग करने देना नहीं चाहते। क्योंकि अपने किये के फल से मुँह चुराना बुरा है, अनीति है। इसमें आप यह मान लेते हैं कि ऐसी भूख को जरा भी बुझाना अनीति है। यदि संयम का कारण डर हो तो उससे नैतिक परिणाम अच्छा न होगा। माता पिता के पाप की भागी भला संतति किस नियम से हो? बनावटी दांत, आंख इत्यादि के इस्तेमाल को कोई कुदरत के खिलाफ नहीं समझता। वही कुदरत के खिलाफ है, जिससे हमारी भलाई नहीं होती। मैं यह नहीं मानता कि स्वभाव से ही मनुष्य बुरा होता है। और इनके प्रचार से वह और भी बुरा बन जायगा। आज भी पाप कुछ कम नहीं हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे अछूता नहीं है। बुद्धिमानी तो इसमें है कि हम इस नयी शक्ति को काबू में रखें न कि इससे भाग चलें। कुछ अच्छे से अच्छे कार्यकर्ता इनका प्रचार करना चाहते हैं, किन्तु उच्छृंखलता के प्रचार के

संयम या स्वच्छन्दता

'संतति-निरोध' संबंधी मेरे लेख के कारण, जैसी कि उम्मेद की जाती थी, कुछ लोगों ने कृत्रिम साधनों के पक्ष में मुझे बड़ी जोरदार चिट्ठियाँ लिखी हैं। उनमें से सिर्फ तीन पत्र मैंने बतौर नमूने के चुन लिये हैं। एक और पत्र भी है, पर वह बहुतांश में धर्मशास्त्र से संबंध रखता है, इसलिए उसे छोड़ देता हूँ। पहला पत्र यह है

"मैं मानता हूँ कि ब्रह्मचर्य ही संतति-निरोध की रामबाण दवा है और इसके साधक को इससे लाभ भी होता है। लेकिन यह संयम का विषय है, संतति निरोध का नहीं। इस पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—एक व्यक्ति की और दूसरा समाज की। कामविकार को मारना व्यक्ति का धर्म है, मगर इसमें वह संतति-निरोध का विचार नहीं करता। संन्यासी मोक्ष प्राप्त करने की कोशिश करता है, न कि संतति-निरोध की। लेकिन यह प्रश्न तो गृहस्थों का है। सवाल यह है कि एक आदमी कितने बच्चों का पाल सकता है। आप मनुष्य स्वभाव को तो जानते ही हैं। प्रजोत्पत्ति की आवश्यकता पूरी हो जाने बाद संभोग-सुख का त्यागने को कितने आदमी तैयार होंगे? स्मृतिकारों की तरह आप भी मर्यादा में रह कर संभोगेच्छा पूरी करने की इजाजत तो देंगे ही। लेकिन इससे संतति-निरोध या जन्म-मर्यादा का सवाल हल न होगा, क्योंकि योग्य प्रजा, अयोग्य प्रजा से अधिक तेजी से बढ़ती है।

"सतानोत्पत्ति की इच्छा से कितने मनुष्य संभोग करते हैं? आप कहते हैं कि सतानोत्पत्ति की इच्छा के बिना, संभोग करना पाप है। यह तो आप जैसे सन्यासियों के लिए ही ठीक है। आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधनों का प्रयोग बुराइ को बढाता है। उनसे स्त्रीपुरुष उच्छृङ्खल हो जाते हैं। यदि यह सच हो तो आप बड़ा भारी इल्जाम लगाते हैं। क्या कभी लोकमत के जरिये भी लोगों के विषय-भोग मर्यादित किये जा सके हैं? लोग कहते हैं कि इश्वर की इच्छा से सतान होती है, जिसने दात दिये हैं, वह दूध भी देगा ही। और अधिक संतति होनी, मर्दानगी का चिह्न समझी जाती है। क्या निश्चय ही कृत्रिम साधनों के प्रयोग से शरीर और मन दुबल हो जाते हैं? लेकिन आप तो किसी प्रकार भी उसका उपयोग करने देना नहीं चाहते। क्योंकि अपने किये के फल से मुँह चुराना बुरा है, अनीति है। इसमें आप यह मान लेते हैं कि ऐसी भूल को जरा भी भुलाना अनीति है। यदि सयम का कारण डर हो तो उससे नैतिक परिणाम अच्छा न होगा। माता पिता के पाप की भागी भला सतति किस नियम से हो? बनावटी दात, आख इत्यादि के इस्तमाल को कोइ कुदरत के खिलाफ नहीं समझता। वही कुदरत के खिलाफ है, जिससे हमारी भलाइ नहीं होती। मैं यह नहीं मानता कि स्वभाव से ही मनुष्य बुरा होता है। और इनके प्रचार से वह और भी बुरा बन जायगा। आज भी पाप कुछ कम नहीं हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे अछूता नहीं है। बुद्धिमानी तो इसमें है कि हम इस नयी शक्ति को काबू में लावें न कि इससे भाग चलें। कुछ अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता इनका प्रचार करना चाहते हैं, किन्तु उच्छृङ्खलता के प्रचार के

मालूम ही नहीं पड़ा है। जिन्होंने मालूम किया है, उन्होंने, उसमें के नैतिक सवालों पर विचार ही नहीं किया है। ब्रह्मचर्य पर कुछ इधर उधर के व्याख्यानों के सिवाय, संतानोत्पत्ति को मर्यादित करने के उद्देश्य से आत्म-संयम के प्रचार का कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है। बल्कि उसके उल्टे यही वहम अब भी पैठा हुआ है कि बड़ा परिवार होना कुछ शुभ लक्षण है और इसलिए वाञ्छनीय है। धर्मोपदेशक आम तौर पर यह उपदेश नहीं देते कि मौका आने पर सन्तानोत्पत्ति को रोकना भी वैसा ही धर्म हो सकता है जैसा कि सन्तान की वृद्धि करनी।

मुझे भय है कि कृत्रिम साधनों के हिमायती यह बात पहले मान लेते हैं कि विषय-विकार की तृप्ति जीवन के लिए आवश्यक है और इसलिए अपने आप ही इष्ट वस्तु है। अबला जाति के लिए जो फिक्र दिखलायी गयी है वह तो अत्यन्त करुणाजनक है। मेरी राय में तो कृत्रिम साधनों के जरिये संतति-निरोध के समर्थन में नारीजाति का सामने ला रखना, उनका अपमान करना है। एक तो यों ही पुरुषजाति ने अपनी विषय-तृप्ति के लिए उन्हें काफी नीचे गिरा डाला है और अब कृत्रिम साधनों के हिमायतियों के उद्देश्य चाहे कितने ही भले क्यों न हों मगर वे उन्हें और नीचे गिराये बिना नहीं रहेंगे। हां, मैं जानता हूँ कि आज कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो खुद ही इन साधनों की हिमायत करती हैं। पर मुझे इस बात में कोई शक नहीं है कि स्त्रियों की एक बहुत बड़ी तादाद इन साधनों को अपने गौरव के खिलाफ समझ कर उनका तिरस्कार करेगी। यदि पुरुष सचमुच स्त्री जाति का हित चाहते हैं तो

उन्हें चाहिए कि वे खुद ही अपने मन को वश में रक्खें। स्त्रियाँ पुरुषों को नहीं ललचातीं। सच पूछिए तो पुरुष ही खुद ज्यादती करता है और इसलिए वही सच्चा अपराधी और ललचानेवाला है।

मैं कृत्रिम साधनों के समर्थकों से आग्रह करता हूँ कि वे इसके नतीजों पर गौर करें। इन साधनों के ज्यादह उपयोग का फल होगा विवाह-बंधन का नाश और मनमाने प्रेम संबंध की बढ़ती। यदि मनुष्य के लिए विषय-विकार की तृप्ति आवश्यक ही हो जाय तो फिर फर्ज कीजिए कि वह बहुत दिनों तक अपने घर से दूर है या बहुत समय तक लड़ाई में लगा है, या वह विधुर है, या उसकी पत्नी ऐसी बीमार है कि कृत्रिम साधनों का उपयोग करते हुए भी उसकी विषयतृप्ति के अयोग्य है तो ऐसी अवस्था में उसे क्या करना होगा?

लेकिन दूसरे लेखक कहते हैं

"संतति-निरोध संबंधी अपने लेख में आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधन बिल्कुल ही हानिकारक हैं। लेकिन आप उसी बात को सिद्ध मान लेते हैं जिसे कि साबित करना है। संतति-निरोध सम्मेलन (लंदन, १९२२) में ३ मतों के विरुद्ध १६४ मतों से यह स्वीकार कर लिया गया था कि गर्भ को न ठहरने देने के उपाय स्वास्थ्यकर हैं, नीति, न्याय और शरीर-विज्ञान की दृष्टि से गर्भपात इससे बिल्कुल ही भिन्न है और यह बात किसी प्रमाण से साबित नहीं हो पाया है कि ऐसे सर्वोत्तम उपाय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक या बध्यत्व के उत्पादक हैं। मेरी समझ में ऐसी संस्था की राय कलम के एक ही झटके से रद्द नहीं की जा सकती। आप लिखते हैं कि बाह्य साधनों का उपयोग

करने से तो शरीर और मन निर्बल हो जाने चाहिए। क्यों हो जाने चाहिए? मैं कहता हूँ कि उचित उपायों के इस्तेमाल से निर्बलता नहीं आती। हाँ! हानिकारक उपायों से जरूर आती है और इसी लिए पुख्ता उम्र के लोगों को इसके योग्य उचित उपाय सिखाना आवश्यक है। संयम के लिए आपके उपाय भी तो कृत्रिम साधन ही होंगे। आप कहते हैं, संभोग करना आनन्द के लिए नहीं बनाया गया है! किसने नहीं बनाया है? ईश्वर ने? तो फिर उसने संभोग की इच्छा ही किस लिए पैदा की? कुदरत के कानून में कार्यों का फल अनिवार्य है। लेकिन आपकी यह दलील, जब तक आप यह साबित न करें कि कृत्रिम साधन हानिकारक हैं, कौड़ी काम की नहीं है। कार्यों के अच्छे बुरे होने की पहचान उनके परिणाम से होती है। ब्रह्मचर्य के लाभ बहुत बढ़ा कर कहे गये हैं। बहुत से डाक्टर २१ साल की या ऐसी ही कुछ उम्र के बाद संभोग के जरिये वीर्य-पात न करने को हानिकारक मानते हैं। यह आपके धार्मिक आग्रह का परिणाम है कि आप प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना संभोग को पाप मानते हैं। इससे ऊपर आप पाप का आरोपण करते हैं। शरीर विज्ञान यह नहीं कहता। ऐसे आग्रहों के सामने विज्ञान का कम महत्व देने के दिन अब बीत गये हैं।"

लेखक शायद अपना समाधान नहीं चाहता। मैंने तो यह दिखलाने लिए काफी उदाहरण दे दिये हैं कि यदि हम विवाह-बंधन की पवित्रता को कायम रखना चाहते हैं तो भोग नहीं बल्कि आत्म-संयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए। जो बात सिद्ध करनी है उसी को मैंने सिद्ध नहीं मान लिया है।

क्योंकि मैं यह कहता हूँ कि कृत्रिम साधन चाहे कितने ही उचित क्यों न हों, पर हैं वे हानिकारक ही। वे खुद चाहे हानिकारक न भी हों पर वे इस तरह हानिकर जरूर हैं कि उनके द्वारा विषय-विकार की भूख उद्दीप्त होती है और ज्यों ज्यों उनका सेवन किया जाता है त्यों त्यों बढ़ती जाती है। जिसके मन को यह मानने की आदत पड़ गयी हो कि विषय-भोग न सिर्फ उचित ही बल्कि करने लायक चीजें भी हैं, वह भोग में ही सदा रत रहेगा और अन्त को इतना निर्बल हो जायगा कि उसकी तमाम संकल्प शक्ति नष्ट हो जायगी। मैं जोरों से कहता हूँ कि हर बार के विषय भोग से मनुष्य की वह अनमोल शक्ति कम होती है जो क्या पुरुष और क्या स्त्री, दोनों के शरीर, मन और आत्मा को सशक्त रखने के लिए परमावश्यक है। इससे पहले मैंने इस विवाद से आत्मा शब्द को जान बूझ कर अलग रक्खा था, क्योंकि पत्र लेखक उसके अस्तित्व का खयाल ही करते हुए नहीं दिखायी देते और इस बहस में मुझे सिर्फ उनकी दलीलों का ही जवाब देना है। भारतवर्ष में एक तो यों ही विवाहित लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। फिर यह मुल्क निःसत्व भी काफी हो चुका है। यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी गयी हुई जीवनी शक्ति को वापिस लाने के लिए ही उसे कृत्रिम साधनों के द्वारा विषय-भोग की नहीं, बल्कि पूर्ण संयम की ही शिक्षा की जरूरत है। हमारे अखबारों को देखिए। अनीतिमूलक दवाइयों के विज्ञापन उनकी सूरत बिगाड़ रहे हैं। कृत्रिम साधनों के हिमायती उन्हें अपने लिए चेतावनी समझें। लज्जा या झूठ संकोच का कोई भाव मुझे इसकी चर्चा से नहीं रोक रहा है, बल्कि यह ज्ञान कि इस देश

से जीवनी शक्ति से हीन और निर्बल युवक विषय-भोग के पक्ष में पेश की गयी सदोष युक्तियों के शिकार कितनी आसानी से हो जाते हैं, मुझसे संयम करा रहा है।

अब शायद इस बात की जरूरत नहीं रह गयी है कि मैं दूसरे पत्र-लेखक के उपस्थित किये डाक्टरी प्रमाणपत्रों का जवाब दूँ। मेरे पक्ष से उनका कोई संबंध नहीं है। मैं इस बात का न तो पुष्टि ही करता हूँ और न इससे इनकार ही करता हूँ कि उचित कृत्रिम साधनों से अवयवों को हानि पहुँचती है या वन्ध्यापन होता है। डाक्टर लोग चाहे कितनी ही मुद्दत से दलीलों की व्यूह-रचना क्यों न करें, मगर उनकी बदौलत उन सैकड़ों नौजवानों के जीवन का सत्यानाश असिद्ध नहीं हो सकता, जो पराई औरतों या खुद अपनी ही पत्नियों के साथ भोग विलास के कारण हुआ है और जिसे मैंने खुद देखा है।

पत्र-लेखक की दी हुई कृत्रिम दाँत की उपमा जँचती हुई नहीं जान पड़ती। हाँ, बनावटी दाँत जरूर ही नकली और अस्वाभाविक होते हैं पर उनसे कम से कम एक आवश्यकता की पूर्ति तो हो सकती है। पर इसके खिलाफ विषय-भोग के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग उस भोजन की तरह है जो भूख बुझाने के लिए नहीं बल्कि जीभ की तृप्ति के लिए किया जाता है। केवल जीभ के आनन्द के लिए भोजन करना उसी तरह पाप है जिस तरह कि विषय भोग के लिए भोग-विलास करना।

इस आखिरी पत्र में एक नयी ही बात मिलती है:

“यह सवाल दुनिया के तमाम राज्यों को चिन्तित कर रहा है। बेशक, आप यह तो जानते ही होंगे कि अमेरिका

इसके प्रचार के खिलाफ है। आपने यह भी सुना होगा कि जापान ने इसके प्रचार की बारे आम इजाजत दे दी है। इसका कारण सबको विदित है। उन्हें प्रजोत्पत्ति रोकनी थी। इसके लिए मनुष्य स्वभाव का भी उन्हें विचार करना था। आपका नुस्खा आदर्श हो सकता है, लेकिन क्या वह व्यावहारिक भी है? थोड़े मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं लेकिन क्या जनता में इसके संबध में की गयी किसी हलचल से कुछ मतलब हल हो सकता है? भारतवर्ष में तो इसके लिए सामुदायिक हलचल की आवश्यकता है।'

मुझे अमेरिका और जापान की इन बातों की खबर नहीं थी। पता नहीं, जापान क्यों कृत्रिम साधनों का पक्ष ले रहा है। यदि लेखक की बात सही है और यदि सचमुच जापान में कृत्रिम साधन आम चीज हो रहे हैं तो मैं साहस के साथ कहता हूँ कि यह सुन्दर राष्ट्र अपने नैतिक सत्यानाश की ओर दौड़ा जा रहा है।

हो सकता है कि मेरा ख्याल बिल्कुल गलत हो। संभव है कि मेरे निर्णय गलत सामग्री के आधार पर निकले हों। लेकिन कृत्रिम साधनों के हामियों को धीरज रखने की जरूरत है। आधुनिक उदाहरणों के अलावा उनके पक्ष में कोई सामग्री नहीं है। निश्चय ही एक ऐसे साधन के विषय में जो कि यों देखने में ही मनुष्य-जाति के नैतिक भावों को घृणास्पद मालूम पड़ती है किसी अंश तक निश्चय के साथ कुछ भविष्य कथन करना बड़ी उतावली का काम होगा। नौजवानों के साथ खिलवाड़ करना तो बहुत आसान है, परन्तु ऐसे दुष्परिणामों को मिटाना टेढ़ी खीर होगा।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य और उसके पालन के साधनों के विषय में मेरे पास पत्रों की बाढ़ सी आ रही है। दूसरे अवसरों पर मैं जो कुछ कह या लिख चुका हूँ उसे ही यहां दूसरे शब्दों में कहने की कोशिश करूँगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम ही नहीं है बल्कि इसका अर्थ है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार और मन वचन और शरीर से भी कामभाव से मुक्ति। इस स्वरूप में आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-प्राप्ति का यही सुगम और सच्चा रास्ता है।

आदर्श ब्रह्मचारी को कामेच्छा या संतान की इच्छा से कभी जूझना नहीं पडता, यह कभी उसे होती ही नहीं। उसके लिए सारा ससार एक विशाल परिवार होगा, मनुष्य जाति के कष्ट दूर करने म ही वह अपने को कृतार्थ मानेगा, और संतानोत्पत्ति की इच्छा उसके लिए निहायत मामूली बात मालूम होगी। जिसे मनुष्य जाति के दु ख का पूरा पूरा भान हो गया है, उसे कभी कामेच्छा होगी ही नहीं। उसे अपने भीतर के शक्ति कोष का पता अपने आप ही लग जायगा और उसे शुद्ध रखने की वह बराबर कोशिश करता रहेगा। उसकी नम्र शक्ति पर ससार श्रद्धा रक्खेगा। और गद्दीनशीन बादशाहों से भी उसका प्रभाव बढा चढा होगा।

मगर मुझे कहा जाता है कि 'यह असंभव आदर्श है, आप तो मर्द और औरत के बीच स्वाभाविक आकर्षण का खयाल ही नहीं करते। यहा जिस कामुक खिंचाव का इशारा है, मैं उसे स्वाभाविक मानने से ही इनकार करता हूँ। अगर वह स्वाभाविक हो तो प्रलय बात की बात म आया ही चाहता है। मर्द और औरत के बीच स्वाभाविक सबध वह है जो भाई और बहिन में, मा और बेटे म, बाप और बेटी में होता है। उसी स्वाभाविक आकर्षण पर ससार अडा हुआ है। अगर मैं सारी नारीजाति को मा, बहिन या बेटी न मानूँ, तो अपना काम करना तो दूर, मै तो जी ही न सकूँगा। अगर काम-भरी आँखों से मैं उनकी ओर देखूँ तो नरक का सबसे सीधा और सच्चा रास्ता और क्या होगा?

सन्तानोत्पत्ति स्वाभाविक क्रिया है जरूर, मगर निश्चित मर्यादा के भीतर। उस मर्यादा को तोडने से नारी जाति खतरे

में पड़ती है, जाति का पुरुषत्व नष्ट होता है, रोग फैलते हैं, पाप का बोलबाला होता है और संसार पाप-भूमि बनता है। कामनाओं के पंजे में पड़ा मनुष्य, बेलंगर की नाव के समान होता है। अगर ऐसा आदमी समाज का नेता हो, अपने लेखों से वह समाज को व्याप्त कर देवे, और लोग उसके पीछे चलने लगें तो फिर समाज रहेगा कहां? और तोभी आज वही हो रहा है। मान लो कि रौशनी के इर्दगिर्द चक्कर काटनेवाला पतिंगा अपने क्षणिक आनन्द का वर्णन करे और उसे आदर्श मान कर हम उसकी नक़ल करें तो हमारा कहां ठिकाना लगेगा? नहीं, अपनी सारी शक्ति लगा कर मुझे कहना ही पड़ेगा कि पति और पत्नी के बीच भी काम का आकर्षण अस्वाभाविक, गैर-क़ुदरती है। विवाह का उद्देश्य दम्पति के हृदयों से विकारों को दूर कर के उन्हें ईश्वर के निकट ले जाना है। कामनारहित प्रेम, पति पत्नी के बीच असंभव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। *पशु-योनि में अनगिनत जन्म लेने बाद वह उस पद पर आया है।* सिर ऊँचा कर के चलने को उसका जन्म हुआ है, लेट कर या पेट के बल रेंगने को नहीं। पुरुषत्व से पाशविकता उतनी ही दूर है जितनी आत्मा से शरीर।

उपसंहार में मैं इसकी प्राप्ति के उपायों को संक्षेप में दूंगा।

इसकी आवश्यकता को समझना पहला काम है।

दूसरा है इन्द्रियों पर क्रमशः अधिकार करना। ब्रह्मचारी को जीभ पर क़ाबू करना ही होगा। वह जीवन-धारण के लिए ही खा सकेगा, मौज के लिए नहीं। उसे केवल पवित्र वस्तुएँ ही देखनी होंगी और अपवित्र चीज़ों की ओर से आँखें मूँद लेना होंगी। इस प्रकार इधर उधर आँखें न नचाते हुए निगाह

नीची कर के रास्ता चलना शिष्टता का चिह्न है। उसी प्रकार ब्रह्मचारी कोई अश्लील या बुरी बात नहीं सुनेगा, कोई बहुत जबदस्त या उत्तेजक गंध नहीं सूंघेगा। पवित्र मिट्टी का गंध बनावटी इतरों और सुगंधियों से कहीं अच्छा होता है। ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुक को चाहिए कि वह जब तक जगता रहे तब तक अपने हाथ पावों से कोई न कोई अच्छा काम लेता ही रहे। वह कभी कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है शुद्ध साथियों, निष्कलंक मित्रों और पवित्र पुस्तकों को रखना।

आखीरी, मगर किसी से कम महत्ववाला नहीं, काम है प्रार्थना। रोज नियमित रूप से पूरा दिल लगा कर ब्रह्मचारी 'रामनाम' का जप किया करे और ईश्वर की सहायता माँगे।

साधारण मर्द या औरत के लिए इनमें कोई बात मुश्किल नहीं है। ये तो हद दर्जे की सहल बात हैं। मगर उनकी सादगी से ही लोग घबराते हैं। जहां चाह है वहां राह भी सहज ही मिल जायगी। लोगों को इसकी चाह नहीं होती और इसी लिए वे व्यर्थ की ठोकरें खाते हैं। इस बात से कि संसार का आधार कमोबेश इसीपर है कि लोग ब्रह्मचर्य या संयम का पालन करते हैं, यही सिद्ध होता है कि यह आवश्यक और संभव है।

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र महादेव देसाई को लिखते हैं

"आपको याद होगा कि 'नवजीवन' में गांधी जी ने ब्रह्मचर्य पर एक लेख में जिसका कि आपने यं इं में अनुवाद किया था, कबूल किया था कि उन्हें अब भी कभी कभी स्वप्न दोष हो जाया करते हैं। उसे पढने के साथ ही मुझे लगा कि ऐसे लेखों से कोई लाभ नहीं हो सकता। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह भय निर्मूल नहीं था।

"विलायत के प्रवास में प्रलोभनों के रहते हुए भी मैंने और मेरे मित्रों ने अपना चरित्र निष्कलंक रक्खा। स्त्री, मदिरा और मांस हम बिलकुल बचे रहे। मगर गांधी जी का लेख पढ कर एक मित्र ने कहा, 'गांधी जी के भीष्म प्रयत्नों के बाद भी अगर उनकी यह हालत है तो हम किस खेत की मूली हैं? ब्रह्मचर्य पालन का प्रयत्न बेकार है। गांधी जी की स्वीकारोक्ति ने मेरी दृष्टि ही बिलकुल बदल दी। आजसे मुझे तुम गया बीता समझ लो।' कुछ झिझक के साथ मैंने उससे बहस करने की कोशिश की। जो दलीलें आप या गांधी जी पेश करते वैसी ही मैंने कहीं, 'अगर यह रास्ता

गांधी जी ऐसों के लिए भी इतना कठिन है तो हमारे तुम्हारे लिए जरूर ही और भी अधिक मुश्किल होना चाहिए। इस लिए हमें दुगुनी कोशिश करनी चाहिए।' मगर बेकार ही। आज तक जिस भाई का चरित्र निष्कलङ्क रहा था, उसमें यों धब्बे लग गये। अगर इस पतन के लिए कोई गांधी जी को जिम्मेवार कहे तो वे या आप क्या कहेंगे?

"जब तक मेरे पास केवल एक ही उदाहरण था, मैंने आपको नहीं लिखा। शायद आप मुझे यह कह कर टरका देते कि यह अपवाद है। मगर इसके और कई उदाहरण मिले और मेरी आशका और भी सही साबित हुई।

"मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसी चीजें हैं जो गाधी जी के लिए करनी बहुत ही सहज हों मगर मेरे लिए असभव हों। परन्तु ईश्वर की कृपा से मैं यह भी कह सकता हूँ कि कुछ चीजें जो मेरे लिए सभव होवें, उनके लिए भी असभव हो सकती हैं। इसी ज्ञान या अहम्भाव ने मुझे अब तक गिरने से बचाया है, अगर्चे कि ऊपर लिखी गाधी जी की स्वीकारोक्ति ने मेरे मन से मेरे बेखतरेपने का भाव बिल्कुल डिगा दिया है।

"क्या आप गाधी जी का ध्यान इस ओर दिलावेंगे और खास कर तब जब कि वे अपना आत्मकथा लिख रहे हैं। सत्य और नगे सत्य को कह देना बेशक बहादुरी का काम है मगर इससे 'नवजीवन' और 'यग इण्डिया' के पाठकों में गलत फहमी फैलने का डर है। मुझे भय है कि एक के लिए जो अमृत हो, वही दूसरे के लिए कहीं जहर न हो जाय।"

इस शिकायत से मुझे कुछ ताज्जुब नहीं हुआ। जब कि असहयोग अपने अहज पर था, उस समय मैंने अपनी एक भूल

स्वीकार की थी। इस पर एक मित्र ने निर्दोष भाव से लिखा 'अगर यह भूल भी थी तो आपको उसे भूल न मान लेना था। लोगों में यह विश्वास बढ़ाना चाहिए कि कम से कम एक आदमी तो ऐसा है जो चूकता नहीं। आपको लोग ऐसा ही समझते थे। आपकी स्वीकारोक्ति से उनका दिल बैठ जायगा।' इस पर मुझे हँसी आयी और मैं उदास भी हो गया। पत्र-लेखक की सादगी पर मुझे हँसा आया। मगर यह खयाल ही मेरे लिए असह्य था कि लोगों को यकीन दिलाया जाय कि एक पतनशील, चूकनेवाला आदमी, अपतनशील या अचूक है।

किसी आदमी के सच्चे स्वरूप के ज्ञान से लोगों का लाभ हमेशा हो सकता है, हानि कभी नहीं। मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास करता हूँ कि मेरे तुरत ही अपनी भूलें स्वीकार कर लेने से उनका लाभ ही लाभ हुआ है। खैर, किसी हालत में मेरे लिए तो यह न्यामत ही साबित हुआ है।

बुरे स्वप्न होना स्वीकार करना भी मैं वैसी ही बात मानता हूँ। अगर सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हुए बिना मैं इसका दावा करूँ तो इससे संसार की मैं बहुत बड़ी हानि करूँगा। क्योंकि इससे ब्रह्मचर्य में दाग लगेगा और सत्य का प्रकाश धुँधला पड़ेगा। झूठे बहानों के जरिये ब्रह्मचर्य का मूल्य कम करने का साहस मैं क्योंकर कर सकता हूँ? आज मैं देखता हूँ कि ब्रह्मचर्य पालन के जो तरीके मैं बतलाता हूँ वे पूरे नहीं पड़ते, सभी जगह उनका एकसा असर नहीं होता क्योंकि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। जब कि ब्रह्मचर्य का सच्चा रास्ता मैं दिखा न सकूँ तब संसार के लिए यह विश्वास करना कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ, बड़ी भयंकर बात होगी।

केवल इतना ही जानना दुनिया के लिए यथेष्ट क्यों न हो कि मैं सच्चा खोजी हूँ, मैं पूरा जाग्रत हूँ, सतत प्रयत्नशील हूँ और विघ्न बाधाओं से डरता नहीं? औरों को उत्साहित करने के लिए इतना ही ज्ञान काफी क्यों न होवे? झूठ प्रमाणों पर से नतीज निकालना भूल है। जो बातें प्राप्त की जा चुकी हैं, उन्हींपर से नतीजे निकालना सबसे अधिक ठीक है। ऐसी दलीलें क्यों करो कि मेरे ऐसा आदमी जब बुरे विचारों से न बच सका तो दूसरा के लिए कोइ उमेद ही नहीं है? ऐसे क्यों न सोचो कि वह गांधी, जो किसी जमाने में काम के अभिभूत था, आज अगर अपनी पत्नी के साथ भाइ या मित्र के समान रह सकता है, और संसार की सर्व श्रेष्ठ सुन्दरियों को भी बहिन या बेटी के रूप में देख सकता है तो नीच से नीच और पतित मनुष्य के लिए भी आशा है? अगर इश्वर ने इतने विकारों से भरे हुए मनुष्य पर अपनी दया दर्शायी तो निश्चय ही वह दूसरों पर भी दया दिखावेगा ही।

पत्र लेखक के जो मित्र मेरी न्यूनताओं को जान कर पीछे हट पडे, वे कभी आगे बढे ही नहीं थे। यह तो झूठी साधुता कही जायगी जो पहले ही धक्के में चूर हो गयी। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे ऐसे सनातन सत्य मेरे ऐसे अपूर्ण मनुष्यों पर निर्भर नहीं रहते। उनका अडग आधार रहता है उन बहुतों की तपश्चर्या पर जिन्होंने उनके लिए प्रयत्न किया और उनका संपूर्ण पालन किया। उन संपूर्ण जीवों के साथ बराबरी में खडे होने की योग्यता जिस घडी मुझमें आ जायगी, आज की अपेक्षा, मेरी भाषा में कहीं अधिक निश्चय और शक्ति होगी। दर असल स्वस्थ पुरुष उसीको कहेंगे जिसके विचार इधर उधर दौड नहीं फिरते,

जिसके मनमें बुरे विचार नहीं उठते, जिसकी नींद में स्वप्नों से व्याघात न पड़ता हो और जो सोते हुए भी सपूर्ण जाग्रत हो। उसे कुनैन लेने की जरूरत नहीं। उसके न बिगड़नेवाले खून में ही सभी विकारों को दबा लेने का आन्तरिक शक्ति होगी। शरीर, मन और आत्मा की उसी स्वस्थ अवस्था को मैं पाने की कोशिश कर रहा हूँ। इसमें हार या असफलता नहीं हो सकती। पत्र लेखक, उनके सशयालु मित्रों और दूसरों को मैं अपने साथ चलने को निमन्त्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि पत्र-लेखक के ही समान वे मुझसे अधिक तेजी से आगे बढ़ चलें। जो मेरे पीछे पड़े हैं, मेरे उदाहरण से उन्हें भरोसा पैदा हो। जो कुछ मैंने पाया है, वह सब मुझ में लाख कमजोरियों के होते हुए भी, नामुरूता के होते हुए भा, मैंने पाया है—और उसका कारण है मेरा सतत प्रयत्न और ईश्वर-कृपा में अनन्त विश्वास।

इस लिए किसी को निराश होने की जरूरत नहीं। मेरा महात्मापन कौड़ी काम का नहीं है। यह तो मेरे बाहरी कामों, मेरे राजनीतिक कामों के कारण है और ये काम मेरे सबसे छोटे काम हैं और इस लिए यह दो दिनों में उड़ जायगा। सचमुच में मूल्यवान् वस्तु तो मेरा सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य पालन का हठ ही है, और यही मेरा सच्चा अग है। मेरा यह स्थायी अश चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो मगर नफरत की निगाह से देखने लायक नहीं है। यही मेरा सर्वस्व है। मैं तो असफलताओं और भूलों के ज्ञान को भी प्यार करता हूँ, जो उन्नति-पथ की सीढ़ियाँ हैं।

वीर्य रक्षा

कितनी नाजुक समस्याओं पर केवल खानगी में ही बात चीत करने की इच्छा रहते हुए भी उनपर प्रकट रूप में विचार करने के लिए, पाठकगण मुझे क्षमा करें। परन्तु जिस साहित्य का मुझे लाचार अध्ययन करना पड़ा है और महाशय ब्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण समाज के लिए इस परम महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट चर्चा करनी आवश्यक हो गयी है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं

"आप महाशय ब्यूरो की पुस्तक की अपनी समालोचना में लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये हैं वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं जिन्होंने मानवजाति की सेवा में, या यों कहो कि भगवान् की ही सेवा में, जीवन लगा देना चाहा है। वे वसुधा-कुटुम्ब की और निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग २ बाँटना नहीं चाहते। जरूर ही ऐसे मनुष्यों के लिए उस प्रकार रहना सम्भव नहीं है जिस जीवन से खास किसी व्यक्ति विशेष का ही उन्नति सम्भव हो। जो भगवान् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेंगे, उन पुरुषों को जीवन की ढिलाइयों को छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर संयम में ही सुख का अनुभव करना होगा। 'दुनिया में' भले ही रहें मगर वे 'दुनियवी' नहीं हो सकते। उनका भोजन, धंधा, काम करने का समय, मनोरञ्जन, साहित्य, जीवन का उद्देश्य आदि सर्व साधारण से अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब इसपर विचार करना चाहिए कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने सम्पूर्ण-ब्रह्मचर्य पालन को क्या अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढाँचे में ढाला भी था? यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया था, तो फिर यह समझने में कुछ कठिनाई नहीं होगी कि वीर्य्य पात से एक आदमी को आराम क्यों कर मिलता था और दूसरे को निर्बलता क्यों होती थी। उस दूसरे आदमी के लिए तो विवाह ही दवा थी। अधिकांश मनुष्यों के अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में विवाह का ही विचार भरा हो तो उस स्थिति में अधिकांश मनुष्यों के लिए विवाह ही प्राकृत दशा और इष्ट है। जो विचार दबाया न जाने पर भी अमूर्त ही छोड़ दिया जाता है उसकी शक्ति, वैसे ही विचार की अपेक्षा जिसको हम मूर्त कर देते हैं,

यानी जिसका अमल कर लेते हैं, वहीं अधिक होता है। जब उस क्रिया का हम यथोचित सयम कर लेते हैं तो, उसका असर विचार पर भी पडता है और विचार का सयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया, वह कैदी सा बन जाता है और काबू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का सयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए, एक अखबारू लेख में, उन लोगों के लाभ के लिए, जो नियमित सयत जीवन बिताना चाहते हैं, ब्यारेवार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हें तो मैं, कई वर्ष पहले इसी विषय पर लिखे हुए अपने ग्रथ "आरोग्य के बारे में सामान्य ज्ञान" को पढने की सलाह दूगा। नये अनुभवों के अनुसार, इसे कहीं २ दुहराने की जरूरत है सही, किन्तु इसमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसे मैं लौटाना चाहूँ। हा, साधारण नियम यहा भले ही दिये जा सकते हैं।

(१) खान में हमेशे सयम से काम लेना। थोडी मीठी भूख रहते ही चौके से हमेशे उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालों और घी तेल से बने हुए शाकाहार से अवश्य बचना चाहिए। जब दूध पूरा मिलता हो तो स्नेह (घी, तेल, आदि चिकने पदार्थ) अलग से खाना बिल्कुल अनावश्यक है। जब प्राण शक्ति का थोडा ही नाश हो तो अल्प भोजन भी काफी होता है।

(३) शुद्ध काम में हमेशा मन और शरीर को लगाये रखना।

(४) सवेरे सो जाना और सवेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सबसे बड़ी बात तो यह है कि संयत जीवन बिताने में ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जब इस परम तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तबसे ईश्वर के ऊपर यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वे स्वयं ही अपने इस यंत्र को (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध और चालू रखेंगे। गीता में कहा है—

" विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ "

यह अक्षरशः सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-संयम में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे इसका खेद है कि इस विषय में मेरे निजी अनुभव, कुछ ऐसे नहीं हैं जो लिखने लायक हों। जहां तक मुझे मालूम है, इस विषय पर इस जमाने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नहीं। परन्तु यह विषय अध्ययन करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई हठयोगी मिल जाय उसीको गुरु बना लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिए कि संयत और धार्मिक जीवन में ही अभीष्ट संयम के पालन की काफी शक्ति है।

एकान्त वार्ता

ब्रह्मचर्य के संबंध में प्रश्न पूछने वालों के इतने पत्र मेरे पास आते हैं, और इस विषय में मेरे विचार इतने दृढ़ हैं कि मैं, खासकर राष्ट्र की इस सबसे नाजुक घड़ी पर, अपने विचारों और अनुभवों के फलों को 'यंग इण्डिया' के पाठकों से छिपा नहीं रख सकता।

अँगरेजी शब्द celibacy का संस्कृत पर्याय ब्रह्मचर्य है, मगर ब्रह्मचर्य का अर्थ उससे कहीं अधिक बड़ा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियों और विकारों पर संपूर्ण अधिकार। ब्रह्मचारी के लिए कुछ भी असंभव नहीं है, मगर यह एक

आदर्श स्थिति है जिसे विरले ही पा पाते हैं। यह करीब २ ज्यामिति की आदर्श रेखा के समान है जो केवल कल्पना में ही रहती है मगर प्रत्यक्ष खींचा नहीं जा सकता। मगर तोभी ज्यामिति में यह परिभाषा महत्वपूर्ण है और इससे बडे २ परिणाम निकलते ह। वैसे ही सम्पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना में ही रह सकता है। मगर अगर हम उसे अपना मानसिक आँखों के आगे दिन रात रखते न रहें तो हम बेपदी के लोट बन रहेंगे। काल्पनिक रखा के जितने ही नजदीक पहुँच सकेंगे, उतनी ही सम्पूर्णता भी प्राप्त होगी।

मगर अभी के लिए तो मैं स्त्री सभोग न करने के सकुचित अर्थ में ही ब्रह्मचर्य को लूंगा। मैं मानता हूँ कि आत्मिक पूर्णता के लिए विचार, शब्द और कार्य सभी में सपूर्ण आत्म-सयम जरूरी है। जिस राष्ट्र में ऐसे आदमी नहीं हैं, वह इस कमी के कारण गरीब गिना जायगा। मगर मेरा मतलब ह राष्ट्र की मौजूदा हालत में अस्थायी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता सिद्ध करने का।

रोग, अकाल, दरिद्रता और यहाँ तक कि भूखमरी भी हमारे हिस्से में कुछ अधिक पडी है। गुलामी की चक्की में हम इस सूक्ष्म रीति से पिसे चले जाते हैं कि अगर्चे कि हमारी इतनी आर्थिक, मानसिक और नैतिक हानि हो रही ह, मगर हममें से कितने ही उसे गुलामी मानने को ही तैयार नहीं और भूल से मानते हैं कि हम स्वाधीनता-पथ पर आगे बढ़ जा रहे हैं। दिन दूना रात चौगुना बढ़ने वाला सैनिक खर्च, लंकाशायर और दूसरे ब्रिटिश हितों के लिए ही जान बूझ कर लाभदायक बनायी गयी हमारी अर्थ-नीति और सरकार के भिन्न २ विभागों

को चलाने की शाही फिजूल खर्ची ने देश के ऊपर वह भार लादा है जिससे उसकी गरीबी बढी है और रोगों का आक्रमण रोकने की शक्ति घटी है। गोखले के शब्दों में इस शासन-नीति ने हमारी बाढ इतनी मार दी है कि हमारे बडों से बडों को भी झुकना पडता है। अमृतसर में हिन्दुस्तान को पेट के बल भी रेंगाया गया। पजाब का सोच सोच कर किया गया अपमान और हिन्दुस्तानी मुसलमानों को दिये गये वचन को तोडने के लिए माफी माँगने से मगरूरी से इनकार करना—नैतिक दासता के सबसे ताजे उदाहरण हैं। उनसे सीधे हमारी आत्मा को ही धक्का पहुँचता है। अगर हम इन दो जुल्मों को सह लेवें तो फिर हमारी नपुसकता की यह पूर्ति कही जायगी।

हम लोगों के लिए, जो स्थिति को जानते हैं, ऐसे बुरे वातावरण में बच्चे पैदा करना क्या उचित है? जब तक हमें ऐसा मालूम होता है और हम बेबस, रोगी और अकाल-पीडित हैं, तब तक बच्चे पैदा करते जाकर हम निर्बलों और गुलामों की ही सख्या बढाते हैं। जब तक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र देश नहीं हो जाता, जो अनिवार्य अकाल के समय अपने आहार का प्रबन्ध कर सके, मलेरिया, हैजा, इन्फ्लुएन्जा और दूसरी बीमारियों का इलाज करना जान जाय, हमें बच्चे पैदा करने का अधिकार नहीं है। पाठकों से मैं वह दुख छिपा नहीं सकता जो इस देश में बच्चों का जन्म सुन कर मुझे होता है। मुझे यह मानना ही पडेगा कि मैंने वर्षों तक धैर्य के साथ इसपर विचार किया है कि स्वेच्छा-सयम के द्वारा हम सन्तानोत्पत्ति रोक लेवें। हिन्दुस्तान को आज अपनी मौजूदा आबादी की भी खोज खबर लेने की ताकत नहीं है,

मगर इस लिए नहीं कि उसे अतिशय आबादी का रोग है बल्कि इस लिए कि उसके ऊपर वैदेशिक आधिपत्य है, जिसका मूल मंत्र ही उसे अधिकाधिक लूटते जाना है।

सन्तानोत्पत्ति रोकी क्यों कर जा सकेगी? यूरोप में जो अनैतिक और गैर कुदरती या कृत्रिम साधन काम में लाये जाते हैं, उनसे नहीं, बल्कि आत्म-संयम और नियमित जीवन से। माता-पिता को अपने बालकों को ब्रह्मचर्य का अभ्यास कराना ही पड़ेगा। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बालकों के लिए विवाह करने की उम्र कम से कम २५ वर्ष की होनी चाहिए। अगर हिन्दुस्तान की माताएँ यह विश्वास कर सकें कि लड़के लड़कियों को विवाहित जीवन की शिक्षा देना पाप है तो आधे विवाह तो अपने आप ही रुक जायँगे। फिर हमें अपनी गर्म जल-वायु के कारण लड़कियों के शीघ्र रजस्वला हो जाने के झूठ सिद्धान्त में भी विश्वास करने की जरूरत नहीं है। इस शीघ्र रजोदर्शन के समान दूसरा भद्दा अन्ध विश्वास मैंने नहीं देखा है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यौवन से जलवायु का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। असमय यौवन का कारण हमारे पारिवारिक जीवन का नैतिक और मानसिक वायुमण्डल है। माताएँ और दूसरे सम्बन्धी अबोध बच्चों को यह सिखलाना धार्मिक कर्तव्य सा मान बैठते हैं कि 'इतनी' बड़ी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा। बचपन में ही, बल्कि मां की गोद में ही उनकी सगाई कर दी जाती है। बच्चों के भोजन और कपड़े भी उन्हें उत्तेजित करते हैं। हम अपने बालकों को गुडियों की तरह सजाते हैं — उनके नहीं बल्कि अपने सुख और घमंड के लिए। मैंने बीसों लड़कों को पाला है। उन्होंने बिना किसी कठिनाई के जो कपड़ा उन्हें दिया

गया, उसे सानन्द पहन लिया है। उन्हें हम सैकड़ों तरह की गर्म और उत्तेजक चीजें खाने को देते हैं। अपने अन्ध प्रेम में उनकी शक्ति की कोई पर्वा नहीं करते। बेशक फल मिलता है, शीघ्र यौवन, असमय सन्तानोत्पत्ति और अकाल मृत्यु। माता पिता पदार्थ-पाठ देते हैं, जिसे बच्चे सहज ही सीख लेते हैं। विकारों के सागर में वे आप डूब कर अपने लड़कों के लिए बे-लगाम स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते हैं। घर में किसी लड़के के भी बच्चा पैदा होने पर खुशियाँ मनाया जातीं, बाजे बजते और दावतें उड़ती हैं। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे वातावरण में रहने पर भी हम और अधिक स्वच्छन्द क्यों न हुए। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि अगर उन्हें देश का भला मंजूर है और वे हिन्दुस्तान का सबल, सुन्दर और सुगठित स्त्री पुरुषों का राष्ट्र देखना चाहते हैं तो विवाहित स्त्री-पुरुष पूर्ण संयम से काम लेंगे और हाल में सन्तानोत्पत्ति करना बंद कर देंगे। नव-विवाहितों को भी मैं यही सलाह देता हूँ। कोई काम करते हुए छोड़ने से कहीं सहज है, उसे शुरू में ही न करना, जैसे कि जिसने कभी शराब न पी हो, उसके लिए जन्मभर शराब न पीनी, शराबी या अल्पसंयमी के शराब छोड़ने से कहीं अधिक सहज है। गिर कर उठने से लाख दर्जे सहज सीधे खड़े रहना है। यह कहना सरासर गलत है कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा केवल उन्हींको दी जा सकती है जो भोग भोगते-भोगते थक गये हों। निर्बल को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने में कोई अर्थ ही नहीं है। और मेरा मतलब यह है कि हम बूढ़े हों या जवान भोगों से ऊबे हुए हों या नहीं, हमारा इस समय धर्म है कि हम अपनी गुलामी की विरासत लेने को बच्चे पैदा न करें।

गुह्य प्रकरण

जिन्होंने आरोग्य के प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़े हैं, उनसे मेरी विनय है कि वे यह प्रकरण विशेष ध्यान से पढ़ें और इस पर खूब विचार करें। दूसरे प्रकरण भी आवेंगे और वे बहुत लाभदायक होंगे सही, मगर इस विषय पर इसके जैसा महत्व पूर्ण कोई न होगा। मैं पहले ही बतला आया हूँ कि इन अध्यायों में मैंने एक भी बात ऐसी नहीं लिखी है जिसका मैंने खुद अनुभव न किया हो या जिसे मैं दृढ़ता-पूर्वक न मानना होऊँ।

आरोग्य की कई एक कुंजियाँ हैं, मगर उसकी मुख्य कुंजी तो ब्रह्मचर्य है। अच्छी हवा अच्छा खुराक, अच्छा पानी वगैरह से हम तन्दुरस्ती पैदा कर सकते हैं सही, मगर हम जितना कमायें उतना उड़ाते भी जायँ तो कुछ न बचेगा। इसी प्रकार जितनी तन्दुरुस्ती मिले, उतनी उड़ावें भी तो पूँजी क्या बचेगी? इसमें किसी को शक करने की जगह ही नहीं है कि आरोग्य रूपी धन का संचय करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों को ही ब्रह्मचर्य की पूरी-पूरी जरूरत है। जिन्होंने अपने वीर्य का संचय किया है, वे ही वीर्यवान—बलवान—कहलाते हैं, गिने जाते हैं।

सवाल होगा कि ब्रह्मचर्य है क्या? पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का भोग न करना ही ब्रह्मचर्य है। 'भोग न करने' का अर्थ एक दूसरे को विषय की इच्छा से स्पर्श न करना भर ही नहीं है बल्कि इस बात का विचार भी न करना है। इसका स्वप्न भी न होना चाहिए। स्त्री को देख कर पुरुष विह्वल न हो जाय, पुरुष को देख कर स्त्री विह्वल न बने। प्रकृति ने जो गुह्य शक्ति हमें दी है, उसे दबा कर अपने शरीर में ही सग्रह करना और उसका उपयोग केवल अपने शरीर के ही नहीं बल्कि मन के, बुद्धि के, और स्मरण शक्ति के स्वास्थ्य को बढ़ाने में करना चाहिए।

मगर हमारे आसपास क्या नजारे दिखलाई पड़ते हैं? छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, सभी के सभी इस मोह म डूबे पड़े हुए हैं। ऐसे समय हम पागल बन जाते हैं। हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, हमारी आँखों पर्दे से ढँक जाती है, हम कामान्ध बन जाते हैं। काम मुग्ध स्त्री-पुरुषों को, और लड़के-लड़कियों को मैंने बिल्कुल पागल बन जाते हुए देखा है। मेरा अपना अनुभव भी इससे जुदा नहीं है। मैं जब-जब इस दशा में आया हूँ तब-तब अपना भान भूल गया हूँ। यह चीज ही ऐसी है। इस प्रकार हम एक रत्ती भर रति-सुख के लिए मन भर शक्ति पल भर म गँवा बैठते हैं। जब मद उतरता है, हम रक बन जाते हैं। दूसरे दिन सवेरे हमारा शरीर भारी रहता है, हमें सच्चा चैन नहीं मिलता, हमारी काया शिथिल हो जाती है। हमारा मन बेठिकाने रहता ह।

यह सब ठिकाने लाने, रखने के लिए हम भर-भर कटोरे दूध पीते हैं, भस्म फाँकते हैं, याकूती लेते हैं और वैद्यों से

'पुष्टई' माँगा करते हैं। किस खुराक से कामोत्तेजना बढ़ेगी—बस इसीकी खोज करते हैं। यों दिन जाते हैं। और ज्यों ज्यों वय बढ़ते हैं, त्यों त्यों हम अंग से और बुद्धि से हीन होते जाते हैं और बुढ़ापे में हमारी मति मारी गई-सी दिखलाई पड़ती है।

सच पूछो तो ऐसा होना ही नहीं चाहिए। बुढ़ापे में बुद्धि मन्द होने के बदले तेज होनी चाहिए। हमारी हालत तो ऐसी होनी चाहिए कि इस देह के अनुभव हमको और दूसरों को लाभदायक हो सकें। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसकी वैसी ही स्थिति रहती है। उसे मरण का भय नहीं रहता,—और न वह मरते समय ईश्वर को भूलता ही है, वह झूठी तोबा नहीं करता। उसे मरण-काल के उत्पात नहीं सताते और वह मालिक को अपना हिसाब हँसते-हँसते देता जाता है। यही तो मर्द है। उसी का आरोग्य सच्चा कहा जायगा। जो उसके विपरीत मरे वही स्त्री है।

साधारणतया हम विचार नहीं करते कि इस जगत में मौज-मजा, डाह, ईर्ष्या, बड़प्पन, आडम्बर, क्रोध, अधीरता, जहर वगैरह की जड़ ब्रह्मचर्य के हमारे भंग में ही है। यों हमारा मन अपने हाथों न रहे, और हम हर रोज एक बार या बार-बार छोटे बच्चे से भी मूर्ख बन जाते हैं तो फिर जान-बूझ कर या अनजाने, हम कितने न पाप कर बैठते हैं? फिर क्या हम घोर पाप करते भी रुकेंगे?

पर ऐसे 'ब्रह्मचारी' का देखा किसने है? ऐसे सवाल करनेवाले भी भरे पड़े हैं कि अगर सभी कोई ऐसे ब्रह्मचारी बन जायें तो दुनिया का सत्यानाश ही होगा। इसका विचार करने

में धर्मचर्चा का आ जाना सम्भव है, इसलिए, उतना छोड़ कर केवल दुनियवी दृष्टि से ही विचार करूँगा। मेरे मत में इन दोनों सवालों की जड़ में हमारी कायरता और डरपोकपन घुसा हुआ है। हम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते नहीं और इस लिए उसमें से भागने के रास्ते ढूँढ़ते फिरते हैं। इस दुनिया में ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले कितने ही भरे पड़े हैं, परन्तु अगर वे गली-गली मारे फिरें तो फिर उनकी कीमत ही क्या रहे? हीरा निकालने के लिए भी पृथ्वी के पेट में हजारों मजदूरों को घुसना पड़ता है, और तो भी जब कंकर-पत्थर के पहाड़-से ढेर लग जाते हैं तब कहीं मुट्ठीभर हीरा हाथ आता है। तब ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले हीरे को ढूँढ़ने में कितना परिश्रम करना होगा? इसका हिसाब सहज ही त्रैराशिक से सभी कोई जोड़ सकते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने से सृष्टि बन्द हो जाय, तो इससे हमें क्या मतलब? हम कुछ ईश्वर नहीं हैं। जिन्होंने सृष्टि बनाई है, वे स्वयं सँभाल लेंगे। दूसरे पालन करेंगे कि नहीं यह भी हमारे सोचने की बात नहीं है। हम व्यापार, वकालत वगैरह धंधे शुरू करते समय तो यह नहीं सोचते कि अगर सब कोई ये धंधे शुरू कर दें तो? ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले स्त्री-पुरुषों को इसका जवाब सहज ही मिल रहेगा।

गृहस्थी आदमी ये विचार अमल में कैसे ला सकते हैं? विवाहित लोग क्या करें? लड़के-बालेवाले क्या करें? जो काम को वश में न रख सकें, वे बेचारे क्या करें?

हमने यह देख लिया कि हम कहाँ तक ऊँचे जा सकते हैं। अगर हम अपने सामने यही आदर्श रखेंगे तो उसकी हूबहू,

या उसी–जैसी कुछ नकल उतार सकेंगे। लड़के को जब अक्षर लिखना सिखलाया जाता है, तब उसके सामने सुंदर से सुंदर अक्षर रक्खे जाते हैं, जिसमें वह अपनी शक्ति के अनुसार पूरी या अधूरी नकल करे। वैसे ही हम भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रख कर, उसकी नकल करने में लग सकते हैं। विवाह कर लिया है, तो उससे क्या हुआ? कुदरती कायदा तो यह है कि जब संतति की इच्छा हो तभी ब्रह्मचर्य तोड़ा जाय। यों विचार-पूर्वक जो दो–तीन, या चार–पाँच वर्षों पर ब्रह्मचर्य तोड़ेगा, वह बिलकुल पागल नहीं बनेगा और उसके पास वीर्यरूपी शक्ति की पूँजी भी ठीक जमा रहेगी। ऐसे स्त्री पुरुष शायद ही दिखलाई पड़ते हैं, जो केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही काम-भोग करते हों। पर हजारों आदमी काम भोग ढूँढते हैं, चाहते और करते हैं। फल यह होता है कि उन्हें अनचाही संतति होती है। ऐसा विषय-भोग करते हुए हम इतने अन्धे बन जाते हैं कि सामने कुछ देखते ही नहीं। इसमें स्त्री से अधिक गुनहगार पुरुष ही है। अपनी मूढ़ता में उसे स्त्री की निर्बलता का, संतान के पालन पोषण की उसकी ताकत का खयाल भी नहीं रहता। पश्चिम के लोगों ने तो इस बारे में मर्यादा का उल्लंघन ही कर दिया है। वे तो भोग भोगने, और संतानोत्पत्ति के बोझे का दूर रखने के अनेक उपचार करते हैं। इन उपचारों पर किताबें लिखी गई हैं और संतानोत्पत्ति रोकने के उपचारों का व्यापार ही चल निकला है। अभी तो हम इस पाप से मुक्त हैं। पर हम अपनी स्त्रियों पर बोझ लादते समय, इसे भर भी विचार नहीं करते, इसकी परवा भी नहीं करते कि

हमारी सन्तान निर्बल, वीर्यहीन, बावली व बुद्धिहीन बनेगी। उलटे, जब सन्तान होती है तब ईश्वर का गुण गाते हैं! हमारी इस दीनदशा को छिपाने का यह एक ढँग है। **हम इसे ईश्वरी कोप क्यों न मानें कि हमे निर्बल, पशु, विषयी, डरपोक सतान होती है? बारह साल के लडके के यहाँ भी लडका हो तो इसमें सुख की क्या बात है? इसमे आनन्दोत्सव क्या मनाना होगा? बारह साल की लडकी माता बने तो इसे हम महाकोप क्यों न मानें?** हम जानते हैं कि नइ बेल को फल लगें तो वह निर्बल होगी। हम इसका उपाय करते हैं कि जिसमें उसे फल न लगें। पर बालक स्त्री के बालक वर से लडका हो तो हम उत्सव मनाते हैं, मानों सामने खडी दीवाल को ही भूल जाते हैं। अगर हिन्दुस्तान में या दुनिया में नामर्द लडके, चींटिया जैसे पैदा होने लगें तो इससे क्या दुनिया का उद्धार होगा? एक तरह से तो हमसे पशु ही अच्छे हैं। जब उन्हें बच्चे पैदा कराने हों, तभी हम नर मादे का मिलाप कराते हैं। सयोग के बाद, गर्भ-काल में, और वैसे ही जन्म के बाद जबतक बच्चा दूध छोड कर बडा नहीं होता तबतक का समय बिलकुल पवित्र गिनना चाहिए। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके बदले हम घडी भर भी विचार किये बिना, अपना काम करते ही चले जाते हैं। हमारा मन तो इतना रोगी है। इसीका नाम है असाध्य रोग। यह रोग हमें मौत से मुलाकात कराना है। और जबतक मौत नहीं आती, हम बावले जैसे मारे-मारे फिरते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुषों का खास फर्ज है कि वे अपने

विवाह का गलत अर्थ न करते हुए, उसका शुद्ध अर्थ लगावें और जब सचमुच सन्तान न हो तो सिर्फ वारिस के लिए ही ब्रह्मचर्य का भंग करें।

हमारी दयाजनक दशा में ऐसा करना बहुत मुश्किल है। हमारी खुराक, हमारी रहनसहन, हमारी बातें, हमारे आसपास के दृश्य सभी हमारी विषय-वासना के जगानेवाले हैं। हमारे ऊपर अफीम जैसा विषय का नशा चढ़ा हुआ होता है। ऐसी स्थिति में विचार करके पीछे हटना हमसे कैसे बने? पर ऐसी शंका उठानेवालों के लिए यह लेख नहीं लिखा गया है। यह लेख तो उन्हीं के लिए है, जो विचार करके करने लायक काम करने को तैयार हों। जो अपनी स्थिति पर सन्तोष करके बैठ हों, उन्हें तो इसे पढ़ना भी मुश्किल मालूम होगा। पर जो अपनी कंगाल हालत कुछ देख सके हैं और उससे घबरा उठे हैं, उन्हीं की मदद करना, इस लेख का उद्देश्य है।

ऊपर के लेख पर से हम देख सके हैं कि ऐसे मुश्किल जमाने में अविवाहितों को विवाह करना ही नहीं चाहिए या कर बिना चले ही नहीं तो जहाँ तक हो सके देर करके करना चाहिए। **नवजवानों को पचीस वर्ष की उम्र से पहले विवाह न करने का व्रत लेना चाहिए।** आरोग्य प्राप्ति के लाभ को छोड़ कर इस व्रत से होनेवाले और दूसरे लाभों का हम विचार नहीं करते, मगर उन्हें सभी कोई उठा सकते हैं।

जो मा-बाप इस लेख को पढ़ें, उनसे मुझे यह कहना है कि वे अपने बच्चों की बचपन में ही सगाई करके उन्हें बेच डालने में पातक बनते हैं। अपने बच्चों का लाभ देखने के बदले वे

अपना ही अन्ध स्वार्थ देखते हैं। उन्हें तो आप बड़ा बनना है, अपनी जाति बिरादरी में नाम कमाना है, लड़के का ब्याह कर के तमाशा देखना है। लड़के का हित देखें तो, उसका पढ़ना लिखना देखें, उसका जतन करें, उसका शरीर बनावें। घर–गिरिस्ती की खटपट में डाल देने से बढ़ कर उसका दूसरा कौन–सा बड़ा अहित हो सकता है?

आखिर विवाहित स्त्री और पुरुष म से एक की मौत हो जाने पर दूसरे का वैधव्य पालने से स्वास्थ्य का लाभ ही है। कितने एक डाक्टरों की राय है कि जवान स्त्री या पुरुष को वीयपात करने का अवसर मिलना ही चाहिए। दूसरे कइ एक डाक्टर कहते हैं कि किसी भी हालत में वीर्यपात कराने की जरूरत नहीं है। जब डाक्टर यों लड़ रहे हों, तब अपने विचार को डाक्टरी मत का सहारा मिलने से ऐसा समझना ही नहीं चाहिए कि विषय में लीन रहना ही उचित है। मेरे अपने अनुभवों और दूसरों के जो अनुभव मैं जानता हूँ उन पर से मैं बेधड़क कह सकता हूँ कि आरोग्य बचाये रखने के लिए विषय–भोग जरूरी नहीं है और इतना ही नहीं बल्कि विषय करने से — वीयपात होने से — आरोग्य को बहुत नुकसान पहुँचता है। बहुत साल की प्राप्त मजबूती — तन और मन दोनों की — एक बार के वीयपात से इतना अधिक जाता रहती है कि उसे लौटान में बहुत समय चाहिए, और उतना समय लगाने पर भी असल स्थिति आ ही नहीं सकती। टूट शीशे को जोड़ कर उससे काम भले ही लें, मगर है तो वह टूटा हुआ ही।

वीय का जतन करने के लिए स्वच्छ हवा, स्वच्छ पानी, और पहले बतलाये अनुसार स्वच्छ विचार की पूरी जरूरत है।

इस प्रकार नीति का आरोग्य के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। सम्पूर्ण नीतिमान् ही सम्पूर्ण आरोग्य पा सकता है। जो जगने के बाद से ही सवेरा समझ कर ऊपर के लेखों पर खूब विचार कर उन्हें अमल में लावेंगे, वे प्रत्यक्ष अनुभव पा सकेंगे। जिन्होंने थोड़े दिनों भी ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा, वे अपने शरीर और मन में बढ़ा हुआ बल देख सकेंगे। और एक बार जिसके हाथ पारस मणि लग गया उसको वह अपने जीवन के साथ जतन करके बचा रक्खेगा। जरा भी चूका कि वह देख लेगा कि कितनी बड़ी भूल हुई है। मैंने तो ब्रह्मचर्य के अगणित लाभ विचारने के बाद, जानने के बाद भूलें की हैं और उनके कड़वे फल भी पाये हैं। भूल के पहले की मेरे मन की भव्य दशा और उसके बाद की दीन दशा की तसवीरें आँख के सामने आया ही करती हैं। पर अपनी भूलों से ही मैंने इस पारस मणि की कीमत समझी है। अब अखण्ड पालन करूँगा या नहीं, यह नहीं जानता। ईश्वर की सहायता से पालन करने की आशा रखता हूँ। उससे मेरे मन और तन का जो लाभ हुआ है, उन्हें मैं देख सकता हूँ। मैं खुद बालकपन में ही ब्याहा गया, बालपन में ही अन्धा बना, बालपन में ही बाप बन कर बहुत वर्षों बाद जागा। जाग कर देखता हूँ तो अपने को महारात्रि में पड़ा हुआ पाता हूँ। मेरे अनुभवों से और मेरी भूल से भी अगर कोई चेत जायगा, बच जायगा तो यह प्रकरण लिख कर मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। यह भी त्रैराशिक के हिसाब-जैसा ही है। बहुत लोग कहते हैं और मैं मानता हूँ कि मुझ में उत्साह बहुत है। मेरा मन तो निर्बल गिना ही नहीं जाता किनने तो मुझे हठी कहते हैं। मेरे मन और शरीर में रोग

है, मगर मेरे संसर्ग में आये हुए लोगों में मैं अच्छा तन्दुरुस्त गिना जाता हूँ। अगर कमोबेश बीस साल तक विषय में रहने के बाद मैं अपनी यह हालत बना सका हूँ तो वे बीस वर्ष भी अगर बचा सका होता तो आज मैं कहाँ होता? मैं खुद तो समझता हूँ कि मेरे उत्साह का पार ही नहीं होता और जनता की सेवा में या अपने स्वार्थ में ही मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवाले की पूरा कसौटी हो जाती। इतना सार मेरे त्रुटि-पूर्ण उदाहरण में से लिया जा सकता है। जिन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया है, उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जिन्होंने देखा है, वही समझ सकते हैं। उसका वर्णन नहीं हो सकता।

इस प्रकरण को पढ़नेवाले समझ गये होंगे कि जहाँ विवाहितों का ब्रह्मचर्य की सलाह दी गई है, विधुर पुरुष को वैधव्य सिखलाया जाता है, वहाँ पर विवाहित या अविवाहित, स्त्री या पुरुष को दूसरी जगह विषय करने का मौका हो ही नहीं सकता। पर-स्त्री या वेश्या पर कुदृष्टि डालने के घोर परिणामों पर आरोग्य के विषय में विचार नहीं किया जा सकता। यह तो धर्म और गहरे नीति-शास्त्र का विषय है। यहाँ तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पर-स्त्री और वेश्या-गमन से आदमी सूजाक वगैरह नाम न लेने लायक बीमारियों से सड़ते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कुदरत तो ऐसी दया करती है कि इन लोगों के आगे पापों का फल तुरत ही आ जाता है। तो भी वे आँख मूँदे ही रहते हैं और अपने रोगों के लिए डाक्टरों के यहाँ भटकते फिरते हैं। जहाँ पर-स्त्री-गमन न हो, वहाँ पर सैकड़े पचास डाक्टर बेकार हो जायँगे। ये बीमारियाँ

मनुष्य-जाति के गले यों आ पडी है कि विचारशील डाक्टर कहते हैं कि उनके लाखों शोध चलाते रहने पर भी, अगर पर-स्त्री-गमन का रोग जारी ही रहा तो फिर मनुष्य जाति का अंत नजदीक ही है। इसके रोगों की दवायें भी ऐसी जहरीली होती है कि अगर उनसे एक रोग का नाश हुआ-सा लगता है तो दूसरे रोग घर कर लेते हैं और पीढी दर पीढी चल निकलते हैं।

अब विवाहितों को ब्रह्मचर्य-पालन का उपाय बता कर, इस लम्बे प्रकरण को खत्म करना चाहिए। ब्रह्मचर्य के लिए सिर्फ स्वच्छ हवा, पानी और खुराक का ही खयाल रखने से नहीं चलेगा। उन्हें तो अपनी स्त्री के साथ एकान्त छोडना चाहिए। विचार करने से मालूम होता है कि विषय-सम्भोग के सिवा एकान्त की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए। रात में स्त्री-पुरुष को अलग-अलग कमरों में सोना चाहिए। सारे दिन दोनों को अच्छे धंधों और विचारों में लगे रहना चाहिए। जिसमें अपने सुविचार को उत्तेजन मिले वैसी पुस्तकें और वैसे महापुरुषों के चरित्र पढने चाहिएँ। यह विचार बारंबार करना चाहिए कि भोग में तो दुःख ही दुःख है। जब-जब विषय की इच्छा हो आवे, ठण्डे पानी से नहा लेना चाहिए। शरीर में जो महाअग्नि है वह इससे शान्त होकर पुरुष और स्त्री दोनों को उपकारी होगी और दूसरा ही लाभदायक रूप धर कर हमारा सच्चा सुख बढावेगी। ऐसा करना मुश्किल है, मगर मुश्किलों को जीतने के लिए ही तो हम पैदा हुए हैं। आरोग्य प्राप्त करना हो तो ये मुश्किलें जीतनी ही पडेंगी।

ब्रह्मचर्य

मादरण में एक मानपत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गांधीजी ने ब्रह्मचर्य पर लम्बा प्रवचन किया। उसका सार यहाँ दिया जाता है—

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर मैं कुछ कहूँ। कितने ही विषय ऐसे हैं कि जिन पर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त ही लिखता हूँ और उन पर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ। क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कह कर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के विषय में सुनना चाहते हैं। जिस ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या 'समस्त इन्द्रियों का संयम' है, उसके विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रों में बड़ा कठिन बतलाया गया है। यह बात ९९ फी सदी सच है, इसमें १ फी सदी की कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन

मालूम पड़ता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, खास कर जीभ को। जो अपनी जिव्हा को कब्जे में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्रियों का यह कहना सच है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दर्जे तक मनुष्य नहीं करता। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा पूरा निग्रह रखते हैं—कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभाव से ही। वे केवल घास पर ही अपना गुजर करते हैं और वह भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नहीं जीते। पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत करते हैं। माँ बच्चे को तरह तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक पर प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीजों का जायका बढ़ाते नहीं बल्कि घटाते हैं। स्वाद तो भूख में रहता है। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालूम होंगे। पर हम तो न जाने क्या-क्या खा खा कर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता।

जो आँखें हमें ईश्वर ने देखने के लिए दी हैं उन्हें हम मलीन करते हैं और देखने लायक वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता गायत्री क्यों न पढ़े और बालकों को वह गायत्री क्यों न सिखाए? इसकी छानबीन करने के बदले अगर वह उसके तत्त्व—सूर्योपासना—को समझ कर उनसे सूर्योपासना करावे तो कितना अच्छा हो? सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों ही कर सकते हैं। यह तो

मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासना के मानी क्या हैं? यही कि अपना सिर ऊँचा रख कर, सूर्यनारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि की जाय। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता, और आकाश से बढ़कर भव्य रंग-भूमि भी कहीं नहीं मिल सकती। पर आज कौन सी माता बालक की आँखें धो कर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरों में जो शिक्षा मिलती है उसके फल-स्वरूप तो लड़का शायद बड़ा अफसर होगा, पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चों को मिलती है उससे कितनी बात वह ग्रहण कर लेता है। माँ-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं सजाते हैं, पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़े बदन को ढकने के लिए हैं, सर्दी गर्मी से बचाने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। अगर बालक का शरीर वज्र-सा दृढ़ बनाना है तो जाड़े से ठिठुरते हुए लड़के को हम अँगीठी के पास बैठावेंगे अथवा मैदान में खेलने-कूदने भेज देंगे, या खेत में काम पर छोड़ देंगे? उसका शरीर दृढ़ बनाने का बस यही एक उपाय है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर जरूर ही वज्र की तरह होना चाहिए। हम तो बच्चे के शरीर का सत्यानाश कर डालते हैं। उसे घर में रखने से जो झूठी गर्मी आती है, उसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। दुलार-दुलार कर तो हम उसका शरीर सिर्फ बिगाड़ ही पाते हैं।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह तरह की बात करके हम उसके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उसकी शादी की बातें किया करते हैं, और इसी किस्म की चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जंगली ही क्यों न बन गये हैं। मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। यदि हम ब्रह्मचर्य के रास्ते से ये सब विघ्न दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर बल प्राप्त करने के लिए हर किस्म के उपायों से काम लेना—हर तरह की चीजें खाना, गोमांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अंग्रेजों की तरह हट्टे-कट्टे न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुकाबला करने का मौका आया तब वहाँ गो-मांस भक्षण को स्थान मिला। सो, यदि आसुरी ढंग से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजों का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब अपने आप पर मैं तरस खाता हूँ। इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो, मुझे

कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किस चीज का नाम है। जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर दर्द होता है, न कभी खांसी होती है, न कभी अपेंडिसाइटिज होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आंत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिज होता है। परन्तु जो शरीर स्वच्छ और नीरोगी हो उसमें ये बीज टिकेंगे कैसे? जब आँतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आँतें शिथिल हो गई होंगी। इसीसे मैं ऐसी कोई चीज हजम न कर सका हूँगा। बच्चा ऐसी अनेक चीजें खा जाता है। माता इसका कहाँ ध्यान रखती है? पर उसकी आँतों में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोप करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हाँ, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूँदें पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताती हैं। ब्रह्मचर्य-पालन का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझ में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य

के कारण मुझे हिचकना पड़े तो यह ब्रह्मचर्य कौड़ी काम का नहीं। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक वैसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास क्रम आप नहीं बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यों न हो पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढ़ कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। हमारी ऐसी असह्य अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पाँच सौ वर्षों के बाद भी पठानों का मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानों का मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण में हो सकता है। पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुकरण तभी हमसे होगा जब हमारे पास पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के बारे में कुछ लिखना आसान नहीं है। परन्तु मेरा निजी अनुभव इतना विशाल है कि उसकी कुछ बूँदें पाठकों को अर्पण करने की इच्छा बनी ही रहती है। इसके अलावा मेरे पास आये हुए कितने ही पत्रों ने इस इच्छा को और भी अधिक बढ़ा दिया है।

एक सज्जन पूछते हैं—ब्रह्मचर्य के मानी क्या है? क्या उसका सोलहों आने पालन करना शक्य है? यदि शक्य हो तो क्या आप उसका वैसा पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्य का पूरा वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सब में व्याप्त है। अतएव उसकी खोज अन्तर्ध्यान और

उससे उत्पन्न होनेवाले अन्तर्ज्ञान से होती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के पूर्ण सयम के बिना नहीं हो सकता। इसलिए सभी इन्द्रियों का तन, मन, और वचन से सब समय और सब क्षेत्रों में सयम करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण-रूप से पालन करनेवाले स्त्री या पुरुष केवल निर्विकारी ही हो सकते हैं। ऐसे निर्विकारी स्त्री-पुरुष ईश्वर के नजदीक रहते हैं, वे ईश्वरवत् हैं।

इसमें मुझे तिलमात्र भी शका नहीं है कि ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन तन, मन, और वचन से करना सभव है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि इस ब्रह्मचर्य की पूर्ण अवस्था को मैं अभी नहीं पहुँचा हूँ। वहाँ तक पहुँचने का मेरा प्रयत्न निरन्तर चलता रहता है। इसी देह से इस स्थिति तक पहुँचने की आशा मैंने छोड़ी नहीं है। तन पर तो मैंने अपना काबू कर लिया है। जाग्रत अवस्था में मैं सावधान रह सकता हूँ। मैंने वचन के सयम का पालन करना ठीक-ठीक सीखा है। विचार पर अभी मुझे बहुत कुछ काबू पैदा करना बाकी है। जिस समय जिस बात का विचार करना हो उस समय केवल एक उसीके आने के बदले दूसरे विचार भी आया करते हैं। इससे विचारों में परस्पर द्वंद्व-युद्ध हुआ करता है।

फिर भी जाग्रत अवस्था में मैं विचारों को परस्पर टकराने से रोक सकता हूँ। मेरी यह स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही नहीं सकते। परन्तु निद्रावस्था में विचारों पर मेरा काबू कम रहता है। नींद में अनेक प्रकार के विचार आते हैं, अकल्पित सपने भी आते ही रहते हैं और कभी कभी इसी देह से की हुई बातों की वासना भी जाग्रत हो उठती

है । वे विचार जब गन्दे होते हैं तब स्वप्न-दोष भी होता है। यह स्थिति विकारी जीवन की ही हो सकती है।

मेरे विचार के विकार क्षीण होते जा रहे हैं किन्तु, उनका नाश नहीं हो पाया है । यदि मैं विचारों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर सका होता तो पिछले दस बरसों में मुझे जो तीन कठिन बीमारियाँ हुईं—पसली का दर्द, पेचिश और अपेंडिसाइटिज—वे कभी न होतीं । मैं मानता हूँ कि नीरोगी आत्मा का शरीर भी नीरोगी ही होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा नीरोग—निर्विकार—होती जाती है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोगी होता जाता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि नीरोगी शरीर के मानी बलवान् शरीर ही हों। बलवान् आत्मा क्षीण शरीर भी में वास करती है—ज्यों-ज्यों आत्म बल बढ़ता है त्यों-त्यों शरीर क्षीणता बढ़ती जाती है। पूर्ण नीरोग शरीर भी बहुत क्षीण हो सकता है।

बलवान् शरीर में बहुत करके रोग तो रहते ही हैं । अगर रोग न भी हों तोभी वह शरीर संक्रामक रोगों का शिकार तुरन्त हो जाता है परन्तु पूर्ण नीरोग शरीर पर संक्रामक रोगों की छूत का कोई असर नहीं पड़ सकता । शुद्ध खून में ऐसे कीड़ों को दूर रखने का गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ तो है ही । नहीं तो अब तक मैं यहाँ तक पहुँच गया होता । क्योंकि मेरी आत्मा साक्षी देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए जिन उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता है, उनसे मैं मुँह मोड़नेवाला नहीं हूँ । ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नहीं है जो मुझे उनसे दूर रखने में समर्थ हो । परन्तु पिछले संस्कारों को धो बहाना

सबके लिए सरल नहीं होता है। इसलिए गो कि देर हो रही है मगर तो भी मैं जरा भी हिम्मत नहीं हार बैठा हूँ, क्योंकि मैं निर्विकार अवस्था की कल्पना कर सकता हूँ। उसकी धुँधली झलक भी कभी-कभी देख सकता हूँ और जो प्रगति मैंने अब तक की है वह मुझे निराश करने के बदले मुझमें आशा ही भरती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण हुए बिना ही मेरा शरीर-पात हो जाय तोभी मैं अपने को निष्फल हुआ न मानूँगा। जितना विश्वास मुझे इस देह के अस्तित्व पर है उतना ही पुनर्जन्म पर भी है। इसलिए मैं जानता हूँ कि थोड़ा-सा प्रयत्न भी कभी व्यर्थ नहीं जाता।

आत्मानुभव का इतना वर्णन करने का कारण यह है कि इससे जिन लोगों ने मुझे पत्र लिखे हैं उनको तथा उनके सदृश दूसरों को धीरज रहे और उनका आत्म-विश्वास बढ़े। सबकी आत्मा एक है। सबकी आत्मा की शक्ति एक-सी है। कई एक लोगों की शक्ति प्रकट हो चुकी है—दूसरों की प्रकट होने को बाकी है। प्रयत्न करने से उन्हें भी यह अनुभव जरूर ही मिलेगा।

यहाँ तक मैंने व्यापक अर्थ में ब्रह्मचर्य का विवेचन किया। ब्रह्मचर्य का लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो केवल विषयेन्द्रिय का ही मन, वचन, और काया के द्वारा संयम माना जाता है। यह अर्थ वास्तविक है। क्योंकि इसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रिय के संयम पर उतना जोर नहीं दिया गया है। इससे विषयेन्द्रिय का संयम इतना मुश्किल बन गया है—लगभग असम्भव हो गया है। फिर जो शरीर रोग से अशक्त हो गया है उसमें विषय-वासना हमेशा अधिक रहती है।

यह वैद्यों का अनुभव है। इसलिए भी हमारे रोग-ग्रस्त समाज को ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन जान पड़ता है।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोगी शरीर के विषय में लिख आया हूँ। कोई उसका अर्थ यह न लगावें कि शरीर-बल बढ़ाना ही नहीं चाहिए। मैंने तो सूक्ष्म-तम ब्रह्मचर्य की बात अपनी अति प्राकृत भाषा में लिखी है।

उससे शायद गलतफहमी होवे। जो सब इन्द्रियों के पूर्ण संयम का पालन करना चाहता है उसे अन्त में शरीर-क्षीणता का अभिनन्दन करना ही पड़ेगा। जब शरीर का मोह और ममत्व क्षीण हो जाय तब शरीर-बल की इच्छा रही नहीं सकती। परन्तु विषयेन्द्रिय को जीतनेवाले ब्रह्मचारी का शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेन्द्रिय को स्वप्नावस्था में भी विकार न हो वह जगत्वन्दनीय है। इसमें कोई शक नहीं कि उसके लिए दूसरे संयम सहज बात हैं।

इस ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में एक दूसरे महाशय लिखते हैं—"मेरी स्थिति दया जनक है। दफ्तर में, रास्ते में, रात को, पढ़ते समय, काम करते हुए, ईश्वर का नाम लेते-हुए भी वही विचार आते रहते हैं। मन के विचार किस तरह काबू में रक्खे जायँ? स्त्री-मात्र के प्रति मातृ-भाव कैसे उत्पन्न हो? आँख से शुद्ध वात्सल्य की ही किरणें किस प्रकार निकलें? दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मूल हों? ब्रह्मचर्य-विषयक आपका लेख मैंने अपने पास रख छोड़ा है परन्तु इस जगह उससे जरा भी लाभ नहीं होता है।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। बहुतों की यह स्थिति होती है। परन्तु जबतक मन उन विचारों के साथ लड़ता रहता है

तबतक भय करने का कोई कारण नहीं है। और यदि दोष करती हो तो उसे बंद कर लेना चाहिए, कान यदि दोष करें तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए। आँख को हमेशा नीचा रख कर चलने की रीति हितकर है। इससे उसे दूसरी बातें देखने की फुरसत ही नहीं मिलती। जहाँ गन्दी बातें होती हों अथवा गन्दे गीत गाये जा रहे हों वहाँ से उठकर भाग जाना चाहिए। स्वादेन्द्रिय पर खूब काबू पैदा करना चाहिए।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद नहीं जीता वह विषय को नहीं जीत सकता। स्वाद को जीतना बहुत कठिन है। परन्तु यह विजय मिलने के साथ ही दूसरे विजय की सम्भावना है। स्वाद को जीतने के लिए एक नियम तो यह है कि मसालों का सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग करना चाहिए। और दूसरा अधिक जोरदार तरीका यह है कि इस भावना की वृद्धि हमेशा की जाय कि हम स्वाद के लिए नहीं बल्कि केवल शरीर-रक्षा भर के लिए भोजन करते हैं। हम स्वाद के लिए हवा नहीं लेते, बल्कि श्वास लेने के लिए लेते हैं। पानी हम केवल प्यास बुझाने के लिए पीते हैं। इसी प्रकार खाना भी महज भूख बुझाने के लिए ही खाना चाहिए। हमारे माँ-बाप लड़कपन से ही हमें इससे उल्टी आदत डलवाते हैं। हमारे पोषण के लिए नहीं बल्कि अपना दुलार दिखाने के लिए हमें तरह-तरह के स्वाद चखा कर हमें बिगाड़ते हैं। हमें ऐसे वातावरण का विरोध करना होगा।

परन्तु विषय को जीतने का सुवर्ण नियम तो राम-नाम अथवा कोई दूसरा ऐसा मंत्र है। द्वादश मंत्र भी यही काम करता है। जिसकी जैसी भावना हो वह वैसा ही मंत्र का जाप

मुझे लड़कपन से राम-नाम सिखाया गया। मुझे उसका सहारा बराबर मिलता रहता है। इसलिए मैंने उसे सुझाया है। जो मन्त्र हम जपें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। भले ही मन जपते समय दूसरे विचार आया करें, मगर तो भी जो श्रद्धा रखकर मन्त्र का जप करता रहेगा उसे अन्त में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। मुझे इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है। यह मन्त्र उसके जीवन का आधार बनेगा और उसे तमाम सङ्कटों से बचावेगा। ऐसे पवित्र मन्त्रों का उपयोग किसीको आर्थिक लाभ के लिए हरगिज नहीं करना चाहिए। इन मन्त्रों का चमत्कार हमारी नीति को सुरक्षित रखने में है। और यह अनुभव प्रत्येक साधक को थोड़े ही समय में मिल जायगा। हाँ, इतना याद रखना चाहिए कि इन मन्त्रों को तोते की तरह रटने से कुछ भी नहीं होगा। उसमें अपनी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते तो यन्त्र की तरह ऐसे मन्त्र पढ़ते रहते हैं। हमें उन्हें ज्ञान पूर्वक पढ़ना चाहिए — अवाञ्छनीय विचारों का निवारण करने की भावना रखकर और ऐसा कर सकने की मन्त्र की शक्ति में विश्वास रखकर पढ़ना चाहिए।

मनोवृत्तियों का प्रभाव

एक सज्जन लिखते हैं

"य इ में सन्तान-निग्रह पर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बड़ी दिलचस्पी से पढ़ता रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आपने जे० ए० हैडफील्ड की "साइकॉलॉजी एण्ड मॉरल्स' नामक पुस्तक पढ़ी होगी। मैं आपका ध्यान उस पुस्तक के निम्न लिखित उद्धरण की ओर दिलाना चाहता हूँ —

"'विषयभोग स्वेच्छाचार उस हालत में कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधी मानी जाती हो और विषयभोग को निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब कि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिन्ह माना जाय। विषय-वासना का इस प्रकार व्यक्त

होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुत गाढा बनाता है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना सम्भोग करने से और दूसरी ओर सम्भोग के विचार को तुच्छ सुख मानने के भ्रम में पड कर उससे परहेज करने से अकसर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम कम पड जाता है। यानी लेखक की समझ में सम्भोग से सन्तानोत्पत्ति तो होती ही है, इसके अलावा उसमें दाम्पत्य प्रेम को बढाने का धार्मिक गुण भी रहता है।

"अगर लेखक की यह बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करने की मशा से किया हुआ सम्भोग ही उचित है—अन्यथा नहीं। मेरा तो निजी खयाल यह है कि लेखक की उपयुक्त बात बिल्कुल सच है, क्योंकि महज यही नहीं कि वह प्रसिद्ध मानसशास्त्रवेत्ता है, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं, जिनमें शरीर-सग के द्वारा प्रेम को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने की कोशिश करने से ही दाम्पत्य जीवन नीरस या नष्ट हो गया है।

"अच्छा यह उदाहरण लीजिए एक युवक और एक युवती एक दूसरे के साथ प्रेम करते हैं और उनका यह करना सुन्दर तथा ईश्वर-कृत व्यवस्था का एक अग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चे को तालीम देने के लिए काफी धन नहीं है (और मैं समझता हूँ कि आप इससे सहमत हैं कि तालीम वगैरह देने की हैसियत न रखते हुए सन्तान पैदा करना पाप है), या यह समझ लीजिए कि सन्तान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक होगा या यह कि उसे पहले ही बहुत से बच्चे हो चुके हैं।

"आपके कथनानुसार तो इस दम्पति के आगे केवल दो ही रास्ते हैं या तो वे विवाह कर के अलग अलग रहें—लेकिन अगर ऐसा होगा तो हैडफील्ड की उपर्युक्त दलील के मुताबिक बेचैनी पैदा होगी, जिससे उनके बीच मुहब्बत का खात्मा हो जायगा—या वे विवाह ही न करें, लेकिन इस सूरत में भी मुहब्बत तो जाती ही रहेगी। इसका कारण यह है कि प्रकृति तो मनुष्य-कृत योजनाओं की अवहेलना ही किया करती है। हाँ, यह बेशक हो सकता है कि वे एक दूसरे से जुदा हो जावें, लेकिन इस अलाहदगी में भी उनके मन में विकार तो उठते रहेंगे। और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बदल दी जाय जिसमें सब लोगों के लिए उतने ही बच्चों का पालन करना मुमकिन हो जितने वे पैदा कर सकें, तो भी समाज को अतिशय सन्तानोत्पत्ति का और हरएक औरत को हद से ज्यादा सन्तान उत्पन्न करने का खतरा तो बना ही रहता है। दूसरी वजह यह है कि मर्द अपने को बहुत ज्यादा रोके रहता हुआ भी साल में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिए या सन्तान-निग्रह का, क्योंकि वक्त-बेवक्त किये हुए सम्भोग का नतीजा यह हो सकता है कि (जैसा कभी-कभी कालोनिया में हुआ करता है) औरत, ईश्वर की मर्जी के नाम पर मर्द के द्वारा पैदा किया हुआ एक बच्चा हर साल जनन करने की वजह से मर जाय।

'जिसे आप आत्म-संयम कहते हैं, वह प्रकृति के काम में उतना ही बड़ा हस्तक्षेप है—बल्कि हकीकतन ज्यादा—जितना कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम साधन हैं। सम्भव है, पुरुष इन साधनों की मदद से विषय-भोग में अतिशयता

कर, परन्तु उससे सन्तति की पैदाइश तो रुक जायगी और अन्त में इसका दुःख उन्हींको भोगना होगा — अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत जो लोग इन साधनों का उपयोग नहीं करते, वे भी अतिशयता के दोष से कदापि मुक्त नहीं हैं, और उनके पाप का फल केवल उन्हीं को नहीं, किन्तु उनकी सन्तति को भी जिनकी पैदाइश को वे रोक नहीं सकते हैं, भोगना पड़ता है। इग्लैण्ड में आजकल खानों के मालिकों और मजदूरों के बीच जो झगड़ा चल रहा है, उसमें खानों के मालिकों की विजय निश्चित है। इसका कारण यह है कि खानों के मजदूर बहुत बड़ी तादाद में हैं। और सन्तानोत्पत्ति की निरंकुशता से बेचारे बच्चों का ही बिगाड़ नहीं होता, बल्कि समस्त मानव-जाति का होता है।

इस पत्र में मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को साँप समझ लेता है, तब उस विचार के कारण वह पीला पड़ जाता है, और या तो वहाँ से भागता है या उस कल्पित साँप को मार डालने की गरज से लाठी उठाता है। दूसरा आदमी पर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु-वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह उसे पहचान कर अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठण्डा पड़ जाता है।

यही बात उस सम्बन्ध में भी मान ली जाय, जिसका जिक्र पत्र-लेखक ने ऊपर किया है। जैसा कि संभव है सम्भोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज करने से प्रायः अशान्ति उत्पन्न हो और प्रेम में कमी

आ जाय — यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। लेकिन अगर संयम, प्रेम-बंधन को अधिक दृढ़ बनाने के लिए रक्खा जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिए वीर्य का संचय करने के अभिप्राय से किया जाय तो वह अशान्ति के स्थान पर शान्ति ही बढ़ावेगा और प्रेम गाँठ को ढीली न करके उलटे उसे मजबूत ही बनावेगा। यह दूसरा मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। जिस प्रेम का आधार पशुवृत्ति की तृप्ति है, वह आखिर स्वार्थ ही है और थोड़े-से दबाव से भी वह ठण्डा पड़ सकता है। फिर, जब पशु-पक्षियों की सम्भोग तृप्ति का कोई आध्यात्मिक स्वरूप नहीं है तब मनुष्यों में ही होनेवाली सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप क्यों दिया जाय? जो चीज जैसी है उसे हम वैसी ही क्यों न समझें? यह तो वंश को कायम रखने के लिए एक ऐसी क्रिया है जिसकी ओर हम सब बलात्कार खींचे जाते हैं। हाँ, लेकिन मनुष्य अपवाद स्वरूप है क्योंकि वह एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतन्त्र इच्छा दी है और इसके बल से वह जाति उन्नति के लिए और पशुओं की अपेक्षा उच्चतर आदर्श की पूर्ति के लिए, जिसके लिए वह संसार में आया है, इन्द्रिय संयम करने की क्षमता रखता है। संस्कारवशात् ही हम यों मानते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के कारण के सिवा भी स्त्री-प्रसंग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिए इष्ट है। बहुतों का अनुभव यह है कि संतानोत्पादन की इच्छा के बिना केवल भोग के ही लिए किया हुआ स्त्री-प्रसंग प्रेम को न तो बढ़ाता है और न ज्यादा बनाये रखने के लिए या उसको शुद्ध करने के लिए ही आवश्यक है। अलबत्ता, ऐसे भी उदाहरण अवश्य दिये जा सकते हैं कि

जिनमें इन्द्रिय-निग्रह से प्रेम और भी दृढ़ हो गया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं है कि यह आत्म निग्रह पति और पत्नी को पारस्परिक आत्म उन्नति के लिए स्वेच्छा से करना चाहिए।

मानव-समाज तो लगातार उन्नति करती जानेवाली या आध्यात्मिक विकास करनेवाली चीज है। यदि मानव-समाज इस तरह ऊर्ध्वगामी है तो उसका आधार शारीरिक हाजतों पर दिनों-दिन अधिकाधिक अंकुश रखने पर निर्भर होना चाहिए। इस प्रकार विवाह को तो एक ऐसी धर्म-ग्रंथि समझना चाहिए जो कि पति और पत्नी दोनों पर अनुशासन करे और उनपर यह कैद लाजिमी कर दे कि वे सदा अपने ही बीच में इन्द्रिय-भोग करेंगे, और वो भी केवल सतति-जनन की गर्ज से और उसी हालत में जब कि वे दोनों उसके लिए तैयार और इच्छुक हों। तब तो उक्त पत्र की दोनों बातों में प्रजोत्पादन की इच्छा को छोड़ कर इंद्रिय-भोग का और कोई प्रश्न उठता ही नहीं है।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी स्त्री-संग को आवश्यक बतलाता है, उसी प्रकार अगर हम भी प्रारम्भ करें, तो तर्क के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। परन्तु संसार के हरएक हिस्से में चन्द उत्तम पुरुषों के सम्पूर्ण संयम के दृष्टान्तों की मौजूदगी में उक्त सिद्धान्त को कोई जगह नहीं है। यह कहना कि ऐसा संयम अधिकांश मानव-समाज के लिये कठिन है, संयम की शक्यता और इष्टता के विरुद्ध कोई दलील नहीं हो सकता। सौ वर्ष पहले अधिकांश मनुष्यों के लिए जो शक्य नहीं था वह आज शक्य पाया गया

ह। और असीम उन्नति करने के निमित्त हमारे सामने पड़ा हुआ काल के चक्र में १०० वर्ष की बिसात ही क्या? अगर वैज्ञानिकों का अनुमान सत्य है तो अभी कल ही तो हमको आदमी का चोला मिला था। उसकी मर्यादा को कौन जानता है? और किसमें हिम्मत है कि कोई उसकी मर्यादा का स्थिर कर सके? निस्सन्देह हम नित्य ही भला या बुरा करने की निस्सीम शक्ति उसमें पाते रहते हैं।

अगर संयम की शक्यता और इष्टता मान ली जाय, तो हमको उसे करने के लायक बनने के साधनों का ढूँढ निकालने की कोशिश करना चाहिए। और, जैसा कि मैं अपने किसी पिछले लेख में लिख चुका हूँ, अगर हम संयम से रहना चाहते हों तो हमें अपना जीवन-क्रम बदलना ही पड़ेगा। लड्डू हाथ में रहे और पेट में भी चला जाय — यह कैसे हो सकता है? अगर हम जननेन्द्रिय का संयमन करना चाहते हैं तो हमको अन्य सभी इन्द्रियों का संयम भी करना ही होगा। अगर हाथ, पैर, नाक, कान, आँख इत्यादि की लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रिय का संयम असम्भव है। अशान्ति, चिड़चिड़ापन, हिस्टीरिया, विक्षिप्तपन आदि जिसके लिए लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न को दोषी ठहराते हैं, वे असल में अन्त में अन्य इन्द्रियों के ही असंयम का फल सिद्ध होंगे। कोई भी पाप और प्राकृतिक नियमों का कोई भी उल्लंघन करके कोई आदमी दण्ड से बच नहीं सकता।

मैं शब्दों के लिए झगड़ना नहीं चाहता। अगर आत्म-संयम भी प्रकृति के नियमों का ठीक वैसा ही उल्लंघन है, जैसा कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम उपाय हैं, तो भले

ऐसा कहा जाय। लेकिन मेरा खयाल तब भी यही बना रहेगा कि इनमें यह उल्घन कर्तव्य है और इष्ट है, क्योंकि इसमें व्यक्ति का तथा समाज की उन्नति होती है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनों का पतन होता है। सतति-निग्रह का एक ही सच्चा रास्ता है, ब्रह्मचर्य। और स्त्री-प्रसग के बाद सतति-वृद्धि रोकने के कृत्रिम साधना के प्रयोग से मनुष्य-जाति का नाश ही होगा।

अन्त में, यदि कारखाना के मालिक गलत रास्ते पर होते हुए भी विजयी होंगे, तो इसलिए नहीं कि मजदूरों में सतति की सख्या बहुत बढ गई है, बल्कि इसलिए कि मजदूरों ने एक भी इन्द्रियों के संयम का पाठ नहीं सीखा है। अगर इन लोगों के बच्चे न होते तो इन्हें न तो तरक्की करने के लिए उत्साह ही होता और न तब उनके पास वेतन-वृद्धि माँगने के लिए कोई कारण ही होता। क्या शराब पीने, जुआ खेलने या तमाखू पिये बिना उनका काम नहीं चल सकता? क्या यही कोई माकूल जवाब हो जायगा कि कारखानों के मालिक इन्हीं दोषों में लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी हैं? अगर मजदूर लोग पूजीपतियों से बेहतर होने का दावा नहीं कर सकते तो उनको जगत की सहानुभूति माँगने का अधिकार ही क्या है? क्या इसीलिए कि पूजीपतियों की सख्या बढ़े और पूजीवाद का हाथ मजबूत हो? हम यह आशा करके प्रजातंत्र की दुहाई देने को कहा जाता है कि जब वह ससार में स्थापित हो जायगा, तब हमें अच्छे दिन देखने को मिलेंगे। इसलिए हम लाजिम है कि हम स्वय उन्हीं बुराइयों का प्रचार आप ही न करें जिनका इल्जाम हम पूजीपतियों तथा सपत्तिवाद पर लगाया करते है।

मुझे दुःख के साथ यह बात मालूम है कि आत्म-संयम आसानी से नहीं किया जा सकता। लेकिन उसकी धीमी गति से हमें घबराना न चाहिए। जल्दबाजी से कुछ हासिल नहीं होता। अधैर्य से जन-साधारण में या मजदूरों में अत्यधिक सन्तानोत्पत्ति की बुराई बन्द न हो जायगी। मजदूरों के सेवकों के सामने बड़ा भारी काम पड़ा है। उनको संयम का वह पाठ अपने जीवन-क्रम से निकाल न देना चाहिए जो कि मानव जाति के बड़े से बड़े शिक्षकों ने अपने अमूल्य अनुभव से हमको पढ़ाया है। जिन मूलाधार सिद्धान्तों की विरासत उन्होंने हमें दी है, उनकी परीक्षा आधुनिक प्रयोगशालाओं से कहीं अधिक सपन्न प्रयोगशाला में की गई थी। उनमें सब किसी ने हमें आत्म संयम की ही शिक्षा दी है।

धर्म-सकट

"मैं ३० वर्ष का विवाहित पुरुष हूँ। मेरी धर्मपत्नी की भी प्राय यही उम्र है। हम पाँच सन्तान हुईं, जिनमें सौभाग्य से दो तो मर गई हैं। मैं अपने शेष बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेवारी को जानता हूँ। मगर उस उत्तरदायित्व को पूरा करना अगर असभव नहीं तो मैं बहुत मुश्किल जरूर पाता हूँ। आपने आत्म-सयम की सलाह दी है। खैर, मैं पिछले तीन वर्षों से उसका पालन करता आ रहा हूँ मगर अपनी सहधर्मिणी की इच्छाओं के बहुत ही विरुद्ध। वह तो उसी वस्तु को माँगती है जिसे आम लोग जिन्दगी का मजा कहते हैं। आप इतने ऊँचे पर बैठकर भले ही इसे पाप कह सकते हैं। मगर वह तो इस विषय पर आपकी इस दृष्टि से विचार नहीं करती। और न उसे और अधिक बच्चे पैदा करने का ही डर है। उसे उत्तरदायित्व का यह खयाल नहीं है, जिसके मुझ में होने का विश्वास कर मैं अपने को बडभागी मानता हूँ। मेरे माता पिता मेरे बनिस्बत मेरी पत्नी का ही अधिक साथ देते हैं और रोज ही घर में दाँता-किलकिल मची रहती है। कामेच्छा की पूर्ति न होने से मेरी स्त्री का स्वभाव इतना चिडचिडा और क्रोधी होगया है कि वह जरा-जरा-सी बात पर उबल पडती है। अब मेरे सामने सवाल यह है कि मैं इस कठिनाई को हल कैसे करूँ? मेरी शक्ति के बाहर मुझे लडके-बाले हैं। उनका पालन करने लायक धन मेरे पास नहीं है। पत्नी को समझा रखना बिल्कुल असभव-सा जान पडता है। अगर उसकी कामेच्छा पूरी न की जाय तो यह भय है कि वह कहीं चली

जाय या पगली हो जाय या शायद कहीं आत्म-हत्या कर बैठे। मैं आपसे कहता हूँ कि अगर इस ढंग का कानून मुझे इजाजत देता तो मैं उसी तरह सभी अनचाहे लड़कों को गोली मार देता, जिस तरह कि आप लावारिस कुत्तों को मरवाते। गत तीन महीनों से मुझे दिन-रात में दो जून खाना नसीब नहीं हुआ है नाश्ता या जलपान भी मयस्सर नहीं हुआ है। मेरे सिर ऐसे काम धन्धे भी पड़े हुए हैं कि जिनसे मैं लगातार कई दिनों तक उपवास भी नहीं कर सकता। पत्नी मुझसे कुछ सहानुभूति रखती नहीं, क्योंकि वह मुझे सनकी या पागल-सा समझती है। सन्तति-निग्रह के साहित्य से मैं परिचित हूँ। वह साहित्य बहुत लुभावने तरीके से लिखा गया है। और मैंने आत्म-संयम पर आपकी भी किताब पढ़ी है। मैं तो यहाँ बाघ और मगर के बीच में पड़ा हूँ।"

मैं पत्र लेखक को कई साल से जानता हूँ। वे युवक हैं। उन्होंने अपना पूरा नाम-ठाम पत्र में दिया है। उनके पत्र का सही सारांश ऊपर दिया गया है। अपना नाम देते हुए वे डरते थे। इसलिए वे लिखते हैं कि, 'य इ … में चर्चा की जा सकने की आशा से उन्होंने मेरे पास दो गुमनाम पत्र लिखे थे। इस तरह के इतने अधिक गुमनाम पत्र मेरे पास आते रहते हैं कि मैं उनपर चर्चा करने में हिचकता हूँ। उसी तरह इस पत्र पर भी चर्चा करने में मुझे बहुत झिझक है, गो मैं जानता हूँ कि यह पत्र सच्चा है और प्रयत्नशील पुरुष का लिखा हुआ है। यह विषय ही इतना नाजुक है। मगर मैं तो दावा करता हूँ कि ऐसे मुआमलों का मुझे काफी अनुभव है। ऐसा दावा करते हुए और खास कर इसलिए कि कई ऐसे ही

मुआमलों में मेरे तरीके से लोगों को राहत मिली है, मैं इस स्पष्ट कर्त्तव्य के पालन से दिल नहीं चुरा सकता।

जहाँ तक अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों से सबंध है, वहाँ की स्थिति दुगुनी मुश्किल है। सामाजिक योग्यता की दृष्टि से पति पत्नी के बीच इतना बड़ा अन्तर होता है कि जिसे मिटाना असभव है। कुछ नौजवान यह सोचते हुए जान पड़ते हैं कि अपनी पत्नियों की परवा न करने से ही हमने यह सवाल हल कर लिया है, गोकि उन्हें बखूब पता है कि उनकी बिरादरी में तलाक समव नहीं है और इसलिए उनकी पत्नियाँ पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं। और तो भी दूसरे लोग—और इन्हीं की सख्या बहुत ज्यादा है—अपनी पत्नियों को केवल मजा लूटने का साधन बनाते हैं और उन्हें अपने मानसिक जीवन में हिस्सा नहीं देते। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जिनका अंतःकरण जाग्रत हुआ है—मगर उनकी सख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। उनके सामने भी वैसी ही नैतिक समस्या आ खड़ी हुई है जैसी कि मेरे पत्र-लेखक के सामने है।

मेरी सम्मति में सभोग को अगर उचित या नियमानुकूल मानना है तो उसकी इजाजत तभी दी जा सकती है जब कि दोनों पक्ष उसकी चाहना करें। पति के पत्नी से या पत्नी के पति से अपनी कामेच्छा की पूर्ति जबरन कराने के अधिकार को मैं नहीं मानता। और अगर इस मुआमले में मेरी स्थिति सही है तो पति पर ऐसा कोई नैतिक दबाव नहीं है कि जिससे वह पत्नी की माँगे पूरी करने को बाध्य हो। मगर यों इन्कार करने से ही पति पर और भी बड़ा भारी और ऊँचा उत्तर दायित्व आ पड़ता है। वह अपने आपको बहुत बड़ा

साधक मानता हुआ अपनी पत्नी को हिकारत की नजर से नहीं देखेगा किन्तु नम्रता-पूर्वक इसे स्वीकार करेगा कि उसके लिए जो बात जरूरी नहीं है, वही उसकी पत्नी के लिए परमावश्यक वस्तु है । इसलिए वह उसके साथ अत्यंत नम्रता का व्यवहार करेगा और अपनी पवित्रता में वह यह विश्वास रक्खेगा कि उसकी पत्नी की वासना को अत्यंत ऊँचे प्रकार की शक्ति-रूप में वह बदल सकेगा । इसलिए उसे अपनी पत्नी का सच्चा मित्र, नायक और वैद्य बनना होगा । पत्नी में उसे पूरा-पूरा विश्वास करना होगा, उससे कुछ भी छिपाना न होगा और अटूट धैर्य से उसे अपनी पत्नी को इस काम का नैतिक आधार समझाना पड़ेगा, यह बतलाना होगा कि पति-पत्नी के बीच सचमुच में कैसा संबंध होना चाहिए और विवाह का सच्चा अर्थ क्या है । यह काम करते हुए वह देखेगा कि पहले जो बहुत-सी बातें स्पष्ट नहीं थीं अब स्पष्ट हो जायँगी और अगर उसका अपना संयम सच्चा होगा तो वह अपनी पत्नी को अपने और भी निकट खींच लेगा ।

इस उदाहरण के बारे में तो मुझे कहना ही पड़ेगा कि केवल और अधिक संतानोत्पादन से बचने की इच्छा ही पत्नी को संतुष्ट करने से इन्कार करने का काफी कारण नहीं है । महज बच्चों का भार उठाने के डर से पत्नी की प्रेम-याचना का अस्वीकार करना तो कायरता-सी लगता है । बेहिसाब संतानोत्पादन को रोकना दोनों पक्ष के अलग-अलग या साथ साथ अपनी काम-वासना पर लगाम लगाने का अच्छा कारण है, मगर दंपती में से एक के अपने संगी से एकत्र शयन का अधिकार छीन लेने का यह भरपूर कारण नहीं है ।

और आखिर बच्चों से इतनी घबराहट ही किस लिए हो? अरूर ही इमानदार परिश्रमी और बुद्धिमान् पुरुषों के लिए कई लड़कों का पालन कर सकने की कमाई करने की काफ़ी गुंजायश तो है ही। मैं कबूल करता हूँ कि मेरे पत्र-लेखक जैसे आदमी के लिए जो देश-सेवा में अपना सारा समय लगाने की सच्ची कोशिश ईमानदारी से करता है, बड़े और बढ़ते हुए परिवार का पालन करना और साथ ही साथ देश की भी सेवा करनी, जिसकी करोड़ों भूखी सन्तानें हैं, मुश्किल है। मैंने इन पृष्ठों में अकसर लिखा है कि जबतक भारतवर्ष गुलाम है, यहाँ बच्चे पैदा करना ही भूल है। मगर यह तो नवयुवकों और युवतियों के विवाह ही न करने की बड़ी अच्छी वजह है एक के दूसरे को दाम्पत्य सहयोग न देने का काफी कारण नहीं है। हाँ, सहयोग न करना—सभोग न करना—भी उचित हो सकता है, बल्कि न करना ही धर्म हो जाता है, जब कि शुद्ध धर्म के नाम पर ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा अदम्य हो उठे। जब वह इच्छा सचमुच में पैदा हो जायगी, तब उसका बड़ा अच्छा प्रभाव दूसरे पर भी पड़ेगा। अगर मान लेवें कि समय पर उसका भला प्रभाव न भी पड़ा, तोभी जीवन-संगी के पागल हो जाने या मर जाने का जोखिम उठा कर भी ब्रह्मचर्य-पालन करना कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य के लिए भी वैसे ही वीरता-पूर्ण त्याग की जरूरत है जैसे कि सत्यता या देशोद्धार के लिए है। मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है, उसे दृष्टि में रखते हुए यह कहने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती है कि कृत्रिम उपायों से सन्तानिग्रह करना अनैतिक है और मेरे तर्क के नीचे जीवन की जो भावना छिपी हुई है, उसमें इसे जगह नहीं है।

परिशिष्ट

जनन और प्रजनन

['ओपन कोर्ट' नामक एक अंग्रेजी मासिक में लिखे श्री विलियम लोफ्टस हेयर के इस विषय के एक लेख का अनुवाद नीचे दिया है]

प्राणि-शास्त्र में जनन

एक कोषीय जीवों की खुर्दबीन से जाँच करने पर पता चला है कि क्षुद्रतम जीवों मे वंश-वृद्धि के लिए शरीरों के टुकड़े अपने आप हो जाते हैं। पोषण पाने से ऐसे जीव के शरीर की वृद्धि होती जाती है और जब वह अपनी जाति के लिहाज से बड़ा से बड़ा हो जाता है तब उसके दो विभाग होने लगते हैं और बार-बार शरीर के ही दो टुकड़े हो जाते हैं। साधारण सुविधायें यानी पानी और पोषण मिलते जाने पर मालूम होता है कि इन्हीं क्रियाओं में उसका सारा जीवन समाप्त हो जाता है, मगर, वे सुविधायें न मिलने पर, कभी-कभी दो कोषों का एक में मिलकर पुनर्यौवन होते हुए भी देखा जाता है परन्तु उनके मिलन से सन्तानोत्पत्ति नहीं होती।

बहु कोषीय जीवों में भी पोषण और वृद्धि की क्रियायें नाम्य के जीवों के समान ही चलती हैं, परन्तु एक और नई क्रिया देखने में आती है। शरीर के अलग-अलग कोषपुञ्जों के प्रायः अलग-अलग काम होते हैं कुछ पोषण प्राप्त करते हैं तो कुछ उसे बाँटने का काम करते हैं, कुछ गति के लिए हैं तो कुछ हिफाजत के लिए, जैसे कि चमड़ा। वे कोषपुञ्ज शरीर विभजन का प्राथमिक क्रिया छोड़ देते हैं, जिन्हें कुछ नये काम मिलते हैं मगर कुछ कोषपुञ्जों के जिम्मे, जिन्हें शरीर में कुछ

और भीतरी जगह मिलती है यह काम बचा रहता है । दूसरे पुञ्ज, जिनमें अदल-बदल हो चुकी है, इनकी हिफाजत और खिदमत करते हैं, मगर ये जैसे के तैसे ही बने रहते हैं । उनमें विभजन पहले जैसा ही होता है मगर वह कोषीय शरीर के भीतर ही, और समय पा कर कुछ तो बाहर भी निकाल दिये जाते हैं । तथापि उन्हें एक नई शक्ति मिल जाती है । अपने पूर्वजों के समान दो टुकड़े हो जाने के बदले, उनके पुञ्जों का विभजन—या वृद्धि, अलग-अलग टुकड़े हुए बिना ही होती है । यह क्रिया तबतक चलती रहती है, जबतक वह प्राणी, अपनी जाति के लिहाज से पूर्णवृद्धि को नहीं पहुँच जाता । मगर उसके शरीर में हम एक नई बात देख पाते हैं, वह यह कि मौलिक कीटाणुओं का काम केवल बाह्य जनन का ही नहीं रह जाता बल्कि आन्तरिक कोषों की उत्पत्ति के लिए भी वे जहाँ कहीं जरूरत पड़ती है, कोष दिया करते हैं । इस प्रकार ये, किसी खास काम के लिए पहले ही से निश्चित न किये गये कोष, एक साथ ही दो काम करते हैं, यानी आन्तरिक प्रजनन या शरीर का विकास और बाह्य जनन या वंश-वृद्धि का काम । यहाँ हम प्रजनन और जनन इन दो क्रियाओं का अन्तर स्पष्ट समझ लें । एक और महत्वपूर्ण बात है । प्रजनन—आन्तरिक विकास—व्यक्ति के लिए परमावश्यक है और इसलिए आवश्यक और पहला काम है जनन या वंश विस्तार का काम तो कार्यों की अधिकता होने से ही होगा और इसलिए दूसरा है, कम महत्व का है । शायद दोनों ही पोषण पर निर्भर रहते हैं क्योंकि अगर पोषण पूरा न मिले तो आन्तरिक विकास का काम ठीक न हो सकेगा और न कोषों की कसरत होगी, न वंश विस्तार ही

होने की आवश्यकता या सम्भावना होगी। इसलिए जीवन का नियम यह है कि इस स्थिति में पहले प्रजनन के लिए जीव-कोषों का पोषण किया जाय और तब कहीं जनन के लिए। अगर पोषण पूरा न हो सके तो उस पर पहला हक होगा प्रजनन का और जनन की क्रिया बन्द रखनी होगी। यों हम सन्तानोत्पत्ति की रोक के मूल का पता पा सकते हैं और इसी की पिछली स्थितियां ब्रह्मचर्य और वैराग्य, तक प्राय जा सकते हैं। आन्तरिक प्रजनन की क्रिया कभी रुक नहीं सकती और उसके रुकने के मानी हैं मृत्यु। और इसी प्रकार मौत की जड़ को भी हम देख पाते हैं।

जीव-विद्या में प्रजनन

मनुष्यों और पशुओं में लिङ्गभेद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है और सामान्य नियम बन गया है। इन जीवों का विचार करने के पहले हमें बीच की स्थिति को देखना पड़ेगा यानी वह जो अलिङ्गिक स्थिति (एक कोषीय जीव) के बाद और द्वि-लिङ्गिक स्थिति के पहले की है। इसे उभय लिङ्गी का नाम दिया गया है क्योंकि इसमें नर और मादा दोनों के गुण मौजूद होते हैं। अब भी कुछ ऐसे जीव हैं, जिनमें यह स्थिति देखने में आती है। उनमें आन्तरिक कोषों की वृद्धि तो उसी तरह होती जाती है, मगर कुछ कोषों के शरीर से बिलकुल निकल जाने के बदले, वे एक अंग से दूसरे अंग में चले जाते हैं और वहीं उनका पोषण तबतक होता रहता है जबतक वे स्वतंत्र जीवन के योग्य नहीं हो जाते।

विकास का नियम यह मालूम पड़ता है कि ख्वाह एक कोषीय जीव हो या बहु कोषीय या उभय लिङ्गी, मगर सभी

दशाओं में सतान का विकास यहाँ तक होते जाना सभव है, जहाँ तक कि उसके माता-पिता का, उसके पैदा होने के समय तक हो चुका था । इस तरह यह तो व्यक्ति की ही उन्नति हुइ जब कभी उसे सन्तान होता है, वह व्यक्ति ही, पहले से उच्चतर स्थिति में पहुँचता है, या पहुँचता होगा फलत उसका सन्तान अपने माता-पिता के साधारण विकास को प्राप्त हो सकेगी । हर जाति और व्यक्ति के लिए जनन-शक्ति की अवधि अलग-अलग होगी, मगर आदर्श रूप में तो वह यौवनावस्था से लेकर वृद्धावस्था के प्रारभ तक होती है । समय से पहले या वृद्धवस्था में सन्तानोत्पत्ति होने से, सन्तान में माता-पिता की निर्बलता उतर आयगी । यहाँ, हम तब, शारीरिक नियमों के अनुसार सभोग-नीति का एक नियम देख पाते हैं । वश-विस्तार और शरीर के आन्तरिक प्रजनन के लिहाज से सन्तानोत्पत्ति के लिए सबसे अधिक लाभकर समय केवल पूर्ण यौवन ही है ।

यहाँ एक बात ध्यान देने लायक है । उभय लिङ्गिय सृष्टि के साथ-साथ एक नई बात देखने म आती है, वह यह है कि दोनों लिङ्गों के उसके अग सिर्फ अलग ही अलग नहीं रहते बल्क स्वतत्र रूप से अपने-अपने शुक्रकोष बनाते जाते हैं । नर अग तो पुराना आन्तरिक जनन का काम, शुक्रकोषों को बना-बना कर करता ही जाता है (जिन्हें बाहर निकाल कर मादा-पिंड में प्रवेश कराने के कारण वीर्यकीट कहते हैं), और मादा अग भी अपने जीवकोष बनाते ही जाते है, मगर पुरुष अग के जीवकोष को गर्भाधान के लिए रख लेते हैं न कि निकाल देते है । हर हालत में व्यक्ति के लिए, आन्तरिक प्रजनन प्राथमिक कार्य है और परमावश्यक है । गर्भाधान के बाद से हर क्षण में जीव

में आन्तरिक प्रजनन होता रहता है। मनुष्य जाति में यौवनावस्था में सन्तानोत्पत्ति हो सकती है, मगर सिर्फ जाति के लिए, उसमें व्यक्ति को लाभ पहुँचना जरूरी नहीं है। नाचो श्रेणियों के समान यहाँ भी अगर आन्तरिक प्रजनन की क्रिया रुक जाय या ठीक-ठाक न चले तो बीमारी या मौत आवेगी। यहां भी जाति और व्यक्ति के हितों में चढ़ा-ऊपरी है। अगर कोष उबरते न हों तो बाह्य जनन में कोष खर्च करने से आन्तरिक प्रजनन के काम में बाधा पड़ेगी ही। हकीकत तो यह है कि सभ्य मनुष्यों में सन्तानोत्पत्ति की जरूरत से कहीं अधिक संभोग हुआ करता है, और वह भी आन्तरिक प्रजनन के मत्थे, जिसके कारण रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट मेहमान बनते हैं।

मनुष्य शरीर का कुछ और गौर से हम विचार करें। उदाहरण के लिए हम पुरुष-शरीर को लेंगे, यद्यपि जरूरी हेर-फेर के साथ स्त्री-शरीर में भी ये ही क्रियायें दिखलाई पड़ती हैं।

शुक्र-कोषों का केन्द्रीय खजाना ही जीव का सबसे पुराना और मौलिक स्थान है। शुरू से गर्भस्थ जीव कोषों की बटती से, जिनको माता के शरीर से पोषण होता है, हर घड़ी बढ़ता रहता है। यहाँ भी जीवन का नियम है, 'शुक्र कोषों का पोषण करो' जब ये बढ़ते और उनका वर्गीकरण होता है, तब वे जरूरत के मुताबिक स्थायी या अस्थायी नये रूप या नये काम लेते हैं। जन्म की घड़ी से इसमें कोई खास फर्क नहीं पड़ता। पहले शुक्र-कोषों का जो पोषण नाभि-नाल से मिलता था वह अब मुँह के रास्ते मिलने लगता है। वे तादाद में जल्दी-जल्दी बढ़ने लगते हैं, और जहाँ कहीं पुराने अंगों को दुरुस्त करने की जरूरत पड़ी, और जरूरत तो हमेशा बनी ही रहती है, वहाँ ये इस्तेमाल किये

आते हैं । नाड़ियों के जर्ये ये अपने स्थान से लेकर सारे शरीर में फैलाये जाते हैं । बडे बडे समूहों में वे खास काम ले लेते हैं और शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की मरम्मत करते हैं । वे हजारों बार मौत को गले लगाते हैं, जिसमें उनका कोष समाज जीता रहे । मुर्दे कोष शरीर की तह पर आ जाते हैं, और खास कर हाड़ों, दांतों, चमडे और बालों को मजबूत बनाने के काम आते हैं जिसमें शरीर की ताकत बढ़े और ठीक हिफाजत हो । व्यक्ति के उच्च जीवन और उस पर निर्भर सभी बातों की कीमत इनकी मौत से चुकाई जाती है । अगर वे पोषण न लें, दूसरे कार्यों को पैदा न करें, अलग-अलग न हो जायँ, भिन्न-भिन्न वर्गों में न बँटें, और अन्त में मर नहीं तो शरीर टिक नहीं सकता ।

शुक्र से या वीर्य से दो तरह के जीवन मिलते हैं (१) आंतरिक या प्रजनन का (२) बाह्य या जनन का, वंश विस्तार वाला । जैसा कि हम कह चुके हैं, शरीर के जीवन का आधार आंतरिक प्रजनन है और इसका तथा बाहरी जनन को एक ही आधार पर निर्भर रहना पड़ता है । इसलिए यह सहज ही देखा जा सकता है कि खास-खास हालतों में ये दोनों क्रियायें संभवतः परस्पर विरोधिनी हो सकती हैं, परस्पर शत्रुता रख सकती हैं ।

प्रजनन और अचेतन

प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र के काम की-सी नहीं है । प्रारम्भिक काल में कोषों के विभजन से प्रजनन का जैसा सजीव काय होता था, वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात् वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है । यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम बिल्कुल निर्जीव कल की भाँति होता है ।

हाँ, यह सच है कि, मूलीभूत बातें हमारी वर्तमान जागृति से इतनी दूर जा पड़ी हैं कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के अधीन नहीं मालूम होतीं, परन्तु एक-क्षण के बाद ही हमें मालूम पड़ जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीर वाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओं का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है — और उसका काम ही यही है — उसी प्रकार शरीर के क्रमशः होते हुए संगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनो-वैज्ञानिकों ने उसका नाम असंकल्प रक्खा है। यह हमारे नित्य नैमित्तिक विचारों से दूर होते हुए भी, हमारा ही अंग विशेष है। यह अपने काम में इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चैतन्य कभी-कभी सुप्तावस्था में पड़ जाता है, परन्तु यह सोता एक क्षण के लिए भी नहीं! हमारे असंकल्प और अविनश्वर अंश की जो प्रायः अपूर्व हानि शरीर सुख के लिए किये गये विषय-भोग से होती है उस का अन्दाजा कौन लगा सकता है? प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-संभोग पुरुष के लिए प्राणघातक है और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही है।

तब अचेतन ही वह जीव-शक्ति है जो प्रजनन की मुश्किल क्रियाओं का संचालन करती है। इसका पहला काम है, गर्भस्थित जीव-पिंड को अन्य दूसरे कोषों से अलग करना। इसके बाद से जीव-पिंड को यह मौत तक मूल शुक्र-कोषों का अपने में लेकर और उनको अपने-अपने अंगों में भेज कर जिलाये रखता है।

यहाँ, कई नामी मानस शास्त्रियों से मैं विरुद्ध जाता मालूम होऊँगा मगर मेरी समझ में अचेतन का संबंध सिर्फ व्यक्ति से

रहता है न कि जाति से यानी उसका पहला काम है, प्रजनन। सिर्फ एक तरह से कहा जा सकता है कि अचेतन का संबंध जाति से होता है। जहाँ तक अचेतन व्यक्ति की उन्नति कर सका है, उसे जैसा बना सका है वैसा ही बनाये रखना चाहता है। मगर वह असंभव को तो संभव कर नहीं सकता। चेतन की सहायता से भी शरीरधारी का जीवन हमेशा के लिए वह बनाये रख नहीं सकता। इसलिए संभोग की प्रवृत्ति या चाह के जर्ये वह अपने आपको पैदा करना चाहता है। यहाँ पर चेतन और अचेतन मिल गये-से कहे जा सकते हैं। संभोग से जो मामूली तौर पर आनन्द मिलता है, उसे व्यक्ति के सुख के अलावा किसी दूसरे हेतु की पूर्ति कहा जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यक्ति नहीं जानता कि उसे कितनी अधिक कीमत देनी पड़ती है।

जनन और मृत्यु

इस लेख में विशेषज्ञों के लेखों से उतारे देना तो ठीक नहीं है, मगर विषय के महत्व और साधारण अज्ञान के कारण मुझे लाचार होकर कुछ प्रामाणिक उतारे देने ही पड़ते हैं। एक कोषीय जीवों के संबंध में श्री रे लैंकेस्टर लिखते हैं—

"इनमें शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने से वंश-विस्तार होता जाता है और इस प्रकार के जीवों में स्वाभाविक मौत को कोई जगह ही नहीं है।

श्री वाइसमैन लिखते हैं "कुदरती मौत तो सिर्फ बहु कोषीय जीवों में ही होती है। एक कोषीय जीव उनसे बच जाते हैं। उनके विकास का कभी अंत नहीं होता, जिसका मिलान हम मृत्यु से कर सकें, और न नई देह बनने का अर्थ है पुरानी

का मरना । टुकडे होने में दोनों ही समान वय के है, न कोई पुराना न कोई नया । इस प्रकार एक-एक जीव की अन श्रेणी चलती है, जिनम हर एक उतना ही पुराना होता है, जितनी कि जाति और हर एक को अनन्त काल तक जाते रहने की शक्ति होती है, उसके टुकडे हमेशा होते जाते है मगर वह कभी मरता नहीं है ।

श्री पैट्रिक गिडिस लिखते हैं "या हम कह सकते हैं कि नये शरीर की कीमत मौत है । नया शरीर पाने की कीमत कभी न कभी मौत के रूप में देनी ही पडती है । काय-भेद से जिनमें स्वरूप का भेद है ऐसे कोषों के पुज का शरीर कहते है । ऐसे शरीर का नाश अवश्यभावी है ।" श्री वाइज मैन के ये महत्वपूर्ण शब्द फिर लिखिए ' इस प्रकार शरीर तो कुछ हद तक जावन के सच्चे आधार—युग्मकोषों—को ढोनेवाला वाहन भर मालूम पडता है ।

श्री रे लकेस्टर का भी यही विचार जान पडता है ' बहु-कोषाय जावों म शरीर के और अगों मे कुछ कोष अलग हो जाते हैं । ऊँची श्रेणी के आधारिया के शरीर, जो मरण शील होते है, इस दृष्टि से निहायत बेजरूरी और क्षणिक माने जा सकते है जिनका काम है, अपने से अधिक महत्वपूर्ण और अमर संयोग करने वाले युग्म-कोषों को सिर्फ कुछ दिनों के लिए मात्र भर रहना ।

मगर हमारे सामने सबसे अधिक आश्चर्य-जनक और महत्वपूर्ण बात तो है, ऊँची श्रेणी के जीवों म सन्तानोत्पत्ति और और मृत्यु म घनिष्ठ सम्बन्ध का होना । इस विषय पर कितने एक वैज्ञानिक खूब स्पष्टता से लिखते भी है ।

प्रजोत्पत्ति का बदला मौत है

कई जाति के जीवों में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है, जिनमें कि वंश-वृद्धि में ही माता या पिता को प्राय जान से हाथ धोना पड़ता है। संतानोत्पत्ति के बाद भी जीना तो जिन्दगी की विजय है जो हमेशा नहीं होती और किसी-किसी जाति में तो कभी नहीं। मौत पर अपने लेख में महाकवि गेटे ने खूब ही दिखलाया है कि प्रजोत्पत्ति और मौत का संबंध बहुत घनिष्ठ है और होना ही चाहिए, और दोनों को ही मौत को बुलानेवाली क्रियायें कह सकते हैं। श्री पैट्रिक गिडिस इस विषय पर लिखते हैं "मौत और वल्दियत का गाढ़ा सरोकार है मगर आमतौर पर इसे गलत तरीके से कहा जाता है। लोग कहते हैं कि जीवों को मर जाना है, इस लिए उन्हें बच्चे पैदा करने ही होंगे नहीं तो जाति का अंत हो जायगा। मगर पिछली बातों पर इतना जोर देना तो पीछे की सोच है। सच्ची बात तो यह है कि बच्चे इसलिए पैदा नहीं किये जाते बल्कि जीव इस लिए मरते हैं कि वे बच्चे पैदा करते हैं।"

श्री गेटे ने संक्षेप में ही कहा है 'मौत होगी ही, इस लिए बच्चे पैदा करना जरूरी नहीं है बल्कि संतानोत्पादन का अवश्यंभावी फल ही मृत्यु है।'

कितने एक उदाहरण देने के बाद श्री गिडिस इन महत्वपूर्ण शब्दों से अपना लेख समाप्त करते हैं 'ऊंची श्रेणी के जीवों में प्रजोत्पत्ति के लिए आत्म त्याग से मौत तो बहुत घट गई है मगर तो भी मनुष्यों में भी कामोपभोग के फल स्वरूप प्राणान्त हो सकता है। यह तो सभी कोई जानते हैं कि संयत भोग-

विलास मे भी शरीर कुछ दिनों के लिए खाली हो जाता है और शारीरिक शक्तियों के घटने पर सभी बीमारियों का होना ज्यादा संभव हो जाता है ।"

थोड़े में इस चर्चा का सारांश देकर इसे यों खतम किया जा सकता है कि मनुष्यों में संभोग से पुरुष की मौत जरूर नजदीक आती है, और बच्चे पैदा करने व उन्हें पालने-पोसने में स्त्री की भी ।

ऐयाशी के शरीर पर पड़नेवाले असरों पर पूरा एक अध्याय ही लिखा जा सकता है । अखंड या प्राय पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करनेवालों के लिए सबलता, पूर्णायु, जीवनी-शक्ति, रोगों से रक्षा तो स्वाभाविक बात होती है । इसका एक सबूत यह है कि निबल मनुष्यों के बहुत से रोग कृत्रिम रूप से सुई के जरिये शुक्र को खून में पहुँचाने से छूट जाते हैं ।

लेख के इस भाग में दिये गये निश्चयों को स्वीकार करने में भले ही कई पाठकों को हिचक हो सकती है । इस पर कई आदमी दिखलाने लगेंगे कि 'ये बड़े-बूढ़े लोग जिनके कई एक लड़के हुए अब भी स्वस्थ और सबल हैं । और फिर यह देखिए कि अविवाहितों से विवाहित ही अधिक दिन जीते हैं ।' मगर इसके सामने इन दलीलों की कोई वक्त नहीं है, क्योंकि विज्ञान की दृष्टि में मौत सिर्फ जीवन के अन्त का ही नाम नहीं है, बल्कि मौत एक क्रिया है जो जन्म से ही शुरू होकर जीवन-रूपी क्रिया के साथ साथ आजीवन क्षण-क्षण जारी रहती है । शरीर की मरम्मत करनेवाली जीवनी शक्ति और शरीर को क्षीण करनेवाली विनाश-शक्ति दोनों ही जीवन मरण की एकत्र रहनेवाली विभूतियाँ हैं । बचपन और नई जवानी में

पहली शक्ति यानी जीवन-क्रिया बढ़ती पर रहती है प्रौढ़ावस्था में दोनों क्रियायें साथ-साथ बराबरी से चलती रहती हैं और जीवन के पिछले हिस्से में यानी बुढ़ापे में दिनों-दिन मौत का क्रिया ही बढ़ती जाती है और अन्त में प्राणान्त के साथ बाजी मार ले जाती है। अब मौत की इस जीत की घड़ी को जो कोई क्रिया जरा भी निकट लावे, एक क्षण, एक दिन, एक वर्ष या कई वर्ष, वह मौत की क्रिया का ही एक अंग गिनी जायगी। और विषय भोग ऐसी ही क्रिया है, खास कर जब वह बहुत अधिक किया जाय।

मैं केवल इसी बात पर जोर देना चाहता हूँ कि मौत कुछ एक खास घटना नहीं है बल्कि एक निरन्तर चालू क्रिया की **परिणति** उसका अंतिम परिणाम है। जिन्हें इसमें अब भी सन्देह हो वे ये किताबें देखें—

The Problem of Age, Growth and Death by Charles S Minot [1908, John Murray] and *Regeneration, The Gate of Heaven* by Dr Kemeeth Sylvan Guthrie [Bostan, The Barta Press]

मानस

जनन और प्रजनन की विरोधी शक्तियाँ शरीर को टिकाये रहती हैं, इसका पता शरीर के उच्च अंगों, जैसे, खास कर मानस (मस्तिष्क और ज्ञान-तन्तु-जाल) के कामों का विचार करने से चलता है। दोनों स्नायुमंडल—ज्ञान-तन्तु-जाल तथा आज्ञा वाहक—दूसरे सभी अंगों के समान जीवन के मूल-स्थान से लिये गये, किसी समय के, मूल-कोषों से बने हैं। सारे

शरीर में उनकी अरोक धारा बहती रहती है और खास कर दिमाग में तो बहुत बडी मात्रा में। इसलिए संतानोत्पादन के लिए या मन के लिए ही, उन कोषों की इस कथ्य गति का रोकने से उन अंगों के जीवन का खजाना चुकने लगता है और धीरे-धीरे उनकी हानि ही होती है। इन्हीं शारीरिक हकीकतों के आधार पर व्यक्तिगत सभोग-नीति बनती है, और अगर अखंड ब्रह्मचर्य नहीं तो कम से कम सयम की सलाह दी जाती है।

इस संबंध में एक उदाहरण लीजिए। हिन्दू धर्म और सामाजिक जीवन से जो लोग कुछ भी परिचित हैं वे जानते हैं कि हिन्दू लोग पहले तपस्या करते थे, और अब भी कुछ लोग करते ही हैं। इसके दो उद्देश्य होते हैं। एक तो शरीर का निभाना और उसकी शक्तियाँ बढाना और दूसरा है, कुछ अलौकिक मानसिक शक्तियाँ यानी सिद्धियाँ प्राप्त करना। पहले का नाम हठयोग है, इसकी साधना एक मात्र शारीरिक सपूर्ति के लिए बहुत अधिक का जाता है। दूसरे को राजयोग कहते हैं और इसका अभ्यास मानसिक तथा योग संबंधी उन्नतियों के लिए किया जाता है। तो भी इन दोनों ही योगों में एक स्थान तो समान है और वह है शरीर-संबंधी। यह बात पातंजल-योग-दर्शन में दी हुई है।

पंचक्लेशों में 'राग' तीसरा क्लेश है (२-३)। 'राग' कहते हैं सुख भोगने के बाद जो इच्छा सुख भोगनेवाले में रह जाती है, और फिर से वह सुख न मिलने पर जो संताप होता है उस इच्छा को

सुखानुशायी रागः ॥ ७ ॥ २ पाद

और सुख में दुःख मिला हुआ है, इसलिए विवेकी जनों को उसका त्याग करना चाहिए

परिणामतापसंस्कारदु खैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दु खमेव सर्वं विवेकिन ॥ १५ ॥ २ पाद ।
यहाँ तक तो योगदर्शन में कामवासना का मनोवैज्ञानिक पहलू से विचार किया गया है । इसके बाद शारीरिक दृष्टि से आगे के सूत्रों में विचार किया गया है ।

योगाभ्यास की पहली सीढी यमों की साधना है और यम पाँच हैं

अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा ॥३०॥ २ पाद ।
यह देख कर आश्चर्य होता है कि अपने को योगी कहनेवाले वन्वादी चौथे यम को या तो जानते ही नहीं या उसे बतलाते ही नहीं । चौथा यम ब्रह्मचर्य है ।

पतञ्जलि मुनि के अनुसार ब्रह्मचर्य की साधना के बहुत बडे लाभ होते हैं

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठाया वीर्यलाभ ॥ ३८ ॥ २ पाद ।
अर्थात् जो ब्रह्मचर्य म प्रतिष्ठित ह उसे वीर्य या शक्ति-लाभ होता है । उसे तरह तरह की सिद्धिया हस्तगत होती ह ।

श्रीयुत मणिलाल न द्विवेदी कहते ह "यह तो शरीर-शास्त्र का सामान्य नियम है कि बुद्धि के साथ शुक्र का सबध बहुत गाढा है और हम कहेंगे कि आध्यात्मिकता के साथ भी है । इस अमूल्य वस्तु का सचय करने से मनुष्य को शक्ति मिलती है, वह सच्ची आध्यात्मिक शक्ति मिलती है, जिसे आदमी चाहता ह । पहले इस नियम का अवश्य ही पालन किये बिना, कोई योग सफल नहीं होता ।

यह भी कह देना चाहिए कि ब्रह्मचर्य पालन की क्रिया तथा उद्देश्य शास्त्रीय और तान्त्रिक रूप से भाष्यों में छिपे हुए

दिये जाते हैं। जैसे कि कहा जाता है कि सर्प के समान शक्ति सबसे निचले चक्र (अंड कोष) से चढ़ कर सब से ऊँचे चक्र (मस्तिष्क) में जाती है।

व्यक्तिगत संभोग-नीति

साधारणत व्यक्तियों, समाजों, या जातियों के अनुभवों पर से नीतिशास्त्र की रचना होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर मालूम पड़ता है कि किसी न किसी बड़े बहुमान्य पुरुष ने नीति के नियम बनाये हैं। मूसा, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद के दूसरे महापुरुषों और दर्शनिकों ने अपने-अपने देश और जमाने में मनुष्य के आचार की कुछ कसौटी जरूर रक्खी थी।

इससे हम देख सकते हैं कि सर्वमान्य नीति-शास्त्र का आधार दर्शनशास्त्र, मानसशास्त्र, शरीरविज्ञान, और समाजशास्त्र के ऊपर रहता है। ये सब शास्त्र मिल करके वास्तविक या काल्पनिक मसाला दे देते हैं जिस के ऊपर से यह सिद्धान्त अपने आप स्वयंसिद्ध-से निकल पड़ते हैं। उन्हीं सिद्धान्तों का संग्रह नीतिशास्त्र है।

इसलिए किसी खास युग या सभ्यता की व्यक्तिगत संभोग नीति उसी बात के आधार पर बनेगी, जिसका उस समय के लोगों पर, उनके अपने अनुभवों में अधिक से अधिक असर पड़ा होगा। गोकि सामाजिक संभोग-नीति के समान यह व्यक्तिगत संभोग-नीति भी समय-समय पर बदलती रहती है, किन्तु तोभी इन दोनों में ही कुछ ऐसी स्थिर बातें हैं जो कि कम या बेश स्थायी होती हैं।

इस युग के लिए संभोग नीति को निश्चित करते समय हमको आजतक की मालूम सभी बातों तथा समस्याओं का

ख़याल रखना और ख़ास कर वैसी वस्तुआ पर ध्यान देना होगा, जिनका समर्थन योग्य विद्वान् करते हैं। अगर मैं यह कहूँ कि मेरे लेख के पहले पाँच विभागों में दिखलाइ गई हकीकतों पर ध्यान देत ही किसी भी बुद्धिमान् और इमानदार पाठक के मन में कई तर्क-सिद्ध और अनिवाय परिणाम आयेंगे ही तो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जान पडेगा कि इन हकीकतों का एक ही परिणाम है और वह है ब्रह्मचय का पालन। मगर इसके विरुद्ध हमें एक दूसरा प्राकृतिक नियम भी तुरत ही मिल जाता है। पहला नियम है, प्राकृतिक उत्तेजना यानी काम वासना का और दूसरा और नया नियम है, ज्ञान के, विज्ञान के, अनुभव के, विश्वास के और आदर्श आधार पर निकले हुए ब्रह्मचय का। पहले नियम यानी कामवासना की पूर्ति करने से बहुत शीघ्र ही बुढापा और मृत्यु आती है, मगर नियम के पालन के रास्ते में इतनी बडी-बडी कठिनाइयाँ पडी हुई हैं कि शायद ही कोइ उस का ओर ध्यान देता हो। लोग इस बात पर विश्वास करने को तैयार ही नहीं होते। ये तुरत ही कहने लगते हैं — मगर, लेकिन —? यहाँ यह बात विचारणीय है कि योगियों और भिक्षुओं के लिए सयम-नियम क जा कठिन नियम बनाय गये थे उनका आधार केवल अधश्रद्धा या पौराणिक गपोडे ही नहं है, किन्तु इस लेख में बतलाइ गइ शरीर-शास्त्र की बातों का विशिष्ट ज्ञान है।

मेरे जानते काउण्ट टाल्सटॉय से अधिक जोरों से या स्पष्ट तौर पर किसी दूसरे आधुनिक लेखक ने सभोग-नीति को नहीं बतलाया है। मैं उनके कुछ विचार नीचे देता हूँ

१०२ अपनी जाति को कायम रखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति — यानी काम वासना — मनुष्य में स्वभाव से ही रहती है। अपनी पशुता की दशा में वह इस इच्छा की पूर्ति करके अपना काम पूरा करता है और इससे भलाई होती है।

१०३ मगर ज्ञान का उदय होते ही उसे जान पड़ने लगता है कि इस वासना की पूर्ति करने से खास उसकी अपनी कुछ भलाई होगी, और वह अपनी जाति को कायम रखने के इरादे से नहीं, किन्तु खास अपनी भलाई करने के इरादे से विषय करने लगता है। यही विषय-सम्बन्धी पाप है।*

१०७ पहली हालत में जब कि कोई ब्रह्मचर्य का पालन करना और अपनी सारी शक्तियों को परमात्मा की सेवा में लगाना चाहता हो, तब उसके लिए प्रजोत्पादन के हेतु से भी संभोग करना पाप होगा। जिसने अपने लिए ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह भी स्वभाव से ही एक पाप होगा।

११३ जिसने ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह करने में यह पाप है कि अगर वह विवाह न करता तो शायद सब से बड़े काम को चुनता, ईश्वर की ही सेवा में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता और इसलिए प्रेम के प्रचार और गॉड से बढ़ मंगल की प्राप्ति में अपनी शक्ति लगा देता लेकिन विवाह करने से वह नीचे उतर आता है और अपना मंगल साधन नहीं कर पाता है।

---

* पाठकों को यहाँ यह याद रखना चाहिए कि टाल्स्टॉय की पाप की परिभाषा सामान्य परिभाषा से अलग है। वह पाप उसको कहता था जो प्रेम के प्रदर्शन में यानी गॉड के प्रति शुभ कामना के रास्ते में बाधक हो।

११४ जिसने वश-रक्षा का मार्ग पकड़ा है उसके लिए यह पाप है कि प्रजोत्पादन न करने से या कम से कम कौटुंबिक सबंध न पैदा करने से, वह दाम्पत्य जीवन के सबसे बड़े सुख से अपने को वंचित रखता है।

११५ इसके अलावा और सभी सुखों के समान, जो लोग सभोग के सुख को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं वे जितना ही अधिक काम-लालसा को बढ़ाते है, उतना ही अधिक स्वाभाविक आनद को कम करते जाते हैं।

पाठक देखेंगे कि टाल्सटॉय का सिद्धान्त सापेक्षिक है, यानी किसी के लिए परमात्मा की ही ओर से या किसी बड़े शिक्षक की ओर से पक्का नियम नहीं बना दिया गया है, किन्तु सभी को अपना-अपना मार्ग चुनना है। केवल इतना ही आवश्यक है कि जिसने अपने लिए जो मार्ग चुना है, उसे उसीका पालन करना चाहिए।

ऐसी धर्म-नीति में एक के बाद एक मगर उतरते हुए निषेध होंगे। जो आदमी अखड ब्रह्मचर्य में विश्वास करता करता है, किसी बड़े और ऊँचे शारीरिक तथा आध्यात्मिक लाभ के लिए जान बूझ कर इन्द्रिय-सयम करने का प्रयत्न करता है उसके लिए किसी किस्म के सभोग का निषेध है जिसने विवाह कर लिया है, उसके लिए पर पुरुष या पर स्त्री का गमन मना है। इससे आगे बढ़कर अगर अविवाहितों के लिए जिनका अनियमित सभोग चलता है, वेश्या-सेवन जैसा जघन्य काम निषिद्ध है तो स्वाभाविक कर्म करने वाले के लिए अप्राकृतिक कर्म बहुत ही बुरा है। इससे भी आगे चलकर अगर किसी किस्म के अब्रह्मचर्य करने वालों के लिए उनमें अतिशयता करनी बुरी

उसका आगों से विशेष आदर होने लगा और समय पाकर ज
जिस पद पर प्रतिष्ठित हुआ उसीका विकास हो कर पति का पद बना। माता के साथ जिन कई आदमियों का संबंध रहता था, उनमें जो सब से अधिक बलशाली, सुन्दर और चालाक होता उसे दूसरों से कुछ ऊँचा पद दिया गया। अंग्रेजी भाषा में पति या गृहपति के लिए 'हसबैंड' (Husband) शब्द प्रचलित है। हसबैंड का मूल है Husbuendi जिसके मानी होते हैं घर में रहनेवाला। इसी एक शब्द में विवाह-संस्था का बहुत कुछ इतिहास भरा हुआ है। सभी पतियों में से जो पत्नी के साथ उसके घर पर रहता था, वह धीरे-धीरे गृहपति या हसबैंड कहलाने लगा। क्रमशः वह घर का मालिक बन गया और वैसा ही कोई हसबैंड जाति का सरदार और राजा बना। पुरुषों का शासन शुरू होते ही बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पड़ी, जैसे कि स्त्रियों के राज्य में बहुपतित्व की चली थी।

इसलिए, अगर सामाजिक रूप में नहीं तो अपने स्वभाव से ही स्त्री बहुपतित्व के और पुरुष बहुपत्नीत्व के रिवाज को पसंद करनेवाला होता है। पुरुष अपनी इच्छायें सभी ओर दौड़ा कर प्रायः अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को ही पसंद करता है। स्त्री भी वही करती है। लेकिन अगर स्त्री-पुरुषों की अनियंत्रित स्वाभाविक और मानसिक वासनाओं पर कोई लगाम न लगे तो क्या आदिम और क्या आधुनिक, मनुष्य-समाज का नाश निश्चय ही हो जाता। मनुष्य में नीचे से और सभी जानवरों में इन सब इच्छाओं की अनियंत्रणता है। समाज ने विवाह के रूप में यह नियंत्रण लगाया और अन्त में एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री के साथ विवाह का नियम प्रचलित हुआ। [illegible] एक

हो विकल्प है और वह है स्त्री पुरुषों का अनियमित मिलन। ऐसी अनियमितता के प्रचार से मनुष्य-समाज का और कम से कम आधुनिक समाज का नाश निश्चित है। इस विवाह रूपी अंकुश और अनियमितता के बीच हम सहज ही समझ देख सकते हैं। वेश्या-गमन, अनियमित और गैरकानूनी मिलन, व्यभिचार और तलाकों से नित्य प्रति यही सिद्ध होता है कि पुराने और आदिम संबंधों से ज्यादह पक्की जड, अभी तक विवाह-संस्था नहीं जमा सकी है। क्या कभी वह जमा सकेगी?

इस बीच हमें एक और उपाय पर विचार करना जरूरी है, जो कि गुप्तरूप से बहुत दिनों से प्रचलित रहा है, मगर हाल में ही जिसने बेशर्मी से सिर उठाना शुरू किया है। यह है, संतति-निरोध। इसका तरीका है ऐसी दवाओं या यंत्रों का प्रयोग करना जिनसे गर्भाधान न होने पावे। गर्भाधान होने से स्त्री पर जो भार पडता है, उसके अलावा भी पुरुष को और खास कर दयालु पुरुष को बहुत काफी समय तक संयम रखना पडता है। संतति-निरोध से तो आत्मसंयम करने की कोई मस्लहत ही नहीं रह जाती, और जबतक इच्छा ही कम न हो जाय या इन्द्रियाँ शिथिल न हो जाय तबतक कामवासना को तृप्त करते जाना संभव हो जाता है। खैर इसके अलावा भी, पर स्त्री के साथ संबंध पर इसका असर जरूर ही पडता है। अनियमित अनियंत्रित, और संतान-हीन संभोग के लिए यह दरवाजा खोल देता है, जो कि आधुनिक उद्योग, समाज-शास्त्र तथा राजनीति की दृष्टि से खतरनाक है। मैं इन बातों पर यहाँ विचार नहीं कर सकता। इतना ही कहना काफी है कि संतति-निरोध के कृत्रिम उपायों से स्वपत्नी और पर-स्त्री, दोनों के साथ

अतिशय संभोग की सुविधा हो जाती है और अगर मेरी शरीर शास्त्र संबंधी दलीलें सही हैं तो इससे समाज और व्यक्ति दोनों का अकल्याण होना ध्रुव है ।

उपसंहार

खेत में डाले हुए बीज के समान यह लेख भी कुछ ऐसे लोगों के हाथ में पड़ेगा जो कि इससे घृणा करेंगे, और कुछ ऐसों की भी नजर से गुजरेगा जो महज आलस्य या अयोग्यता के कारण इसे समझ नहीं सकेंगे । जो लोग इसमें बतलाये विचारों को पहले-पहल सुनेंगे, उनमें इसके प्रति विरोध-बुद्धि पैदा होगी, क्रोध तक भी उत्पन्न होगा और बहुत ही थोड़े आदमियों को यह सच्चा और उपयोगी जान पड़ेगा । और उनके दिलों में भी शंकायें तथा संदेह उठेंगे । सबसे भोले-भाले लोग कह उठेंगे 'आपकी राय में तो किसी हालत में विषयभोग करना ही नहीं चाहिए । अजी तब तो सृष्टि का ही लय हो जायगा। इसलिए आपके विचार जरूर ही गलत होने चाहिएँ।' मेरा जवाब यह है कि मेरे पास ऐसा कोई भयानक रसायन है ही नहीं। ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न से जितनी जल्दी सृष्टि का लय होगा, उससे कहीं अधिक तेजी से संतति-निरोध के उपाय पृथ्वी को मनुष्यों के भार से हलका कर देंगे । संतान को जन्म लेने से रोकने का सबसे सफल तरीका संतति-निरोध का ही है । मेरा हेतु बहुत सीधा सादा है । अज्ञान और स्वच्छन्दता के जवाब के रूप में कुछ दार्शनिक और वैज्ञानिक बातों को रख कर मैं इस युग के लोगों में स्त्री-पुरुष के संबंध को शुद्ध करने में सहायता देना चाहता हूँ ।